प्रकाशकीय वक्तव्य

...व महान ग्रन्थराज श्री भूवलय का परिचय जब भारत के राष्ट्रपति महा-
महिम डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जी को दिया गया तो उन्होने इसको ससार का आठवा
आश्चर्य बताया। इस महान ग्रन्थ की रचना आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व
दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ कुमुदेन्दु स्वामी ने की थी। आचार्य
श्री कुमुदेन्दु नन्दी-पर्वत के समीप, बेंगलोर से ३८ मील दूर यल्ला-
वल्ली स्थान के रहनेवाले थे। वे मान्यखेट के राष्ट्रकूट राज के
सम्राट अमोघवर्ष के राजगुरु थे। यह अपूर्व ग्रन्थ अन्य ग्रन्थो से विलक्षण ६४
अक्षरों में है जिससे कन्नड भाषा के ह्रस्व, तथा दीर्घ आदि अक्षर बनते हैं। यह
ग्रन्थराज जैन धर्म की विशेषतया तथा अन्य धर्मों की सस्कृति का पूर्ण परिचय
देता है। यह विज्ञान का भी एक अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थराज मे १८ महान
भाषाएँ तथा ७०० कनिष्ठ भाषाएँ गर्भित हैं। यदि इस ग्रन्थराज को भली
प्रकार समझा जाए तो इसके द्वारा मनुष्य का ज्ञान बहुत अधिक उन्नति कर
सकता है। इस ग्रन्थ का कुछ भाग माइक्रो फिल्म कराया जा चुका है और
इसे भारत के राष्ट्रीय सग्रहालय मे राष्ट्रपति के आदेशानुसार रखा गया है।

गत वर्ष जैन प्रदर्शनी तथा सेमिनार के आयोजन पर इस ग्रन्थराज
की प्रदर्शनी की गयी थी। जनता इसको देखकर आश्चर्य चकित तथा मुग्ध हो
गयी थी। जनता की पुकार थी कि इसे शीघ्र प्रकाश मे लाया जाए।

यह ग्रन्थराज स्वर्गीय श्री प० यल्लप्पा शास्त्री, ३५६ विश्वेश्वरपुर सर्किल
बेंगलोर के पास था। वे भी गत वर्ष देहली मे थे। इस ग्रन्थराज के
प्रति उनकी अपूर्व श्रद्धा तथा भक्ति थी। वे प्रात स्मरणीय विद्यालकार
आचार्य रत्न श्री १०८ देश भूषण जी महाराज के जोकि
गत वर्ष देहली मे चतुर्मास कर रहे थे सम्पर्क मे आये आचार्य श्री
के हृदय में जैन धर्म तथा जैन ग्रन्थो की प्रभावना की तो एक अपूर्व लगन है
ही। आचार्य श्री ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता देखकर इस ग्रन्थराज को प्रकाश
मे लाने का निश्चय किया। गत वर्ष इस विषय में काफी प्रयत्न किया गया।

चतुर्मास समाप्ति पर आचार्य श्री ने देहली से विहार किया अत ग्रन्थराज के
प्रकाशन का कार्य स्थगित सा हो गया। आचार्य श्री सदैव इस ग्रन्थ को प्रकाश
मे लाने के लिए पूछते रहे परन्तु हम अपनी विवशताएं बताते रहे। अन्त में
जब आचार्य श्री गुडगावें में थे तो देहली के प्रमुख सज्जनो ने आचार्य श्री से
प्रार्थना की—कि वे जबतक देहली न पधारेगे इस कार्य का, आरम्भ होना
असम्भव है। आचार्य श्री पहले दो चतुर्मास देहली में कर चुके थे अत देहली
नही आना चाहते थे। परन्तु देहली निवासी लगातार आचार्य श्री को इस महान
ग्रन्थराज के प्रकाश मे लाने के हेतु देहली आने के लिए आग्रह करते रहे। अन्त
मे आचार्य श्री ने इस कार्य की महानता तथा उपयोगिता को दृष्टि में रखते
हुए इस वर्ष देहली आना स्वीकार किया।

आचार्य श्री अप्रैल १६५७ में देहली पधारे। तत्काल ही तार आदि
देकर श्री यल्लप्पाजी शास्त्रीको बेंगलोरसे बुलाया गया। भाग्यवश भारतके प्रमुख
उद्योगपति धर्मवीर दानवीर, गुरु भक्त श्री युगल किशोर जी बिडला—जोकि
आचार्य श्री को अपना धर्म गुरु ही मानते हैं। इस ग्रन्थ से बहुत प्रभावित
हुए उन्होने भी यह प्रेरणा की कि इस ग्रन्थ को प्रकाश मे लाया जाए और
उन्होने क्रियात्मक रूप से सहयोग के नाते इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे जो विद्वानो
पर व्यय हो वह देना स्वीकार किया। उनके इस महान दान से हमको और भी
प्रेरणा मिली। ग्रन्थ के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक नियमित
समिति देहली की प्रमुख साहित्यिक सस्था जैन मित्र मण्डल धर्मपुरा देहली के
तत्वावधान मे ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति के नाम से स्थापित की
गयी जिसमे देहली नगर के प्रमुख सज्जनो ने अपना सहयोग दिया। समिति
वर्तमान में निम्न प्रकार है।

सस्थापक—दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी
महाराज।

सरक्षक—श्री सर्वार्थसिद्धि सघ बेंगलोर।

सभापति—ला० अजितप्रसाद जी ठेकेदार।

उपसभापति—ला० मनोहरलाल जी जौहरी ।

,, ला० मुन्शीलाल जी कागजी

मन्त्री—श्री महतावसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० ।

,, ,, आदीश्वरप्रसाद जी एम० ए० ।

,, ,, पन्नालाल जी प्रकाशक तेज ।

कोषाध्यक्ष—श्री नेमचन्द जी जौहरी ।

संशोधक स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री ।

प्रकाशन प्रबन्धक—ला० छुट्टनलाल जी कागजी ।

,, ,, श्री मुनीन्द्रकुमार जी एम० ए० जे० डी०

,, ,, ,, रघुवरदयाल जी ।

सदस्य—ला० श्यामलाल जी ठेकेदार ।

,, जोतिप्रसाद जी टाइप वाले ।

,, प्रेमचन्द जी जैनावाच कम्पनी

,, शान्तिकिशोर जी ।

,, रणजीतसिंह जी जौहरी ।

,, रामकुमार जी ।

ग्रन्थराजके संशोधन तथा भाषानुवाद का कार्य आचार्य श्री की छत्रछाया में क्षुल्लिका विशालमती माताजी,स्वर्गीय श्री यल्लप्पाशास्त्री, प० अजितकुमार जी शास्त्री तथा प०रामशंकरजी त्रिपाठी द्वारा शुरू किया गया। मुद्रण का कार्य श्री देशभूषण मुद्रणालय को दिया गया। कार्य सुचारु रूपसे चलता रहा। आचार्य श्री लगभग ८ घण्टे प्रतिदिन इस ग्रन्थराज के लिए देते रहे हैं। इसी प्रकार यल्लप्पा शास्त्री जी भी दिन रात इस कार्य मे सलग्न रहे। इसी बीच में एक महान दुर्घटना हो गयी जैसा कि सदैव होता ही है। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शीघ्र ही देश को राष्ट्र पिता महात्मा गाधी की आहुती देनी पडी उसी प्रकार इस ग्रन्थ के प्रकाश मे आने से पहिले ही इस ग्रन्थ के सरक्षक श्री यल्लप्पा शास्त्री, अपने घर बेंगलौर से दूर इसी देहली मे २३ अक्टूबर १९५७ को स्वर्गवास कर गये। आप केवल एक दिन ही बीमार रहे। आपका निधन एक महान वज्रपात है, और आज भी समझ नही आती कि उनकी अनुपस्थिति मे यह समिति क्या कर सकेगी। हम तो स्वर्गीय के प्रति श्रद्धा के दो फूल ही चढा सकते हैं। केवल इतना और कह सकते हैं कि हम अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करेंगे कि जो कार्य हम स्वर्गीय के जीवन मे न करसके वह उनके निधन के बाद अवश्य पूरा करें।

इस ग्रन्थराज का आरम्भ मे इस समय केवल मगल प्राभृत ही २५० पृष्ठो मे प्रकाशित किया जा रहा है। ग्रन्थराज बहुत विशाल है और इसको पूर्णतया प्रकाश में लाने के लिए सहस्रो पृष्ठ प्रकाशित करने पडेगे। आर्य धर्म शिरोमणि श्री युगलकिशोर जी बिडला ने इस कार्य मे अपना पूरा सहयोग देने की स्वीकारता दी है। गत सप्ताह जैन जाति शिरोमणि दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी तथा उनकी सौभाग्यवती पत्नी रमारानी जी देहली मे थी। वे दोनो आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके पास आये थे। वे इस ग्रन्थ से तथा इस ग्रन्थ के प्रति आचार्य श्री की लगन से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होने यह आश्वासन दिया है कि इसके भविष्य के कार्य-क्रम की रूप रेखा आदि उनके पास भेज देने पर वे पूर्ण रूप से इस ग्रन्थ के उद्धार तथा प्रकाशन मे सहयोग देगें। हमे आशा है कि उनके तथा बिडला जी के सहयोग से तथा आचार्य श्री के आशीर्वाद से हम इस कार्य को भविष्य मे भी प्रगति दे सकेंगे।

हमे इस कार्य मे देहली जैन समाज के अतिरिक्त दिगम्बर जैन समाज, गुडगावा, गोहाना, रिवाडी, फरुखनगर तथा रोहतक आदि से भी आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ है। ग्रन्थ के मुद्रण मे जो कागज लगा है उसका अधिकतर भार देहली के माननीय सज्जनो ने उठाया है जिनमे निम्न नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ला० सिद्धोमल जी कागजी, ला० मनोहरलाल जी जौहरी, ला० मुन्शीलाल जी कागजी, ला० नेमचन्द जी जौहरी, ला० नन्नूमल जी कागजी, ला० जयगोपाल जी आदि।

इस ग्रन्थ की आरम्भ में २००० प्रतिया मुद्रण की जा रही हैं। इनमे से १००० प्रतियो का समस्त व्यय देहली जैन समाज के प्रमुख धर्मनिष्ठ दानी स्वर्गीय ला० महावीर प्रसाद जी ठेकेदार ने अपने जीवन में ही देना स्वीकार किया था। ग्रन्थ के मुद्रण को अधिक से अधिक सुन्दर बनाने मे

दशभूषण मुद्रणालय के समस्त कर्मचारी गण तथा उसके प्रबन्धक श्रीचन्द जी जैन ने विशेष प्रयत्न किया है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

अन्त में हम आचार्य श्री के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं। आचार्य श्री के ही सतत प्रयत्नों तथा लगन के फलस्वरूप आज हम इस महान ग्रन्थ को प्रकाशित करते हुए अपने को धन्य मान रहे हैं। हमें स्वर्गीय श्री यल्लप्पा शास्त्री के दोनों पुत्र श्री धर्मपाल तथा शान्तिकुमार के सहयोग की भी अत्यन्त आवश्यकता है तथा हमें विश्वास है कि वे भी अपने पूज्य पिता की भाति इस कार्य में सहयोग देते रहेंगे। अन्त मे हमारा समस्त जैन समाज से निवेदन है कि वह इस कार्य मे हमे अपना पूर्ण सहयोग तन-मन-धन से दे। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से जैन सस्कृति की प्राचीनता तथा उसका महत्व ससार मे सूर्य के समान प्रसरित होगा।

हम हैं आचार्य श्री के आशीर्वाद के अभिलाषी—

सभापति अजितप्रसाद जैन ठेकेदार। | मन्त्री आदीश्वरप्रसाद जैन एम० ए०।

मन्त्री महताबसिंह जैन बी० ए० एल० एल० बी०। | ,, पन्नालाल (तेज अखबार)।

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति
जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली।

ग्रन्थराज श्री भूवलय प्रकाशन समिति

जैन मित्र मण्डल, धर्मपुरा देहली ।

खडे हुए— (बाये से दाये) श्री रामकुवर जैन (सदस्य), श्री नेमचन्द जैन जौहरी (कोषाध्यक्ष), श्री महतावसिंह जैन (B A, L-L B मंत्री), श्री शान्तिकिशोर जैन (सदस्य), श्री आदीश्वर प्रशाद जैन (M A मन्त्री), श्री पन्नालाल जैन तेज प्रेस (मन्त्री)
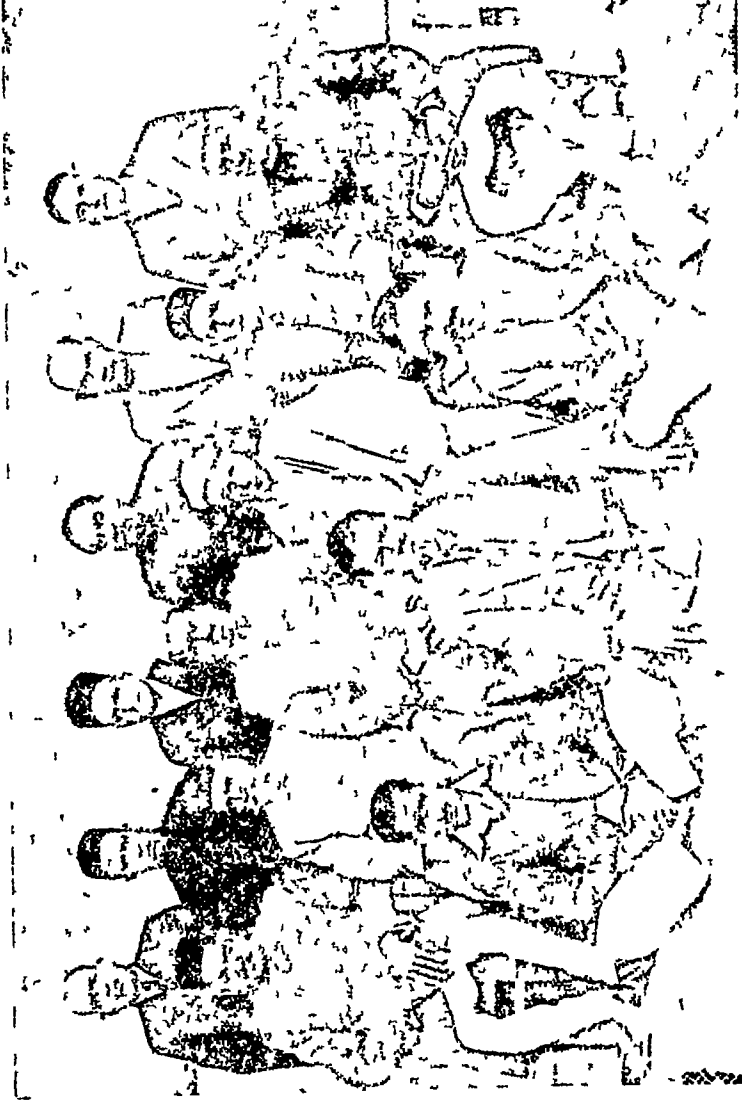
कुर्सी पर बैठे हुए- श्री मुन्शीलाल जैन कागजी (उपसभापति), श्री जगाधरमल जैन (प्रधान, दि० जैन मन्दिरान कमेटी देहली सदस्य), श्री अजितप्रशाद जैन (ठेकेदार सभापति), श्री मनोहरलाल जैन जोहरी (उपसभापति), श्री जोतिपशाद टाइपवाले (सदस्य), श्री श्यामलाल जैन (ठेकेदार सदस्य)

बैठे हुए— श्री रघुवरदयाल जैन, (प्रकाशन प्रबन्धक) श्री जिनेन्द्र कुमार जैन' श्री होशियारसिंह जैन कागजी ।

नोट —अन्य सदस्य जो फोटो मे सम्मिलित न हो सके--(१) ला० रणजीतसिंह जैन जौहरी, (२) श्री मुनीन्द्र कुमार जैन M A J D. (३) श्री छुट्टनलाल जैन कागजी, (४) श्री प्रेमचन्द जैन, जैनावाच कम्पनी, (५) श्री रामकुमार जी ।

श्रीभूवलय-परिचय

श्रीकुमुदेन्दु आचार्य और उनका समय

श्रीकुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र (इन्दु शब्दका अर्थ 'चन्द्र' है) नाम के अनेक आचार्य हुए हैं। एक कुमुदचन्द्र आचार्य कल्याणमन्दिर स्तोत्रके कर्ता हैं। एक कुमुदचन्द्र आचार्य महान वादी वाग्मी विद्वान हुए हैं जिन्होने श्वेताम्बरो के साथ शास्त्रार्थ किया था। एक कुमुदेन्दु सन् १२७५ मे हुए हैं जो श्री माघनन्दि सिद्धात चक्रेश्वर के शिष्य थे उन्होने **रामायण** ग्रथ लिखा है। किन्तु इस ग्रन्थ राज भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य इन सबसे भिन्न प्रतीत होते हैं।

श्री देवप्पा का पिरिया पट्टन मे लिखा हुआ **कुमुदेन्दु शतक** नामक कानडा पद्यमय पुस्तक है उसमे भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य का उल्लेख है। देवप्पा ने कवि माला तथा काव्यमाला का विचार करते हुए सगीत मय कविता लिखी है, उसमे भूवलय कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य का आलकारिक वर्णन है। कुमुदेन्दु शतक के कुछ कानडो पद्य यहाँ वतौर उदाहरण के दिये जाते हैं--कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने माता पिता का नामका उल्लेख तो नही किया परन्तु मुनि होने के वाद इस भूवलय नामक विश्व काव्य की रचना करते समय अपना कुछ परिचय दिया, वह निम्न पद्यो से प्रकट है

श्रीदिसिदेनु कर्माटकद जनरिगे । श्री दिव्यवाणिय क्रमदे ।।
श्रीदया धर्म समन्वय गणितद । मोदद कयेयनालिपुदु ।।
वरद मंगलद प्राभृतद महाकाव्य । सरणियोळगुरुवीरसेन ।।
गुरुगळमतिज्ञान दरिविगेसिलेकिह । अरहत केवलज्ञान ।
जनिसलु सिरिवीरनेर शिकपन घनवाद काव्यदकथेय ।।
जिनसेन गुरुगळ तनुविनजन्मद घनपुण्यवरधर्मनवस्त ।।
नाना जनपद वेल्लदरोळुधर्म । तानु क्षीणिसि बपगि ।।
तानल्लि मान्यखेटददोरे जिन भक्त । तानुअमोघ वर्षांक ।

कवि कर्नाटक जनता को सम्बोधन करते हुए कहते हैं —

अर्थ--श्री कुमुदेन्दु आचार्य का ध्येय विशालकीर्ति है, मुनिचर्याका पालन करना उनका गौरव (गुरुत्व) है, वे नवीन नवीन कीर्ति उत्पन्न करते थे, वे अवतारी महान पुरुष थे। सेनगण की कीर्ति फैलाने वाले थे। उनका गोत्र **सद्धर्म** है सूत्र वृषभ हैं, शाखा द्रव्याग है, वश इक्ष्वाकु है, सर्वस्वत्यागी सेन हैं। नवीन गण गच्छ के आनन्ददायक नेता थे। नव्य भारत मे शुद्ध रुचिकार कर्माट राजा को उन्होने भारत के निर्माण में अहिंसा धर्म की परिपाटी को वढाने रूप आशीवाद दिया। समस्त भाषाओ और समस्त मतो का समन्वय और एकीकरण करने वाले भुवन विख्यात **भूवलय** ग्रन्थ की रचना की।

इस तरह देवप्पा ने भूवलय के कर्ता श्री कुमुदेन्दु (कुमुदचन्दु) आचार्य का परिचय दिया है। भूवलय ग्रन्थ से प्रतीत होता है कि कर्माटक चक्रवर्ती मान्यखेट के राजा राष्ट्रकूट अमोघवर्ष को भूवलय द्वारा कुमुदेन्दु आचार्य ने व्याख्या के साथ करणसूत्र समझाया था।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य के दिये हुए विवरण को परशीलन करके देखा जाय तो वे सेनगण, ज्ञातवश, सद्धर्म गोत्र, श्री वृषभ सूत्र, द्रव्यानुयोग शाखा, और इक्ष्वाकु वश परम्परा मे उत्पन्न हुए तथा सेनगण में से प्रगट हुए नव गण-गच्छो की व्यवस्था की।

श्री कुमुदेन्दु को सर्वज्ञ देव की सम्पूर्ण वाणी अवगत थी अत वे महान ज्ञानी, धुरन्धर पडित थे लोग इन्हें सर्वज्ञ तुल्य समझते थे। और इनके पहले के मगल प्राभृत भूवलय को गणित पद्धति के अनुसार जानने वाला श्री वीरसेनाचार्य को वतलाया है। तथा श्री जिनसेन आचार्य का "शरीर जन्म से उत्पन्न हुआ घनपुण्यवर्द्धन वस्तु" विशेषण द्वारा स्मरण करके वीरसेन के वाद श्री जिनसेन, आचार्य को गौरव प्रदान किया है।

जहां तक हमको ज्ञात हैं। अक राशि से निर्मित अन्य कोई ऐसा साहित्य ग्रन्थ अभी तक प्रकाश मे नही आया। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने परम गुरु वीर सेन आचार्य की सम्मति से बनाये गये इस "सव भापामय कर्नाटक काव्य" मे वीरसेन आचार्य से पहले की गुरु परम्परा का निम्न रूप मे उल्लेख किया है—

वृषभ सेन, केसरिसेन, वज्रचामर, चारुसेन, वज्रसेन अदत्तसेन, जलज-सेन, दत्तसेन, विदर्भसेन, नागसेन, कु थुसेन, धर्मसेन मदरसेन जयसेन, सद्धर्मसेन, चक्रबध, स्वयभूसेन, कु भसेन, विशालसेन, मल्लिसेन, सोमसेन, वरदत्तमुनि स्वयप्रभारती, और इद्रभूति (२४ तीर्थंकरो के आदि गणधरो) के अनन्तर "वायु भूति, अग्निभूति सुधर्मसेन, आर्यसेन मु डिपुत्र, मैत्रेय सेन अकपसेन, आध्र गुरु [भग० महावीर के] गणधर हुए। इनके वाद श्री प्रभावसेन, ने हरि-शिव शकर गणित के एक महान ज्ञाता बनारस [काशीपुरी] मे वाद विवाद करके जीता और गणिताक रूप **पाहुड ग्रंथकी रचना** करके दूसरे गणधर पदकी प्रशस्ति प्राप्त की। [अ०, १३, ५०, ८७, ९८, ११९]

गुरु परम्परा—

गुरु परपरा के इस भूवलय, आगे **"पसरिपकन्नाडिनोडेयर पिसुण तेयळिद कन्नडिगर्क सवरनाडिनोळ्चनिपर"**

इस प्रकार कर्नाटक सेन गण के द्वारा सरक्षण तथा सवृद्धि को प्राप्त कर "हरि, हर, सिद्ध, सिद्धात, अरहन्ताशा भूवलय" [६, १८६–१९०] धर-सेन गुरु के निलय [७, १९] इस गाथा नम्बर से उद्धृत होकर धरसेनाचार्य से, अर्थात् धरसेन आचार्य करुणा के पाच गुरु की परम भक्ति से आने वाले अक्षराक काव्य की रचना करके प्राकृत, सस्कृत, और कानडी इन तीनो का मिश्रित करके पद्धति ग्रन्थ का इस १३–२१२ अन्तर श्रेणी के ४० श्लोक तर्क सस्कृत, प्राकृत, कर्नाटक रूप तीन भाषाओ के शास्त्रो का निर्माण हुआ तथा इस सरलमार्ग कोष्ठकं कॉव्य [५-१-७७] को धरसेन आचार्य के पश्चात् भूतवली ने इस कोष्ठक वन्ध अंक [८-५१] रूप मे भूवलय का नूतन प्राकृत दो सधि रूप में रचना कर गुरु उसे परम्परा तक लाये, इतना ही नही किन्तु इसके अतिरिक्त भूवलय के कर्नाटक भाग में ही शिवकोटि [४-१०-१०२] शिवाचार्य [४-१०-१०५] शिवायन [१०७] समन्तभद्र [४-१०-१०१] पूज्यपाद [१९-१०] इनके नामो को और भूवलय के प्राकृत सस्कृत भाग श्रेणियो मे इन्द्रभूति गौतम गणधर नागहस्ति, आर्यमक्ष और कु द कु दाचार्यादिक को स्मरण किया है। इस समय अक राशि चक्र मे छिपे हुए साहित्य मे नवीन सगति के वाहर निकल आने के वाद इसके विषय मे नये नये विचार प्रगट होगे। हम इस समय जितना प्रगट करना चाहते थे। उतने ही, विषय को यहाँ दे रहे हैं।

श्री भूवलय को देख कर एव समझकर, प्रभावित हुआ प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण अत्रेय गोत्र का देवप्पा अपने कुमुदेन्दु शतक के प्रथम अ श में महावोर स्वामी से लेकर कुछ आचार्य का स्मरण कर उनको नमस्कार कर कुमुदेन्दु के विषय को कहा है। कि श्री वासुपूज्य त्रिविद्याधर देव के पुत्र उदय चन्द्र, इनके पुत्र विश्व विज्ञान कोविद् कीर्ति किरण प्रकाश कुमुदचन्द्र गुरु को स्मरण करते समय उद्धृत हुआ आदि गद्य—

श्रीं देशीगणपालितो बुधनुतह'। श्री नदिसंघेश्वरह।
श्री तर्कागमवार्धिहिम (म) गुरु श्री कुंद कुंदान्वयह॥
श्री भूमडल राजपूजित सज्छ्री पादपद्मद्वयो।
जीयात् सो कुमुदेंदु पडित मुनिहि श्रीवक्रगच्छाधिपह॥

इस पद्य मे देवप्पा ने इसी भूवलय के कर्ता कुमुदेन्दु को देशी गण नदिसघ कु द कु दाम्नाय का वतलाया है। नये गण गच्छ को निर्माण करके उन्ही को उपदेश देने के कारण सेनगण में इन्ही को उल्लेखित किया है, और देशी-गण का भी उसी मे से विकास हुआ हो, ऐसा जान पडता है। इस समय भी सेन गण के कर्नाटक प्रान्त मे जैन परम्परा के सपालक एव अनुयायी अनेक जैन विद्यमान हैं। और भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु गग रस की विरदा-वली मे दिये हुए कोडवडे ग्राम तलेकात् अथवा तलेकाड नदिगिरि को विश्व-वद्य जैनधर्म के पवित्र पर्वतो का वर्णन करते समय उनके सम्पूर्ण भाव जो नदि पर्वत के ऊपर आदिनाथ तोर्थंकर का 'नदि' चिन्ह जो बन गया है, वह रूप उनकी प्रशान्त भावना से ओत–प्रोत है। यह वात उनके वचनो से स्पष्ट होती है।

इहके नंदियु लोक पुज्य ॥८-५५॥ महति महावीर नन्दि ।५६।
इहलोकवादियगिरिय । ६-५६। सुहुमान्न्द गरिणतवबेट्टा ।
महसीवुमहाव्रत भरत ।६१। वहिदनुव्रत नन्दि ।७२।
सहनेय गुरुगळ वेट्ट ।७३। सहचर मूराकमूरू ।७४।

इसका गगराज के सस्थापक सिंह नन्दि मुनीन्द्र के द्वारा शक स० १ ईस्वी सन् [७८] में निर्माण हुआ था। पहली राजधानी इनकी नदिगिरि होनी चाहिए। हम ऐसा निश्चयत कह सकते हैं कि प्रस्तुत कुमुदेन्दु उन्ही सिंहनदि वश के हैं। इन्ही की परम्परा का एक मठ सिंहणगद्य में हैं जहा जहा सेनगण है वहाँ वहाँ सव इन्हीके धर्म का क्षेत्र है। इम प्रकार संपूर्ण विषय का विचार करके दिये गए वर्णन को, जो कि देवप्पा ने दिया है, ठीक प्रतीत होता है।

भूवलय काव्य को देवप्पा ने विशेष रीति से समझ कर जनता के प्रति जो उपकार किया है वह उपकार विश्व का दसवा आश्चर्य है। इस भूवलय काव्य को, जो विश्व की समस्त भाषाओ को लिये हुए है। उनकी रचना कर उन्होने अपने पिता को लोक में महान गौरव प्रदान किया हैं। इससे सिद्ध होता है कि कुमुदेन्दु के पिता वासु पूज्य और उनके पिता उदयचन्द थे।

कुमुदेन्दु के समय का परिचय कराने के लिये अभी तक हमे जितने भी साघन प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर हम कह सकते हैं कि ग्रन्थ कर्ता के द्वारा उल्लिखित पूर्व पुरुषो के नामो का उल्लेख और उनका सक्षिप्त परिचय, तथा समकालीन व्यक्तियो के नाम, समकालीन राजाओ का परिचय, श्री कुमुदेन्दु का समय निर्द्धारण मे सहायता करते हैं।

श्री कुमुदेन्दु से पूर्व होने वाले आचार्य धरसेन, भूतबली पुष्पदन्त, नागहृस्ति, आर्य म क्षु और कु दकु दादि, एव अन्य रीति से उल्लिखित शिवकोटि, शिवायन, शिवाचार्य, पूज्यपाद, नागार्जुन ये सव विद्वान आठवी शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। उनकी परम्परा के ग्रन्थ न मिलने पर भी सस्कृत प्राकृत और कर्नाटक भाषा में लिखा हुआ विपुल साहित्य, तथा विश्वसेन भूतबली पुष्पदन्तादि की रचनाएँ विद्यमान हैं। पर उनमे कुमुदेन्दु के काव्य समान समस्त भाषाओ को समाविष्ट कर वस्तु तत्व दिखलाने का काव्य कौशल नही है।

श्री कुमुदेन्दु के विनीत शिष्य राजा अमोघ वर्ष ने अपने 'कविराज मार्ग' मे कवियो के नामो का जो उल्लेख किया है वह इस प्रकार है—

विमलोदयनागर्जुन । समेत जय वंधुदुर्विनीतादिगळी ॥
क्रमरोळ्चिगद्या । श्रम पद गुरु प्रतीतियके यकोन्डर् ॥

विमल, उदय, नागार्जुन, जयवधु, दुर्विनीति कवियो में से नागार्जुन द्वारा रचित कक्षपुट तत्र को समझा फिर नागार्जुन का 'कक्ष पुट तंत्र' जो पहले कानडी भापा मे था वह वाद में सस्कृत मे परिवर्तन कर दिया गया इस तरह इस उल्लेख से अनुमान किया जाता है कि यह दुर्विनीत के शासन समय का साहित्य ही उपलब्ध है। विमल जयवधु का काव्य हमे उपलब्ध नही हुआ है तो भी नृपतु ग अमोघवर्ष के ग्रन्थ मे आने वाले कर्नाटक गद्य कवि प्रिया पट्टन के देवप्पा द्वारा कहे जाने वाले कुमुदेन्दु के पिता उदयचन्द्र का नाम ही 'उदय' है ऐसा कहने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही है। और इस भूवलय ग्रन्थ में आनेवाले पूज्यवाद आचार्य ने कल्याण कारक ग्रन्थ को बनाया ऐसा स्पष्ट होता है। क्योकि कुमुदेन्दु से जो पूर्ववर्ती कवि थे उनका समय सन् ६०० से वाद का नही है। इस ग्रथ से हमने जो कुछ समझा है वह प्राय अस्पष्ट है, पूरा ग्रन्थ हमें देखने को नही मिला है। किन्तु हमने जो कुछ देखा है उससे यह भली भाँति विदित है कि कुमुदेन्दु आचार्य के लिखे अनुसार वाल्मीकि नाम के एक सस्कृत कवि हो गए हैं। ['कवि' वाल्मीकि रस दूत अरिण सूवा'] इस प्रकार कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्र थ में शुद्ध रामायण अ क के कर्ता वाल्मीकि ऋषि के नामका उल्लेख किया है। परन्तु इनके विषय मे अभी तक कुछ निर्णय नही हो सका है। कोई कहता है कि वह छठी शताब्दी के हैं कोई कहता है कि उसके वाद के हैं। इस तरह उनके समय सम्वन्ध का ठीक निर्णय नही हो सका है कि वे कव हुए हैं।

अमोघ वर्ष की सभा मे वाद विवाद करके शिव-पार्वती गणित को कह कर चरक वैद्य के हिंसात्मक आयुर्वेद का खण्डन किया। इस तरह कुमुदेन्दु आचार्य के द्वारा कहा गया उक्त उल्लेख अभी तक अस्पष्ट है। आचार्य समन्तभद्र का उल्लेख भी अभी विचारणीय है। इस कथन से स्पष्ट है कि कुमु-

देन्दु के द्वारा उल्लेखित सभी कविजन छठी शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। कुमुदेन्दु के समकालीन व्यक्तियो मे से एक वीरसेनाचार्य दूसरे जिनसेनाचार्य, वीरसेनाचार्य के द्वारा षट् खण्डागम की धवला टीका वनाई गई है। और जिनसेन महा पुराण के कर्ता है। उन्होने अपनी जयधवला टीका शक स० ७५६ मे बना कर समाप्त की है और महा पुराण भी लगभग उसी समय वे अधूरा छोडकर स्वर्गवासी हुए हैं जिसे उनके शिष्य गुणभद्र ने पूरा किया था अत बाद मे उस समय उनके शिष्य कुमुदेन्दु मौजूद थे ऐसा अनुमान किया जाता हैं।

३—कुमुदेन्दु आचार्य ने राष्ट्र कूट राजा अमोघ वर्ष को अपना यह ग्रंथ सुनाया था, ऐसा कहा जाता है। मान्यखेट के अमोघ वर्ष का समय इस से निश्चित रूप मे कहा जा सकता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने ग्रन्थ मे अमोघ वर्ष के नाम का कई वार उल्लेख किया है। जैसे कि—

भारतदेशद मोघवर्षन राज्य। सारस्वतबेंबग।८१२६।
तनल्लि मान्यखेटददोरेजिनभक्त। तानुअमोघवर्षांक।६ १४६।
सिहियखंडदकर्माटकचक्रिय। महिमेमडलभेज्ञरातु।६-१७२।
गुरुविनचरणधूळिय होमोघाक। दोरेयराज्य 'ळ' भूवलय॥
जानरमोघवर्षांकनसभेयोळु। क्षोणिशसर्वज्ञमतदिं॥
इह वे स्वर्गवीएबतेरदिम्।६१७६। वहिसि अमोघवर्षनृप॥
ऋषिगळेल्लरुएरगुवतेरदिंदळि। ऋषिरूपधरकुमुदेन्दु॥
हसनादमनदिंदमोघवर्षांकगे। हेसरिट्टुपेळ्द श्री गीत।४५।
ऊनविल्लद काव्यदक्षराकव काव्य। काणिपवैकुंठ काव्य।४६।
ऊनविल्लद श्री कुरुवशहरिवश। आनंदमय वशगळलि।
तानेतानागि भारतवाळ्दराज्यद। श्री निवासन दिव्य काव्य।
सिरि भूवलयम्नाम सिद्धातनु। दोरे अमोघ वर्षांक नृपम्।
ईयुत कर्माट जनपदरेल्लर्गे। श्रेयोमपिलधर्मम।१६-२कु४,५।

इस प्रकार अमोघ वर्ष का अनेक प्रकार से सम्बोधन करते हुए जो उद्धरण दिये गये हैं। अमोघ वर्ष का समय ईस्वी सन् ८१४ से ८७७ तक उसने राज्य किया है, इसमे किसी प्रकार का सदेह नही है। इनके गुरु का समय ईस्वी सन् की ८ वी शताब्दी होना चाहिये ऐसा अनुमान किया जाता है। कुमुदेन्दु आचार्य ने गंग रस और उनके शका कास्मरण किया हैं। और गोट्टिक नामक शैवट्ट शिवमार्ग के नामका उल्लेख भी किया गया है जैसे कि—

महदादिगागेयपूज्य।५६। महियगनृगरसगणित।६६।
महिय कळ्वप्पुकोवळला।७१। मवरितलेकाच गंग।७२।
अरसराळिदगंगवश।१२। त् रसोत्तिगेयवर मंत्र।१३।
एरडुवरेयद्विपदद।१४। गरुवगोट्टिगरेलुरंद।१५।
अरसुगळाळ्दकळ्वप्पु।२०। दूरदंगदनुभवकाव्य।२३।
आदि योळ्मत्त वर्णदसेनर। नादियगगर राज्य।
सादि अनादिगळ्भयगसाधिप। गोदम निम्बद वेद।२३।

इन समुल्लेखो से यह स्पष्ट है कि आचार्य कुमुदेन्दु ने जो अमोघ वर्ष का 'शैवह' शिवमार्ग' नाम से उल्लेखित किया है वे उनके प्रारम्भिक नाम ज्ञात होते हैं। "शिवमार देवम् सैगोट्टनेंबेरडेनये पेसरमृताल्दि, शिवमार मत तथा गजशास्त्र की रचना कर और पुन. एनेलूवदो शिवमारम। हो वलयाधिपन "सुभग कविता गुणमय' ॥ भूवलय दोल्" गजाष्टक। योगवनिगेयु "मोने के वाडु" मादुदे पेलगुम्।

इस तरह पर कानडी गद्य मे गजाष्टक नाम के काव्य की रचना की है।

यह शैवट्ट वट्टिग—शुभ कविता बनाने में प्रवीण थे। भूवलय में गजाष्टक वणिके वास इत्यादि काव्य कूटने और पीसने के विषय मे, कविता कर्नाटक भापा में चत्तान्न वेदन्न' ऐसे दो प्रकार के पुराने पद्य पद्धति में पाये जाते हैं। जो कि पुरातन काव्य की रचना शैली को व्यक्त करते हैं। जहा तक अमोघवर्ष के काव्य का सम्बध है, उसमे उल्लिखित उक्तदोनो काव्य हैं। उनको इन्होने निश्चय से उपयोग किया है।

शिवमार्ग वट्टि ने दक्षिण कर्नाटक का राज्य ईस्वी सन् ८०० से ८२० तक किया हैं। इसके पश्चात् गगरस राजा नदगिरि, ने (लाल पुराधीश्वर) (राजा) शासन किया है। इतना ही नही, किन्तु इसके अलावा इस भूवलय मे

'कडवप्पु' 'कल्ल वप्पु' (श्रवणबेलगोल) का पुरना नाम है यह ७ वीं शताब्दी के पहले के शासन में 'वड्ढारक' नामक प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लिखित मिलता है। यह स्थान गग राजा के एक प्रान्त की राजधानी था ऐसा मालूम होता है। जैसे अन्य पुण्य तीर्थ है, उसी तरह इसे भी पुण्य क्षेत्र माना जाता है इस विषय का अनुशीलन किया जाय तो कुमुदेन्दु गुरु का और उनके समकालीन राजा का क्रिश्चियनशक ८१३ से ८१४ के मध्यवर्ती में सिद्ध होगा। इसे हम स्थूल रूपमें कह सकते हैं। भूवलय के आगे के अध्याय को जहां तक हो अक पद से निकाल कर देखने के बाद मिलने वाले जितने चाहें उतने साहित्य से क्रिश्चियन शक ८१३ से ८१४ के बीच एक निश्चत समय हमें मिल जाता है। इससे कुमुदेन्दु आचार्य, क्रिश्चियन शक ८ वीं शताब्दी में हुए हैं।

वादी कुमुदचन्द्र–(ईसवी सन् ११००) मे इन्होंने जिन-सहिता नामक प्रतिष्ठांकल्प की कानडी टोका लिखी है। यह "इति माघनदी सिद्धांत चक्रवर्ती के पुत्र चतुर्विध पडित चक्रवर्ती श्री वादी कुमुदचन्द्र पडित देव विरचिते" इस प्रकार उनकी स्तुति की गयी है।

पार्श्व पडित–(सन् १२०५) यह अपनी गुरु परम्परा को कहते हुए वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, सोमदेव, वादिराज, मुनिचन्द्र, श्रुतकीर्ति, नेमिचन्द्र वासुपूज्य, शिष्य, श्रुतकीर्ति, मुनिचन्द्र, पुत्र वीरनदि, नेमिचन्द्र सैद्धांतिक। बलात्कारगण के उदयचन्द्र मुनि, नेमिचन्द्र भट्टारक के शिष्य वासुपूज्य मुनि, रामचन्द्र मुनि, नदियोगी, शुभचन्द्र, कुमुदचन्द्र, कमलसेन, माघवेंदु, शुभचन्द्र शिष्य, ललितकीर्ति, विद्यानदि, भावसेन, कुमुदचन्द्र के पुत्र वीरनदि इत्यादि मुनियों की स्तुति की है। इनमें से कोई भी कुमुदेन्दु आचार्य से सम्बन्ध नही रखते।

कुमुदेंदु– (ई० सन् १२७५) कुमुदचन्द्र की इस गुरु परम्परा में वीरसेन, जिनसेन (७ विद्वाना के वाद) वासु पूज्य के शिष्य अभयेन्दु के पुत्र "कुमुदेन्दु" माघवचन्द्र अभये दु, कुमुदेन्दु व्रति पुत्र, "माघनदि मुनि, वालेन्दु जिनचन्द्र" यह कुमुदेन्दु मुनि भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

महाबल कवि–(ई० सन् १२५४) इनको गुरु परम्परा में जिनसेन वीरसेन, समतभद्र, कवि परमेष्ठी, पूज्यपाद, गृद्धपिच्छ, जटासिंहनदी अकलक शुभचन्द्र "कुमुदेन्दु मुनि" विनयचन्द्र, माघवचन्द्र, राजगुरु, मुनिचद्र, वालचद, भावसेन, अभयेंदु, माघनदियति, 'पुष्पसेन' यह कुमुदेंदु भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

समुदायके माघनंदी–(ई० सु० १२६०) इनकी गुरुपरम्परा में मूल सघ वलत्कार गण के वर्धमान (अनेक तले मारु के शिष्य होने क वाद) श्रीधर शिष्य वासु पूज्य, शिष्य उदयचद्र, शिष्य कुमुदचद्र, शिष्य माघनदि कवि, यह कुमुदचद्र, भी भूवलयके कर्ता नही हैं।

कमल भव–(२० सु० १२७५) इनके द्वारा वतलाई हुई गुरु परम्परा में कोढकुन्द, भूतवलि, पुष्पदन्त, जिनसेन, वीरसेन, (पागे २३ व्यक्तियों के और नाम कह कर) पद्मसेन व्रति, जयकीर्ति, कुमुदेन्दु योगी, शिष्य माघनदी मुनि इस तरह छह विद्वा ो के वाद" स्वगुरु माघनदी पडित मुनि आदि हैं; इस गुरु परम्परा में तीन माघनदी का नाम आया है। यह कुमुदेन्दु भी भूवलय के कर्ता नहीं हैं।

इसी तरह कुमुदेन्दु या कुमुदचन्द्र नाम के और भी अनेक विद्वान हो गए हैं उनकी गुरु परम्परा प्रस्तुत कुमुदेन्दु से भिन्न है, और समय अर्वाचोन है, ऐसी स्थिति में अन्य नामधारी कुमुदेन्दु नाम के विद्वानों के सम्वन्ध में यहाँ विशेष विचार करने का कोई अवसर नही हैं। क्योंकि उनका प्रस्तुत ग्रथकर्ता से सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता, अस्तु।

भाषा और लिपि

श्री कुमुदेन्दु आचार्य केकहने के अनुसार श्री आदि तीर्थंकर वृषभदेव के गणधर वृषभसेन से लेकर महावीर के गणधर इन्द्रभूति तक सभी गणधर कर्णाटक प्रान्त वाले ही थे इसलिये सभी तीर्थंकरो का उपदेश सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणी में हुआ था और उसो का प्रसार समस्त लोक में किया गया था। सर्व भाषात्मक उस दिव्य वाणी को प्रमाण सबद्ध रूप से व्यक्त करने की शक्ति केवल कर्नाटक भाषा में ही है। ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के द्वारा अपनी दोनो पुत्रियो को दिया हुआ ज्ञान, कनाडी-भाषा में ही था और यह भी कहा जाता है कि उनके मोक्ष जाने के पूर्व उन्होने वडी रानी यशस्वती के पुत्र भरत को साम्राज्य पद और लघु रानी सुनन्दा के पुत्र गोमद देवको पौदनपुरका राज्य प्रदान किया।

पश्चात् उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी देवी ने मिलकर पिता से निवेदन किया कि हे तात ! ऐसी कोई शाश्वत वस्तु हमे भी प्रदान कीजिये। इस तरह प्रार्थना करने पर पिता ने कहा कि ठीक है, परन्तु सभी लौकिक वस्तुए पहले ही वे अपने पुत्रो को दे चुके थे।

भगवान् वृषभदेव ने मन में सोचा कि इनको कोई लौकिक वस्तु देने से क्या फायदा, कोई ऐसी चीज देना चाहिए कि जो परलोकमे भी इनकी कीर्ति को कायम रखे। इस तरह सोचकर भगवान् वृषभदेवने अपनी दोनो पुत्रियो को बुलाकर संपूर्ण ज्ञान साधन के आधारभूत वस्तु इन्हे देना चाहिए, ऐसा सोचकर बुलाया और ब्राह्मी देवी को अपने जघा पर बिठा कर उनके वायी हथेली मे अपने दांया हाथ के अगुष्ट से संपूर्ण भाषाओ को पूर्ण करने के लिए जितना अक चाहिए उतने ही अक को अ से लेकर अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ- इन नो अक्षर को ह्रस्व, दीर्घ प्लुत के सत्ताईस स्वरो तथा पुन- क, च, ट, त, प, इस वर्गके पच्चीस वर्गित के अक्षरो को य, र, ल, व, श, ष, स, ह, इन आठ व्यजनो को तथा आगे, ०,००, ०००, ००००ये चार अयोग वाहओ को मिलाकर ६४ चोसट अक्षर रूप, वर्णमालाओ की रचना कर उनके हाथ मे लिखा और उनको कहा कि ये अक्षर आपके नाम से यह अक्षय होकर रहे, और यह सम्पूर्ण भाषाओ को इतने ही पर्याप्त हैं ऐसा कहकर उनको आशीर्वाद दिया।

दूसरी अपनी सुन्दरी नामक छोटी पुत्री को दायी जघा पर बिठाकर उनकी वाया हथेली मे अपने दाये हाथ की अगुष्ट से एक विंदी ० इस तरह लिखकर उसी के समानरूप से दो छेद करके उसे ही आधा आधा छेदकर १,२, ३,४, ५, ६, ७, ८, ९, ० लिए दिया। पुन इसको एक मे मिला देते से पहले के समान विंदी रूप होता है और इन छेद को एक मेकमें मिला कर इस अक को ही वर्ग पद्धति के अनुसार मिलाते जाने मे विश्व के समस्त अणु परमाणु ग्रहण करने के लिए जितने अक आवश्यक हो उतने ये अक पर्याप्त हैं। ऐसा भगवान ने इस अक विद्याको, पुत्री सुन्दरी देवी को समझा दिया। और तदनुसार प्रत्येक वस्तुओ को दोनो का बटवारा करके देते समय एक को एक दिया और दूसरी पुत्री को दूसरा दिया ऐसा उनके मन मे भाव न हो और उनको पता भी न पडे इस तरह एक ही वस्तु मे दोनो को भिन्न भिन्न रूप मे बतलाकर उन दोनों को भी सतुष्ट कर दिया।

इस पद्धति के अनुसार समस्त शब्द समूह को प्रत्येक ध्वनि और प्रति-ध्वनि रूप अक्षर सज्ञा को परिवर्तन करके इस अक अक्षर को चक्रबध रूप मे पहले ही गोम्मट देव के द्वारा अर्थात् बाहुबली के द्वारा "समस्त शब्दागम शास्त्र-रूपमे रचना किया गया है। उस दिनसे परम्परा रूपसे ही वह श्रीकुमुदेन्दुआचार्य तक चला आया है इस तरह इसमे उल्लेख किया गया है। उस समय-आदि तीर्थंकर के द्वारा दिया हुआ अंक लिपिके अक्षर लिपि अलावा और भी उस समय वृषभदेव सर्वज्ञ पद (केवल ज्ञान) प्राप्त करने के बाद कहा हुआ दिव्य उपदेश भी कर्णाटक भाषामे ही कहा था श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। कि इस गणित भाषा में विश्व की ७१८ भाषाओ को अपने अन्दर खीचकर समावेश करने वाले अक भाषा शास्त्र मे उपलब्ध है ऐसा बतलाया है।

इरुव भूवलय दोळनूरु हदिनेन्दु। सरस भाषेगवतार।४-१७७।
वरद वादेळनूरहदिनेन्दु भाषेय। सरमाले यागलुस विद्या।१०-२१०
साविर देंदु भाषवळिरलिवनेल्ल। पावन यह वीर वाणी।
काव धर्मान्कवु ओबत्तागियगि। तावु एळनूरकं भाषे।५०-१२६।
इदरोळु हुदगिद हदनेन्दु भाषेय। पइगळ गुणिसुन बरुवर।
वासवरेल्लाडुव दिव्य भाषेय। राशिय गणितदे कट्टिर॥
आशाधर्मामृत कुम्भदोळडगिह। श्री शनेळनूरक भाषे।५-१२३।
मिक्किह एळनूरु कक्षर भाषेयम्। द्विकिय द्रव्यागमर।
तवक ज्ञानव मुदक्करियुव आशेय। चोक्क कन्नडद भूवलय।५-१७५
प्रकटित सर्व-भाषांक (६-१४) घनवोदळनूर हदिनेदु।

वर्तमान भाषायें (६-४५-४६) सात सौ अठारह हैं। ६-१७४) उनमें सात सौ क्षुल्लक भाषायें और अठारह भाषाये कुल मिलाकर सात सौ अठारह (६-१९१) होती हैं।

वशवाद कर्माट दंदु भागद । रस भग दंकक्षरवसर्व ।
रसभावगळनेल्लव कूडलु वदु । वशवेळनूर् हृदिने दु भाषे ॥
॥११-१७१॥

इस प्रकार ७१८ भाषाओं को गर्भित करके सरल तथा प्रौढ रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्व काव्य की रचना की है।

इस तरह अपने काव्य ग्रन्थ को सर्व भाषामय कर्नाटक भाषा मे रचा है, इसमें पुरातन और नूतन दोनो भाषाओ को गर्भित किया गया है। कुमुदचन्द्राचार्य ने सयुक्त भाषा को इस तरह वितरण किया है कि सस्कृत, मागधी, पैशाची, सूरसेनी, विविध देशभेदवालो अपभ्रंश पाच नौ, (५-१०-९-७-६) - इन भाषाओ को तीन से गुणा करने पर अठारह होता है।-

कर्नाटक, मागध, मालव, लाट, गौड, गुर्जर प्रत्येकत्र मित्यष्टादश, महाभाषा (५-९-७-९-५) इस प्रकार उल्लेख किया गया है।-

सर्व भाषामयी भाषा विश्व विद्यावऽभासने ।
त्रिषष्टि चतुपष्टिर्वा वनाद् शुभनते मता ।
प्राकृते सस्कृते चापि स्वय प्रोक्ता स्वयभुव ।
अकारादि हकारान्तां शुद्धां मुक्तावलिमिव ।
सर्व व्यंजन भेदेन द्विधा भेदमुपयुषमि ।
अयोगवाह पर्यन्तां सर्वं विद्या सुसगताम् ।
अयोगाक्षर सभूति नैक बीजाक्षरश्चितां ।
समवादिदधत् ब्राह्मी मेधा विन्यति सु दरी गणित ।
स्थानक्रमै सम्यक् दास्यत् ततो भगवतो वक्तार मिह श्रुताक्षरा
वलि, दभ इति व्यक्त सुमगलां सिद्ध मातृक स भूवलय ।
(५,१,२,२,१,४,५)

इस सुरक्षेत्र मधुमें आचार्य कुमुदेन्दु ने सर्व भाषामयी भाषा का निरूपण किया है। और अक लिपि में सात सौ अठारह भाषाओ में से प्रत्येक का नामोल्लेख किया गया है। ब्राह्मी, पवन, उपरिका, वराटिका, वजीद, खरसायिका प्रभृतुका, उच्चतारिका, पुस्तिका, भोगवता, वेदनतिका, नियतिका, अक गणित गन्धर्व, आदर्श, माहेश्वरी, दामा, बोलघी, इस प्रकार के विचित्र नामादि का उल्लेख कर विवेचन किया गया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने अपने भूवलय मे सात सौ अठारह भाषाओं मे से निम्न भाषाओं का उल्लेख किया है, कर्नाटक मे प्राकृत, सस्कृत, द्रविड, अन्ध्र, महाराष्ट्र मलयालम, गुर्जर, अग, कलिग, काश्मीर कम्बोज, हमीर, शौरसेनी वाली, तिब्बति, व्यग, वग, ब्राह्मी, विजयार्ध, पद्म, वैदर्भ, वैशाली, सौराष्ट्र, खरोष्ट्री, निरोष्ट्र, अपभ्र श, पैशाचिक, रक्ताक्षर, अरिष्ट, अर्धमागधी, (५-१०-२८-१०-५८) इनके अलावा और भी बतलाते हैं—

आरस, पारस सारस्वत, वारस, वस, मानव, लाट, गौड, मागध, विहार उत्कल कान्यकुब्ज, वराह, वैस्मर्ण, वेदान्त, चित्रकर और यक्ष राक्षस, हस, भूत, ऊइया, यव, नानी तुर्की, द्रमिल, सैन्धव, मालवणिया, किरिय, देव नागरी, लाड, पाशी अमित्रिक, चाणिक्य, मूलदेवी इत्यादि (५-२८-१२०) इस प्रकार आने वाली भाषा लिपियो को इस नवमांक समंज्ञ नामक कोष्टक को एक ही अक लिपि में ही बाधकर उन सम्पूर्ण भाषाओ को इस कोष्टक रूप बधाक्षर के अन्तर्गत समाविष्ट करके सभी कर्माटकके अनुराशिमें मिश्रित कर छोड दिया है। कुमुदेन्दु के समान अन्य किसी महापुरुष में सम्पूर्ण भाषाओ को एक ही अक में गर्भित कर काव्य रूप मे गु फित करने की शक्ति नही हैं ऐसा मैं निश्चय से कह सकता हू।

भूवलय ग्रन्थ की परम्परा इतिहास

भूवलय नामक विश्व काव्य की परम्परा को कुमुदेन्दु आचार्य ने इस प्रकार बताया है कि प्राचीन काल में आदिनाथ तीर्थंकर ने अपने राज्य को, अपने पुत्र भरत और बाहुबली को बटवारा करके देते समय उनकी पुत्रि ब्राह्मी और सुन्दरी इन दोनो पुत्रियो को सम्पूर्ण ज्ञान के मूल ऐसे अक्षराक को पढाया था इस बात का हमने उपर्युक्त प्रकरण मे ही समझा दिया है। दोनो बहिनो को पढाया हुआ अक्षराक गणित-ज्ञान-विद्याको भरत ने सीखने की इच्छा व्यक्त नही की।-

विचार परायन गोमट देव—

रुणनु दोर्बलियवरक्क ब्राह्मीयु । किरिय सौंदरि अरितिर्द ।
अरत्नाल्काक्षर नवमांक सोन्नय। परिहर काव्य भूवलय॥

मनविट्टु कलितनाद कारणविंद। मनुमथ नेनिसिदे देव।।

इस अक्षर अंक गणितको मन पूर्वक सीखने वाले होने के कारण बाहुबली का नाम मन्मथ भी इसी तरह पडा है ऐसा इस श्लोक से प्रतीत होता है। इसलिए इसके निमित्त से इस अंक गणितके कर्ता बाहुबली को माना है। इस अंक चक्र का उपदेश बाहुबली ने जब बडा भाई भरत के साथ आठ प्रकार का युद्ध हुआ था उस समय अपने भाई का अपमान करने के प्रति उनके मन में वैराग्य हुआ था उस वैराग्यमें भ्रत समयमें भरत चक्रवर्तीने समझा कि ये तो अब मुनि होकर कर्म का क्षय करके मोक्ष चला जायगा। इस लिए इन से कुछ दान मांगना चाहिये। इस तरह उनको उन्होंने कहा। तब बाहुबली पूर्णतया विरक्त होने के कारण उनके पास कुछ चीज देने योग्य नहीं थी। और आहार दान, शास्त्र दान, औषध दान और अभय दान के अतिरिक्त और कोई दान देने योग्य नहीं था। परन्तु मन में यह विचार किया कि मेरे पिता ने जो मुझे शास्त्र दान दिया है। उसी को मेरे भाई को देना उचित है। अन्य तीन दान मेरे द्वारा देने योग्य नहीं। ऐसा विचार करके अपने पिता के द्वारा अपनी दोनो बहिनो से समझी हुई "अक्षरांक समन्वय पद्धति" का आदीश्वर भगवान ने अपने को उपदेश किया था वैसा ही सम्पूर्ण ज्ञान को सर्व भाषामयी ज्ञानमे जैसे अन्तर्मुक्त कहा था उसी तरह इस सदर्भ को जैसा कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय के पहले अध्याय के उन्नीसवें श्लोक मे कहा है कि—

लावण्य वंग मेय्याद गोमट देव। आवागतन्न अण्णनिगे।
ईवाग चक्रबंधद कट्टिनोळ् कट्टि। दाविश्वकाव्य भूवलय।।

इस प्रकार कहे हुए समस्त कथन पर से और कुमुदेन्दु आचार्य के मतानुसार इस भूवलयके आदि कर्ता गोमटदेव ही हैं। इस काव्यको भरत बाहुबली युद्धके बाद जब बाहुबली को वैराग्य हो गया, तब उन्होने ज्ञान भडार से भरे हुए इस काव्य को अन्तर्मुहूर्त मे भरत चक्रवर्ती को सुनाया था। वही काव्य परम्परा से आता हुआ गणित पद्धति अनुसार अंक दृष्टि से कुमुदचन्द्राचार्य द्वारा चक्रबंध रूप में रचा गया है।

यशस्वति देविय मगळाद ब्राह्मीगे। असमान कर्माटकद।
'रिसियु' नित्यवु अरवत्नाल्कलक्षर। होसेद अंगय्य भूवलय।
करुणेयम् बहिरग साम्राज्य लक्ष्मिय। अरुहनु कर्माटकद।
सिरिमातायतंते ओवरिपेळिद। अरवत्नाल्क भवलय।।
'धर्म ध्वज' वदरोळु केतिदचक्र। निर्मलदृष्टु हूगळम्।
सर्व 'मनवगल' केवत्तोंदु सोन्नेय। धर्मद कालुलक्षगळे।।
आपाटियंक दोळ् ऐदुसाविर कूडे। श्रीपाद पद्म दंगदल।।

१-२३-३०-६५-६

यह चक्र ५१०२५०००+५०००=५१०,३०००० दल अंक रूप में अक्षर होकर गणित पद्धति के अनुसार रचना की है इस काव्य को ही कुमुदेन्दु आचार्य ने स्पष्ट रूप में कहा है।

अनादि काल से यह चक्रबद्ध काव्य आदि तीर्थंकर से लेकर महावीर तक इस की परम्परा बराबर चली आई है। जब भगवान महावीर को केवलज्ञान हो गया तब महावीर की वह दिव्य वाणी (दिव्य ध्वनि) सर्व भाषा स्वरूप होने लगी। उस समय महावीर के सबसे प्रथम गणधर इन्द्रभूति ब्राह्मण कर्नाटक, सस्कृत, प्राकत आदि अनेक भाषाओ के विद्वान थे, उन्होने ही महावीर की वाणी का अवधारण कर भव्य जीवो को वस्तु स्वरूप समझाया था। गणधर के विना महावीर की वाणी ६६ दिन तक वन्द रही, क्योकि यह नियम है कि तीर्थङ्कर की वाणी विना गणधर के नही खिर सकती। भगवान महावीर के मोक्ष जाने से पूर्व तक गौतम इन्द्रभूति नें उनकी वाणी का समस्त संकलन करके राजा श्रेणिक और चेलना रानी एव अन्य सभा के लोगो को उसका भान कराया था। इसके वाद आचार्य परम्परा से जो पुराण चरित एव कथा साहित्य तथा सिद्धात ग्रन्थ रचे गए वे सब महावीर की वाणी के अनुरूप थे ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय ग्रन्थ मे प्रकट किया है।

आचार्य कुमुदेन्दु ने नवमाक से जो गणित में काव्य रचना की है उसे 'करण सूत्र' नामसे प्रकट किया हैं। इसके सम्वन्ध मे दो तीन श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

नवकार मतर दोळादिय सिद्धांत । अवयव पूर्वेय ग्रंथ ।
दवतार दादिमद्‌'अ' कृषरमङ्गल । नव अअअअअअअअअअ ।
वशगोड 'आदि मङ्गल प्राभृत' । रसद्‌'अ' अक्षरवदु तानु ।२-१३१।
अष्ट कर्मगळम् निर्मूल माळ्प । शिष्टरोरेद पूर्वेकाव्य ।३-१५२।
तारुण्य होदि 'मङ्गल प्राभृत' दारवददे नवनमन ।४ १३२।
परम मगल प्राभृत दोळु अकव । सरिगूडि बरुव भावेगळम्।५-७६
वेदद हृदिनाल्कु पूर्व श्री दिव्यकरण सूत्राक ।१०-१०.११।
श्री गुरु 'मंगल पाहुडदिम् पेळ्द। राग विराग सद्ग्रथ।१०-१०५
रस वस्तु पाहुड मंगलरूपद । असदृश वैभव भाषे ।१०-१६५।

इस पाहुड ग्रन्थमे आगे भी कहा है । कि (१०-२१२) जिनेन्द्र वाणी के प्राभृत (१००-२३७) रसके मगल प्राभृत मगल पर्याय को पढकर (११-४३) मगल पाहुड (११-६२-६२) इत्यादि

तुसु वाणिय सेविसि गौतम ऋषियु । यशद भूवलयादि सिद्धात ।
सुसत गळभरके कावे ब हृन्नेरड् । ससमागवनु तिरहस्तद।१४-५।

इस प्रकार गौतम गणधर द्वाराही सबसे पहले यह भूवलय ग्रन्थ ५ भागो में द्वादशाग रूपसे रचना किया गया था और उसे 'मगल पाहुड' के रूपमें उल्लेखित भी किया था । इस कारण इस ग्रन्थ की रचना महावोर के निर्वाण से थोडे समय वाद में ही हो गई थी । इस समय भगवान महावीर के निर्वाण समय को २४८४ वर्ष व्यतीत हो गए । महावीर के निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम सवत् शुरू हो जाता है । यद्यपि गौतम बुद्ध और भगवान महावीर समकालीन हैं, दोनो का उपदेश राजगृह में दो भिन्न स्थानो पर होता था, परन्तु वे अपने जीवन में परस्पर मिले हो ऐसा एक भी प्रसग परिज्ञात नही है । और न उसका कोई समुल्लेख ही मिलता है । परन्तु यह ठीक है कि महावीर का परिनिर्वाण गौतम बुद्ध से पूर्व हुआ था । इस चर्चा का प्रस्तुत विषय से कोई विशेष सम्वन्ध नही है, अत यहा प्रकृत विपय में विचार किया जाता है—आचार्य कुमुदेन्दु ने भगवान महावीर के समय के सम्वन्ध मे 'प्राणवायुपूर्व' मे निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

सावि‍र दोंडुवरे वर्षगळिंद । श्री वीर देव निम्बद ।
पावन सिद्धात चक्रेश्वर रागि । केवलिगळ परपरेयिम् ।३।
हूविना युर्वेद दोळु महाव्रत मार्ग । काव्यवुसुखदायकवेनु ।
दाव्यक्तदम्युदय वनय्शरेयव । श्री व्यक्तदिद सेविसिद ।४।

यह विश्व काव्य भगवान महावीर के निर्वाण से लेकर आचार्य परम्परा द्वारा डेढ हजार वर्षो से वरावर चला आ रहा था । उसी के आधारसे की गई कुमुदेन्दुको यह रचना विक्रम की नौवी शताब्दी की मानने मे कोई आपत्ति नहीं है ।

भूवलय के छंद

कुमुदेन्दु आचार्य के समय मे भारत में जो काव्य रचना होती थी उसमे विभिन्न छन्दो का उपयोग किया जाता था । कुमुदेन्दुने, दक्षिण उत्तर श्रेणी को मिलाकर अपने शिष्य अमोघ वर्ष के लिए अनेक उदाहरणो के साथ नयो और पुरानी कानडी मिलाकर प्रौढ और मूर्खजनो के हित के लिए उक्त रचना की थी, क्योकि पूर्व समय मे पुरानी कानडी का प्रचार उत्तर भारत के प्राय सभी स्थानो पर होता था, और दक्षिण मे तो था ही । कुमुदेन्दु आचार्य ने ग्रन्थ रचना करते समय इस वात का ध्यान जरूर रक्खा था कि किसी को भी उससे वाधा न पहुचे । इसलिये सर्व भाषामय वनाने का प्रयत्न किया है । अतएव उभय कर्नाटक भाषाओ मे ही सर्व भाषाओ के गर्भित करने का प्रयत्न किया गया है । भूवलय के कानडी श्लोक के विषय में ग्रन्थकर्ता ने यह दर्शाया है कि जनता के आग्रह से उन्होने कर्नाटक भाषा मे रचने का प्रयत्न किया है और उसे सुगम बनाने के लिये ताल और क्रम के साथ सागत्य छन्द में लिखा है तथा श्लोक १२३-१२४ का उल्लेख किया है ।

लिपियु कर्माटक वागलेवेकेंव । सुपवित्र-दारिय तोरि ।
मपताळ लयगूडि 'दारु साविर सूत्र' । दुपसवहार सूत्रबलि ॥
वरद बागिसि अति सरल बनागि । गौतमरिंद हरिसि ।
सर्वांकदरवत्नालकक्षरदिंद । सारि श्लोक 'आरुलक्षगळोळ् ॥

कुमुदेन्दु आचार्य ने इस काव्य-ग्रन्थकी ताल और लय से युक्त छह हजार सूत्रो तथा छह लाख श्लोको मे रचना की है ऐसा उन्होने स्वय उल्लेखित किया है ।

कुमुदेन्दुके शिष्य नृपतुङ्गने अपने कविराजमार्ग मे तथा पूर्व कवि लोग अपनी कविता मे 'चत्तन्न वेदडा' नाम की पद्धति मे रचना की है। कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को 'चत्तन्न वेदडा' पूर्व कवि कथित मार्ग से मिश्रित करके आगे बढा दिया है। चत्तन्न को चार भाग मे—और वेदड को १२ अध्याय से १२ वें अध्याय के अत तक अन्तर्गत रूप दडक रूप गद्य साहित्य मे रचना करके नृप तु ग के पहले कर्नाटक छन्द को दर्शाया है। कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य मे कहा है कि —

मिगिलावतिशय देळ्नूर हदिनेंदु । अगणित दक्षरभाषे ।९-१९८।
शगणावि पद्धति सोगसिम् रचिसिहे । मिगुबभाषेयु होरगिल्ल ।
चरितेयसागत्य वेने मुनि नाथर । गुरु परंपरेय विरचित।९-१९९।
चरितेय सागत्य रागदोळउगिसि । परतंद विषय गळेल्ल।७१९२।
वशवागदेल्लगि कालदोळेंव । असदृश ज्ञानद् साँगत्य ।
उसहसेनरु तोरुवदु असमान। असमान साँगत्य वहुदु।९-१२३-१२२।

यह काव्य 'चत्तन्न' होने के कारण इसका विशेष निरूपण करने की जरूरत नही रही। उसका उदाहरण थोडा-सा यहाँ दिया जाता है।

स्वति श्री मद्रामराज गुरू भूमडलाचार्य एकत्वभावनाभावितरु उभय नय समग्ररु गुप्तरू चतुष्कषाय रहितरु पचव्रत समय तरु सप्त तत्व सरोजिनी राजहसरु अष्टमद भजतरु, नव विधावालब्रह्मचर्यालकृतरु-दशधर्म समेत द्वादश द्वादशांग श्रुतरु पारावारु चतुर्दश पूर्वादिगुरुरल।

इस प्रकार १२ [अ] और ३१ अध्याय से ५० श्रेणी मे उसका विभाजन किया है।

भूवलय की काव्यवद्ध रचना

कुमुदेन्दु ने अपने काव्य को अक्षरो मे नही लिखा है, किन्तु पूर्व में कहे हुए गौतम गणधर के मगल प्राभृत के समान इसी पाहुड ग्रन्थ को आचार्य विश्व सेन के लिखे हुए के समान, इनके सभी साहित्य का आधार रखते हुए कन्नड, सस्कृत, प्राकृत मे भूतवली आचार्य द्वारा लिखे हुए समान, अथवा नागार्जुन आचार्य द्वारा लिखे हुए कक्षपुट गणित के समान अको मे गणित पद्धति से गणना कर गुणन करके अको मे लिखा है।

ओदिनोळत मुहूर्तदि सिद्धात। दादि अंत्य बनेल्ल चित्त ।।
साधिप राज अमोघ वर्षनगुरु। साधिपअमसिद्ध काव्य ।९-१९५।

पूर्वाचार्यों के समान इन्होने ४६ मिनट में ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा उल्लेख किया गया है। यह सर्व भाषामयी, काव्य मूढ और प्रौढ सभी लोगो को लक्ष्य मे रखकर सरल भाषा मे रचा गया है। सात सो अठारह भाषाओ को काव्य मे निहित करते हुए कही-कही चक्रवद्ध और कही-कही चिन्हबद्ध काव्यो से अलकृत किया गया है पहले यह ग्रन्थ मूल कानडी भाषा मे छपा है उसमे मुद्रित ग्रन्थ के पद्यो मे श्रेणिबद्ध काव्य है। उस काव्य बध मे आने वाले कन्नड काव्य के आदि अक्षरो को ऊपर से लेकर नीचे पढते जाय तो प्राकृत काव्य निकलता है और मध्य में २७ अक्षर वाद ऊपर से नीचे को पढने पर सस्कृत काव्य निकलता है। इस तरह पद्यबद्ध रचना का अलग-अलग रीति से अध्ययन किया जाय तो अनेक बध मे अनेक भाषा निकलती हैं ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

बधो के नाम

चक्रबध, हसबध, पद्म, शुद्ध, ववमाकबध, वर पद्मबध, महापद्म, द्वीप सागर, पल्लव, अम्बुबध, सरस, सलाक, श्रेणी, अक, लोक, रोमं कूप, क्रौंच मयूर, सीमातीतादि बध, काम के पद्म बध, नख, चक्रबध, सीमातीत गणित बध, इत्यादि बधो से काव्य रचा गया है। यह काव्य आगे चलकर अक बध से निकल कर इसमे क्रम से सभी विषय पल्लवित हो सकेंगे। आचार्य कुमुदेन्दु की धार्मिक दृष्टि का इससे अधिक दिग्दर्शन कराने की जरूरत नही है। इस भूवलय में—वेदड मे—तर्क व्याकरण, छद-निघटु अलकार काव्य धर, नाटकाष्टांग, गणित, ज्योतिष सकल शास्त्रीय विद्यादि सम्पन्न नदी के समान गम्भीर महानुभाव, लोकत्रय मे अग्रसर गारव विरोध रहित, सकल महीमडलाचार्य तार्किक चक्रवर्ती शत विद्या चतुर्मुख, पट्तर्क विनोदर, नैयायिक वादि, वैशेषिक भाषा प्राभृतक, मीमांसक विद्याधर सामुद्रिक भूवलय सम्पन्न। इस तरह वेदड की गद्य में रचना की गई है।

इस प्रकार कह कर अपने और अपनी विद्वत्ता के विषय मे भी विवेचन किया गया है। इस कारण लोक मे उन्हे, समतावादो, सकलज्ञानकोविद रूप-

से भी किन्हीं ने उल्लेख किया है। आचार्य कुमुदेन्दु ने जैन मत-सूत्रो के अभिमान से इतर मतो के अभिप्रायो को ठुकराया नही । इतर मतो का बहुत दिनो तक पूर्वजो की निधि समझकर उस साहित्य को एक प्रकार से तुलनात्मक रीति से सिद्ध करके बतलाया है। तुलना करते हुए कही भी विषमता को स्थान नही दिया है। किन्तु अगाध प्रमाणो को सामने रखते हुए उस उपकार को उपयोग में लाकर केवल वस्तु तत्व का विवेचन मात्र किया गया है और इसके सिवाय उन्होने अन्य किसी तरह का कोई आक्षेप प्रत्याक्षेप रूप में कोई कथन नही ही किया है और आगे या पीछे होने वाले विपर्यास को ध्यान मे रखते हुए मोती के समान निर्मल बुद्धिरूपी धागे में उसे पिरोया गया है।

जहा तक मैं जानता हूँ यह काव्य अत्यन्त प्राचीन है और भारतीय साहित्य मे ऐसा अनुपम काव्य (ग्रन्थ) अभी तक कोई उपलब्ध नही हुआ है। अत इसे सबसे महान् काव्य कहने में कोई आपत्ति नही है।

मूल ग्रन्थ

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा स्वय हस्त द्वारा लिखी हुई इस ग्रन्थ की मूल प्रति उपलब्ध नही है और यह उपलब्ध प्रति किसके द्वारा लिखी गई है यह भी ज्ञात नही है। अन्य समकालीन, पूर्व या पश्चाद्वर्ती किसी कवि ने उनका उल्लेख भी नही किया है जिससे उनके सम्बन्ध मे विशेष रूप से यहाँ विवेचन प्रस्तुत किया जाता। केवल उनकी कृति भूवलय ग्रन्थ मे ही उनका नामोल्लेख होने से उनका नाम नवीन रूप से परिचय में आया है। अत विद्वान लोग उस काल की ग्रन्थ राशि और शासन-सामग्री का यदि परिशीलन करें तो तत्कालीन इतिहास और ग्रन्थकर्ता एव ग्रन्थ की महत्ता के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जिन्होने इस ग्रन्थ का अध्ययन किया है, कराया है। उन्होने ही इसकी महत्ता को समझा और अनुभव किया है। माता कव्वे, प्रिया पट्टन के जैन ब्राह्मण कवि, और कन्नड कवि रत्न के पोषक, दान चिन्तामणि के पोषक अत्तिमव्वे के समान, मल्लिकव्वे नामकी महिला ने इस भूवलय स्वरूप धवल जयधवल, महा धवल, विजय धवल और अतिशय धवल इत्यादि ग्रन्थो के साथ इस महान ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराकर इस महान् सिद्धान्त ग्रन्थ को गुण भद्राचार्य के शिष्य माघनद्याचार्य को अपने ज्ञानावरणी कमक्षयार्थ प्रदान किया था, ऐसा ग्रन्थ की अन्तिम लिपि प्रशस्ति से जाना जाता है।

अनूनधरमज नाम का प्रसिद्ध—

महनीय गुणनिधाम् । सहजोन्नत बुद्धिविनय निधियें नेनेगळ्दम्-।
महिविनुत कीर्ति कातेय । महिमानम् मानिताभिमानम् सेनम् ।।

इस सेन की स्त्री—

अनुपम गुणगण दाखर् । मनशील निदानेयेनिसिजिन पदसत्के ।
कनदाशली मुखळेनेमा । नर्नाध श्री मल्लिकव्बे ललनारत्नम् ।।
अवनितात्नदपेम् । पावनगम् योगळ लरि दुजिन पूजयना ।
नाविधद दानद मळिन । भावदोळाम् मल्लिकव्बयम् पोल्लवरार् ।
विनयदे शीलदोळ् गुणदोळादिय पेंपिनिम् पुट्टिद मनो ।
जन रति रूपिनोळ् खणियेनिसिदं । मनोहर वप्पु दोंदंरू ।।
पिन मनेदान सागर मेनिप्पवघ्रत्त मेयप्पसदसे ।
ननसति मल्लिकव्बे धरत्रियोळार्देरेसद्गुणंगळोळ् ।।
श्री पंचमियम् नोतु । द्यापनेयम् माडिबरेसि सिद्धांतभना ।।
रूपवती सेन वधुचित । कोप श्री माघनंदियति पतिगित्तळ् ।।

इस मल्लिकव्वे के द्वारा प्रतिलिपि की हुई प्रति 'दान चिन्तामणि' मेरे पास है। इस महिला ने ग्रन्थ को स्वय पढकर और दूसरो को पढाकर स्वय मनन और प्रचार किया, ऐसा मालूम होता है। इस ग्रन्थ को पढकर उससे प्रभावित होकर प्रिया पट्टन के देवप्पा ने अपने लिखे हुए कुमुदेन्दु शतक मे निम्न रूपमें उल्लेख किया है—

विदितविमलनानासत्कलान् सिद्ध मूर्तिहि ।
'य ल भू' कुमुदेंदो राजवद् राजतेजम् ।।
इमाम्यलवलेककुमुदेंदुप्रशस्ताम् ।
कथाम् विदृण्वंतिते मानवाश्च ।।

सुनय श्रेयसभसंख्यमश्नन्ति भद्रम् ।
शुभम् मंगलम् त्वस्तु चास्याह कथायाह ॥१०२॥

देवप्पाका हमे कोई विशेष परिचय प्राप्त नही है जिसमे उनके विषयमे विचार किया जाय। देवप्पा ने ऊपर के पद्य मे कुमुदेन्दु मुनि के विषय मे ('य लू व भू' य ल वलय') जो कुछ भी कहा है उमसे ज्ञात होता है कि आचार्य कुमुदेन्दु वडे भारी तेजस्वी महात्मा थे और उनका यह ग्रन्थ आदि मध्य और अन्तिम श्रेणी मे विभक्त है, जो प्राकृत सस्कृत के महत्व को लिए हुए है। सस्कृत प्राकृत और कानडी, इन तीनो की श्रेणियो का यदि चिन्तन किया जाय तो ज्ञात होगा कि य ल व भू और यल वलय उनके नामहै जिनका उसमे कथन निहित है अथवा देवप्पा कुमुदेन्दु आचार्य के समय के नजदीक होने के कारण इनके माता पिता के नाम के साथ उन्हे जन्म स्थान का नाम भी ज्ञात था, ऐसा जान पडता है। देवप्पा के अनुसार अथवा कुमुदेन्दु के कहे अनुसार वह नदिगिरि निश्चय से पर्वत के शिखर पर था ऐसा निश्चय किया जाता है। इस महात्मा के द्वारा कहे जाने वाले गाँव वेगलूर तत' चिक्क वल्लापुर के मार्ग मे होने वाले नदी स्टेशन के नजदीक है। यही ग्राम और यही क्षेत्र कुमुदेन्दु की जन्मभूमि ज्ञात होती है। कुमुदेन्दु की जन्म भूमि के सम्वन्ध मे और भी विचार किया जा रहा है।

ग्रन्थ की उपलब्धि

ससार का दशवाँ आश्चर्य स्वरूप महान ग्रन्थ भूवलय आज से लगभग २० वर्ष पहले पूज्य आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज ने वेंगलोर मे श्री एलप्पा जी शास्त्री के घर पर आहार ग्रहण करने के अनन्तर देखा था, परन्तु अक रूप मे अकित होने के कारण उस समय इस गून्थ का विषय आचार्य श्री को ज्ञात न हो सका, अत उस समय इस महान् गन्थ का महत्व महाराज अनुभव न कर सके।

श्री एलप्पा शास्त्री को यह ग्रन्थ अपने श्वशुरके घरसे प्राप्त हुआ था। उनके श्वशुर को यह गन्थ कहाँ से किस प्रकार प्राप्त हुआ, यह बात मालूम न हो सकी।

भूवलय ग्रन्थ मे एक कानडी पद्य आया है। उसके अनुसार सेठ श्रीषेण की पत्नी श्री मल्लिकव्वे ने श्रुत पचमी व्रत के उद्यापन मे धवल, जय धवल महा धवल, अतिशय धवल तथा भूवलय ग्रन्थराज लिखाकर श्री माघनन्दि आचार्य को भेंट किये थे। धवल, जयधवल, महाधवल ग्रन्थ मूड विद्री के सिद्धान्त वस्ति भण्डार मे विद्यमान हैं। सभवत भूवलय ग्रन्थ भी उसी सिद्धान्त वस्ति भण्डार मे विराजमान होगा। श्री एल्लप्पा शास्त्री के श्वशुर के घर पर यह ग्रन्थ किस तरह पहुचा, यह रहस्य की बात अज्ञात है। अस्तु।

श्री एल्लप्पा शास्त्रीजी ने महान् परिश्रम करके अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से भूवलय के अको का अक्षर रूप मे परिवर्तित करके कानडी लिपिमे लिख डाला तव इस ग्रन्थ का महत्व जनता के सामने आया। यदि यह ग्रन्थ कानडी लिपि में ही रह जाता तो उसका परिचय दक्षिण प्रान्त मे रहता, शेष समस्त भारत की जनता उससे अनभिज्ञ ही रह जाती। प्राचीन साहित्य के उद्धार में रुचि रखने वाले, अनेक प्राच्य ग्रन्थो को प्रकाश मे लानेवाले, सतत ज्ञानोपयोगी, विद्यालकार आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज ने श्री एलप्पा शास्त्री के सहयोग से इस भूवलय ग्रन्थ के प्रारम्भिक १४ अध्यायो का हिन्दी भाषा मे अनुवाद करके देवनागरी लिपि मे प्रकाशित कराने की प्रेरणा की, उसके फलस्वरूप भूवलय के मगल प्राभृत के १४ अध्याय जनता के समक्ष आये है।

इस महान अद्भुत ग्रन्थ को जब भारत के महामहिम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को श्री एल्लप्पाजी शास्त्री ने भेंट किया तो राष्ट्रपतिजी ने इस ग्रन्थ को सुरक्षित रखने के लिए भूवलय को राष्ट्रीय सम्पत्ति वना लिया। मैसूर राज्य की ओर से इस ग्रन्थ को इगलिश अको मे परिवर्तित करने के लिये श्री एल्लप्पा जी शास्त्री को १२ हजार रुपये प्रदान किये गये। उस आर्थिक सहायतासे इस ग्रन्थ का अगरेजी अकाकार निर्माण हो रहा है।

जैन समाज तथा भारत देश के दुर्भाग्य से श्री एल्लप्पाजी शास्त्री का गत मास दिल्ली मे शरीरान्त हो गया, अत अब इस ग्रन्थ के अग्रिम भाग के प्रकाशन मे बहुत भारी अडचन आ गई है। यदि भारत सरकार का सहयोग पूज्य आचार्य श्री को मिल जावे तो इस ग्रन्थ का अग्रिम भाग प्रकाशन में आ सकता है।

भूवलय का परिचय

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलयग्रन्थ में पच भाषा मयी गीता का समावेश किया है, उन्होने गीता का प्रादुर्भाव श्लोको के प्रथम अक्षर से ऊपर नीचे की ओर लेजाते हुए किया है, जिसकी प्रथम गाथा **'अट्ठवियकम्मवियला'** आदि है। तदन्तर अपनी नवमाक पद्धति के समान–

भूवलय सिद्धातद्दघतेळु । तावेल्लवनु होंदिसिरुव ।।

श्री वीरवाणियोळ्बह''इ,' मगलकाव्य । ई विश्वदूर्ध्वलोकदलि ।।

इसमें चक्रबन्ध है, जिसमें कि २७ कोष्ठक हैं उन कोष्ठको में से बीच का अक '१' है जिसका कि सकेताक्षर 'अ' है। 'अ' से नीचे (सब से नीचे) गिनने पर १५ आता है १५ में ५८ सख्या है जिसका कि सकेत अक्षर 'प्' है उसके ऊपर के तिरछे कोठे मे आने पर ३८ सख्या है जिसका कि सकेताक्षर 'ट्' है। उसके आगे के कोठे मे '१' आता है जिसका सकेत अक्षर 'अ' है इन तीनो अक्षरो को मिलाने पर 'अष्ट' बन जाता है।

इस चक्र बन्ध को नीचे दिखाते हैं –

यह प्रथम चक्र-बन्ध है इसके अनुसार आये हुए अको को अक्षर रूप करके पढा जाता है। इस प्रकार कनडी श्लोक प्रगट होते हैं उन कनडी श्लोको के आद्य अक्षरो को नीचे की ओर पढने से **'अट्ठवियकम्मवियला** आदि प्राकृत भाषा की गाथाएँ प्रगट होती हैं। उस कानडी श्लोको के मध्य में स्थित अक्षरो को नीचे की ओर पढने से **ओकार 'विन्दुसंयुक्त'**, आदि सस्कृत श्लोक प्रगट होता है जो कि भूवलय का मगलाचरण है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय मे जो गीता लिखी है वह उन्होने आधुनिक महाभारतसे न लेकर उससे प्राचीन **'भारत जयाख्यान'** नामक काव्य ग्रन्थ से ली है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने लिखा है। उस गीता को चक्रबन्ध पद्धतिसे प्रगट किया है। प्राचीन लुप्त हुए जयाख्यान काव्य के भीतर आये हुए गीता काव्यको उद्धृत किया है, उस गीता का अन्तिम श्लोक निम्नप्रकार है—

चिदानन्दघने कृष्णेनोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम् ।

वेदत्रयी परानन्दतत्त्वार्थऋषिमण्डलम् ।।

इस प्रकार प्रथमाध्याय को समाप्त करके दूसरे अध्याय का प्रारम्भ निम्नलिखित रूप से किया है–

'अथव्यासमुनीन्द्रोपदिष्ट जयाख्यानान्तर्गत गीता द्वितीयोऽध्याय', इस गद्य से प्रारम्भ करके गोम्मटेश्वर द्वारा उपदिष्ट भरत चक्रवर्ती को तथा भगवान नेमिनाथ द्वारा कथित कृष्ण को तथा उसी गीता को कृष्ण ने अर्जुन को सस्कृत भाषामे कहा गोम्मटेश्वर ने भरत को प्राकृत भाषा में और भगवान नेमिनाथने कृष्ण को मागधी भाषा में कहा था। जिसका प्रारम्भिक पद्य निम्नलिखित है।

'तित्थणबोधमायगमे' आदि

('अ' अध्याय १६वी श्रेणी)

नेमिगीता में तत्वार्थ सूत्र, ऋषि मण्डल, ऋद्धि मन्त्र को अन्तर्भूत करके भगवान नेमिनाथ द्वारा कृष्ण को उपदेश किया गया है।

एल्लरिगीरवते केळेंदु श्रेणिक । गुल्लासदिंदगौतमनु ।।

सल्लीलेयिंदलि व्यासरुपेळिद । देल्लतीतवकथेय ।।१७-४४।।

व्याससे लेकर गौतम गणधर द्वारा श्रेणिक को कही हुई कथा को आचार्य कुमुदेन्दु कहते हैं।

ऋषिगळेल्लरु एरगुवतेरदिंदलि । ऋषिरूप-धर कुमुदेंदु ।

हसनादमनदिंद मोघवर्षांकगे । हेसरिददु पेळ्द श्रीगीते ।।

।।१७-६४-१००।।

इस प्रकार परम्परागत गीता को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ऋषि रूप यो कृष्ण रूप मे अपने आपको अलकृत करके अर्जुन रूप अमोघवर्ष राजा को गीता का उपदेश किया है। इस प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ विश्व का एक महान् महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसका विवरण श्री कुमुदेन्दु आचार्य स्वयं प्रगट करते हैं–

धर्मध्वजवदरोळु केत्तिदचक्र । निर्मल दष्टु हूगळम् ।।

स्वर्म नदलगय्वत्तोदुसोन्नेयु । धर्म दकालुलक्षगळ ।।

आपाटियनुकदोळ् ऐदुसाविर कूडे । श्री पादपद्म दगदल ।।

सपि अरूपिया ओम् दरोळ्व । श्री पद्धतिय भूवलय ।।

इस प्रकार भूवलय के अक और अक्षर पद्मदल ५१०२५००० है इस अक में ५००० मिलाने से समस्त भूवलय की अक्षर सख्या हो जाती है, ऐसा श्री कुमुदेन्दु ने सूचित किया है। इस तरह ५१०३०००० सख्या का योग (५+१+०+३+०+०+०+०=९) नवम अक रूप है, ९वें अक को प्रथम करके नवमाक गणित से इस राशि को विभक्त किया गया है।

कणोयोबत्तिप्पत्तेळु ।। अरुहण गुणवेम् त्तोम् दु ।।
सिरि एळ् नूरिप्प त्तोम् तुम् ।। वरुव महान् कगळारु ।।
एरडने कमल हन्नेरडू ।। करविडि देळवृन्द कुंभ ।।
अरुहन वाणी ओम् बत्तू ।। परिपूर्ण नवदक करण ।।
सिरि सिद्धम् नमह ओम् हत्तु १,६८, ७६ ।।

इस तरह वर्णमालाक- अक्षर राशि को तथा ९-२७-८१-७२९ सख्या को स्थापित करके ६-१२-७-९ का पूर्ण वर्ग होकर के विभाग कर दिया है। ९×९=८१×८१=७७९×९=६५६१ इस तरह सख्या मे पहला अध्याय समाप्त हुआ है। इस प्रकार इस राशि के प्रमाण अपुनरुक्त ९ क बन जाता है।

नवकार मंत्तर दोळादिय सिद्धांत्त । अवयव पूर्वय ग्रन्थ ।।
दवत्तारादि मवक्षर मंगल । नव अ अ अ अ अ अ अ अ अ ।।

अध्याय २

कर्णसूत्र गणिताक्षर अक के समान "है" 'क' को मिलाने २८×६०= कुल ८८ होता है, इस ८८ को आपस में मिलाने से ८+८=१६ होता है। यह १६—१×६=कुल सात होता है। ये सात भग होकर के इन्हें ९ अक से भाग करने पर प्राप्त हुए लब्धाक से अपने इस काव्य को प्रारम्भ करते हुए, इस शर्मंगी कोष्टक को दिया गया है। यहा अनुलोम अक को ५४ अक्षर के भाग करने पर जो अक राशि के एक सूक्ष्म केन्द्र को ८६ अक राशि रूपनिरूपण किया गया है। (अध्याय २, श्लोक १२)

इस अनुलोम राशि को प्रतिलोम राशि के उसी ५४ अक्षर वर्ग के ७१ अक राशि मे वर्गी करण करके (अध्याय २—१७)। इन अकों को परस्पर मिलाकर, परस्परभाग देकर २५ को अक राशि किया है। इन अङ्को को वर्ग भाग कर ३५ अर्धभग करके इस अक राशि का २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, १ इस पहाडे से परस्पर भग करके अपने काव्याक को मोती के समान माला में गूथकर काव्य की रचना की गई है। इस वर्ग गणित का ९ वा अक अशुद्ध घन होने के कारण उत्तर मे गलती जरूर आ जाता है। परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते है कि तुम इसे गलती मत समझो। हम आगे जाकर इसका खुलासा करेंगे।

कुमुदेन्दु आचार्य द्वारा कहा हुआ जो गणित है वह हमारी समझ में नही आता। उसे स्वय ग्रन्थकारने आगे जाकर स्पष्ट विवेचन के साथ राशि के रूप में वतलाया है।

अध्याय ३

इस अध्याय मे कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने काव्य की कुशलता का सभी ढग वतलाया है।

अध्याय ४

इस अध्याय मे सम्पूर्ण काव्य ग्रन्थ को तथा अपनी गुरु परम्पराको कहकर रस, और रसमणि की विधि, सुवर्ण तैय्यार करने की विधि और लोह-शुद्धि का विषय अच्छी तरह से वर्णन किया गया है। रस शुद्धि के लिए अनेक पुष्पो के नामो का उल्लेख किया गया है इस अ अध्याय मे रस मणि के शुद्ध रूप को वतलाते हुएमे वैद्यशास्त्र की महत्ता को पाठको को अच्छी तरह से समझा दिया गया है।

अध्याय ५

इसमें अनेक देश भाषाओ 'के नाम' और देशो के नाम, तथा अको के नाम देकर भाषा के वर्गीकरण का निरूपण किया गया है।

अध्याय ६

इसमें द्वैत, अद्वैत, का वर्णन करते हुए अपने अनेकान्त तत्व के साथ तुलनात्मक रूप से वस्तु तत्व की प्रतिष्ठा की गई है। इसमे आचार्य कुमुदेन्दु

ने ४ बातें मुख्य रूप से कही है—

दोषगळ् हृदिनेन्टु गशियार्दाग । ईशरोळ् भेद तोरुवदु ॥
राशिरत्नत्रय दाशेय जनरिगे । दोष वळिवबुद्धि वहुदु ॥
सहावास ससार वागिपीकाल । महियकळ्तलेये तोरुवदु ॥
महणाण वरणीय दोष वदळियलु । वहु सुखविहमोक्ष वहुदु ॥
विषहर वागलु चैतन्य बप्पन्ते । रससिद्धि अमृतदशक्ति ॥
यशवागे एकात हरकदु केट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ॥
रत्नत्रयदे आदियद्वैत । द्वितियवु द्वैतवेम्बक ॥
तृतीयदोळ नेकांतळवेने द्वैतुाद्वैतव । हितदिसाधिसिद्ध जैनाक ॥
हिरियत्व विबुमूरु । सरमालेय । अरहत हारदरत्नम् ॥
सरफणिपन्ते मूरर मूर ओबत्त । परिपूर्णमूरारुमूरु ॥
॥७७-८१॥

अध्याय ७

इसमें कवि रस सिद्ध के लिए आवश्यक २४ पुष्पो की जाति तथा अष्ट महा प्रातिहार्यों में एक सिंह का नाम कहकर चार सिंहो के मुखो की महिमा का वर्णन किया गया है।

अध्याय ८

इस भाग में समस्त तीर्थंकरों के वाहनो, सिंहासनो का आकार रूप और उनके स्वभाव के साथ राशि की तुलना करते हुए उनकी आयु, नाम आदि का प्रश्नोत्तर एव शका समाधान के साथ गणित शास्त्र का व्याख्यान किया है।

अध्याय ९

इसमें रस सिद्धि के लिए आवश्यक कुछ पुष्पो का, और सिद्ध पुरुषो को दिव्य वाणी को, कर्नाटक राजा अमोघ वर्ष को सुनाया गया है, और उसमें अपने वश का परिचय देते हुए आचार्य भूत वली के भूवलय की ख्याति का वर्णन किया गया है।

अध्याय १०

इसमें कर्नाटक जैन जनता को अध्ययन कराकर, तथा 'क ट प' इनकी नवमाक पद्धति को तथा 'य' इस अक की अष्टक पद्धति को समझाया है इस वर्ग पद्धति के अनुसार २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, इन भागो के समान अनुलोम-प्रति लोमो का परस्पर गुणा करने से सम्पूर्ण भाषाओ मे यही काव्य ग्रन्थ आ जाता है। यहाँ ९ को तोडकर दो भाग करके, इस गणित को रीति से समस्त भाषाओ को अकित कर उनकी रीति को विशदरीति से समझाया गया है। इस तरह पुरानी और और नयी कनडी मिलाकर मिश्रित रूप मे काव्य की रचना की गई है।

अध्याय ११

इस भाग में ऋषभदेव द्वारा अपनी पुत्री ब्राह्मी को सिखाये गये अक्षर अको को लिख लिया गया है। इस पद्धति से कोडा-कोड़ी सागर को मापने को 'मेटगूट शलाका' रीति को समझाया गया है।

अध्याय १२

इसमें २४ तीर्थंकरो, के उन वृक्षो का जिनके नीचे बैठकर उन्होंने अरहत पद प्राप्त किया है। उन अशोक वृक्षो का नाम तथा उनकी प्राचीनता का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १३

इसमे पुरुषोत्तम महान् तीर्थंकरो की जीवनचर्या, तपश्चरण, विद्या और उनके वैदुष्य गुण का महत्व ख्यापित किया है। साथ ही भगवान महावीर के वाद होनेवाली आचार्य परम्परा का, तथा धरसेनाचार्य का कथन करके, सेनगण परम्परा का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४

इस अध्याय मे पुष्पायुर्वेद की विधि वतलाकर तत्पश्चात् चरकादिद्वारा अज्ञात 'न समझी जाने वाली' 'रसविद्या' को और जिनदत्त, देवेन्द्र यति अमोघवर्ष, समन्तभद्राचार्य, आदि के द्वारा समर्थित एव पल्लवित पुष्पायुर्वेद का निरूपण किया गया है।

अध्याय १५

इसमे भवनवासी देव, और उनके वैभव का कथन किया गया है। इसमे सम्भव और असम्भव जचनेवाले तत्वो का विशद विवेचन किया गया है।

अध्याय १६

दोनो श्रेणियो मे भगवद् गीता की प्रस्तावना का वर्णन तथा उसी के अन्तर्गत तत्वार्थसूत्र का विस्तार पूर्वक निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के प्रारम्भ करने के पूर्व मगल कलश की पूजा करके गीता का व्याख्यान प्रारम्भ किया है। तथा कृष्ण और अर्जुन के रूप को अपने मे कल्पना कर पूर्व गीता और तत्वार्थ सूत्र का विवेचन किया है। आगे अमोघवर्ष के लिए कन्नड गीता की भूमिका का उल्लेख किया गया है।

अध्याय १७

इसमें भगवद् गीता की परम्परा ब्राह्मण वर्णोत्पत्ति गोम्मटदेव (बाहुबली) की उपनयन विधि, वनवासि-देश की दण्डक राजा के विषय का अत्यन्त सुन्दर रूप से कथन करके राजा समुद्र विजय, तथा बलकृष्ण उपनयन सस्कार करने की विधि का कथाद्वारा उल्लेख किया गया है।

बलभद्र, नारायण इत्यादि की उपनयन विधि के साथ गीता तत्वोपदेश का समुल्लेख किया गया है। इस भगवद् गीता को सर्वभाषामयी भाषा भूवलय रूप में, पाच भाषा रूप में प्राकृत, सस्कृत, अर्ध मागधी, आदि में कृष्ण रूप कुमुदेन्दु आचार्य ने निरूपण किया है।

अध्याय १८

इसमें मूल श्रेणी मे भगद् गीता की शेष परम्परा का उल्लेख करते हुए, पहले की श्रेणी मे जयाख्यान के अन्तर्गत भगवद् गीता के श्लोको का कर्नाटिक भाषा में निरूपण किया गया है। और भगवद् गीता के अक चक्र का कथन दिया हुआ है। तथा अक चक्र को समझाकर द्वितीय अध्याय में उल्लिखित-अनुलोम सम-विषम आदि की सख्या को शुद्ध करके गीता का आगे का विवेचन दिया हुआ है। इस श्रेणी में कृष्ण द्वारा अर्जुन को कहा गया 'अणुविज्ञान' का भी वर्णन करता है।

१९ और २० अध्याय

इसमे सीधा भगवद्गीता के अर्थ को दूसरी श्रेणी में अक विज्ञान, अणु-विज्ञान आदि के अद्भुत विषयका ऊपर से नीचे तक अक विद्याओके साथ वर्णन किया गया है। इस तरह इस खड में २० अध्याय हैं। उनमें इस मुद्रित भाग में १४ अध्याय तक दिया गया है। शेष ६ अध्याय बाकी हैं। उनके यहा न दिये जाने का यह कारण है कि इसके मूल अनुवादक पडित एलप्पा शास्त्री का अकस्मात् आयु का अन्त हो जाने के कारण इस कार्य मे कुछ रुकावट सी आ गई है। किन्तु फिर भी हमारे चातुर्मास के अन्त में इसके भार को सम्हालने वाले अन्य सहायक के अभाव में उसे पूरा करना सम्भव नही हो सका। तो भी हमने शेष को ११ अध्याय से लेकर १४ अध्याय तक रात दिन मे इस का अनुवाद कर पूरा करने का प्रयत्न किया है। आगे अवसर मिलने पर, और एक स्थान पर ठहरने आदि को सुविधा उपलब्ध होने पर उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा। विद्वानो को चाहिए कि वे इस ग्रन्थ का अध्ययन करके लाभ उठावें। क्योकि ग्रन्थ का प्रतिपाद्य अक विषय गम्भीर होने के कारण सर्वसाधारण का उसमें सरलता से प्रवेश होना कठिन है।

चक्रबन्ध को पढने का क्रम

गीता के इस 'ओ' अध्याय की एक बिन्दो को तोडकर, उसको घुमाने से चक्र तथा पद्य आरम्भ हो जाता है। इस पद्य का कही भी अक में पता नही चलता, क्योकि भूवलय ग्रन्थ अक्षर मे नही है। अक्षर में होता तो कही न कही पढ़ा जाता, अत पढने के लिए इसमे एक भी अक्षर नही है। बाए से दायें तक बराबर चलेजाये तो उन अको की गणना २७ होती है। इसी तरह ऊपर से नीचे की ओर पढते जायें तो भी २७ अक ही आवगे, इस तरह चारो ओर से पढने पर २७ अक ही लब्ध होते हैं। २७×२७=७२९ हो जाते हैं। इसी चौकोर चक्र के कोष्ठक मे ६४ अक्षर के गुणाकार से गुणित कर प्राप्त हुआ लब्धाक ६४ ही लिखा गया है। उन २७ अको मे से दोनो ओर के १३-१३ अक छोडकर ऊपर के एक का रूप 'अ' है। 'अ' के ऊपर से नीचे उतर करके उसके अन्तिम अक ८ को छोडकर बगल के ५८ अक पर आजाय इस

अंक का अर्थ 'ष' है। वहाँ से आगे बढने पर दूसरी पंक्ति के ऊपर के कोने मे ३८ आता है। इस अङ्क का अर्थ 'ट' होता है। पुन ५८ के बाद एक अङ्क आता है। ६० का अर्थ 'ह' है, एक का अर्थ 'अ' है। इसी तरह से इसी क्रम रीति के अनुसार अन्त तक (६०) चले जावें, और ६० से लौटकर आडी लाइन की मध्यम प्रथम पंक्ति के २ पर आजांय। दो का अर्थ 'आ' हो गया। 'ह' में आ मिलाने से हा हो गया। इस तरह ऊपर चढते हुए जाने से एक अक पर पहुँचते हैं, क्योकि वह एक अक आडा हो जाता है। पुन वहाँ से एक कोठा नीचे उतरकर फिर ऊपर '४७' पर जाँय, वहाँ से फिर आडा जाय और निश्चित कोठे पर पहुचकर फिर ऊपर लिखे क्रम से उसी प्रकार प्रवृत्ति करता जाय तो घटे के अन्दर सभी अको को पढ सकता है। इन ६४ अक्षरो में सभी भाषाओ का समावेश है। पर वह रूढी रूप न होने से लोगों को उसके पढने में कठिनाई होती थी किन्तु दो वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद उसे पढने पर सभी के लिए मार्ग सुगम हो गया है। और सभी जन प्रयत्न करने पर उसे आसानी से पढ सकते हैं तथा सभी भाषाओ का परिज्ञान कर सकते है। जिस तरह से छोटे बच्चो को यदि यह भाषा सिखलाई जाय तो वे कम से कम छ महीने में पढ सकते हैं अर्थात् १-२-३-४-५-६-७-८-९-०, इनमे से बिन्दी को तोडकर नव अक की उत्पत्ति हुई है। इस तरह तत्व दृष्टि से विचार किया जाय तो भगवान महावीर की समस्त वाणी का (उपदेशों का) सार सातसौ अठहार भाषाओ को उपलब्धि होती है। क्योंकि यह नव अक मे ससार की समस्त भाषाए गर्भित हैं। और यह नव का अ क नव देवता का वाची है। और इष्ट मगल रूप है।

जिस तरह श्रीकृष्ण ने मुँह खोला तो यशोदा ने विचार किया कि यह ब्रह्माण्ड मालूम होता है इसी में तीन लोक गर्भित हैं, उसी तरह नवमाक के अन्दर सम्पूर्ण जगत् गर्भित है। इसमे विश्व की सभी भाषाएँ अन्तर्निहित होने से इस ग्रन्थ का नाम 'भूवलय' रक्खा गया है, जो उसके यथार्थ नाम को सूचित करता है।

पहले अ क अक्षर मे जो कानडी भाषा का श्लोक अष्ट महाप्रातिहार्य रूप होता है। और 'अ' से नीचे की ओर पढा जाय तो 'अट्टवियकम्म वियला' प्राकृत भाषा की गाथा निकलती है। उस कानडी श्लोक के मध्य मे 'ओ' आता है। उससे नीचे तक पढते जाय तो संस्कृत काव्य निकलता है। इसी तरह से १५ अध्याय तक पढते जायँ तो उसके नीचे-नीचे भगवद्गीता निकलती है। इस तरह से इस अथाह अंक समुद्र में कोई पता नही चलता, परन्तु चतुर मनुष्य डुबकी लगाकर उसमे से सुन्दर सुन्दर मोती निकाल कर लाते हैं। इसी तरह उस अ क समुद्र का यथेष्ट रीत्या अवगाहन करने पर विविध भाषाओ से ओत-प्रोत अनेक ग्रन्थो का सहज ही पता चल जाता है। जिस तरह समुद्र मे डुबकी लगानेवाले चतुर मनुष्य गहराई मे डुबकी लगाकर असली और नकली मोती निकाल लाते हैं और फिर उनमे से असली मोती छाटकर रख लेते हैं। उसी प्रकार इस भगवद्गीता के अन्तर्गत गहराई से अध्ययन करते हुए 'ओम् इत्ये काक्षर ब्रह्म' अट्टवियकम्म वियला, सरस्वती स्तोत्र-चन्द्रार्ककोटि और तत्त्वार्थ सूत्र इत्यादि भाषाएँ निकलती हैं। इसके आगे और भी अवगाहन कर अनेक भाषाओ का पता चलने पर सूचित किया जावेगा। क्योंकि इस समय तक १४ अध्यायो का ही अनुवाद हो सका है। शेष ग्रन्थ का अनुवाद बादको प्रस्तुत किया जावेगा। पाठक गण उससे सब समझने का यत्न करें।

SIRIBHOOVALAYA JAIN SIDDHANTHA

PRILIMINARY NOTES

* "SIRIBHOOVALAYA" is the unique literature in the world
* It is not written in any script of any language
* It is written in Numbers only, on mathematical basis, in Squares
* The numbers should be converted into "Sounds" as alphabets They are 1 to 64 It is said that all the sounds of the world could be written within 64 numbers, through 1 to 9 and '0' figurs only
* The first literature will be formed in "KANNADA" (KARNATAKA) language. And then different literatures of all other languages of the world will be formed through that
* It is said that there are literatures in 718 languages in this book, and 363 religions and all the 64 arts and sciences have been explained in exhaustively
* It is found in the text that the author of this unique book is "KUMUDENDU" by name who was the Guru of the Ganga king Amoghavarsha the 1st, of Manya Kheta (Manne), and the native of a village "YALAVA" (YALAVALLI) near Nandi Hills, Kolar District, Mysore State, India It is learnt that he lived in 680 A D according to the available inscriptions and other historical evidences
* It is said that "KUMUDENDU" was a Digambara Jain Brahmin "RISHI" or "MUNI" proffessed with the entire knowledge of the world and "GOD" He was a prominant disciple of Guru Virasena, the author of Sri Dhavala Siddantha
* It is found in the literature that all the preachings and massages of all the 24 Tirthankars beginning from the first tirtankar * ADI VRISHABHA DEVA* (the Ist "GOD") were said in all the languages of the world, at a time, within 47 minutes (one Anthar Muhurtha) in a nut-shell through the mathematical proccess and both for a common man and a proffessor And the same was written in black and white for the benefit of the present generations of the world, according to the instructions and formulas given by Kumudendu Muni by his 1200 disciples (all of them were Munies)
* Hence, it is said that this is the only literature given by "GOD" as "DIVYADWANI" which includes every thing under the "SUN"
* The manuscript which was available with the late Pt Yellappa Shastry, a great Scholar of this literature is said to have been the copy of that literature written at the time of "MALLIKABBE" wife of Commander "Sena" of 14th Century by the then pandits The same has been Microfilmed by the National Archives, Government of India, under the gracious recommendations of our beloved President Dr Rajendra Prasad ji
* It is described in the text that Adi Vrishabha deva gave this art of Numbers and Alphabets to his two daughters "Brahmi and Sundary as presentations at the time of his departure to heaven (Moksha) and the same was learnt by their brother the Great Gomtashwar (Bahubali), and he preached that to his elder brother Bhartha, in the war-field, as Bhagavadgita, (Purugitha)
* The lists of the languages and the religions and Arts mentioned in this literature are enclosed seperatly
* "SIRI BHOOVALAYA" mainly describes the Jain philosophy in an eloborate and an exhaustive form along with all other Philosophies of the world commencing from No 1 up to 363 religions —Advaitha, Dvaitha and Anekantha etc

Language & Grammar

* It is said that all the sounds and words of all the languages of the world, of men deities, demons and beasts and creatures of present past and future could be formed by permutations and combinations according to Jain system within 1 to 64 numbers, and thus the total number of the sounds would be of 92 digits
* It is also said that all the literatures like Vedas, Vedangas, and

Puranas, and Bbagavadgita in all languages and all kinds of Arts and Sciences have been said in reverse method (Akramavarthi) so that it was possible to build up in a net form, and could be condenced in a very small form and also it could be enlarged to the entire length and breadth of the world like

The Grammar of the languages in this literature is also in a peculiar manner There is a number of languages against our present practice of Grammars, And it is also said that there was only one Grammar for all the languages formed by "GOD"

* The first literature in Kannada comes out this text in the form of "Home Songs" in "SANGATHYA" Metre.
* It is said and also found that the text could be formed from the reverse method also on cyclic system
* Hence this is said to be the Unique literature of the entire world
* It is mentioned in this literature that there were 18 major languages and Too minor languages in the world ; and all of them were included in the text

Siribhoovalaya Jain Siddhantha
LIST OF THE LANGUAGES

Prakrita	Arasa	Amithrika	Vanga	Yakshi	Gandharva
Samskrita	Parasa	Chanakya	Brahmi	Rakshasi	Adarsha
Dravida	Saraswatha	Mooladevi	Vijayardha	Hansa	Mahesvari
Andhra	Barasa	Karnata	Padma	Bhootha	Dama
Maharastra	Vasha	etc	Vaidarbhya	Coniya	Bolidi
Malayala	Malaya	Uparika	Vaishali	Yavanani	Etc
Ghurjara	Lata	Varatika	Sowrashtra	Thurki	
Anga	Gowda	Vejeekharasapika	Kharoshtri	Dramila	
Kalinga	Maghadha	Prabharathrika	Niroshtra	Saindhava	
Kashmira	Vihara	Uchatharika	Apabramshika	Malavaniya	
Kambhoja	Utkala	Pusthika	Paishachika	Keeriya	
Hammira	Kanyakubja	Bhogavaratika	Rakthakshara	Devanagari	
Showraseni	Varaha	Vedanathika	Arishta	Lada	
Vali	Vaishravana	Nibanthika	Ardhamagadhi	Parshi	
Thebathi	Vedantha	Anka			
Vengi	Chitrakara	Ganitha			

LIST OF" BANDHAS —(TIES)

Chakrabandha
Hamsabandha
Padmabandha
Shuddha Bandha
Navamanka Bandha
Varapadma Bandha
Mahapadma Bandha
Dveepa Bandha
Sagara Bandha
Palya Bandha
Ambu Bandha

Sarasa Bandha
Shalaka Bandha
Shreni Bandha
Anka Bandha
Loka Bandha
Roma Koopa Bandha
Krowncha Bandha
Mayura Bandha
Seemateeta Bandha
Kamana Padapadica

Nakha Bandha
Chakra Bandha
Kirana Bandha
Niyama Bandha
Simgasana Bandha
Vratha Bandha
Mahaveera Bandha
Atishaya Bandha
Sri Bandha
Samanthabhadra Bandha
Sivakoti Bandha

Thaptha Bandha
Kamitha Praja Bandha
Srivskoti Bandha
Shivachaiya Bandha
Srivayana Bandha
Sansthana Bandha
Divya Bandha
Navpadma Bandha
Etc

READING THE SQUARES (CHAKRAS)

* There are 1270 squares for the Foreword* (Mangla Prabhritha) only It is said that 16000 squares should be formed out of them
* 75000 verses have been formed out of 1270 squares, and it is said that 600,000 verses in Kannada and 721 digits of verses in Sanskrit and other languages could be formed out of the 16000 squares
* There are 27 lines in every square with 27 numbers in every line with a total of 729 numbers
* There are different methodes of reading the squares with "KEYS"
* (1) Reading the entire square (2) Reading the entire square in 9 parts of 81 numbers, on rotation methods
* And it is said that there are a number of "Bandhas* (ties) to form the literatures of the other languages

SQUARE NO 1

* Every reading of the square from 1 to 9 should be commenced from the 14th number of the first line which is strarted in the squares And the end will be the same 14th number of the 27th line, which is underlined
* After commencing No 1, as mentioned above, every line should be read in a Diagonal parallel form as shown in square No 1

Bottom	Right Side
2nd line from No 38 to 60	3rd line from No 2 to 1
4th line from No 1 to 13	4th line from No 23rd to 47

Like this, all the lines should be read alternatively, with the substitutions of the sounds or Alphabets, as given in page. no . thus the following 7 verses will be formed in Kannada Language from the first square

* And then, every first letter of each verse will be formed as another literature of Bhagavadgitha (Purugitha) in PRAKRIT, that reads as —
* And next, every 27th letter of each verse will be formed as Bhagavadgitha in Sanskrit, and that reads as —

* Thus, 3 languages, Kannada, Prakrit, and Sanskrit have been found in the first chapter, for the present
+ In chapter 20 generally, every letter of each line forms different literature in different languages
* It has been traced languages in part "2" such as Prakrit, Girwani, Telugu, and Tamil
* There are inter literatures also in prose forms on "Horse-step * (Aswagathi)
* Number of different literatures will be formed again and again from the first literature by arranging respective letters in a line
* The total No of sounds of every chapter has been counted and stated at the end of each chapter Ex —
* Tus Siri Bhoovalya by name itself, in Describes as "The wealth of the enture world" And every thing under the sun

Siribhoovalaya Jain Siddhantha
INDEX TO NUMBERS & SOUNDS

I VPWELS

No	Alphabet	Sound in
1	A	SUN (1)
2	AA	ALL (2)
3	AAA	Longer sound (3)
4	E	BE (1)
5	EE	BEE (2)
6	EEE	Longer sound (3)
7	U	UUT (1)
8	UU	JUNE (2)
9	UUU	Longer Sound (3)
10	R	Light Sound (1)
11	RR	LIGHT and LONG SOUND (2)
12	RRR	Light and Longer Sound (3)
13	L	HEAVY SOUND (1)
14	LL	"And Long Sound (2)
15	LLL	"And Longer Sound (3)
16	A	BELL (1)
17	AA	RATE (2)
18	AAA	Longer Sound (3)
19	I	IRON (1)
20	II	Long Sound (2)
21	III	Lonoer sound (3)
22	O	GO (1)
23	OO	GOAL (2)
24	OOO	Longer Sound (4)
25	OW	OUT (1)
26	OOW	Long Sound (2)
27	OOOW	Longer Sound (3)

II CONSONANT

No	Alphabet	Sound in
28	K	KEY
29	KK	KHEDDA
30	G	GO
31	GH	GHOST
32	N.	KING
33	CH	CHURCH
34	CHH	CHAMBER
35	J	JOB
36	JH	JHON
37	N	PUNCH
38	T	TO
39	TH	Heavy Sound
40	D	DO
41	DH	Heavy Sound
42	N	Heavy Sound
43	TH.	PATH
44	TH	THEORY
45	DH.	THE
46	DH	Heavy sound
47	N	NO
48	P	PUT
49	PH	Heavy sound
50	B	BABL
51	BH	Heavy sound
52	M	MAN

सुप्रीम कोर्ट के जज श्री बेंकटारमण ऐयर तथा दानवीर सेठ युगलकिशोर जी बिडला श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज के दर्शनार्थ पधार कर उनसे धर्म चर्चा कर रहे हैं ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज जापान के प्रो० नाकामुरो को उपदेश के पश्चात् शास्त्र प्रदान कर रहे हैं ।

श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महाराज प० एम एल्लप्पा शास्त्री तथा मैसूर के मुख्यमंत्री श्रीनिर्जलिगप्पा जी से ग्रन्थराज भूवलय के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए।

मैसूर के मुख्यमंत्री श्री निर्जलिंगप्पा को जैन समाज दिल्ली की ओर से प्रो० मुनिसुव्रत दास एम० ए० द्वारा अभिनन्दन पत्र भेंट और आचार्य श्री १०८ देशभूषण जी महाराज का मुख्यमंत्री को उपदेश तथा आशीर्वाद।
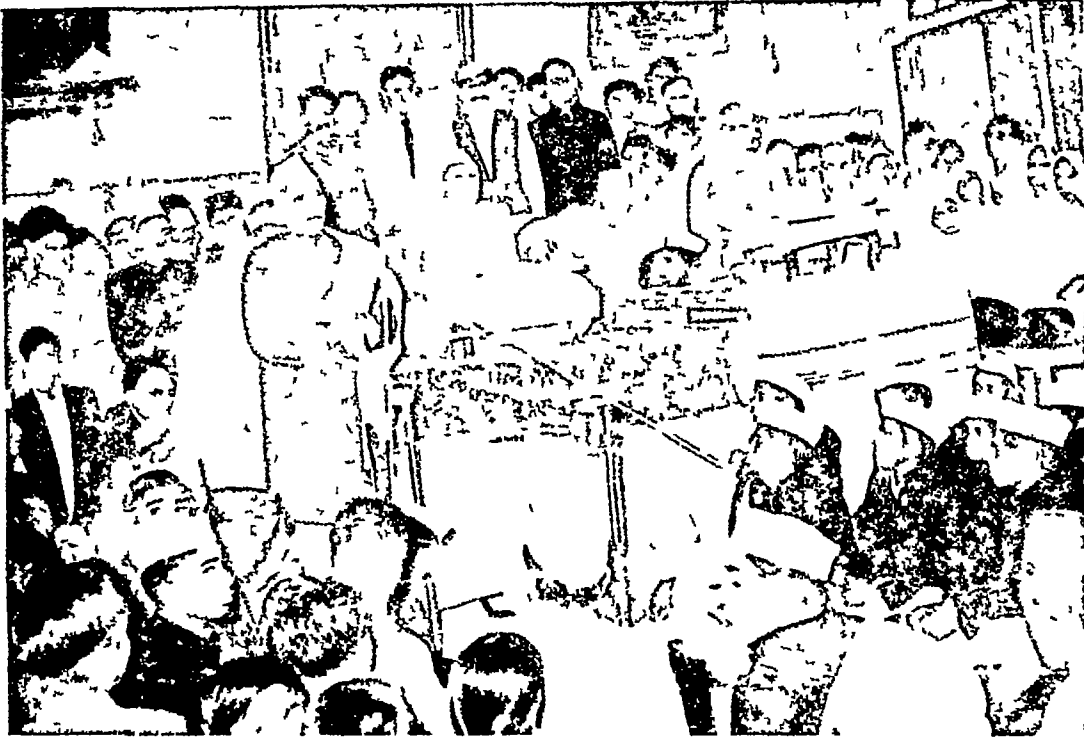
श्री दि० जैन लाल मदिर मे परिन्दो के हस्पताल के उद्घाटन के समय, भारत सरकार के गृहमत्री माननीय प० गोविन्दवल्लभ पत जो, महाराज श्री देशभूषण जी से श्री भूवलय के सम्बन्ध मे चर्चा कर रहे हैं।

श्री १०८ देशभूषण जी, महाराज जर्मन तथा अमेरिका के विद्वानो तथा राजदूत को शास्त्र प्रदान करते हुए।

श्री भूवलय जैन
सिध्दांत मगल
प्राभृत प्रथम
खंड ' अ
अध्याय
अंकभाषा

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐
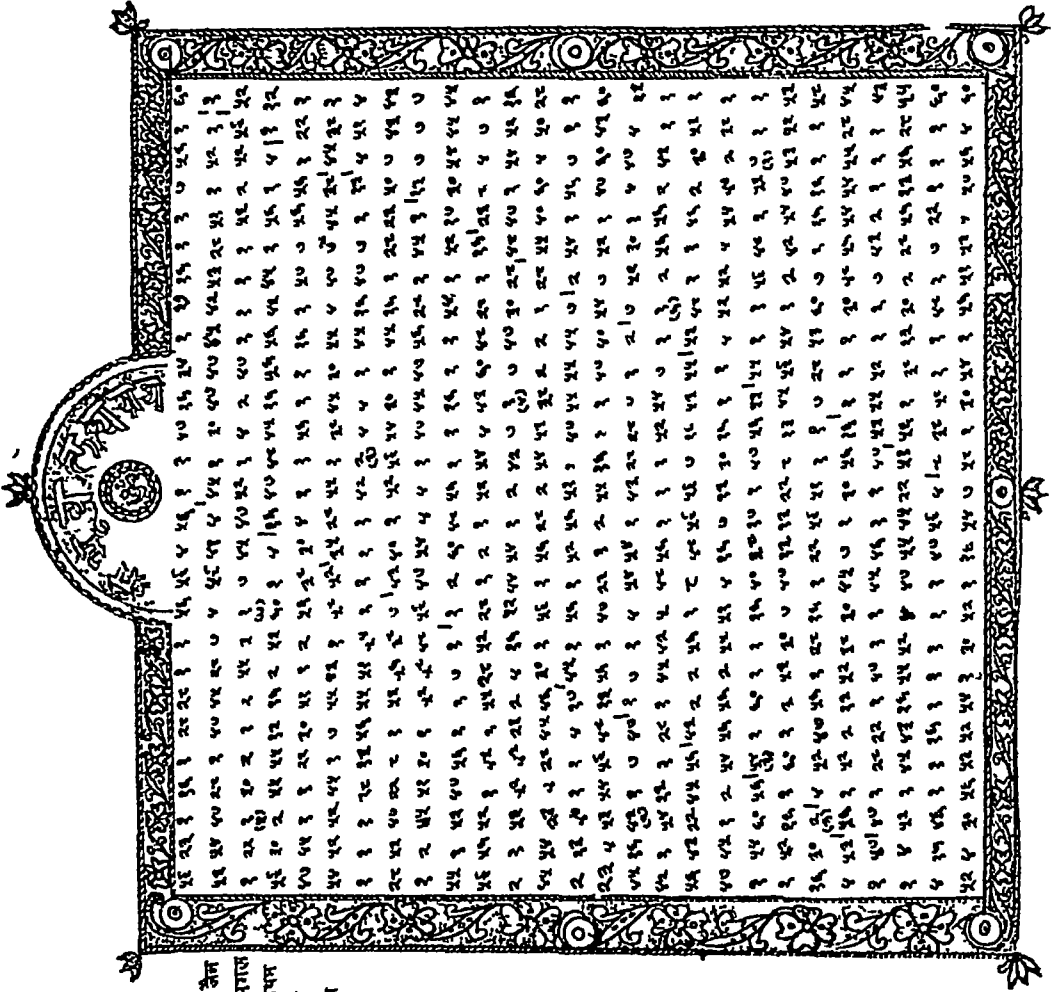
श्री दिगम्बराचार्य श्रीर सेनाचार्यवर्योपविष्ट

श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

अंक भाषामयी जैन सिद्धान्त शास्त्र

श्री भूवलय

हिन्दी अनुवाद कर्ता

श्री दिगम्बर जैनाचार्य १०८ देशभूषण जी महाराज

प्रथम खण्ड

मंगल प्राभृत

"अ" अध्याय १-१-१

सं० ❖

★ प्राकृत

अ	ष्ट महाप्रातिहार्य वय्भवदिन्द । अप्ट गुणन्गळोळ्	ओ	म्वम् ॥ सृष्टिगे मंगल पर्यायविनित्त । अष्टम जिनगेरगुवेनु ॥१॥
ट्	वणेयकोलु पुस्तक पिन्छ पात्रेय । अवतारदा कमन्डलद ॥ नव	का	रमन्त्र सिद्धिगे कारणवेन्दु । भुवलयदोळुपेळ्द महिमा ॥२॥
ट	वणेयोळक्षरदकव स्यापिसि । दवयववदे महाव्रतवु ॥ अव	र	वरिगे तक्क शक्तिगे वरवाद । नवमन्गलद भूवलय ॥३॥
वि	हवाणि ओम्कारदतिशय विहनिन्न । महावीरवाणि एन्देनुव ॥	म	हिमेय मन्गल प्राभृत वेन्नुव । महसिद्ध काव्य भूवलय ॥४॥
ह	कवु द्विसम्योगदोळगेड्प्पत्तेदु । प्रकटदोळरवत्तमूकूडे ॥ सकलाक दोळु	वि	ट्ट सोन्नेये एन्टेन्दु । सकलागम ए ळु भंग ॥५॥
क	मलगळेळु मुन्द के पोगुतिर्दाग । क्रमदोळगेरडु काल्नूरु	न्	॥ तमलांक ऐदुसोन्नेयु आरुएरडेदु । कमलदगंध भूवलय ॥६॥
म्	मह्रुदयदोळा कमलगळ् चलिपाग । विमलाक गेलुवन्दवअ	दु	। समवनुवेसदोळु भागिसे सोन्नेय विमलांक काव्य भूवलय ॥७॥

म विरुद्ध सिद्धान्तवनु महाव्रतकेंदु । नवपदवणु व्रतकेंदु ॥ स वियागिसि प्रोढ मूढ-रीवंरिगोदे ।नव पद भक्ति भूवलय ॥ ८॥
वि यलियमल मूढ दम्सणुत्तलिया । जयपरीषहव्इप्पत्तोरडम् ॥ नय स आर्गदिदगेल्दवर सद् वंशद। स्वयम् सिद्ध काव्य भूवलय ॥ ९॥
य लयल विक्कुगळहत्तनु बट्टेय । नलविनिम् घरसिद मुनि ग ॥ सलुवदिगबर नेन्तेंदुकेळुव । बलिदन्क काव्य भूवलय ॥१०॥
कलियक काव्य भूवलय ॥११॥ बलशलिगळभूवलय ॥१२॥ कळेयद पुण्य भूवलय ॥१३॥
गेलवेरिसुव भूवलय ॥१४॥ विलयगैदघद भूवलय ॥१५॥ जलज धवलद भूवलल ॥१६॥
सलुव प्रमाण भूवलय ॥१७॥ सलेसिद्धधवल भूवलय ॥१८॥

णा वण्यदंग मैय्याद गोमट देव । आवागतन्न अणुणनिगे ॥ ईवागच कु र बनुधद कट्टिनोळ्कट्टि । दाविश्व काव्य भूवलय ॥१९॥
णि जदहत्तनु आत्म धर्मवागिसि कोड भजकर्गे श्रीविन्ध्यगिरिय ॥ निज ल त्त्ववेळर दर्शनवन्नित्त । विजय धवलद भूवलय ॥२०॥
द् क्किनिसिल्लदाहत्तनु निर्जदिद । तक्कजनकेपेळ्द महिमर् ॥ सिक्करुस म सारसागर दो ळगेंब । चोक्क कर्माट भूवलय ॥२१॥
दि दि अनुभागबन्ध देप्रदेशवहोक्कु । विदियादिहदिनाल्कहोदि । अदनल्लि भि धियागिशिवसौख्य होदिद । पदवेमंगलकर्माटकवु ॥२२॥
य शस्वतिदेविय मगळाद ब्राम्हिगे । असमान कर्माटकद । रिसियुनि सु यवु अरवत्नाल्कक्षर । होसेद अंगय्य भूवलय ॥२३॥
रसद ओकार भूवलय ॥२४॥ यशदेडगय्य भूवलय ॥२५॥ रसमूरु गेरेय भूवलय ॥२६॥
रिसिसिरिद्धि यरवत्त नाल्कु ॥२७॥ यशवु नाल्कारदु हत्तु ॥२८॥ रस सिद्धिया हत्तु ओम्दु ॥२९॥

क रुणेयसुबहिरन्ग साम्राज्यम् लक्ष्मिय । अरुहनु कर्माटकद ॥ सिरिमात य तनदे ओसुदरिम् पेळिव । अरवत्नाल्कंक भूवलय ॥३०॥
ज् य सिद्धियादआओम्देअक्षर ब्रह्म । नयदोळग्अरवत् नाल्कु । जयिनर्गेस अ यत्नवाकलेयतिशय । स्वयम् सिद्ध भग भूवलय ॥३१॥
जा ति जरा मरणवनुगुणाकार । दातिथ्यबरेभागहार । ख्यातियभगदोळरिव स विख्यात । पूतवु पुण्य भूवलय ॥३२॥
म द पद्म दोळगणंकाक्षर विज्ञान । अदर गुणाकार मगिग ॥ वदगि बदा ध्या नि यरिविगे सिलुकिह । सदवधि ज्ञान भूवलय ॥३३॥
ण वपदद्अंकदिम्गणिसलोम्बत्ताम् । अवरक वनुलोम भग। दवतारवयत्नपूर्वक य भागिसे । अवनिगेयेळु भूवलय ॥३४॥
द् कद सम्प्रयोगदे भंगवागिह हत्तु ।सकलाक चक्रेश्वरवु ॥ अकलंक वादहत्त न् कद ओ मुंदे । प्रकटद गुणकार बिन्दु ॥३५॥
ट कवनु महवीर नतमुहूर्त दिम्।प्रकटि सेदिव्य वाणियलि ॥ सकलाक्षरवम् ति ळिविह गौतम । नकलंक हन्नेरडग ॥३६॥
स वर्थिसिद्धि येंदेनलु अक्षर भंग । निर्वाहदोळगक भगम् ॥ सर्वांक यो गदोळ् अरवत्तनाल्क ननेल्ल । निर्वहिसलु हत्तु भंग ॥३७॥
स र्मत्वादाहत्तसुवळेसुव(कालदे)योग दे।निर्मलसुशुद्धसिद्धान्तधर्मवहरडुवआ गि न जिनपाद । शर्मर सिद्ध भूवलय ॥३८॥
सा गर द्व्ऐपगळेल्लव गणिसुव । श्रीगुरु ऐदवरंकं ॥ नागवनाकव न रकव मोक्षव । साधन वागिसिदंक ॥३९॥
रा शियोळोम्द्वसुतेगेयलाराशियु ।घासियागदलेतु बिरुव॥ श्रीज्ञाननन्तदपद वि हु संख्यात । दाशेयनन्त समृख्यात ॥४०॥

दि शेयोळु वंद अनन्त संख्यातद । वश दोळसम्ख्यातवदम् ॥ रस कमलगळेळु का दिरिसिदविव्य । रससिद्धि जलपद्मगंध ॥४१॥
द् वर्णयोळिरुवन् 'क' दोळु कूडिद् अरवत्तु । सवियंक वेंटेंट वरोळ् ॥ अवितिह श्रीपद ग हदिनारु स्वप्नद । अवयव स्थलपद्मगन्ध ॥४२॥
ट वर्णयोळिरुवन्क दोळु कूडिद् एन्टेंदु । अवनु मत्तुपुनह कूडिदरे ॥ नव पद्म व द रिंदबरुवंक एळम् । सविदरे बेट्टद पद्म ॥४३॥
स मनाद ई मूरु पद्मगळन्नेल्ल । ममहरुदयद शुद्धरसद । गमकदोळ् अन्टद अंट स् एंटनु । अमविल्लदे सोन्नेगेयदु ॥४४॥
य शद ध्यानाग्नियिम् पुटविडे रससिद्धि । वशवागुवुदु सत्य मणियु ॥ रसमणि मो क्षदेकामदवहुदेम्ब । रस सिद्धियंक भूवलय ॥४५॥
ज वमात्रवादरू दोषगळिल्लद । नवमानकदादि अरहन्त ॥ अवनेरडू कालनन्नूरिद्द अन् क् द । सविये भाविसे महापद्म ॥४६॥
व् रतरवादेरळ् आपाद पद्मगळोळु । वरुव अतीतानागतद॥ वरदवादोदु आ समयद ष ट् पद । दरियिरि वर्तमान वनु ॥४७॥
थ ण थण वेन्नुव रसमणियौषध । गणितवम् नागार्जुनन । क्षणदोळगरि दनु गुरुविन् द लातनु । गुणिसुत लेनदु कर्म वनु ॥४८॥
सा घिसि केडिसुत सिद्धान्त मार्गद । ओदिनन्काक्षरविद्य ॥मोदर्दहम्सालक्षण धर्मंदि म् । आदि जिनेन्द्ररर मतदिम् ॥४९॥
रा गवगेलिदवराग पेळिद विव्यम् । नागसम्पगेय हूउगळम् ॥ सागर दुपमान गुणितद च रितेयम् । भोगव योगदोळ् कूडि ॥५०॥
लि द्वरसवमाडि हूवनु कोदिह । बुद्धियज्ञानव केडिसि ॥ शुद्धात्म नेले इ ह सिद्धर लोकद । सिद्ध सिद्धान्त भूवलय ॥५१॥
न् रुशन माडलु सद्दर्शन वागि । परमात्म पादव गुणिसे ॥ तिरुगिद कमल व दलगळ कूडलु । वर लोमदु साविर देनदु ॥५२॥
अरुहन पद पद्म भग ॥५३॥ परमन पदपद्म दंग ॥५४॥ गुरुपरम् परेयादि भग ॥५५॥ सरसात्क हुट्टिद भंग ॥५६॥
गुरु गळ उपदेश दग ॥५७॥ परिशुद्ध परमात्मनग ॥५८॥ सरसद हन्नेरडंग ॥५९॥ करुणेय मूरु हूवनग ॥६०॥
परिमळ रसवगेलूदनग ॥६१॥ सरसाक्षरद् एळु भन्ग ॥६२॥ गुरुसेन गणदवरन्ग ॥६३॥ सरमंगल काव्य भंग ॥६४॥
भ् र्मध्वजवदरोळु केत्तिद चक्र । निर्मलदष्टु हूवुगळम् ॥ स्वर्मन दळगळ यवत् ओ म्दु सोन्नेयु । धर्मदकालु लक्षगळे ॥६५॥
आ पाटियकवोळ् ऐदु साविर कूडे । श्रीपाद पद्म गंधजल (दगजल)॥ रूपि अरूपियाओ म् दरोळ् पेळुव । श्रीपदधतिय भूवलय ॥६६॥
लि रि सिद्ध अरहत आचार्य पाठक । वर सर्वसाधु सद्धर्म ॥ परमागम वद स् बरेव चयत्यालय।दिरूव श्रीबिंबओम्वत्तु ॥६७॥
करुणे योम्वत्त् इप्पत्तोळु ॥६८॥ अरुहन गुणवेंबत्तोदु ॥६९॥ सिरियेळ्नूरिप्प त्ओम्वत्तम् ॥७०॥ बरुव मदान्कगळारु ॥७१॥
एरडने कमल हन्नेरडु ॥७२॥ करविडिदेळक कुम्भ ॥७३॥ अरुहन वाणि ओम्बत्तु ॥७४॥ परिपूर्ण नवदन्क करग ॥७५॥
सिरि सिद्धं नमह ओम्हत्तु ॥७६॥

द् गणित राशियोळुत्पन्न वागिह । बगेवगेयन्कदक्षरद ॥ सोगसिनिम् मन्गलप्रा का र भद्रवु । बगेगे शुभदसौख्यकर ॥७७॥
वि पणर् एन्देने अरुद्ध मुनिगळ सम्पद । दिशेयोळु बह बालमुनिगे ॥ वशवागद रा शियतिशय हारदे।हौसेदरे बन्दिह शिववु ॥७८॥
म नवु सिंहासन तनुवु चैत्यालय । जिनविम्बदन्ते 'नन्त।त्म । नेनुत अक्ष य बाद भावद्रव्यगळिद।घनवन्धपुण्यभूवलय ॥७९॥
म रेतिहदेहाभिमानदोळध्यात्म । सरमालेयोळु बन्धकरगे । अरहन्त रूपि न द्रव्यागमकाव्य ।सिरि पिर्प सिद्ध भूवलय ॥८०॥

म न दथियिंद शरीरवतपिसिद । जिनरूपि नाशेयजनरू ।घनकर्माटक वेन्टनु गेले मो क्ष । दनुभव मंगल काव्य ॥ ८१॥
दि शेयोळोम्बत्तर वशगोड सूत्राक । दसमानि पाहुड काव्य ॥ वशवद न म मात्म स्वसमय वेन्नुव ।कु समय नाशक काव्य ॥ ८२॥
स र्वार्थ सिद्धिसम्पददनिर्मलकाव्य। धर्मवलौकिकगणित ।निर् ममबुद्धिय न वलम् बिसिरुवर । धर्मानुयोगद वस्तु ॥ ८३॥
शर्मर निर्मल काव्य ॥८४॥ धर्म मूराऱु मूरन्क ॥८५॥ धर्म समन्वय काव्य ॥८६॥ निर्ममकार वाक्यान्क ॥ ८७॥
धर्म भाषेगळेन्टोन्देळु ॥८८॥ मर्म पश्चदानुपूर्वि ॥८९॥ धर्म समन्वय गुणित ॥९०॥ कर्मद अरिकेय गणित ॥ ९१॥
करम्द सख्यात गणित ॥९२॥ कर्मदसम्ख्यात गुणित॥९३॥ कर्मदनन्तान्क गुणित ॥९४॥ कर्मदुत्कृष्टदनन्त ॥ ९५॥
कर्मसिद्धान्तद गणित ॥९६॥ निर्मलदध्यात्म बन्धम् ॥९७॥ सर्वस्व सार भूवलय ॥९८॥ धर्ममन्गल प्राभृतवु ॥ ९९॥
निर्मल शुद्धकल्याणम् ॥१००॥ धर्मवय्भव भद्र सौख्य ॥१०१॥
न् वकार मन्त्र दोळादिय सिद्धान्त। अवयव पूर्वेय ग्रन्थ॥दवतारदआदि म द् 'अ' क्षरमन्गल।नव अ अ अ अअअअअअ ॥१०२॥
अवरोळु अपुनरुक्तान्क ॥१०३॥ अवुनोडल पुनरुक्त लिपि ॥१०४॥ अवरोळ गादिय भन्ग ॥१०५॥ सविएरळ् मूर्नालकु भन्ग ॥१०६॥
इवु ऐदारेळेन्टु भन्ग ॥१०७॥ रत्ओम्बत्तु हत्हन् ओम्दु ॥१०८॥ सविहन्एरड् हदिमूरू भन्ग ॥१०९॥ अवु हदिनालक् हदिनय्दु ॥११०॥
अवु हदिनार् हदिनेळु ॥१११॥ नव वेरडेने हदिनेन्टु ॥११२॥ अवु हत्तोबत्तु इप्पत्उ ॥११३॥ अवर मुन्द् ओम्देरळमूरु ॥११४॥
सवि नालूकय्दारेळेन्ट न्ग ॥११५॥ नवमुन्देंमूवत्तु अन्ग ॥११६॥ अवु नलवत् मुन्देहत्अन्क ॥११७॥ सवि हत्त् उ अरवत्तु भन्ग ॥११८॥
अवु हत्तए अरवत्तु भन्ग ॥११९॥ सवियओम्देरडुमूर्नालकु ॥१२०॥ अवु कूडल् अरवत्तनाल्कु ॥१२१॥
सवियअ अरवत्नाल्कु भन्ग ॥१२२॥ अवरंकवदु तोम्बत्एरडु ॥१२३॥ अवु अडगिहुदु अन्तरद ॥१२४॥
तु ळियलु आरूवरे साविर मुन्दे । बळसिह अरवत्तोदु ॥ तिळियक ओंबत्तर मूर हं रिमुन्दे ॥ कळेये मंगलद (बळसे)पाहुडवुम् ॥१२५॥

९×९×९×९ = ६५६१ = ९ ६५६१ अन्तर ७७८५×१४३४६ = ९

प्राकृत और कर्माटक ये दोनो भाषा सक्रमवर्त्ती है

अट्टविहकम्म वियला णिटिटय कज्जा पणट्टससारा ।
दिट्टसयलत्थ सारा सिद्धआ सिद्धिम् मम दिसन्तु ॥१॥

सस्कृत अक्रमवर्ती

ओकारम् बिन्दु संयुक्तं नित्यम् ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदम् चैव ओकाराय नमो नमः ॥१॥

★ आरम्भ के लाल रग के अक्षरो को ऊपर से नीचे की तरफ पढने से- प्राकृत भापा वनती है-।

❖ वीच के लाल रग के अक्षरो को ऊपर से नीचे की तरफ पढ़ने से सस्कृत भापा वनती है।

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री दिगम्बरजैनाचार्य वीरसेन जी के शिष्य श्री दिगम्बरजैनाचार्य कुमुदेन्दु विरचित

श्री सर्वभाषामय सिद्धान्त शास्त्र

भूवलय

श्री १०८ दिगम्बरजैनाचार्य देशभूषण जी द्वारा

कानड़ी का हिन्दी अनुवाद

प्रथमखंड 'अ' अध्याय

कौं मोददायकमनंतगुणाम्बुराशिं, श्री कौमुदेन्दुमुनिनाथकृतोपसेवं ।
श्री देशभूषण मुनीश्वरमासुनम्य, हिंदीं करोमि शुभ भूवलयस्य बुद्‌ध्या ॥

मंगल प्राभृत

अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिंद । अष्टगुणंगळोळोवस् ॥
सृष्टिगे मगल पर्यायविनित्त । अष्टमजिनगेरगुवेनु ॥ १ ॥

इस भूवलय ग्रन्थ की रचना के आदि में श्री कुमुदेंदु जैनाचार्य ने मगल रूप मे श्री चन्द्र प्रभु तीर्थंकर को ही नमस्कार किया है। यह चन्द्र प्रभु तीर्थंकर परम देव कैसे हैं, ? सो कहते हैं-

अष्ट महाप्रातिहार्य--

सपूर्ण विश्व के अन्दर जितनी भी श्रेष्ठ वस्तुए हैं अर्थात् जितने वैभव चक्रवर्ती देवेन्द्र या मनुष्य के सुख हैं, उन सपूर्ण सुखो से भी अत्यन्त पवित्र एव मगलकारी सुख, जो है वह अष्ट महा-प्रातिहार्यों तथा अतरग वहिरग लक्ष्मी के वैभवो से सुशोभित आठ गुणो से युक्त एक अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान के पास ही हैं वे भगवान ही विश्व के प्राणियो को मगल के देने वाले हैं। इसलिये हम अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को मन-वचन-काय से त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हैं।

श्री कुमुदेंदु आचार्य ने केवल अकेले आठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार क्यो किया ?

समाधान--भगवान गुणधर आचार्य द्वारा रचित जयधवल के टीकाकार अर्थात् कुमुदेंदु आचार्य के गुरु वीरसेन आचार्य ने जयधवल की टीका के आदि में चन्द्रप्रभु भगवान को ही नमस्कार किया है जैसा कि--

जयइ धवलंगतेए णाऊरियसयल भुवण भवणगणो ।
केवलणाण सरीरो अणजणो णामओ चदो ॥

अपने धवल शरीर के तेज से समस्त भुवनो के भवन समूह को व्याप्त करने वाले केवल ज्ञान शरीर धारी, अनजन अर्थात् कर्म से रहित चन्द्रप्रभु जिनदेव जयवत हो।

विश ार्थ--चन्द्रमा अपने धवल अर्थात् सफेद शरीर के मद आलोक से मध्य लोक के कुछ भाग को व्याप्त करता है, उसका शरीर भी पार्थिव है और वह सकलक है। परन्तु चन्द्रप्रभु भगवान अपने परमौदारिक रूप धवल शरीर के तेज से तीनो लोको के प्रत्येक भाग को व्याप्त करते हैं। उनका अभ्यतर शरीर पार्थिव न होकर केवल ज्ञान मय है। और वे निष्कलक हैं, ऐसे चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र देव सदा जयवन्त हो।

वीरसेन स्वामी ने इसके द्वारा चन्द्रप्रभु जिनेन्द्र की वाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार की स्तुति की है। और श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी "अष्ट महाप्रातिहार्य वैभवदिद" अतरग और बहिरग लक्ष्मी से सुशोभित सपूर्ण प्राणियो को शुद्ध धवलीकृत कल्याण का मार्ग बतलाने के कारण उनको प्रथम नमस्कार किया है। श्री वीरसेन आचार्य ने 'धवलगतएण' इत्यादि पद के द्वारा उनकी वाह्य स्तुति की है। औदारिक नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुआ उनका औदारिक शरीर शुभ तथा सफेद वर्ण का था। उस शरीर की प्रभा चन्द्रमा की काति के समान, निस्तेज न होकर तेजयुक्त थी। जो करोडो सूर्यो की प्रभा को भी मात करती थी। अर्थात् तिरस्कार करती थी। "केवलणाणशरीरो" इस पद से भगवान की अत्यन्त स्तुति की गई है और कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इसी आशय को लेकर अतरग लक्ष्मी की स्तुति की है। प्रत्येक आत्मा, केवल--ज्ञान, केवल दर्शन--आदि अनन्त गुणो का पिंड है। इसलिए उन अनन्त गुणो के समुदाय को छोड कर आत्मा जैसी स्वतत्र और कोई वस्तु नही है। वाह्य शरीर आदि के द्वारा जो आत्मा की स्तुति की गई, वह, आत्मा की स्तुति न होकर किसी विशिष्ट पुण्यशाली आत्मा का उस शरीर की स्तुति के द्वारा महत्व दिखलाना मात्र है। यहा केवल ज्ञान यह उपलक्षण है, जिस मे केवल दर्शन आदि अनन्त आत्मा के गुणो का ग्रहण होता है, अथवा चार घातिया कर्मो के नाश से प्रगट होने वाले आत्मा के अनुजीवी गुणो का ग्रहण होता है। **"अनजणों"** यह विशेषण भगवान की अर्हन्त अवस्था को दिखलाने के लिए दिया गया है। इससे प्रगट हो जाता है कि यह स्तुति अर्हन्त अवस्था को प्राप्त चद्रप्रभु भगवान की है। इस स्तोत्र के आरम्भ मे आए हुए 'जयइ धवल' पद द्वारा वीरसेन आचार्य ने इस टीका का नाम 'जयधवला' प्रख्यात कर दिया है और चिरकाल तक उसके जयवन्त होकर रहने की कामना की है। यही आशा कुमुदेन्दु आचार्य की भी है, और कुमुदेन्दु आचार्य ने आगे चलकर महावीर इत्यादि द्वारा महावीर भगवान की स्तुति की है।

श्लोक न० १

अर्थ--अशोक वृक्ष आदि आठ महाप्रातिहार्य वैभवो से युक्त ज्ञानादि आठ गुणो मे से एक 'ओ' अक्षर समस्त ससार के लिए मगलमय हैं। अर्थात जो आठ गुण हैं वे इस 'ओ' के पर्यायरूप हैं। ऐसे गुण और पर्यायसहित गुणो को प्राप्त करने वाले आठवें चन्द्रप्रभु भगवान को मैं (कुमुदेन्दु आचार्य) प्रणाम करता हूँ।

कुमुदेन्दु आचार्य, ने व्याकरण इत्यादि तथा आजकल के प्रचलित काव्य रचना इत्यादि के क्रम के अनुसार इसकी रचना नही की है। बल्कि जिनेन्द्र भगवान की जो अनक्षरी वाणी थी और जो वाणी उनकी दिव्य ध्वनि के द्वारा सर्वांग प्रदेश से खिरी थी वैसी ही वाणी मे आपने भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

इस प्रकार कुमुन्देन्दु आचार्य ने जो इस ग्रन्थ की रचना की है वह गणित के द्वारा ही हो सकती है अन्य किसी साधन से नही। कुमुदेन्दु आचार्य ने भी इस भूवलय काव्य की रचना केवल गणित द्वारा ही की है।

इसीलिये ७१८ (सात सौ अठारह) भापा ३६३ धर्म तथा ६४ कलादि अर्थात् तीन काल तीन लोक का परमाणु से लेकर वृहद्ब्रह्माड तक और अनादि काल से अनन्त काल तक होने वाले जीवो की सपूर्ण कथायें अथवा इतिहास लिखने के लिये प्रथम नौ नम्बर (अक) लिया गया है। एक जो अक है वह अक किसी गणना या गिनती मे नही आता है। इसीलिये परम्परा से जैनाचार्यों ने ...

दो २ को माना है आज उसी पद्धति के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने सर्व जघन्य अंक दो को मानकर नौवें (नवा) अंक को आठवा अंक माना है। नौ के ऊपर अंक ही नही है। फिर यहा एक शका होती है कि १ और १ मिलकर दो हुआ तो फिर यहा यह एक कहा से आ गया? जब दो को छोडकर एक को लेते हैं तो दो मिटकर एक एक ही रह जाता है। यह एक क्या चीज है? दुनिया में ऐसा प्रचलित है कि प्रत्येक मनुष्य के हाथ में कोई चीज रखी जाती है तो एक, दो, तीन इत्यादि क्रम से गिनती के द्वारा गिनी जाती है, वे गिनती १०-१२-१५-२० इत्यादि जो सख्या हैं एक को लेकर १२ या १३ या २० या ३० को प्राप्त हुई हैं। इनमे से एक एक सख्या क्रम से निकाल दी जाए तो अंत मे केवल एक ही रह जाता है।

उत्तर-अंक-कहे जाने योग्य एक नहीं है। एकका टुकडा कर दिया जाए तो दो टुकडे हो जाते हैं और दो बार टुकडे कर दिये जाए तो चार होते है। इसी क्रम के अनुसार काटते चले जाए तो काल की अपेक्षा अनादि काल से फिर भी अनादि काल तक चलता ही रहेगा। क्षेत्र की अपेक्षा से केवली भगवान गम्य शुद्ध परमाणु तक जाएगा। जीव की अपेक्षा से सर्व जघन्य क्षेत्रावगाह प्रदेशस्थ क्षुद्र भव ग्रहणधारी जीव तक जायगा, भाव की अपेक्षा केवली भगवान के गम्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म तक कर पावेंगे। आप लोग हमेशा देखते हैं कि एक रुपया है, अथवा एक घर है, या कोई चीज है ऐसे तुम गिनते रहते हो। तब तुम्हारे विचार मे ही एक को हमेशा अलग २ मानेंगे। सभी चीज एक कैसे रह सकती हैं? अर्थात् कभी भी नही रह सकती है।

इतने महान शक्ति शाली होने पर भी आत्मध्यान मे बैठे हुए योगी राज के समान अथवा सिद्ध भगवान के यह जो एक अंश आप अपने अन्दर ही स्थित है। ऐसे एक को एक से गुणा करने से एक ही रह जाता है। यह ही इसकी अचिन्त्य महिमा है। कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय की कला कौशल की रचना में ज्ञानादि अष्ट गुणो में 'ओ' अर्थात ज्ञान रूपी एक को ही सम्मान्य अर्थात मगलमय माना है।

इस भूवलय को गणित शास्त्र के आधार पर लिखा है। अंक शास्त्र और गणित शास्त्र ये विद्या महान् विद्या हैं और इन दोनो का विषय भिन्न-भिन्न है। अंक शास्त्र का विषय यह है कि सबसे पहले वृषभदेव भगवान ने सुन्दरी देवी की हथेली पर विन्दु को काटकर एक और दो आपस मे मिलाते हुए नौ तक लिखा था। इस विषय का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन करने वाले जो शास्त्र हैं उन्ही का नाम अंक शास्त्र है। इस अंक शास्त्र के आधार से गणित शास्त्र की उत्पत्ति हुई, अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम नामक रचना भगवान भूतवली आचार्य ने की। इसी द्रव्य प्रमाणानुगम शास्त्र के आधार से इस भूवलय ग्रन्थ के आधारभूत जड को मजबूत किया गया है। इसलिये सर्व जघन्य दो मान लिया और दो से गिनती की जाए तो नौवा अंक आठवा हो जाएगा। इसलिये आनुपूर्वी क्रम से नवें चन्द्रप्रभु भगवान आठवें तीर्थंकर हुए। इसलिये कुमुदेन्दु आचार्य ने नवे चन्द्रप्रभु भगवान को नमस्कार किया है। क्योकि यह बात ठीक भी है कि सपूर्ण भूवलय की ६४ अक्षरो मे ही रचना की हुई है और आठ को आठ से गुणा करने से ६४ होता है। ॥१॥

[१] "टवणेयकोलु" अर्थात् पुस्तक रखने की व्यासपीठ [रहल] [२] पुस्तक [३] पिच्छ [४] पात्र रूपी कमडल ये चारो ही नव पद सिद्धि के कारण है। इस प्रकार भूवलय की रचना के आदि मे महा महिमावान [वैभवशाली] चन्द्रप्रभु भगवान ने कहा है। ॥२॥

इसी [व्यासपीठ] अर्थात् रहल मे एक ओर चौसठ अक्षर और दूसरी ओर नौ अंक की जो स्थापना की गई है वही महाव्रत धारण किये हुए महात्माओ ने अर्थात् [दिगम्बर मुनिराजो ने] भव्य जीवो की शक्ति को जानकर उनकी शक्ति के अनुसार साध्य हुआ नव केवल

लब्धि रूप नव मगल ही भूवलय है। ॥३॥

यह नौ की वाणी ओंकार शब्द का अतिशय है। ऐसी इस वाणी को इस काल मे महावीर वाणी कहते है और इसको महामहिमा वाला मगल प्राभृत भी कहते है और इसको महासिद्ध काव्य भी कहते है, तथा इसको भूवलय सिद्धान्त भी कहते हैं। ॥४॥

भूवलय की पद्धति के अनुसार 'ह्' और 'क्' इन दोनो अक्षरो के सयोग को द्विसम्योग कहते हैं। क् २८ और ह् ६० अगर इन दोनो अको को जोड लिया जाए तो ८८ आ जाता है। वह विन्दी ही ८८ वन गयी। ८ और ८ को जोड देने से १६ वन गया और १ और ६ को जोड देने से ७-[सात] वन गया। सात के रूप मे ही भगवान महावीर ने इसका नाम सप्तभगी रखा। ॥५॥

जिस समय भगवान महावीर सहस्र कमल के ऊपर कायोत्सर्ग मे खडे थे उस समय देवेन्द्र ने प्रार्थना की कि भव्य जीव रूपी पौदे कुमार्ग नाम की तीव्र गर्मी के ताप से सूखते हुए आ रहे हैं। इसके लिये धर्मामृत रूपी वर्षा की आवश्यकता है इसलिये तुम्हारा समवसरण श्री विहार, अखिल, काश्मीर, आन्ध्र, कर्नाटक, गौड, वाह्लीक, गुर्जर इत्यादि छप्पन देशो मे विहार करके उन जीवो को धर्मामृत की वर्षा करने की कृपा करें, इस प्रकार उन्होने नम्र प्रार्थना की। यद्यपि भगवान का समवसरण विना प्रार्थना के चलने वाला था। परन्तु देवेन्द्र की प्रार्थना करना एक प्रकार का निमित्त था। जिस समय देवेन्द्र ने समझा कि भगवान का विहार होने वाला है उस समय इस वात को जानकर कमलो की रचना चक्र रूप मे स्थापित की। किस प्रकार स्थापित किया यह वतलाते हैं?

आगे की ओर सात पीछे की ओर सात, इस प्रकार चारो ओर वत्तीस २ कमल की रचना की अर्थात् चक्र रूप मे स्थापना की। अव हमको इस प्रकार समझना चाहिये कि एक एक कमल मे १००८ दल अथवा पखडी होती हैं।

३२×७ मे गुणा करने से २२४ होते हैं और एक वह कमल जो भगवान के चरण के नीचे है उसको मिलाकर कुल २२५ हुए और २२५ अर्थात् २+२+५ को जोड दें तो ९ हो गया और कनाडी भाषा मे इसका 'ऐरडूकालनूर' अर्थ होता है और इसी का अर्थ भगवान का चरण भी होता है। इसी का अर्थ कायोत्सर्ग मे स्थित खडा होना भी है। और जव भगवान अपने कदम को दूसरी जगह रखते हैं तो उसी समय भक्तिवश होकर देव उस कमल को घुमा देते हैं। तव घूमने के पश्चात् वही कमल भगवान के दूसरे पाव के नीचे आकर वैठ जाता है। अव जो २२५ कमल पहले थे उनको दुवारा २२५ से गुणा करने मे ५०६२५ हो जाता है। [५+०+६+२+५=१८=८+१=९] ये भी जोड देने से परस्पर ९ हो जाता है।

भगवान के समवसरण मे देव-देवियाँ ऊपर के अक के अनुसार अष्ट द्रव्य मगल को लेकर खडे थे। जव भगवान अपने पावो को उठाकर दूसरे पाव पर खडे हुए उस समय इतने ही द्रव्यो से अर्चना [पूजा] करते हुए तथा जव तीसरा पाव उठाकर रखा तो इसी अक के गणितानुसार अर्चना करते हुए चले गए। अर्थात् सारे [५६ देशो] भरतखड मे भगवान के जितने पाव पडते गए उतने ही देव-देविया हैं ॥६॥

जिस समय भगवान विहार करते थे उस समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता था उसकी सुगन्ध उसी भूमि से निकलकर भव्य जीवो की नासिका मे प्रवेश कर हृदय मे जाती थी। तव उनके हृदय मे अत्यन्त पुण्य-परमाणु का वन्ध होता था। अव इस समय तो भगवान है ही नही, उनके चरण के नीचे का कमल भी नही। तव फिर वह गध किस प्रकार आएगी। क्योकि अव कमल की गध तो है ही नही तो फिर हम क्यो भक्ति करे?

इस प्रकार के प्रश्न प्राय उठते हैं जिनका समाधान हम नीचे दिए हुए दसवें श्लोक मे करेंगे।

भगवान अपने समवसरण के साथ विहार करते समय पृथ्वी पर चलने-फिरने वाली चिडिया के समान चलते थे। परन्तु अतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का विहार चक्र के समान अर्थात् आजकल के हवाई

जहाज के समान तिरछा चलता था। इस समय वही भगवान के चरण कमल हमारे हृदय-कमल मे चक्र की भाँति घूमते हुए सर्वांग भक्ति को उत्पन्न कर अत्यन्त शान्तमय बना देते हैं। इस प्रकार घूमने के कारण आठवा अक मिलता है, उस अक से तथा उस गुणाकार से '६' नौ नामक अक दो से भाग होकर अर्थात् विपमांक से भाग होकर शून्य रूप बन जाता है। यह गणित की क्रिया किसी को मालूम नही थी। स्वय वीरसेन आचार्य को भी यह नवमाक पद्धति विदित न थी। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विधि को अपने क्षयोपशम ज्ञान से जानकर गुरू से प्रार्थना की। तब वीरसेन आचार्य प्रसन्न होकर बोले--तुम हमारे शिष्य नही परन्तु हम ही आपके शिष्य है। जैसा उन्होने अपने मुख से प्रकट किया है, इस बात का आगे चलकर खुलासा दिया गया है।

यह विधि गणित शास्त्रज्ञो लिये अधिक महत्वशाली है, बहुत दूर प्राच्य देश (जर्मन इत्यादि) से आने वाला (राडार बम्बार मिशन) अर्थात् राडर विमान भारत के किसी एक बडे भाग को नष्ट करने के लिये आता है। तब तुरन्त ही भारत वाले अपनी साइस से मालूम कर लेते हैं कि एक बडा विमान भारत के बडे भाग को नष्ट करने के लिये आ रहा है। तभी वह कई स्थानो को सूचित कर, उस विमान को गोली से मार गिराने की आज्ञा देते हैं। यदि गोली लग जाती है तो विमान नष्ट हो जाता है अन्यथा विमान अपना काम पूर्ण कर लेता है। इसका कारण क्या है ? इसका उत्तर है कि गणित शास्त्र की अधूरता ही इसका कारण है। यदि भूवलय का गणित शास्त्र जगत मे प्रचलित हो जाए और समाक का विषमाक से विभाग हो जावे तो सब सवाल हल हो जाते हैं। और एक दूसरे को मारने की हिंसा मिट जाती है। कहते हैं कि एक राजा के पास मारने का शस्त्र है और दूसरे के पास रक्षा करने का शस्त्र है तो उस मारने वाले शस्त्र का क्या लाभ अर्थात् कुछ नही। यही जैन धर्म का बडा महत्वशाली अहिंसा का शस्त्र दुनिया को देन है। भगवान् महावीर के ज्ञान मे कुछ भी जानने मे शेप न रहने के कारण उनके ज्ञान को सर्वज्ञ कहा है। अगर भगवान् के ज्ञान मे कुछ वस्तु शेप रह जाती तो उनको सर्वज्ञ नही कहा जाता। इसलिये उनकी वाणी प्रमाण होने के कारण किसी को अप्रमाणता के विषय की शका नही हो सकती। यही भगवान के ज्ञान मे एक महत्व है। इसलिये आजकल भी भगवान महावीर के कमलो की गध का आस्वादन ऊपर कहे हुए गुणाकार से भगवान के पद-कमलो को गुणाकार करते हुए विशेष रूप से वस्तु को जान सकता है। यही हमारे कहने का प्रयोजन है ॥ ७ ॥

पूर्वापर विरोधादि दोष रहित सिद्धान्त शास्त्र महाव्रती के लिये हैं और अरहत सिद्धाचार्यादि नव पद की भक्ति अणुव्रत वालो के लिये है। इस रीति से अणुव्रत और महाव्रत दोनो की समानता दिखलाते हुए यह मूढ और प्रौढ अर्थात् विद्वान् दोनो को एक ही समान उपदेश देने वाला भूवलय शास्त्र है। जैसे कि कनाडी श्लोको को पढ लेने से मूढ भी अर्थ कर लेता है और इस कनाढी मे भी विद्वान् अपने प्रथक-प्रथक दृष्टिकोणो से उन्ही अक्षरो को ढूढते हुए प्रथक-प्रथक भाषा और विषय को निकाल लेते हैं ॥ ८ ॥

जिन्होने सम्यक्त्व के आठ मूल दोषो को निकाल दिया है और देव-मूढता, गुरू मूढता और पाखडी मूढता को त्याग दिया है और दर्शनावरणी कर्म का नाश कर दिया है और क्षुधा, तृपादि बाईस परीषहो को जीत लिया है। ऐसे महाव्रतियो के प्रमाण से जो वस्तु सिद्ध हो गई उस वस्तु को दुबारा सिद्ध करने की आवश्यकता नही। यदि कोई सिद्ध भी करे तो वह अविचारित रमणीय है। अर्थात् कुछ फल नही। यह भूवलय काव्य भी महाव्रतियो के शिरोमणि आचार्य के द्वारा बनाया हुआ है अत स्वय प्रमाण है ॥ ९ ॥

इस भूवलय काव्य मे बतलाया गया है कि दस दिशा रूपी कपडो को अपने शरीर पर धारण करते हुए भी मुनिराज दिगम्बर कैसे बने ?

जैसे सूर्य को दिनकर, भास्कर, प्रभाकर आदि अनेक नामो से पुकारते हैं वैसे ही कवि लोग उस सूर्य को तस्कर भी कहते हैं क्योकि वह रात्रि के अन्धकार को चुराने वाला है। इसी

तरह दिगम्बर जैन मुनि सम्पूर्ण वस्त्रादि परिग्रह से रहित अर्थात् निरावरण आकाश के समान होते हैं। केवल एक शरीर मात्र उनके पास परिग्रह है। इस रूप मे होते हुए दशो दिशा रूपी वस्त्रको धारण किए हुए हैं। यह शब्द उपमा रूप मे है ॥१०॥

अनादि काल से इस तरह मुनियो के द्वारा बनाया हुआ यह भूवलय नाम का काव्य है ॥ ११ ॥

आत्म बल से वलिष्ठ होने के कारण इन्ही मुनियो को ही वलशाली कहते हैं ॥ १२ ॥

ऐसे दिगम्बर मुनियो के द्वारा कहा हुआ काव्य होने के कारण इसके श्रवण-मनन आदि से जो पुण्य का वन्ध होता है वह वध अतिम समय तक अर्थात् मोक्ष जाने तक साथ रहता है अर्थात् नाश नही होता है ॥ १३ ॥

इस भूवलय के श्रवणमात्र से अनेक कला और भाषा आदि अनेक दैविक चमत्कार देखने को मिलते हैं इसी तरह सुनने और पढने मात्र से उत्तरोत्तर उत्साह को वढाने वाला यह काव्य है ॥ १४ ॥

इस प्रकार इस पवित्र भूवलय शास्त्र को सुनने मात्रसे सम्पूर्ण पापो का नाश होता है ॥ १५ ॥

दिगम्बर मुनियो ने ध्यानस्थ होकर अपने हृदय रूपी कमल दल मे धवल विन्दु को देखकर जो ज्ञान प्राप्त किया था उसी के अतिशय को स्पष्ट कर दिखलाने वाला यह भूवलय है। अथवा यह धवल, जयधवल, महाधवल, विजयधवल और अतिशय धवल जैसे पाँच धवलो के अतिशय को धारण करने वाला भूवलय है। जव दिगम्बर मुनिराज अपने योग मे कमल दल के ऊपर पाँच विन्दुओ को श्वेत अर्थात् धवल रूप मे जिस प्रकार एक साथ देखते हैं उसी तरह इस भूवलय ग्र थ के प्रत्येक पृष्ठ पर तथा प्रत्येक पक्ति पर इन पाँच धवल सिद्धान्त ग्र थ के एक साथ दर्शन कर सकते हैं और पढ भी सकते हैं ॥ १६ ॥

चौंसठ (६४) अक्षरमय गणित से सिद्ध अर्थात् प्रमाणित होने के कारण यह भूवलय सर्वोपरि प्रमाणिक काव्य है ॥ १७ ॥

ऐसे इस भूवलय के अक फोटो कर लेने से उसके सव अकाक्षर काले न होकर सफेद वन गए हैं। उसी तरह जीव द्रव्य से शब्द निकलता है। उसी तरह यह अक सिद्ध हुआ। यह भूवलय ग्र थ है।

अत्यन्त सुन्दर शरीर वाले आदि मन्मथ कामदेव, गोमट्टदेव (वाहुवलि) जिस समय अपने वडे भाई भरत चक्रवर्ती को तीनो युद्धो मे जीतते समय जव वैराग्य उत्पन्न हुआ तव जीता हुआ सम्पूर्ण भरत-खड अपने भाई को वापिस दे दिया। तव खेद खिन्न होते हुए सकल चक्रवर्ती राजा भरत ने (वाहुवलि) से पूछा कि हमने राज-लोभ से आपके वज्र वृषभ नाराच सहनन से वने हुए शरीर पर चक्र छोडा। जो पर-चक्र को मात करने वाला सुदर्शन चक्र है वह चक्र आपके शरीर को भी घात करे इस विचार से छोड दिया। यह सभी लोभ कपाय का उदय है। मैं इतना वलशाली होते हुए भी पुद्गल से रचा हुआ होने के कारण आपके ज्ञानमयी शरीर रूपी चक्र का घात करने मे असमर्थ होने के कारण तुम्हारे पास निस्तेज होकर खडा हुआ हूँ। मैं इस निस्तेज चक्र को वापिस कर रहा हूँ, यह मुझे नही चाहिए। पहले पिता वृपभदेव तीर्थंकर जव तपोवन मे जाने लगे तव मैं, आप, व्राह्मी और सु दरी इन चारो को नौ अकमय चक्ररूपी भूवलय मे ६४ (चौंसठ) अक्षरो मे वाँधकर ज्ञानरूपी चक्र को वनाने की विधि को दिखाया था। उस समय हमने अच्छी तरह नही सुना था, इसलिए मुझे लोभ पैदा हुआ है। उसके फल ने ही मुझे निस्तेज कर दिया अर्थात् मुझे हरा दिया। अव मुझे किसी से न हारनेवाले भूवलय चक्र को वापिस दो। कुम्हार के चक्र के समान ससार मे घुमाने वाला यह चक्र मुझे नही चाहिए। तव वाहुवली ने कहा कि जैसा आप कहते हो वैसा नही हो सकता। इस भरत खड को आप पाले मै तो इसका पालन नही कर सकता हूँ, क्योकि मै इस पृथ्वी को पूर्णरूप से त्याग कर चुका हूँ। इसलिये मुझ को तो अव ज्ञान रूप चक्र के द्वारा धर्म साम्राज्य प्राप्त कर लेने की आज्ञा दो तव इच्छा न होने पर भी भरत चक्रवर्ती को मानना पडा अत भरत महाराज वोले कि यदि मेरा

सुदर्शन चक्र चला जाए तो कोई चिन्ता नही है, परन्तु इस ज्ञान-चक्र-रूपी भूवलय को कदापि नही छोड सकता हूँ। इसलिए मुझे लौकिक चक्र और अलौकिक ज्ञान चक्र रूपी भूवलय चक्र इन दोनो को दो, इसपर वाहुवली ने २७ × २७ = ७२९ कोष्ठ मे सम्पूर्ण द्रव्य श्रुत-रूपी द्वादशाग वाणी को ६४ अक्षरो मे वाँध कर इन अक्षरो को पुन ६ अक में वाँध कर दान दिया हुआ होने के कारण यह भूवलय विश्वरूप काव्य है ॥ १९ ॥

उत्तम क्षमादि दस प्रकार के धर्मों को अपना आत्मधर्म मानते हुए वाहुवली ने भक्त जनो को श्री विंध्यगिरि पर अपने निजी सात तत्व रूपी सप्त भगो द्वारा जिसको प्रकट किया था वह विजय धवल ही यह भूवलय है ॥ २० ॥

तीनो शल्य रहित उन दश धर्मों को पालन करते हुए उनके द्वारा जो अपने अ दर अनुभव प्राप्त किया है उस अनुभव को ग्रहण करने योग्य सत्यपात्र रूपी भव्य जीवो को जो दान देने वाले महात्मा हैं वे इस ससार रूपी सागर में कभी नही डूव सकते। ऐसा वताने वाला शुभ कर्माटक अर्थात् ६३ कर्म प्रकृति पर विजय पाने वाला तथा केवल ज्ञान प्राप्ति का उपाय बताने वाला यह भूवलय है।

कर्माटक शब्द का विवेचनः—

आदि तीर्थंकर अर्थात् वृषभदेव भगवान के गणधर वृषभसेनाचार्य से लेकर गौतम गणधर तक सभी गणधर परमेष्ठी कर्नाटक देश के थे। और सव तीर्थंकरो ने अपना उपदेश (सर्व भाषामयी दिव्य *वाणी को*) कर्नाटक भाषा में ही भव्य जीवो को सुनाया। यह कर्माटक कैसा था ? जैसे कि सात सौ रेडियो को अपने घर में रखकर अलग अलग स्टेशनो पर नम्बर लगाकर उनको गायन सुनने के लिए रख दिया जाय तो दूर से सुनने वालो को वीणा-नाद के समान अर्थात् कोयल पक्षी के कठ के समान मधुर आवाज सुनने मे आती है। उसी तरह यह कर्नाटक भाषा है। इस भाषा से दिव्य ध्वनि के अर्थ को समझ कर सब गणधर परमेष्ठियो ने वारह अग (द्वादशाग) रूप मे गूथ कर इन अ गो से प्रत्येक भाषाओ को लेकर सुननेवाले भव्य जीवो की योग्यता के अनुसार उन्ही २ भाषाओ मे उपदेश देते थे। इसलिए कर्नाटक *भाषा को दिगम्बराचार्य* कुमुदेन्दु मुनि ने कर्माटक अर्थात् ६३ कर्मों के खेल को वतलाने वाली अथवा कर्माटक अर्थात् आठ कर्मों की कथा को कहनेवाली और दिव्य वाणी को अपने अन्तर्गत रखने की शक्ति इस कर्माटक भाषा में ही वताई है, अन्य किसी भाषा मे नही। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने वतलाया है। इसी का नाम भूवलय ग्रन्थ है ॥ २१ ॥

यह कर्म चार भागो में विभक्त है—१ स्थिति २ अनुभाग ३ प्रदेश वध ४ प्रकृति वध। ये चारो वध आत्मा के साथ भिन्न-भिन्न रूप से फल को देते हुए आठ कर्म रूप वन गए हैं। आठो कर्म आत्मा के साथ पिंड रूप मे आवरण करा के इस आत्मा को ससार रूपी समुद्र मे भ्रमण कराते हैं। इन सभी *कर्मों के आवागमन* को द्वितीयादि चौदह गुणस्थान तक सम्यक्त्व रूपी निधि में परिवर्तित कर आत्मा के साथ स्थिर करते हुए मोक्ष मे पहुचाने वाली यह कर्माटक नामक भाषा है ॥ २२ ॥

तिरेसठ (६३) कर्म प्रकृति को घातियाकर्म में और शेष वचे हुए ८५ कर्मों को एक अघाति कर्म मानकर उस एक को ६३ मे मिलाकर ६४ (चौंसठ) मानकर भगवान ऋषभदेव ने चौसठ ध्वनि रूप, अर्थात् आजकल कर्नाटक देश मे प्रचार रूप मे रहने वाली लिपि के रूप में ही रचना करके यशस्वती देवी की पुत्री ब्राह्मी की दाहिने हाथ की हथेली को स्पर्श करते हुए क्रम से लिखा हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ २३ ॥

उन चौंसठ अक्षरो को परस्पर मिलाने से "ओम्" बन जाता है अर्थात् ४ और ६ दस बन जाते हैं, दस में एक और बिन्दी लगाने से 'ओ' से "ओम्" बन जाता है। कर्नाटक भाषा में एक को 'ओदु' कहते हैं, दु प्रत्यय है। 'दु' को निकाल दिया जाय तो 'ओम्' रह जाता है और 'दु' का अर्थ 'का' हो जाता है। 'का' का अर्थ छठी विभक्ति मे

लगता है। सक्षेप रूप कह दिया जाय तो 'ओम्' शब्द मे सम्पूर्ण 'भूवलय' अतर्गत होता है।

अब पहले श्लोक से लेकर सत्ताइस अक्षर से तेइस श्लोक तक आ जाए तो "ओकार विन्दु सयुक्त नित्यम्" हो जाता है। ये ही रूप भगवत् गीता मे नेमिनाथ भगवान ने कृष्ण को सुनाया है। वह गीता इस भूवलय के प्रथम अध्याय से ही शुरू होती है। इसका विवेचन आगे चलकर करेंगे ॥ २४ ॥

इस भारत में कर्नाटक दक्षिण की तरफ पडता है। ब्राह्मी देवी का दायें हाथ से लिखने का भी यही कारण है कि कर्नाटक देश दक्षिण मे था। उसी दक्षिण देश मे स्थित नन्दी नामक पर्वत पर इस भूवलय की रचना हुई। नन्दी नामक पर्वत के समीप पाच मील दूरी पर "यलव" नाम का गाव अब भी वर्तमान मे है। उसी 'यलव' के 'भू' उपसर्ग लगा दिया जाए तो 'भूवलय' होता है ॥ २५ ॥

ब्राह्मी देवी की हथेली मे तीन रेखायें हैं। ऊपर की विन्दी को काट दिया जाए तो ऊपर का एक, वीच का एक और नीचे का एक इस प्रकार मिल कर तीन हो जाते हैं। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र के चिन्ह ही ये तीन रेखागम हैं। भूवलय मे रेखागम का विपय वहुत अद्भुत है। सारे विपय को और सम्पूर्ण काल को इस रेखागम से ही जान सकते हैं। सिद्धान्त शास्त्र के गणित मे इस रेखा को अर्द्धछेदशलाका अथवा शलाकार्द्धच्छेद नाम से भी कहते हैं ॥ २६ ॥

दिगम्बर जैन मुनियो ने ऋद्धियो के द्वारा अपने रेखागम को जान लिया है वह वहुत सुलभ है। मान लो कि दो और दो को जोडने से चार, चार और चार को जोडने से आठ, आठ और आठ को जोडने से सोलह, सोलह और सोलह को जोडने से वत्तीस, वत्तीस और वत्तीस जोडने से चौंसठ होता है। इस तरह करने से चौंसठ होता है। यदि गुणा किया जाय तो पाच वार करने से चौसठ आता है इस रेखागम से चौंसठ को एक रेखा मान लो। प्रथमार्द्धच्छेद मे वत्तीस रह गया, द्वितीयार्द्धच्छेद में सोलह रह गया, तृतीयार्द्धच्छेद मे आठ रह गया, चतुथार्द्धच्छेद मे चार रह गया, पचमार्द्धच्छेद मे दो रह गया। यही भूवलय रेखागम की मूल जड है।

इन चौसठ अक्षरो को दस (६+४) मानकर अन्त मे एक मानने की विशिष्ट कला है। यदि इस प्रकार न करें तो रेखाकागम नही वनता इसलिए कुंद-कुंद आचार्य को द्वादशाग से लेना पडा।

सम्पूर्ण ससारी जीवो का सिद्ध पद प्राप्त करना ही एक ध्येय है। इस लोक मे रहने वाले सम्पूर्ण अजीव द्रव्यो मे से एक पारा ही उत्तम अजीव द्रव्य है। जैसे जीव अनादि काल से ज्ञानावरणादि आठो कर्मों से लिप्त है, उसी प्रकार पारा भी कालिमा, कटिक, सीसक आदि दोपो से लिप्त है। जव यह आत्मा इन ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हो जाती है, तव सिद्ध परमात्मा वन जाती है। इसी तरह यह पारा भी जव इन कालिमादि दोपो से रहित हो जाता है तो रसमणि वन जाता है। इन दोनो का कथन भूवलय मे आगे चलकर विस्तार पूर्वक कहा है ॥ २६ ॥

अर्हन्त देव ने कर्माष्टक भापा कहा हैं। "आदौसकार प्रयोग सुखद" अर्थात् सव के आदि मे जो सकार का प्रयोग है वह सुख देने वाला है। इसलिए सिद्धान्त शास्त्र के आदि मे सकार रख दिया है। "सिरि" यह शब्द प्राकृत और कनाडी दोनो भापा मे समान रूप से देखने मे आता है। इस तरह यह प्राचीन भापा हैं। जव इस प्राचीन भापा को अपने हाथ मे लेकर सस्कृत किया तव से 'श्री' रूप मे प्रचलित हुआ। 'इस श्री' शब्द का अर्थ अतरग और वहिरग दोनो रूपो में 'लक्ष्मी' है। अतरग लक्ष्मी यह है कि सव जीवो पर दया करना। परन्तु दया करने से पहले किन जीवो पर किस रीति से दया करना, इस वात को सवसे पहले जान लेना चाहिए। जिस समय ज्ञानावरणादि कर्म नष्ट होते हैं तव अनन्त ज्ञान प्रकट होता हैं, इस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते हैं। इस केवल ज्ञान से भगवान ने सव जीवो का हाल यथावत् यथार्थ रूप से जान लिया था। सिद्ध जीव तो अपने

समान अनादि काल से आप अपने अदर हमेशा ही सुख में स्थित हैं। इसलिए सिद्ध जीवो के ऊपर दया करने की कोई आवश्यकता ही नही वल्कि ससारी जीवो के ऊपर दया करने की आवश्यकता है। इसीलिए भगवान ने अनन्त ज्ञान प्राप्त किया। इसी को कुमुदेन्दु आचार्य ने अतरग लक्ष्मी कहा है। उपदेश के विना जीवो का उद्धार तथा सुधार नही हो सकता। एक-एक जीव को अलग-अलग उपदेश करने का समय भी नही मिल सकता, क्योकि समय की कमी होने के कारण सभी जीवो को एक ही समय मे सव भाषाओ मे सभी विषयो का एकीकरण करके उपदेश देना अनिवार्य है। सभी जीवो का एक स्थान पर वैठकर यथा योग्य उपदेश सुनने का जो नाम है उसी का नाम समवसरण है। यह समवसरण वहिरग लक्ष्मी है। इन दोनो सम्पत्तियो को वताने वाली कर्माटक भाषा है। इन भाषाओ को ओम् से निकाल कर चौंसठ अक्षरो को दया, धर्म आदि रूपो मे विभक्त कर उपदेश दिया है। यही सर्व जीवो का एक साम्राज्य है। इस वात को कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥ ३० ॥

नय मार्ग से देखा जाय तो ६४ अक्षर हैं। जयसिद्धि अर्थात् प्रमाण रूप से देखा जाय तो एक है। उसी का नाम 'ओम्' है। "ओमित्येकाक्षरब्रह्म" अर्थात् 'ओम्' यह एक अक्षर ही ब्रह्म है। इस प्रकार भगवद्गीता मे कहा गया है। वह भगवद्गीता जैनियो की एक अतिशय कला है। इन कलाओ से ६४ अक्षरो को समान रूप से भग करते जाये तो सम्पूर्ण भूवलय शास्त्र स्वय सिद्ध वन जाता है ॥ ३१ ॥

इन भगो से पूत अर्थात् जन्म लिया हुआ जो ज्ञान है, वह ज्ञान गुणाकार रूप से जाति, बुढापा, मरण इन तीनो को जानकर अलग अलग विभाजित करने से पुण्य का स्वरूप मालूम हो जाता है। इसी लिए यह पुण्यरूप भूवलय है ॥ ३२ ॥

भगवान के चरणो के नीचे रहने वाले कमल पत्रो के अन्दर होने वाले जो धवल रूप अक अक्षर हैं, वह सव विज्ञानमय हैं। अर्थात् आकाश प्रदेश में रहने वाले अक हैं। उन अको को पहाडे का गुणाकार करने से लिया गया अर्थात् ध्यान में स्थित मुनिराजो के योग में झलके हुए अकाक्षर सर्वावधिज्ञान रूप हैं, उन्ही अको से इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई है ॥३३॥

अरहन्त सिद्धादि नव पद वाचक अको से बने हुये दुनियाँ में जितनी अक राशि हैं उन सबको नव पदो से गुणा कर देने से अर्थात् १ को दो से और दो को ३ से, ३ को चार से, और ४ को ५ से, और ५ को ६ से गुना करने से ८२० आ गया। वह इस प्रकार है १×२×३×४×५×६×७=७२० इस क्रम को अनुलोम भग भी कहते हैं। इस प्रकार चौसठ वार यत्नपूर्वक करते जाए तो ९२ डिजिट्स् [स्थानाङ्क] आ जाता है। इसी रीति से उल्टा अर्थात् ६४×६३×-६२×६१ इस रीति से एक तक गुना करते चले जाये तो वही ९२ अक आ जायेगा। इसी गणित पद्धति से भूवलय की रचना हुई है। इतना वडी अंक राशि को यदि कोई जान सकता है तो परमावधि धारक महामेधावी वीरसेनाचार्य सरीरवा ही जान सकता है। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार मतिश्रुतज्ञान के धारक हम सरीखे लोग भी जान सकते हैं। अव इस भूवलय मे यह एक अपूर्व वात है कि नव का अक जो है वह दो, चार, पाच, आदि हरएक अक के द्वारा पूर्णरूप से विभक्त कर लिया जाता है। अर्थात् उन अको के द्वारा नौ का अक कटकर अन्त मे शून्य पाँच आ जाता है।

ट् ३८, क् २८, कुल मिलकर ६६ हुआ। उनमें से आदि और अन्त का दोनो पुनरुक्त हैं। उन पुनरुक्तो को निकाल देने से ६४ वन जाता है। अर्थात् ६६–२=६४। ६+४=१० अक में जो विन्दी है वह विन्दी सर्वोपरि होने से उसका नाम सकलाक चक्रेश्वर है और अकलक है अर्थात् निरावरण है, जव अक वन गया तो फिर उससे अक्षर भी वन जाता है यही भूवलय का एक वड़ा महत्व है ॥३५॥

इस टक भग को महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य वाणी में अन्तर मुहूर्त मे प्रकट किया, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। इस वात पर शका होती है कि—

ऊपर पाचवें श्लोक में हक भग रूप में भगवान महावीर ने कहा था, ऐसा लिखा है, वहा वताया है कि हक भग से सप्तभगी रूप वाणी की उत्पत्ति होती है और टक भग से द्वादशाङ्ग १२ की उत्पत्ति होती है और १२ को जोड देवें तो ३ आ जाता है ऐसी विषमता क्यो? इसका समाधान करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि

हक भग से सब तीर्थंकरो द्वारा द्वादशाग वाणी का प्रचार हुआ यह तो अटल बात है परन्तु चौबीसवे तीर्थंकर श्री महावीर ने गौतम गणधर को समझाने के लिए ट्क भग को स्वीकार किया था। ट्क भग से गौतम गणधर ने बारह अग को जान लिया और उसी को सम्पूर्णभव्य जीव को गू थ कर समझा दिया है ।।३६।।

इस बारह अ ग शास्त्र का अध्ययन करने से सर्वार्थसिद्धि की प्राप्ति होती है। अर्थ का मतलब चौंसठ अक्षर होता है उन अक्षरो को भग करने से ९२ अ क आ जाता है फिर घटाते चले जाये तो वही ६४ अ क आ जाता है, और दस अ क भी मिल जाता है ।।३७।।

मर्म रूपी इस दम को उपयोग मे लाने से समस्त सिद्धान्त का ज्ञान हो जाता है। जो कि पहले कहे हुये जिनेन्द्र देव के चरण कमल की सुगन्ध को फैलाने वाला है ।।३८।।

इस दश के अ क का अर्द्धच्छेद कर देने से पाँच का अ क आ जाता है जो कि पच परमेष्ठी का वाचक है। इसी अ क से मध्यलोक के द्वीप सागरादि की गणना हो जाती है तथा नागलोक, स्वर्ग लोक,, नर और नरक लोक एव मोक्ष स्थान तक की गणना की जा सकती है। इन्ही तीन लोको के घन राजुओ को पिण्ड रूप बनाने से वही दश का अ क आ जाता है अर्थात् ३४३ को क्रमश जोड देने पर दश बन जाता है। इस बात को दिखलाने वाला यह अ क रूपी भूवलय है ।। ३९ ।।

यह एक का अ क महाराशि है, उस राशि की गिनती किसी दूसरे अ क से नही होती है। अतएव इस राशि को अनन्त राशि कहते हैं। क्योकि इस राशि मे से आप कितनी ही एक-एक राशि निकालते चले जाओ तो भी उसका अन्त नही हो पाता है जितना का जितना ही वह रहता है। ऐसे करते हुए भी जिनेन्द्र देव के चरण कमल को १, २, ३, ४, ऐसे ९ तक गिनती करने का नाम सख्यात है और असख्यात भी है। सख्यात राशि मानव के असख्यात राशि ऋद्धि प्राप्त मुनि और देव इत्यादि के लिए और अनन्त राशि केवली भगवान के गम्य है।

इस प्रकार जघन्य सख्यात दो है। सर्वोत्कृष्ट सख्यात नौ है तो एक नम्बर मे अनन्त भी है, असख्यात भी और सख्यात भी हैं ।। ४० ।।

इन तीनो दिशाओ से आई हुई अनन्त राशि को सख्या राशि से गिनती किया जावे तो प्रत्येक राशि मे अनन्त ही निकल कर आता है। ऊपर भगवान के समवसरण विहार के समय में बताये हुये जो सात 'कमल' हैं, उन कमलो को जलकमल मानकर उन जल कमलो से रससिद्धि या पारा की सिद्धि बन जाती है। कुमुदेन्दु आचार्य ने इस सिद्धरस को दिव्य रस सिद्धि कहा है ।। ४१ ।।

पाँचवाँ श्लोक मे जो 'हक' भग आया है उसमे ८८ की सख्या है। उस अठासी वर्ग स्थान मे जो गुप्त रीति से छिपा हुआ है, उसका नाम श्री पद्म है। भगवन्त के जन्म कल्याण के समय के पीछे गर्भावतरण के समय मे जिन माता को जो सोलह स्वप्न हुए थे उस स्वप्न समय का जो कथन है उस कथन के अन्दर जो पद्म निकल कर आयेगा उसका नाम स्थल पद्म है। उस पद्म से पारा को घर्षण किया जाय तो महौषधि बन जाती है ।। ४२ ।।

पुन उसी अठासी को जोड दिया जाय तो सात का कथन निकल आता है। इस कथन के अन्दर जो कमल आकर मिल जाता है उसको पहाडी पद्म या कमल ऐसे कहते हैं। इस प्रकार जल पद्म स्थल पद्म और पहाडी पद्म ऐसे तीन पद्म इस गिनती में मिल गये। इन तीनो पद्मो को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व के विभाग में अतीत कमल अनागत कमल और वर्तमान कमल इन तीनो नामो से भी कहा है। इसका मतलब यह है कि अतीत चौबीस तीर्थंकरो के चिन्हो से गिनाया हुआ जो नाम है वह अनागत कमल है। इसी तरह वर्तमान चौबीस तीर्थंकरो का लाच्छनो के गणित से गिना हुआ जो नाम है वह अतीत कमल है। अनागत चौबीस तीर्थंकरो के चिन्हो से गिना हुआ नाम वर्तमान कमल है।

"कु भानागत सद्गुरु कमलजा" अर्थात् अनागत सद्गुरु ऐसे कहने से अनागत चौबीसी इसका अर्थ होता है। कु भ अर्थात् जो कलश है वह १९वें तीर्थंकर का चिन्ह है। इन तात्विक शब्दो से भरे हुए तथा गणित विषय से

परिपूर्ण ऐसे इस शास्त्र के अर्थ को जैन सिद्धान्त के वेत्ता महाविद्वान लोग ही अपने कठिन परिश्रम से जान सकते हैं। अन्यथा नही ॥ ४३ ॥

अब आगे कुमुदेन्दु आचार्य ध्यानाग्नि और पुटाग्नि दोनो अग्नियो का विशेष रूप से साथ-साथ वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त अतीत अनागत और वर्तमान कमलो को अथवा यो कहो कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो को समान रूप से लेकर उनके साथ मे सम्मिश्रण करके अपने चञ्चल मन रूप पारा को पीसने से उसकी चपलता मिट जाती है और वह स्थिर बन जाता है ॥ ४४ ॥

फिर उस शुद्ध पारा को ध्यान रूप अग्नि में पुटपाक विधि से पकाया जावे तो वह सम्यक् रूप से सिद्ध रसायन हो कर सच्चा रत्नत्रय रूपी रसमणि बन जाता है। तत्पश्चात् यही रसमणि ससारी जीवो को उत्तम सुख देने मे समर्थ हो। इस तरह काम और मोक्ष इन दोनो पुरुषार्थों को साधन कर देने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥ ४५ ॥

नवमअङ्क के आदि में श्री अरहन्त देव हैं जो कि बिलकुल निर्दोष हैं। उनमें दोष का लेश भी नही है। वह भगवान् अरहन्त देव विहार के समय मे जब अपना पैर उठाकर रखते हैं तो उसके नीचे जो कमल बन जाता है उसको महापद्माङ्क कमल कहते हैं।

विहार के समय में भगवान् के चरण के नीचे २२५ कमल रचे जाया करते हैं। उन कमलो में से सुरुडग के समय भगवान के चरण के नीचे जो कमल होता है वह बदल कर घुमाव खाकर दूसरे डग के समय भगवान के चरण के नीचे दूसरा कमल आया करता है। इसी प्रकार घुमाव खाकर नम्बर वार हरेक कमल आते रहते हैं। अब भगवान के चरण के नीचे पहले आये हुये कमल को तो अतीत कमल कहते हैं। चरण के नीचे आकर रहने वाले कमल को वर्तमान कमल कहा जाता है। किन्तु घुमाव खाकर आगे भगवान के चरण के नीचे आने वाले कमल को अनागत कमल कहते हैं।

उपर्युक्त प्रकार की रसमणी के बनाने की गणित विधि को नागार्जुन ने अपने गुरुवर श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी से जानकर उस ज्ञान को आठ बार क्रियात्मक रूप देकर रसमणि बनाया था उसी विधि के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने इस अलौकिक गणित ग्रन्थ मे सोना आदि बनाने की भी विधि बताई है।

आदि नाथ भगवान के निर्दोष सिद्धान्त मार्ग से प्राप्त एकाक्षरी विद्या से अहिंसात्मक विधि पूर्वक यह रसमणि बनती है।

अ काक्षर विधि को पढने से कर्मों को नष्ट करने वाले सिद्धान्त का मार्ग मिलता है जिसे अहिंसा परमो धर्म कहते हैं। और यह यथार्थ रूप मे आत्मा का लक्षण ही अहिंसा धर्म है। इस लक्षण धर्म से जो आयुर्वेद विद्या बतलाई गई है यह धर्म श्री वृषभदेव आदि जिनेन्द्र के द्वारा प्राप्त हुआ है ॥४६॥

और इसे सम्पूर्ण रागद्वेष नष्ट हो जाने के कारण जब सर्वज्ञता प्राप्त हो गई तब भगवान ने बताया था।

दिगम्बर मुनि राग को जीतने वाले होने के कारण सूक्ष्म जीवो की हिंसा न हो जाए इस हेतु से वृक्ष के पत्ते उसकी छाल, उसकी जड, शाखाए, फल आदि को न लेकर उन्होने केवल पुष्पो से अपने आयुर्वेद शास्त्र की रचना की है। पुष्प में हिंसा कम है और इसमें ऊपर कहे हुए पच अ ग का सार भी होने से गुण अधिक है। अब आगे कुमुदेन्दु आचार्य का पारा या रस की सिद्धि के लिए जो अठारह हजार पुष्प हैं उसमे से इधर एक को लेकर, जिसका नाम "नागसम्पिगे" अर्थात् नागचम्पा है। उन चम्पा पुष्पो से बना हुआ रसमणी में सागरोपम गुणित रोग परमाणु नष्ट करने की शक्ति है। उतना ही शरीर सौन्दर्य भी बढ़ता जाता है। जब सौन्दर्य, आयु शक्ति इत्यादि की वृद्धि हो जाती है तब समान रूप से भोग और योग की वृद्धि हो जाती है ॥५०॥

जगत मे एक रूढि है कि सभी लोग पुष्प को तोड कर पूजा, अलकार आदि के निमित्त से ले जाते हैं और वे सब व्यर्थ ही जाते हैं। यहां आचार्य ने उन पुष्पो को सिद्ध रस बनाने के लिए ही तोडने की आज्ञा दी है। जो फूल भगवान के चरण मे चढाया जाता है इसका अर्थ है कि वह सिद्ध रस बनाने के लिए ही चढाया जाता है वह व्यर्थ नही जाता। प्राचीनकाल मे भगवान की मूर्ति को सिद्ध रसमणि से तैयार करते थे। जिस फूल से रसिमणि बन गयी

उसी फूल को तोड कर भगवान के चरणो मे चढाया जाता था। उन मूर्तियो का अभिषेक करने से फिर उस धारा को मस्तक पर सिंचन करने मात्र से कुष्ठादि महान् रोग तुरन्त नष्ट हो जाते थे। इस पद्धति का विज्ञान-सिद्धि से सम्बन्ध था। आजकल गन्धोदक मे वह महिमा नही रही साराश यह है कि वह पहले मूर्ति बनाने की विधि जो कि रसमणी से बनाई जाती थी वह नही रही। लेकिन इससे हमे आज के गन्धोदक पर अविश्वास नही करना चाहिए क्योकि अगर ऐसे छोड दिया जाय तो धर्म का घात भी होगा और वह रसमणी भी नही मिलेगा। परन्तु आजकल वह पुष्प भी मौजूद है और भगवान पर चढाया भी जाता और उनने रसमणि बनाने का शक्ति भी है लेकिन रसमणी बनाने को विधि न मालूम होने के कारण आजकल उसका फल हमे नही मिलता है अगर इसी भूवलय ग्रन्थराज से विदित करले तो हम इस विधि को जानकर रसमणी प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा ज्ञान कराने वाला केवल भूवलय ग्रन्थ ही है॥ ५१ ॥

ऊपर कही गई विधि के अनुसार भगवान के चरण कमल की गिनती करके सम्यक् दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं और भगवान के शरीर मे रहने वाले एक हजार आठ लक्षणो से लक्षित चिन्ह भी हमे प्राप्त होगे ॥ ५२ ॥

अरहन्त भगवान के चरण कमलो की गणना करने का यह गुणाकार भग है। लब्धाक को घात करने से जो अक आता है उसे भगाग [गुणनखड] कहते हैं। यही द्वादशाग की विधि है। यह विधि गुरु परम्परा से आई हुई अनादि अनिधन भग रूप है ५३-५४-५५।

इन सम्पूर्ण अतिशयो से युक्त होने पर भी भग निकालने की विधि बहुत सुलभ है। गुरु परम्परा से चले आये भग रूप है।

अठारह दोषो का नाश कर चुकने वाले परमात्मा के अगो से आया हुआ यह अग ज्ञान है।

सुलभता पूर्वक रहने वाले ये वारह अग हैं सो दया धर्म रूप कमलपुष्पक पत्तो के समान हैं अथवा यह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपात्मक हैं और आत्मा के अतरग फूल है।

इन फूलो के घर्षण से यह अन्तरात्मा परमात्मा बन जाता है।

इन परमात्मा के चरण कमलो के स्पर्श वाले कमलो की सुगन्ध से पारा रसायन रूप मे परिणत होकर अग्नि स्तम्भन तथा जलतरण में सहायक बन जाता है।

यह सेनगण गुरु परम्परा से आया हुआ है, इस सेनगण मे ही वृषभ सेनादि सब गणधर परमेष्टि हुए है, इन्ही परम्परा मे धरसेन आचार्य वीरसेन जिनसेन आचार्य हुये हैं तथा इस भूवलय ग्रन्थ के कर्ता कुमुदेन्दु आचार्य भी इसी सेन सघ मे हुये हैं तथा अनादि कालीन सुप्रसिद्ध जैंन ऋग्वेद के अनुयायी जैन क्षत्रिय कुलोत्पन्न जैन ब्राह्मण तथा चक्रवर्ती राजा लोग भी इन्ही सेनगण के आचार्यो के शिष्य थे। सब राजाओ ने इन्ही आचार्यो की आज्ञा को सर्वोपरि प्रमाण मानकर धर्म पूर्वक राज्य किया था और उनकी चरण रज को अपने मस्तक पर चढाया था ॥ ५६ से ६३ ॥

और इस मगल प्राभृत का शृङ्खलावद्ध काव्याग है। वह द्वादशाङ्ग रूप है ॥६४॥

इस मगल प्राभृत काव्य को चक्र मे लिखे होने के कारण यह धर्म ध्वजा के ऊपर रहने वाले धर्म चक्र के समान है। उस चक्र मे जितने फूलो को खुदवाया गया है उतने ही अक्षरो से इस भूवलय की रचना हुई है। अब आगे उसके कितने अक्षर होते हैं सो कहेगे।

स्व मन के दल में इन अको की स्थापना कर लेते समय इक्यावन, बिन्दी और लाख का चतुर्थांश अर्थात् पच्चीस हजार कुल मिलकर ५१०२५००० हजार होगे ॥६५॥

उतने महान अको मे ५००० हजार और मिला दिया जाय तो (५१०-३००००) अक होगा। इन अको को नवमाक पद्धति से जोड दिया जाय तो नौ हो जायेगा। भगवान का एक पाद उठाकर रखने में जितने कमल घूमे उतने कमलो मे से सुगधित हवा निकले, उतने परमाणुओ के अरूपी द्रव्य का वर्णन इस भूवलय मे है। ऐसे मान लो कि एक कानडी सागत्य छन्द के श्लोक मे १०८ असयुक्ताक्षार मान लिया जाय तो उपर्युक्त कहा हुआ अक को १०८ से भाग

देने से ४७२५००० इतने कानडी श्लोक सख्या होते हैं। इतने श्लोकों से रचना किया हुआ काव्य इस ससार में और कोई कही भी नही है। महा भारत को सब से बडा शास्त्र माना गया है। उसमें १२५००० श्लोक हैं। वे सस्कृत होने के कारण से भूवलय मे १०८ अक्षरो में एक कानडी श्लोक की अपेक्षा से महाभारत की श्लोक सख्या सवा लाख होने पर भी ७५००० हजार मानी जायेगी इस अपेक्षा से यह भूवलय काव्य महाभारत से छ गुणा वडा है बल्कि छ गुणा से ज्यादा ही समझना चाहिए। इस भूवलय के अक ५१०-३०००० हैं। इन अको को चक्र रूप में कर लेना हो तो ७२९ से भाग देना होगा तब ७००९६ इतने चक्र बन जाते है। परन्तु यदि हम अपने प्रयत्न से चक्र बनाना चाहे तो १६००० ही बना सकते हैं। शेष के ५४०९६ चक्र बनाने का ज्ञान हमारे अन्दर नही है। किन्तु उन १६००० चक्रो को भी यदि निकालने का प्रयत्न किया जाय तो उनके निकालने में भी इतने महान करोडो अक भी [ॐ] इस एक अक्षर में गर्भित हैं। इस तरह से १७० वर्ष लगेंगे। रूपी और अरूपी सभी द्रव्यो को एक ही भाषा मे वर्णन करने वाला यह भूवलय नामक ग्रन्थ है। इसका दूसरा नाम श्री पद्धति भूवलय भी है ॥६६॥

१ श्री सिद्ध २ अरहन्त ३ आचार्य ४ पाठक अर्थात् उपाध्याय ५ सर्व साधु ६ सद्धर्म ७ परमागम ८ परमागम के उत्पत्ति कारण चैत्यालय और ९ जिन बिम्ब इस तरह नौ अक में-समस्त भूवलय को गर्भित कर रचना किया हुआ ये सम्पूर्ण अक है ॥६७॥

दया धर्ममयी इस अक को रत्नत्रय से गुणाकर देने से ९×३ = २७ ॥ ६८ ॥

इस सताईस को २७×३ = ८१ ॥६९॥

इसी तरह भूवलय में रहने वाले ६४ अक्षर वारम्वार आते रहे तो भी अपुनरुक्त अक्षर का ही समावेश समझना चाहिए ॥१०४॥

इसमे कोई शका करने का कारण नही है, भूवलय के प्रथम खण्ड मगल प्राभृत के ४९ वें अध्याय मे २०,७३,६०० बीस लाख तिहत्तर हजार छ सौ अक हैं। उन सभी के १२७० चक्र होते हैं इसको अक्षर रूप भूवलय की गिनती से न लेकर चक्राक की गिनती से ही लेना चाहिए। ऐसे लेने से नौ अक वार-वार आते रहते हैं तो भी कुमुदेन्दु आचार्य ने अपुनरुक्ताक ही कहा है। यहाँ पर विचार कर देखा जाय तो अनेकान्त की महिमा स्पष्ट हो जाती है। इस रीति से ६४ अक्षर भी वार-वार आते हैं।

इन अको में से यह आदि भग हैं ॥१०५॥

इस क्रम के अनुसार २ ३ और ४ भग हैं ॥१०६॥

इसी क्रम से ५ ६ ७ ८ भग है ॥१०७॥

इसी तरह ९ १० ११ भग होते हैं ॥१०८॥

इसी तरह १२ १३ भी भग होते हैं ॥१०९॥

इसी क्रमानुसार १४ १५ भग हैं ॥११०॥

इसी रीति से १६ १७ भग हैं ॥१११॥

दो नौ मिलकर अठारह भग हुए ॥११२॥

इसी तरह १९ २० भग होते ॥११३॥

उसके आगे १ २ ३ अर्थात् २१ २२ २३ भग हैं ॥११४॥

इसी क्रम के अनुसार ४ ५ ६ ७ ८ अर्थात् २४ २५ २६ २७ २८ भग होते हैं ॥११५॥

इसा क्रम से नौ अर्थात् २९ और ३० भग है ॥११६॥

इसी तरह ३१ ३२ के क्रमानुसार ३९ तक जाना चाहिए ॥११७॥

इसी क्रम से ५० से ५९ तक जाना चाहिए ॥११८॥

उसके वाद ६०वा भग आ जाता है ॥११९॥

तत्पश्चात् १-२-३-४ अर्थात् ६१-६२-६३-६४ इस तरह भग आता है, उन सभी को मिलाने से ६४ भग आता है। ये ही ६४ भग सम्पूर्ण भूवलय है ॥१२०। १२१। १२२ ॥

उन ६४ भगो के क्रम के अनुसार प्रतिलोम और अनुलोम के क्रमानुसार अक और शब्दो को वना दिया जाय तो ९२ स्थानाक आ जाता है।

६४ अक्षरो को १ से गुणाकार करने पर ६४ आता है। इस ६४ को असयोगी भग अथवा एक सयोगी भग कहते हैं। क्योकि श्रुतज्ञान के इन ६४ अक्षरो मे से जिस अक्षर का भी हम उच्चारण करते हैं तो वह वस्तुत अपने मूल स्वरूप में ही रहता है। इसलिये इसको असयोगी भग कहते हैं।

वह इस प्रकार है—

अ × अ = अ अथवा १ × १ = १

अब भूवलय सिद्धान्त मे आने वाली द्वादशाग वाणी मे द्रव्य श्रुत के जितने भी अक्षर हैं और उनके जितने भी पद होते हैं तथा एक पद मे जितने भी अक्षर हैं इत्यादि क्रम वद्ध सख्या को जहाँ-तहाँ आगे देते जायेंगे। अब असयोगी भग अर्थात् ६४ अक्षरो के द्विसयोगी भग को करते समय आने वाले गुणाकार को यहाँ वतलाते हैं। ६४ × ६३ = ४०३२

द्विसंयोगी भग—सपूर्ण ससार मे अनादि काल से लेकर आज तक जो काल वीत चुका है और आज से लेकर अनन्त काल तक जो आने वाला काल है उसकी जितनी भी भाषायें होती हैं तथा उसके आश्रय पर चलने वाले जितने भी मत हैं उनके द्विसयोगी सभी शब्द इस द्विसयोगी भग मे गर्भित हैं। भाव यह है कि कोई भी विद्वान या मुनि अपनी समझ से नूतन जानकर जो अक्षरो वाला शब्द उच्चारण करता है तो वह सव इसी में आ जाता है। अब यदि ३ अक्षरो के भग को निकालना हो तो द्विसयोगी भग को ६२ से गुणा करे, चतु सयोगी भग निकालना हो तो त्रिसयोगी भग को ६१ से गुणा करे इसी प्रकार आगे भी यदि चतु षष्ठि भग तक इसी क्रमानुसार ६४ वार गुणा करते जायें तो—६८५१८६४३३८०३७७४४८६१६८५४०३०२४०६८७१६६६३-३५४७३७—८७३४२६४४०३७८७३५३०२२६६२६१५६४०२८४४१६०००-००००००००००००० इतनी संख्या आ जाती है, जो कि ६ से भाग देने पर शेष शून्य वचता है। यही १२३ श्लोको से निकला हुआ अर्थ है॥ १२३॥

अब यहाँ पर प्रश्न उटता है कि हजार-दस हजार पृष्ठ वाले छोटे से भूवलय ग्रन्थ मे से इतनी वडी सख्या किस प्रकार प्रगट हुई ?

उत्तर—इस भूवलय ग्रन्थ की लेखन शैली ही ऐसी है। यहाँ पर चार चरणो का एक श्लोक होता है। इसमे से आचार्य श्री ने केवल अन्त चरण की ही वारम्वार गणना की है॥ १२४॥

यह मगल प्राभृत का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। इसमे कुल ६५६१ अकाक्षर हैं। ६ को ६ से यदि ३ वार गुणा किया जाय तो भी इनने अकाक्षर आ जाते हैं। इस अध्याय मे ६ चक्र हैं तथा प्रत्येक चक्र मे ७२६ अक्षराङ्क हैं। यहाँ तक कानडी का १२५ वाँ श्लोक समाप्त हुआ।

अब इन कनाडी श्लोको का प्रथमाक्षर ऊपर से लेकर नीचे तक यदि चीनी भापा की पद्धति के अनुसार पढते चले जाय तो प्राकृत भगवद्गीता निकल आती है। कानडी श्लोको का मूल पाठ प्रारम्भ के ४ पृष्ठो मे आ चुका है। अब उसका अर्थ लिखते हैं। जिन्होने ज्ञानावरणी आदि आठो कर्मो को जीत लिया है और जो इस ससार के समस्त कार्यों को पूर्ण करके ससार से मुक्त हो गये हैं तथा तीनो लोको एव तीनो कालो के समस्त विषयो को जो देखते रहते हैं ऐसे सिद्ध भगवान् हमे सिद्धि प्रदान करें।

अब कनाडी श्लोक के मध्य मे ऊपर से लेकर नीचे तक निकलने वाले सस्कृत श्लोक का अर्थ लिखते हैं —

अर्थात् "ओ" एक अक्षर है। विन्दी एक अक है। इन दोनो को यदि परस्पर मे मिला दें तो "ओ" वन जाता है। ओ वनाने के लिए अ, उ तथा म् इन तीनो अक्षरो की जरुरत नही पडती। क्योकि कानडी भापा मे स्वतन्त्र ओ अक्षर है। उन अक्षरो का नम्वर भूवलय मे २४ वतलाया गया है। ओ अक्षर को बिन्दी मिलाकर ओ वनाकर योगी जन नित्य ध्यान करते हैं। क्योकि अक्षर मे यदि अक मिला दिया जाय तो अद्भुत शक्ति उत्पन्न हो जाती है। उस शक्ति से योगी जन ऐहिक और पारलौकिक दोनो सम्पत्तियो को प्राप्त कर लेते हैं।

दूसरा अध्याय

आ दिय अतिशय ज्ञान साम्राज्य । साधित वय् भववाद ॥ मोद ग र्थगम अविरल शब्दव । नोदिप नवम बधदोळु ॥१॥
दि वद देवागमवाद समव सृत्ति । यव यव वद नाल्वेरळ ॥ स घि रवे निंदु न भो विहारवमाडि । दवनु पेळिरुव भूवलय ॥२॥
म नुज रोळतिशय दनुभव चक्रिगे । घन शक्ति वय् भवक र नु ॥ अनुजनुदोर्वलियवनादि मन्मथ । जिनरुपिनादि भूवलय ॥३॥
स रस विद्य गळोळु कामद कलेयोळु । हरुषदायुर् वेददोळ् उ ॥ ल रयद अपुनरुक्ताक्षर दनूकद । सरस सौंदरि देवियोडने ॥४॥
म् नविद्दु कलितवनाद कारणदिंद । मनुमथ नेनसिदे देवा ॥ श णसदे सवनूदरियरि तनूक गणनेय । घनविद्ये इरुव भूवलय ॥५॥
ह कदनूकदोळु बन्द ळर भाजितम् । सकलवु गुणितवो एम् व् ग्र ॥ सकलशब्दागमवएळ् भगगळिह । प्रकटद तत्व भूवलय ॥६॥
ण वदनूकवदनेळ रिदलि भागिसे । नव सोन्नेयु हुट्टि वहु द ॥ अवधरिसलुविडियनूकगळएप्टॅव । सविशकेगितु उत्तर बु ॥७॥
ण वददददद करण सूत्रव कोळ्व । अवयव वोळगिह द णत ॥ नवमत्तुनाल्कुसोन्नेगळेरळ्मूर्नाल्कु सविआरारेरडो वत्तारु ॥८॥

१८८८१९८३९५६२३२७६२५९५३९१८७३४१२९७०४५८४५२८०७३६८४७८३५४९३९३१५२९९००९४८६९२६६४३२००००००००००००००

(यहां ८५ को चौंसठ ६४ अक्षरो से आया भंग है। आडासे जोड दे तो ३६९ होता है। ३६९ को पुन आडासे मिलाने से १८ हो जाता है।
१८ मिला दिया जाय तो १+८=९ ।

जु णि एदु नाल्कोवत्त् सोन्ने सोन्ने योवत्तु । घनवे नौ वोवत्तेरडॅदु ॥ जिनओदु मूरोवत्मूरु वदंकद । घनदेमुंदके वरुवंक ॥९॥
दो ड्ड ओवतु नाल्कॅदु मूरॅटेळु । ओड्डिदद नाल्कॅटो घ ॥ गुडडे यार् मूरेळु सोन्ने एटेरडॅदु । अड्डनाल्कॅटॅदु नाल्कु ॥१०॥
स म सोन्ने एळु ओवत्तेरडोदु । गमनाल्कु मूरेळु वर् प् आ ॥ क्रमदॅदु ओदोवत् मूरु ऐदोवत्तु । विमल ऎंदेरडारु एळु ॥११॥
म रळि एरडु मूरु एरडारॅदोवत्तु । सरदे मूरॅटॅव र शि ॥ अरुहर ओवत्तु ओमॅदु एंटॅदु । सरियोदु वरलु वदक ॥१२॥
च रिते योळ् प्रतिलोम गुणकार दिंवद । वरवॅवत्नाल् क् अक्षरद॥ सरमालेइदरोळुअनुलोमक्रमविह परियद्रव्यागमवरियॆ ॥१३॥
उ त्तरदोळु सोन्नेगळु हन्नेरडु । ओत्ते नाल्केरडे अक् पा ॥ मत्तोटॆळॅदॅदॆढारु वदक । वत्तिनोळॆंदु नाल्केळु ॥१४॥
र रुदोम् दोदु नाल्कू सोन्ने यरडॅदु । वसदॆटॅदारुकु लि षा ॥ यशदेळॅ दारु ओदु ओवत्तु । वशदोवतु नाल्केरडु ॥१५॥
स् र नाल्कारू सोन्नेयु ओदु येरडारू । एरळ् मूरु ऐदॆवरि त ॥ सरि ओदेळॅदु मूरॅदु मूरनाल्कु । वरेसोन्ने योदारु ओदु ॥१६॥
स विमूरॆंदु सोन्नेयु ऐन्ढोवत्तु । नवऐळु नाल्केरळ् हो स दे ॥ कवि सोन्ने नाल्कु वदंक वैभव । दवयव अनुलोम वरियॆ ॥१७॥

४०२४७९९८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४९९१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४००००००००००००

इस ७१ अक को जोड़ दें तो २६१ = ९ आता है ।

न् वदक वाद ई अनुलोम विदरिंद । सविरस वेनु तितु स क ल ॥ सवेसलु भागदहार लब्धदि वंद । भवभयहरणद अंक ॥१८॥
ग णितदे हन्नेरळ् सोन्नेगळागलु । गण मूरोवत्तेरडो ल ॥ मणि ऐदेळु नाल्कोवत्त् नाल्कु । गण ओदो वत्ता रना ल्कु ॥१९॥

४६६१४६८७५१२६३००००००००००००० यह मात्रा हरेक के द्वारा आया हुआ लब्धांक है इन कुल मिलाने से ६४ आता है। ६४ को जोड दे तो १० होता है।

ना रित्र दर्शावतिवनेल्ल कूडिद । दारियोळ् वदिहुद शू ।। सारतरात्मतत्वव नोडलेरळ् भाग । दारँके अरवत्तोदु ।।२०।।
रु दळिरतेय क्रम प्रतिलोम वदा । अदरक अरवत्तनाल् त नृदु ।। अदरर्द्ध माडलु बह भगाक्षर । वदर क्रम वदिंतिहुदु ।।२१।।
रा मना हन्नोदु सोन्नेय निट्टु मुन्दण । रमदोळ ऐदेरिब ल ।। विमलआर्नात्कार ऐदेळुमूरेळु । सभनाल्केळँदुनाल्मूर्येरडु ।।२२।।
न् वदक वनेंरड परस्पर दिंद । तविसुव कालक्र म दे ।। अवतरिसिद तप्प तप्पेनलागदु । सवियंक दुपदेश मुंदे ।।२३।।
दा विन मंगल प्राभृत दोळु वह । ताव गमनिस लाग ।। तावे रा क्षणवागि इप्पत्तो बत्तक । धावल्य वदनु काणु विरि ।।२४।।
शो वदंकदे वद तप्पित वेनिल्ल । ओवियावुत्तार द क ।। कोविदओदंक उत्पत्ति याय्तिल्लि । नववैदर्रि भागवाय्तु ।।२५।।
म् दनन वाणवु वक्रवदहुदु । सदरदि हूविन गध ।। मृदु रा वदे तो अंतु हृदय होक्कु । हृदनागि भोग योग वनु ।।२६।।
दि न दिन दत्याशे एरलुबिडविहृ । अनुपमयोगाग्नि यदनुम् नु ।। ने कोने होगिसि कर्मवकेडिसलु । अनुपम पंचाग्नि इदेको ।।२७।।

घनरत्न ऐदुइद्रियवु ।।२८।। मनुजत्वदनुभवलाभ ।।२९।। घनकर्मदास्रवविल्ल ।।३०।। जिनमुद्रे हृदय होक्किहुदु ।।३१।।
अनुभवगम्यद दृष्टि ।।३२।। जिननाथनोप्पिदभक्ति ।।३३।। जिन मुनिगळ ज्ञानयोग ।।३४।। विनुतांतरंग विज्ञान ।।३५।।
तनयरिगेल्ल सौभाग्य ।।३६।। जिननाथ अडिइट्टमार्ग ।।३७।। घन कर्म वळिव भूवलय ।।३८।। जिनवर्धमानसाम्राज्य ।।३९।।
मनसिहृदग्रद कमल ।।४०।। " " " " "

नु रद सहननद आदि यादी काव्य । धरेय भव्यर भावदलि ।। नु रुणेय प्रतिम समुद्घातवनुतोर्प । गुरुगळेवर दिव्य चरण ।।४१।।
न नदोळु तपगदात्म योगदे तम्म । तनुवनु कृशगैव् आ ग ।। जिननाथनंदद सर्व साधुगळक । दनुभव साधुसमाधि ।।४२।।

वनु संख्यातदोळरिव ।।४३।। वनुअसख्यातदोळरिव ।।४४।। घनअनंताकदोळरिव ।।४५।।
जिननाथनरिकेगेगम्य ।।४६।। तनुमनवचनातीत ।।४७।। घनदुष्कर्मदावाग्नि ।।४८।।
वनुपडेदवनोव्वयोगि ।।४९।। विनुत वैभव शालि अज्ज ।।५।। घन शिव सौख्यव पडेव ।।५१।।
दिन दिन उन्नति गडर्व ।।५२।। वनगृहव् वेल्लवनरिव ।।५३।। घनशुद्धोप योगियव ।।५४।।
वनु सार्द कर्म भूवलय ।।५५।।

ध मनव माडिद कर्मद कगळण्दु । विमलात्म गुणावदे मु रुळि ।। गमकद कलेयन्तेहेऽच्चत बरुवाग । तमगलिल उपदश शक्ति ।।५६।।
र सयुतवागिहेऽच्चुत बरला आत्म होस आदियाद ज्ञानवद ।। नि शियोळु पडेदु द हगलुब नु दे ल्लरगे । वशागोळिसुवव पाठकनु ।।५७।।

वशगोळिसुवनुपाध्याय ।।५८।। रस दूट उणि सुवनार्य (चार्य) ।।५९।। यशदे भूवलयवनलेव ।।६०।।
यशदोळिन्द्रियव जयिसिरुव ।।६१।। होसब नागेसेव भूवलय ।।६२।। हुसियनोडिसिद महात्मा ।।६३।।
असम मानवरग्रगण्य ।।६४।। हो सेदु पेळुव द्वादशाग ।।६५।। असदृश समतेय पेळ्व ।।६६।।

होसमार्द वार्जवरूप ॥६७॥ रिगि सगुदाय वोळव ॥६८॥ होतराउ पर्व शवार्य ॥६९॥
यशदोपवर्ज्जिय वहि ॥७०॥ होग बुद्धि ऋद्धिय गिरि ॥७१॥ उगळ्गेनार्य वशजनु ॥७२॥
वृषभनायन काल वरिव ॥७३॥ हमर गेन्नव ययापरनु ॥७४॥

ग गन मार्ग दे पोपरवदे औवत्र । वर्गाणतराचारसार िा ॥ मिगिनागिणानिसुतररने भव्यर । अगेय पालिगुवनाचार्य ॥७५॥
न वव कद ते मम्पूर्ण पदार्थव । नमिचार येम्नवन - हि ॥ अवरदरगितारू आचार मारव । मनियवयवव नोरिगुव ॥७६॥
ऽ म साम्राज्यद मार्ग भौमरवयु । निमल मद्धर्मव गा ॥ धर्म अभय यवरक रद्दानार । धर्म य पानि मुगार्य ॥७७॥
ा रिएियोळ दश धमद मारत । नारिउगुरुपुआनार्य ॥ मारत िा तरनागनु तोलव । मार्गरात्म आचार्य ॥७८॥

सारतरात्म भूवनय ॥७९॥ गौग्न नरगा भूवनय ॥८०॥ नेग्र मार्ग भूवनय ॥८१॥
वारि योळ् वन्द भूवलय ॥८२॥ शूरर काम्य भूवलय ॥८३॥ हाग्व रत्न भूवलय ॥८४॥
सारात्म किरण भूवलय ॥८५॥ नेर निजान्त भूवनय ॥८६॥ क्रूर कर्मारि भूवनय ॥८७॥
शूरर ज्ञान भूवलय ॥८८॥ नागात्म ज्योति भूवलय ॥८९॥ नेररयात्म भूवनय ॥९०॥

सारमाणिक्यभूवनत ॥ ९१ ॥ गौरजिनेन्द्रभूवलय ॥ ९२ ॥ धीरनवचन भूवलय ॥९३॥
वीर महादेव वलय ॥ ९४ ॥ भूरि वैभवयुतयनय ॥ ९५ ॥ एरिवनन्त आचार ॥९६॥
सारवसारिदाचार्य ॥ ९७ ॥ भूरि वैभवर विरागी ॥ ९८ ॥ गेरिसुरेनुभक्तियनु, ॥९९॥

ऽ मसिद्धियागेदुर्लोहसुवर्णद यशयागुवन्तात्म निर त ॥ यशवळिगुववेहर्जितनागुत । यशवागेमोक्षसुगिद्ध, ॥१००॥
ई शनागुवनु लोकाग्रवेनेलमुव । राशियोळशुद्ध तानागी ॥ लेना तो स्यवद मारेभव्यर । राशिगाशिये कादिहुदु ॥१०१॥
प रतनागिरे आत्मनुममारद । व्यवेयनेल्नयमृगमेवि ॥ पा ॥ क्षितिये श्री सिद्धत्व वनुभववारिय । हितवदनन्तवु काल ॥१०२॥
मा न मायवुलोभ क्रोध रुपायद । ताणवेन्नलवईगळिवु ॥ ताण गा गावनेन्नकागुनगरिगुन । आनन्दविहरेल्न मिद्धर् ॥१०३॥
ण व कारमन्त्रदमार सर्वम्वरु । अवरिवरेन्नवेसर ॥ ॥ अवयववेआत्मन रुपवागिह । अवरुसिद्धरु गुन्वरियनु, ॥१०४॥

नवदक मपूर्णसिद्धर् ॥१०५॥ अवरवामिगुच भूवलय ॥१०६ नवकारनन्त्रवसिद्धर् ॥१०७॥
अवरनन्ताकवेवद्धर् ॥१०८॥ अवरनन्तवज्ञानधररु ॥१०९॥ नवकोटिमुनिगळगुरुगळ् ॥११०॥
अवरगनिर्मलशुद्धर् ॥१११॥ अनयवनळिवदययवरु ॥११२॥ नवसद्दर्शनमयरु ॥११३॥
अवरु "स" अक्षरआदि ॥११४॥ अवरुतमिन्दजीविपरु ॥११५॥ नविसीरयसार सर्वम्वर् ॥११६॥
अवतारवळिदुवाळ्ववरु ॥११७॥ अवरनन्तवीर्ययुतरु ॥११८॥ अवरनन्तवसुखमयरु ॥११९॥
सवियअगुरुलघुगुणरु ॥१२०॥ नवसूक्ष्मत्वताळ्दवरु ॥१२१॥ कवियवगाहदोळिहरु ॥१२२॥
अवरव्याबाधधररु ॥१२३॥ नवगेवेकवरमपदवु ॥१२४॥ अवररहन्तत्त्वतिळिदर् ॥१२५॥

सुविशालजगवनोळ्पवरु ।।१२६।। अवरपादकेनमिसुवेनु ।।१२७।। भववळिदवरासिद्धर्

ह् वर्णयोळ् कवक्षरवनुस्थापिसि । दवयववो येम्ब अव र ।। नवकेवललब्धिगोडेयरेन्देनुवरु । अवररहन्तर् इष्टात्मर्, ।।१२८।।

उ प्पदवेयगघातिकर्मवगेल्दु । स्पष्टदेभववनीगिद स् द् ।। वृष्टियोळ् भूवलय के धर्मव पेळ्द । स्पष्ट द् ओकार वेळ्दवरु ।।१२९।।

न नियोळ् मूरवेळेयलि अनन्तद । गणितदोळडगिसिदवरम् ।। व न ज नाभिय सोकदेनिन्ददेवरम् । जिनदेवरेंदरियुवुदु ।।१३०।।

र् सयुतवाद भूवलय सिद्धान्तके । रसवन्तर्मुहूर्त्तदि तोर् थ । होसेदेन्दुमूरुकालव नोन्देकालदि । होसदोन्दरोळुपेळ् विहर ।।१३१।।

गो मकारओदरोळुगिसिदरवत्नाल् । ककम ओदक्षर् हृ ।। अकवेअक्षर अक्षर अंकवेम् । वमृकियपेळ्दवरवरु ।।१३२।।

म नमयनुपटळ् दोळु वाळ्व नररिगे । घनकर्मवळिदवस र व ।। अनुभववनु पेळ्द अरहन्तरडिगळ नेनेवल्लि ऐदंकसिद्धि ।।१३३।।

ग ग्गशियेगळु समानदोळिर्प देहद । सकलाकपरमनिगिरु तु स् ।। सकलागमवु सर्वागम् ओदरिस् । प्रकट वादरहन्त देव ।।१३४।।

प चरव्यन्तर भवनामर कल्पद । सचरदेवतेगळवरु नो ।। सचराचरवनेल्लवकेळिदवरागि । अचलभक्तिय प्रकटिसिदर् ।।१३५।।

र् सनेन्द्रियदासेयळिद भव्यात्मरु । वशगेय् सकलाक डु दया ।। वशवादुदेमगेन्दु नमिसुतपोदरु । असदृश भूवलयक्के ।।१३६।।

ऊ नविल्लद ज्ञान ओदवुहृट्टि । श्री निकेतनगदुप रि ।। आनतवागिह मुक्कोडे पूमळे । भानुमडलद भूवलय ।।१३७।।

ग शगोउ "अ" आदिमगलप्रामृत । रसद अक्षरवदु सा नु ।। यशदारुसाविर दैनूररवत्तोदु । रसदेरडनेय अन्तरदोळ् ।।१३८।।

यशदेंदेन्टेळेळ् अन्तरद ।।१४०।। दिशेयधिकारदोळ् वर्ष ।।१४१।। रसदंकगणनेयक्षरद ।।१३९।।

यशवेकूडिदरेवाहङ्क ।।१४३।। रसदेन्द्मूरुनाल्केरडु ओदु ।।१४७।। वशदसाविर हन्नेरडरेय ।।१४२।।

दिशेयोळुवरुवचारित्र्य ।।१४६।। यशववन्तागे "आ" इदरोळ् ।।१४७।। रसदन्तराधिकारदोळु ।।१४५।।

रसदक्षरदलेक्कसिद्धि ।।२४९।। कुसुमगळन्नुकूडिदरे ।।२५०।। विषहरदनुभवविरुव ।।१४८।।

यशदंककाव्यदसिद्धि ।।१५२।। रिषिवर्द्धमानरवाक्य ।।१५३।। रसदन्तरेन्ट्नाल्केन्टू ऐळु ।।१५१।।

गो मृदकवेप्पत्तेळु येम्भत्तेदु । अमृमलुअन्तर न् दरलि ।। उम्मिदेन्ट्नाल्केन्टेळु वंदक । सम्मतव् "आ" वय भूवलय ।।१५४।। ।।१५५।।

सपूर्ण

आ दूसरे अध्याय मे ६५६१ अक्षर हैं+ अन्तर मे ७८४८ = है। कुल मिलकर १४४०९ अक्षर होते हैं

अथवा

प्रथम—अध्याय १४३४६+दूसरे आ अध्याय १४४०९ = २८७५५ हुये ।

प्रथम अक्षर ऊपर से नीचे तक पढते जायतो प्राकृत भाषा सक्रमवर्ती

आदिमसंहणणजुदोसमचउ रस्संगचारु संठाणोम् दिव्ववरगन्धधारी पमाणठिदरोमणखरुवो ।।२।।

२७ वा अक्षर से लेकर यदि ऊपर से नीचे पढते जायं तो सस्कृत भाषा सक्रमवर्ती

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालित सकल भूतल मल कलका । मुनिभिरुपासिततीर्था । सरस्वती हरतुनो दुरितान् ।।२।।

द्वितीय अध्याय

अनादि कालीन ज्ञान साम्राज्य के वैभव युक्त इतिहास को लिए हुये तथा नवमवन्ध मे कहे जाने वाले अत्यन्त सुन्दर अर्थागम को प्रकट करने वाला यह अखिल शब्दागम है । १

आकाश मे अधर गमन करने वाले तथा देवो द्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर समवशरण नामक सभा मे विराजमान होकर उपदेश देने वाले भगवान् के मुख कमल से निकला हुआ दिव्य ध्वनि रूप यह भूवलय शास्त्र है । २

सम्पूर्ण मनुष्यो मे अतिशय सम्पन्न और चक्रवर्ती के अपूर्व वैभव से युक्त ऐसे श्री भरत महाराज के अनुज तथा जिन रूप धारण करने वाले ऐसे आदि मन्मथ श्री बाहुवलि जी द्वारा निरूपित यह भूवलय है।

विवेचन — मति, श्रुति, अवधि, मन पर्यय और केवल ये पाँच तथा कुश्रुत, कुमति और कुअवधि ये तीन मिलकर आठ प्रकार के ज्ञान हैं। इनमें जो पहले के पाँच हैं वे सम्यग्ज्ञान के भेद हैं और जो शेप तीन हैं वे मिथ्या ज्ञान कहलाते हैं। इन तीनो को विभंग ज्ञान भी कहते हैं। स्थावर इत्यादि असंज्ञी जीवों को कुमति, कुश्रुत होता है और सेनी पचेन्द्रिय पर्याप्त को विभंग ज्ञान भी हो सकता है। यह ज्ञान सासादन गुणस्थानवर्ती जीवो तक होता है। सम्यग् मिथ्यात्व गुणस्थान में सद्ज्ञान और असद्ज्ञान (अज्ञान) ये दोनो मिश्र ज्ञान होते हैं। मति श्रुत अवधि असयत सम्यग्दृष्टि आदि को होता है। मन पर्ययज्ञान प्रमत्त गुण स्थान को लेकर क्षीण कषाय गुण स्थान तक होता है। तेरहवें गुण स्थान मे केवल ज्ञान होता है और चौदहवें गुण स्थान वाला अयोग केवली होता है इससे ऊपर अशरीरी होकर सिद्ध हो जाता है।

पाँचो ज्ञानो मे जो पहले के चार ज्ञान हैं वे परोक्ष हैं और केवल ज्ञान पूर्णतया आत्माधीन होने के कारण प्रत्यक्ष है। यह ज्ञान आदि और अतिशयवान् भी है। केवल ज्ञान हो जाने के बाद फिर शरीर धारण नहीं करना पडता इसलिये इसे अशरीरी भी कह सकते हैं और पौद्गलिक पर वस्तु के सबध से रहित है, इसलिये यह अरूपी भी कहलाता है। मत, श्रुति, अवधि और मन पर्यय ये चारो ज्ञानपरोक्ष हैं क्योकि ये चारो ज्ञान इद्रियो की अपेक्षा रखते हैं। केवल ज्ञान अतीन्द्रिय है और ससार के सभी पदार्थों को एक साथ जानने वाला है। इसलिये इसको सर्वज्ञ ज्ञान कहते हैं। अनन्त ज्ञान भी इसे कहते हैं। जिसका अन्त नही है वह अनन्त है। केवल ज्ञान का भी हो जाने के वाद अन्त नही होता है।

यह ज्ञान व्यवहार नय से लोकालोक के त्रिकालवर्ती सपूर्ण विषयों को जानता है तथा निश्चयनय से अनाद्यनन्तकाल से आये हुए अपने आत्मस्वरूप को प्रतिक्षण मे जानता है अत इस ज्ञान को शुद्धात्मज्ञान कहते हैं।

अतिशय वैभव से सयुक्त सपूर्ण जीवो को आमोद प्रमोद उत्पन्न करने वाले गगा नदी के पवित्र प्रवाह के समान अखडित होकर बहाने वाले अर्थागम को मैं (दिगवराचार्य कुमुदेन्दु मुनि)ने नवम अंक के बधन मे बाध दिया है। यह पहले कानडी श्लोक के अर्थ का सार है। ऐसा होने पर भी नवम बध-वैभव इन दो शब्दो की व्याख्या विस्तार पूर्वक नही हो सकी। इसी अध्याय का छ से लेकर आने वाले श्लोक मे सक्षेप में नवम बध के अर्थ का विवरण करते हैं। ऐसा कहने पर भी वह पूर्ण नही हो सकता।

बधनानुयोग द्वार का कथन विस्तार के साथ ही होना चाहिये। इसका विस्तार आगे लिखेंगे।

वैभव शब्द का अर्थ ३४ अतिशय है. जिनका विवेचन आगे समयानुसार करेंगे।

श्लोक दूसरा—

ऊपर कहे हुये श्लोक के अनुसार मनुष्य को केवल ज्ञान अर्थात् निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद उसके बल से स्वर्ग से देवेन्द्र आकर उस केवली भगवान् के लिये समवसरण की रचना करते हैं।

देवताओ के द्वारा समवसरण की रचना होने पर भी उसकी माप

तथा ऊँचाई इत्यादि सर्व प्रमाण भूवलय मे दिया गया है। जैन शास्त्र मे कोई भी बात अप्रमाणित नही होती अर्थात् प्रमाणिक होती है। आजकल विमान चढने मे दस, बारह सीढी तक एक ही तरफ लगा देते हैं, परन्तु समवसरण के लिये चारो ओर हर एक मे २१००० सीढियाँ होती हैं। आज के विमानो में चढते समय एक के ऊपर एक पाव रखकर चढना पढता है परन्तु समवसरण मे क्रमश चढने का क्रम न होने के कारण इस तरह चढने की आवश्यकता नही रहती।

पहली सीढी में पाद लेप औषधि के प्रभाव से मनुष्य और तिर्यंच प्राणी समवसरण भूमि मे जाकर भगवान् के सन्मुख पहुंच जाते थे। यद्यपि यह बात आजकल की जनता के लिये हास्यकारक मालूम होती हैं तथापि श्री भगवान् कु दकु दाचार्य तथा श्री पूज्य पाद आचार्यादिक पहले इसी प्रकार की पाद औषधि का लेप करके आकाश मे गमन करते थे, यह बात उस समय की जनता के समक्ष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती थी। पाद औषधि का विधान किस प्रकार करना चाहिये, इस विधि को भूवलय के प्राणावायु पर्व में पूर्ण रीति से स्पष्ट किया गया हैं। विमान इत्यादि तैयार करने की भी विधि इसमे आई हुई है। इस खड में जगली कटहल के फ़लों से पादलेप तैयार होता है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने बतलाया है। आगे इसके विधान का प्रसंग आने पर लिखेंगे। ऐसे देव निर्मित समवसरण मे विराजमान होने पर भी भगवान् ने समवसरण का स्पर्श नही किया। बल्कि वे सिंहासन के ऊपर चार अ गुल अधर विराजमान रहते थे और आकाश में गमन किया करते थे।

सर्वसघ परित्याग कर अपने तप के द्वारा सपूर्ण कमो की निर्जरा करके केवल ज्ञान साम्राज्य को प्राप्त कर, सपूर्ण प्राणी को भिन्न-भिन्न कल्याण का मार्ग न बतलाकर एक अहिंसामयी सच्चे आत्मकल्याणकारी आत्मधर्म को बतानेवाले भगवान श्री वीतराग देव के द्वारा कहे हुए भूवलय को कुमुदेन्दु आचार्य ने सपूर्ण विश्व के प्राणी मात्र के लिये सर्वभाषामयी भाषा अक रूप में कहा है।

श्लोक तीसरा :–

इस मनुष्य भव मे अतिशय देने वाले तीन पद हैं। इससे अन्य कोई भी महान् पद नहीं है। बीते हुए जन्म जन्मान्तरो मे अतिशय पुण्यसचय कर सोलह कारण भावना, बारह भावना तथा दस लक्षण धर्म इत्यादि भावनाओं को भाते हुये आने के कारण राजा महाराजादिक १८ श्रेणियों को चढते हुये आने से परम्परा अभ्युदयसुख किसी १८ श्रेणियो मे कही भी खडित न होकर परम्परागत अभ्युदय सुख मे सबसे पहले भरत चक्रवर्ती तथा मन्मथ बाहुबली महान् उन्नतिशाली पराक्रमी कामदेव थे। मन्मथ का अर्थ-ईश्वर के ध्यान में ज्ञानाग्नि से शरीर को तपाने के कारण इसका नाम मन्मथ पडा, ऐसा कतिपय विद्वानो का कथन है। जिनके शरीर नही है वे दूसरे के मन को कैसे आकर्षित कर सकते है? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय मे इस प्रकार कहा है कि जिस समय मनुष्य को पु वेद प्रगट होता है उस समय स्त्रियो के साथ भोग करने की इच्छा उत्पन्न होती है। स्त्री वेदनीय कर्म का उदय होने से पुरुष की अपेक्षा और नपु सक वेद का उदय होने से एक साथ स्त्री और पुरुष इन दोनो के साथ रमण करने की इच्छा होती है, ऐसे अवसर मे अशरीरी ईश्वर मन्मथ कैसे हो सकता है? अर्थात् नही हो सकता है, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने भूवलय में कहा है। इतना ही नही उस समय सभी मनुष्यो में बाहुबली अत्यन्त सुन्दर देखने मे आये थे। इस प्रकार सपूर्ण भरतखड के मानव प्राणियो को अपने आधीन करके रहने वाले भरत चक्रवर्ती थे। यदि मनुष्य सुख की अपेक्षा देखा जाय तो ये दो ही सुख है एक कामदेव का सुख और दूसरा चक्रवर्ती का सुख। इसके अतिरिक्त ससारी सुख अन्य किसी मे भी नही है। ऐसे अतिशय कारक सुख, रूप लावण्य तथा बल इत्यादि सपूर्ण इद्रियजन्य सुख को तृण के समान जानकर उसे त्याग कर सबसे अतिम तथा सर्वोत्कृष्ट अविनाशी अनाद्यनन्त मोक्ष पद को प्राप्त करने का उद्यम किया, तो क्या यह बात सामान्य है? यह जिनरूप धारण करने की

प्रबल इच्छा मन में प्रगट होने के बाद विषय वासना कभी रह नही सकती। किंतु इस जिन रूप का स्पष्टीकरण ही इस भूवलय मे है ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं। इसलिये इसकी प्राप्ति के लिये गोमटदेव ने सपूर्ण मानव को सुखकारी भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।

--वृषभदेव तीर्थंकर कृत युग के आदि मे सपूर्ण साम्राज्य पद भरत चक्रवर्ती को देकर तपोवन को जाने के लिये जब उद्युक्त हुए थे तब अपने शरीर के सपूर्ण आभरणो को प्रजाजनो को अर्पण कर दिया था। उस समय उनके शरीर पर कुछ भी शेष नही रह गया था। तब ब्रह्मचारिणी युवती ब्राह्मी व सुन्दरी नामक दो देवियो अर्थात् भरत चक्रवर्ती की बहिन ब्राह्मी और बाहुबली की बहिन सुन्दरी देवी दोनो आकर पिताजी से निवेदन करने लगीं कि पिताजी! भाई भरत को तथा बाहुबली को तो आपने बहुत कुछ दिया परन्तु हमे कुछ नही दिया। इसलिये हमे भी कुछ मिलना चाहिए। तब भगवान ने कहा कि बेटियो! तुम्हें क्या चाहिए अर्थात् तुम क्या चाहती हो? इस तरह भगवान की प्रश्न करने की आदत थी। ससार एक ऐसा अनूठा है कि यदि कोई आकर किसी से पूछे तो वह यह नही कह सकता कि तुमको क्या चाहिए? अर्थात् वह कहेगा कि मेरे पास १०-२० या ५० रुपया है, इसे तुम ले जाओ, यही बात कहेगा। परन्तु भगवान की इस तरह भावना नही होती। क्योकि भगवान के अन्दर लोभ कषाय का सर्वथा अभाव था तथा उनकी आत्मा के अन्दर स्वाभाविक दान करने की प्रवृत्ति होने के कारण इनके प्रति शकात्मक उत्तर मिलता है। भगवान के अन्दर यही एक अतिशय है। पिताजी की इस बात से प्रसन्न होकर दोनो पुत्रियाँ लौकिक सम्पत्ति पूछना तो भूल ही गई पर ब्रह्मचारिणी होने के कारण इह परलोक के कल्याण निमित्त तथा भविष्यकाल की सर्वजनता के कल्याणार्थ उन दोनो पुत्रियो ने इस प्रकार प्रार्थना की कि—हे पिताजी! अभी भरत चक्रवर्त्यादि को आपने जो वस्तु दिया है वह सब क्षणिक इद्रिय जन्य तथा अत मे दुखदायी है। इसलिए हमें ऐसी वस्तु नही चाहिये। हमे आप कोई ऐसी वस्तु दें कि जो सदा हमारे साथ रहे।

तब भगवान ने प्रसन्नतापूर्वक दोनो पुत्रियो को अपने पास बुलाकर बाई अक मे ब्राह्मी को और दाहिनी अक मे सुन्दरी देवी को बिठा लिया। तत्पश्चात् ब्राह्मी से कहा कि पुत्री! तुम अपना हाथ दिखाओ। पिता की आज्ञानुसार ब्राह्मी देवी ने अपना दाहिना हाथ निकाला। तब भगवान ने अपने दाहिने हाथ के अगूठे को अदर रखकर मुट्ठी बाधकर ब्राह्मी की हथेली मे बधे हुए अमृतमय अपने अगूठे से लिख दिया। ऐसा लिखने का कारण यह था कि जब भगवान का जन्म हुआ तब बालक अवस्था मे सौधर्म इद्र ने तत्काल जनित भगवान के मृदुल मृणाल अगूठे के मूलभाग मे अमृत भर दिया था। इसलिये उस अमृत को उनके अगूठे के मूलस्थान से लेकर सिंचन करते हुए सर्वभाषामयी भाषाओ को धारण करनेवाला कर्माष्टक अर्थात् आठ प्रकार की कन्नड भाषा के स्वरूप को दिखानेवाली लिपि रूप कई अक्षरो को लिखकर कहा कि बेटी आपके प्रश्न के अनुसार अक्षर की उत्पत्ति हुई है। सो अनन्त काल तक रहेगी। इसलिये यह साद्य अनन्त कहलाता है। पहले भोग-भूमि के समय मे इस लिपि की आवश्यकता नही थी। उसके पहले अनादि काल से अर्थात् सबसे प्रथम कर्म-भूमि के प्रादुर्भाव के समय मे सबसे प्रथम तीर्थंकरो से आज जैसे ही उत्पत्ति होती आई है इस दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारी हथेली पर लिखे हुए अक्षर अनाद्यनन्त भी कहे जायेंगे। इसलिये कर्नाटक भाषा साद्यनत भी है और अनाद्यनत भी। छठवें काल में ये अक्षर काम में नही आने से शात हो जाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो अक्षर आदि और सात भी हैं।

इसका विस्तार आगे चलकर बताया जाएगा।

इस बात को सुनकर ब्राह्मी देवी सन्तुष्ट हो गई क्योकि उसकी हार्दिक इच्छा पहले मे यही थी कि हमें कोई अविनाशी वस्तु मिले। अत उसे प्राप्त होते ही वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। अनेक विद्वानो का यही मत है कि सभी लिपियो की अपेक्षा ब्राह्मी लिपि प्राचीन है।

क्योकि यह लिपि आदि तीर्थंकर श्री ऋषभनाथ भगवान की सुपुत्री ब्राह्मी देवी के नाम से अकित है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि सबसे पहले श्री आदिनाथ भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली में जिस रूप से लिखा था वह आधुनिक कानडी भाषा का मूल स्वरूप था।

उपर्युक्त बात को देखकर पिताजी (भगवान आदिनाथ) की जघा पर बैठी हुई सुन्दरी देवी ने प्रश्न किया कि पिताजी? बहिन ब्राह्मी की हथेली मे जो आपने लिखा वह कितना है? जिस प्रकार किसी विश्वस्त व्यक्ति का सहयोग लेने के लिये यदि प्रश्न किया जाय कि हमें अमुक कार्य करने के लिये रुपये की आवश्यकता है। सो आपके पास मौजूद है या नही? तो उसके इस प्रश्न पर यदि वह कह दे कि मैं आपको पूर्ण सहयोग दूगा तो रुपये पैसे का कोई प्रश्न नही उठता क्योकि पूर्ण रूप से सहयोग देने की प्रतिज्ञा कर लेने के कारण वहां पैसे के प्रमाण की कोई आवश्यकता नही रह जाती पर यदि सदिग्ध हो जाय तो आप कितने पैसे का सहयोग देगे ऐसा प्रश्न करते ही रुपये की सख्या की जरूरत पड जाती है। इसी प्रकार जब सुन्दरी देवी ने यह प्रश्न कर दिया कि पिताजी ब्राह्मी बहिन की हथेली में जो आपने लिखा वह कितना है? तो तत्काल ही उन वर्णों की सख्या की आवश्यकता पड गई।

तब भगवान् ने कहा कि बेटी! तुम अपना हाथ निकालो, ब्राह्मी की हथेली में हमने जो लिखा सो बतलायेंगे।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि सुन्दरी देवी को कौन सा हाथ निकालने में तथा भगवान् आदि-नाथ को किस हाथ से लिखवाने मे सुविधा हुई?

इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार ब्राह्मी देवी के हाथ मे भगवान् ने अपने सीधे हाथ से लिखा था उसी प्रकार सुन्दरी देवी के हाथ में लिखने की सुविधा नही थी। क्योकि ब्राह्मी देवी भगवान् की बायीं जघा पर बैठी हुई थी और सुन्दरी देवी दाहिनी जघा पर। अत ब्राह्मी दवी के हाथ मे भगवान् ने अपने दायें हाथ से आधुनिक लिपि के समान लिखा और सुन्दरी देवी के हाथ मे बायें हाथ से लिखने की आवश्यकता पडी।

इसी कारण बायें से दायी ओर वर्णमाला लिपि तथा दायें से बायी ओर अकमाला लिपि प्रचलित हुई। प्राचीन वैदिक और जैन शास्त्रो मे "अकाना वामतो गति" ऐसा लेख तो उपलब्ध होता था किन्तु उसके मूल कारण का समाधान नही हो रहा था। इस समय इसका समुचित समाधान भूवलय से प्राप्त होकर उसने सभी को चकित कर दिया है। इस समाधान से समस्त विद्वद्वर्ग को सन्तोष हो जाता है।

तत्पश्चात् भगवान् आदिनाथ स्वामी जी ने उपरोक्त नियमानुसार सुन्दरी देवी की दायी हथेली के अगूठे द्वारा १ बिन्दी लिखी और उसके मध्य भाग मे एक आडी रेखा खीच दी। उस रेखा का नाम कुमुदेन्दु आचार्य ने अर्द्धच्छेद शलाका दिया है और छेदन विधि को शलाकार्धच्छेद अर्थात् एक दम बराबर काटने को कहा है। जब बिन्दी को अर्द्ध भाग से काटा गया तब उसके बराबर दो टुकडे हो गये। कानडी भाषा मे ऊपरी भाग को [१] तथा नीचे के भाग को [२] कहते हैं, जोकि थोडे से अन्तर मे आज भी प्रचलित हैं।

ये दो टुकडे नीचे के चित्र मे दिये गये हैं। इसे देखने से आप लोगो को स्वय पता चल जायेगा।

एक टुकडे से दो-दो टुकडे से तीन चार, छ, सात, आठ और नौ और एक बिन्दी और टुकडा मिलाने से पाँच अर्थात् चार को एक टुकडा मिला देने से पांच बन जाता है। इन सब अको को एकत्रित कर मिलाया जाय तो पहले के समान बिन्दी बन जाती है।

इसका स्पष्टीकरण आगे आने वाले २१वें अध्याय मे ग्रन्थकार स्वय विस्तार पूर्वक कहेगे। यदि उपर्युक्त विधि के अनुसार अको की गणना की जाय तो बिंदी के दो टुकडे होने पर भी कानडी भाषा मे ऊपर का टुकडा एक और नीचे का टुकडा दो होने से तीन हो गये अर्थात् १ + २ = ३ हो गये। इन तीनो को तीन से गुणा करने

पर ६ [नौ] हो गये इस नौ के उपर कोई अक ही नही है। अर्थात् एक बिन्दी को एक दफे काटा जाय तो तीन बन गया दूसरी बार गुणा करने से नौ बन गया यही भगवान् जिनेन्द्र देव का व्यवहार औरनिश्चय नय कहलाता है। इस प्रकार यह सपूर्ण भूवलय ग्रन्थ व्यवहार और निश्चयनय से भरा हुआ है। नौ के उपर कोई भी अक नही है। नौ नम्बर में ही चार और छ आ जाता है। उपर के कथनानुसार भगवान् ने ब्राह्मी देवी की हथेली पर जितना अक्षर लिखा था वह सब चार और छ अर्थात् चौंसठ ये सभी नौ में ही समाविष्ट है। इसी चौंसठ अक्षर को गणित पद्धति के अनुसार गिनते जायें तो सपूर्ण द्वादशाग शास्त्र निकल आता है। इसका खुलासा आगे चलकर आवश्यकतानुसार करेंगे।

श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु मुनिराज आज से डेढ हजार वर्ष पहले हुये हैं जो महा मेघावी तथा द्वादशाग के पाठी, सूक्ष्मार्थ के वेदी और केवल ज्ञान स्वरूप नौ अक के सपूर्ण अश को जानने वाले थे। इसलिये छ लाख श्लोक परिमित कानडी सागत्य छन्द में आज कल सामने जो मौजूद हैं वह नौ अको में ही बन्धन करके रक्खा हुआ है। उन्ही नौ अङ्को से सातसौ आठरह भाषा मय निकलता है।

ये किस तरह निकलती है सो आगे चलकर बतायेंगे।

भगवान् ऋषभदेव ने एक बिन्दी को काटकर ६ अक बनाने की विधि बताकर कहा कि सुन्दरी देवी ! तुम अपनी बडी बहिन ब्राह्मी के हाथ मे ६४ वर्ण माला को देखकर यह चिन्ता मत करो कि इनके हाथ में अधिक और हमारे हाथ मे अल्प है। क्योकि ये ६४ वर्ण ६ के अन्तर्गत ही हैं। इस ६ के अंतर्गत ही समस्त द्वादशाग वाणी है। यह बात सुनते ही सुन्दरी देवी तृप्त हो गई।

इस प्रकार पिता-पुत्री के सरस विद्याओ के वाद-विवाद करने मे ससार के समस्त प्राणियो की भलाई करने रूप ज्ञान भण्डार का सक्षिप्त समस्त इतिहास ध्यान से मन लगाकर गोम्मट देव ने सुना।

इस प्रकार मन को मथन करके सुनने के कारण ही गोम्मट देव का नाम मन्मथ [कामदेव] हुआ। पहिले गोम्मट देव को उनके पिता जी ने कामकला और सभी जीवो का हितकारी आयुर्वेद अर्थात् समस्त जीवो का रोग दूर करने वाला अहिंसात्मक वैद्यक शास्त्र सिखलाया था। अब अक्षर और अक दोनो विद्याओ के मालूम हो जाने पर परमानन्दित होते हुये भगवान् से पहले सीखी हुई विद्याओ की चर्चा का स्वरूप प्रकट हुआ। ६४ अक्षर का गुणाकार करने से वे ही वर्ण वारम्बार आते रहते हैं, इसलिए अपुनरुक्त कैसे हुआ ? ६ अक के ऊपर पुन १ अक की उत्पत्ति है और १० की उत्पत्ति होती है। वह १० का अक पुनरुक्ति है। ऐसा सभी अको का हाल है। इसलिए पुनरुक्ति हुआ। जव भगवान् ने ब्राह्मी देवी को ६४ अक्षर और सुन्दरी को ६ अक सिखाया तथा अपुनरुक्त रूप से सारी द्वादशाग वाणी निकलती है और अपुनरुक्त से निकलता है, ऐसा बताया। ६४ के ऊपर पैंसठवा अक्षर तथा ६ के ऊपर १० ये दोनो अक्षर और अक पुनरुक्त ही हैं। इसी प्रकार अगले अक और अक्षर दोनो क्रमश यानी अ आ, ११-१२ इत्यादि पुनरुक्त होते जाते हैं।

भगवान् ने कहा कि ये ६४ अक्षर और ६ अक अपुनरुक्त है, यह कैसे हुआ ? इसके बीर में भगवान् ने उत्तर दिया। ऐसा कहने में भगवान् से जो उत्तर मिला वह अगले श्लोक मे आयेगा।

अब कामकला और आयुर्वेद इन दोनो विषयो की चर्चा चल रही है। किन्तु कामकला का जो विषय है वह यहाँ चलने के लायक नही है। क्योकि पिता और पुत्र, पिता और पुत्रियो, भ्रातृ और भगिनी उसमे भी ब्रह्मचारिणी भगिनी उसके समक्ष कामकला का वर्णन सर्वथा अनुचित है कामकला तो पवित्र प्रेम वाले पति-पत्नी और अपवित्र प्रेम वाले वेश्या और कामुक पुरुषो मे होता है, ऐसी शका उठाने की जरूरत नही है। क्योकि यहाँ रहने वाले दोनो पिता-पुत्र तद्भव मोक्ष भागी हैं। अर्थात् पुनर्जन्म नही लेने वाले हैं और दोनो स्त्रियाँ ब्रह्म-

चारिणी है। ऐसे पवित्रात्माओं से ही यदि काम कला निकले तो वह लोकोपकारिणी हो और आयुर्वेद विद्या शारीरिक स्वास्थ्य दायिनी बने। उस आयुर्वेद और कामुक दोनो का परस्पर मे अभिन्न सबध है। और ये दोनो ही अनादि भगवद्वाणी से निकली हुई है। अर्थात् पवित्र और अपवित्र ये दोनो कलाये भगवद्वाणी मे निकलती हैं, अन्यथा भगवद्वाणी अपूर्ण हो जाती है। कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है कि पवित्रता तथा अपवित्रता पदार्थ मे नही, बल्कि वीतराग अथवा सराग रहने वाले जीवो मे है। इसलिए इसे ४ पवित्रात्माओ की चर्चा करनी चाहिये। उसके लिए एक कथा भी है, सो देखिये।

भगवज्जिन सेनाचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के सहाध्यायी थे। वे सकल जैन समाज मे मान्य दिगम्बर जैन मुनि थे, यह इतिहास देखने से ज्ञात होता है। कि जब जिनसेन पवित्रकुल मे पैदा हुये तब उस घर मे एक वे ही लडके थे। उनकी उम्र ४ वर्ष की थी जिससे कि वे घर मे बालक्रीडा किया करते थे। एक दिन आचार्य कुमुदेन्दु के गुरु श्री वीरसेनाचार्य [धवल और जय धवल ग्र थ के कर्ता] आहार के लिये इसी घर मे आ पहुचे। आप आहार के पश्चात् तेजस्वी बालक को शुभ लक्षणो सहित समझकर उसके माता-पिता से कहने लगे कि इस बच्चे को सघ मे सौप दो। वह होनहार बालक अपने माँ-बाप का इकलौता लाडला था, अत उन लोगो की इच्छा न होने पर भी गुरु वचनमनुल्लघनीयम् अर्थात् गुरु के वचनो का उल्लघन नही करना चाहिए इस नियम से तथा आचार्य वीरसेन की आज्ञा को चक्रवर्ती राजे महा-राजे आदि सभी सहर्ष शिरोधार्य करते थे। अत उनकी आज्ञा अप्रतिहत प्रवाहरूप चलती थी। इसलिये उन्हें सौंपना ही पडा। बालक कर्णच्छेद, उपनयन तथा चूडाकर्म सस्कार से रहित था। यथा जात रूप [दिगम्बर रूप] था। उनका चूडा कर्म ही केशलुचन रूप प्रतिभासित होता था। इसी रूप मे साधक ८ वर्ष के पश्चात् केशलु च करके यथाविधि दिगम्बर दीक्षा धारण की इसलिये वे आगमें दिगम्बर मुनि कहलाते हैं। ऐसे दिगम्बर मुनियो का शुभ समागम प्राप्त होना आजकल परम दुर्लभ है।

जिनसेन आचार्य के नाम से चार आचार्य हुये है। उनमे से हमारे कथानायक जिनसेनाचार्य पहले वाले कुमुदेन्दु आचार्य के सहपाठी थे। इसी प्रकार वीर सेनाचार्य भी आजकल मिलने वाले धवल तथा जय-धवल टीका के कर्ता वीरसेन नही बल्कि इससे पहले के पद्यात्मक धवल टीका के जो कर्ता थे वे ही कुमुदेन्दु आचार्य के गुरु थे। आजकल पद्यात्मक धवल टीका उपलब्ध नही है। इसी प्रकार कल्याण कारक ग्र थ कर्ता उग्रादित्याचार्य भी राष्ट्रकूट अमोघ वर्ष नृप के समय वाला नही है। क्योकि कल्याण कारक मे जितने भी श्लोक हैं वे सभी भूवलय मे आते है, इसलिये उस काल के उग्रादित्याचार्य नही है। उग्रादित्याचार्य श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय मे थे, ऐसा कतिपय विद्वानो का मत है यद्यपि यहाँ इस समय इस विषय की आवश्यकता नही थी, तथापि इसका कुछ थोडा विवेचन यहाँ किया गया है।

पहले गोम्मट देव अर्थात् बाहुवली काम कला तथा आयुर्वेद पढ़ते थे वैसे ही इस काल मे भी आचार्य कुमुदेन्दु के शिष्य शिवकुमार, उनकी पत्नी जक्की लक्कों अब्बे तथा कुमुदेन्दु वीरसेन, और उग्रादि-त्याचार्य आदि मेधावी आचार्य उस समय मौजूद थे। इसलिये धन्य हैं वह काल। ऐसे दिगम्बर मुनि साक्षात् भगवान् का रूप धारण करके सपूर्ण भारत मे जैन धर्म का डका चारो ओर बजाया करते थे। यह महोन्नति काल जैन धर्म के लिये था। कर्णाटक के एक राजा ने सारे भरत खड को जीत कर उसे अपने आधीन कर हिमवान् पर्वत के ऊपर अपने झडे को फहराया था। इतिहास मे कर्नाटक देश का राजा पहले शिवमार ही था।

जिनसेनाचार्य :-

जिनसेन दिगम्बर जैनाचार्य होकर राजस्थान मे भी विहार करके वहा उपदेश दिया करते थे। वीतरागी जिनमुद्राधारी भगवान स्वरूप जिनसेनाचार्य कहलाते थे। ऐसे जिनसेनाचार्य अपने एक काव्य में

अत्यन्त सुन्दर स्त्रियो के प्रत्येक अंगोपागादिक के मर्मांग का सुन्दर रूप से वर्णन करके शृ गाररस का अत्युत्तम विवेचन किया था। उस काल के कई विद्वान् वडे सुन्दर ढग से स्त्रियो का वर्णन करने वाले परस्पर में कहने लगे कि ये मुनि काम विकारी अवश्य होगे। ऐसी जनता के मन में शकास्पद चर्चा उत्पन्न हुई और यह वात सर्वत्र फैल गई। यहीं तक नही वल्कि यह वात धीरे २ जिनसेन आचार्य के कानो मे भी जा पहुंची। तव जिनसेन आचार्य आश्चर्य चकित होकर कहने लगे कि केवल मेरे एक ही व्यक्ति पर यदि वह दोष आ जाता तो कोई दोष नही था। परन्तु सपूर्ण दिगम्वर मुद्रा पर यह दोप लगाना है, यह ठीक नही है। क्योंकि यह धर्म को कलकित करने वाला है। इस तरह जिनसेन आचार्य मन में सोचकर राजस्थान में चले आये और उस राजा को आज्ञा दी कि कल एक सभा बुला कर सभी युवक और युवतियो को लाकर-विठा देना और उनके नीचे छोटी २ चटाई विछा देना। इस प्रकार आज्ञा पाते ही राजा ने तुरन्त ही सभी तैयार करवा दिया। तव आचार्य जिनसेन ने खडे होकर कहा कि हम धर्म अर्थ तथा काम इन तीनो पुरुपार्थों पर व्याख्यान देंगे। इस तरह पहले अपने व्याख्यान की भूमिका समझा दी। तत्पश्चात् धर्म और अर्थ को गौण करके काम पुरुपार्थ का विवेचन करेंगे। ऐसा कहकर काम पुरुपार्थ के शृ गार रस का वर्णन इस तरह किया कि उस सभा में वैठे हुए सभी युवक और युवतिया अपने आप को भूल कर मु ह खोलकर सुनने मे दत्तचित्त हो गये और कामांध होकर परवशता के कारण स्वय हो चटाई पर वीर्यपात कर चुके।

इस तरह जिनसेन आचार्य का उपदेश समाप्त होते ही वैठे हुए युवक और युवतियो के उठने पर चटाई पर गिरे हुए युवको के वीर्य तथा स्त्रियो के रज को देखकर राजा और सव प्रजा परिवार सहित विस्मित होकर कहा कि देखो जिनसेन आचार्य के इन्द्रियो पर विकार है या नही ? किन्तु जिनसेन आचार्य के लिंग में किसी प्रकार का भी विकार नही दीख पडा। तव राजा ने उन्हे सच्चा महात्मा कह कर आचार्य की प्रशसा करते हुए कहा कि आप ही एक सच्चे महात्मा हैं। राजा व सारे प्रजा परिवारने इस प्रकार अनेक स्तुति की। निकृष्ट कराल पचम काल में भी ऐसे महात्मा ने इस भरत खण्ड में जन्म लिया था तव वृषभ तीर्थंकर के समय में गोम्मट देव अर्थात् वाहुवलि आदि वज्र वृषभ नाराच सहनन वाले काम कला के विषय की चर्चा को करते हुए भी इस विपय में अरुचि रखने वाले को क्या काम विकार कुछ कर सकता है ? अर्थात् नही। इस चर्चा के समय में उनके पिता भगवान वृपभदेव और उनकी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी दोनो ब्रह्मचारिणी चारो जन मिलकर काम कला की चर्चा करते से इस भूवलय मे काम कला के वारे में जो विवेचन आने वाला है वह अत्यन्त सुन्दर और गृहस्थो के लिए अनुकरणीय है।

गृहस्थो की भोगादि क्रियाओ मे वीर्य वृद्धि के लिए स्खलन होने से शरीर दुर्वल होता है। वे पुन तत्कालीन वीर्य की वृद्धि के लिए आयुर्वेद तथा औपधादि सेवन मे सुखी होगे। अपने समान अर्थात् वाहुवलि के समान शरीर वना लेने की ही आशा गोम्मटदेव की थी।

श्री भूवलय मे आने वाली काम कला और आयुर्वेद ये दोनो अनादि काल से भगवान की वाणी के द्वारा चले आये हैं और अनन्त काल तक चलते रहेगे। इसलिए ये तीनो काल मे अहिंसात्मक ही रहेंगे। क्योंकि जिनेन्द्र देव ने सभी जीवो पर समान दयालु होने के कारण एक चीटी से लेकर सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर अर्थात् मनुष्य पर जिस जिस समय में रोगादिक वाधा हो जाती है उस समय उन सव रोगो को नाश करने वाला पुष्पायुर्वेद को वतलाया है। उसके श्री भूवलय के चौथे खण्ड में एक लाख कानडी श्लोक हैं। इन्ही श्लोको को मशोवक महोदय ने उसमें से निकाल कर अपने पास रक्खा है। इस श्लोक को मशोवक महोदय ने सरकार को अर्पण कर दिया है। भारत की सरकार ने इस ग्रन्थ को अनुवाद करने के लिए सर्वार्थसिद्धि सघ, विश्वेश्वरपुर सकल वगलौर को सौंप दिया है। यह ग्रन्थ अव जल्दी ही क्रम से उद्घृत होकर जनता के हाथ में आयेगा। अव उस काम कला और आयुर्वेद के साथ शव्द शास्त्र भगवद्गीता (पाच भापाओ में) और भगवान वृपभदेव के द्वारा कही हुई पुरु गीता, श्री नेमिनाथ भगवान के द्वारा अपने भाई श्री कृष्ण को कही हुई नेमि गीता, द्वारका के कृष्ण के कुरुक्षेत्र मे कही हुई भगवद्गीता, और भगवान महावीर के द्वारा गौतम गणधर को कही हुई, गौतम गणधर के द्वारा श्रेणिक राजा को कही हुई और श्रेणिक राजा के द्वारा अपनी रानी चेलना देवी को कही हुई भगवान महावीर गीता को कहा है। जक्की लक्की अव्वे और उसका पति राजा सईगोट्टा शिवमार प्रथम अमोघवर्ष इन दोनो दम्पतियो को उपदेश की हुई कुमुदेन्दु गीता, और उसी अक्षर से दश तक की निकलने वाले ऋग्वेद इत्यादि हजारो ग्रन्थ हुए हैं। परन्तु कोई उन्हें अभी तक देख भी नही पाया है।

(मंगल प्राभृत का दूसरा अध्याय, पद्य एक से बाईस तक)

१—४०२४७६६८०८३१६१०४३८३५७१५३२६२१०६४२४६६१६५७६५८५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००००००
२—८०४६५६६६१६६३२२०८७६७१४३०६५२४२१२८४६६८३३१५३१७०४०८२३४६७३७११५६४८
३—१२०७४३१६४२४६४८३१३१५०७१४५६७८६३१६२७४६७४६७५५६१२३५२४६०५६७३४७२
४—१६०६६१६६२३३२६४४१७५३४२८६१३०४८४२५६६६६६६६३०६३४०८१६४६६६४७४२३१२६६
५- २०१२३६६६०४१५८०५२१६१७८५७६६३१०५३२१२४६५८२८८२६२६०२०५८७४३४२७८६१२०
६—२४१४८७६८८४६८६६६२६३०१४२६१६५७२६३८५४६६४६६४५६५११२२४७०४६२११३४६६४४
७—२८१७३५६८६५८२१२७३०६८५००८७२८३४७४४६७४६४१६०३६०६६४२८८२२४०७६६०४७६८
८—३२१६८३६८४६६५२८८३५०६८५७२२६०६६८५१३६६६३३२६१२६८१६३२६३६८६४८४६२५६२
६—३६२२३१६८२७४८४४६३६४५२१४३७६३५८६५७८२४६२४६१८६२६६८३७०५७३८१७०२०४१६

अर्थ—प्रथम अध्याय में 'हक' पाहुड का विषय आया है। पहले अध्याय के पांचवें श्लोक में भी हक पाहुड का विषय आया है। भूवलय अक्षर भग कर गणित के नियमानुसार यदि कर लिया तो "ह्" का अर्थ ६० और "क" का अर्थ २८ इन दोनो के परस्पर में मिलाने से ८८ होता है। ६० में जो बिंदो थी उस बिंदी का लोप हो गया अत दह नही दीखती। जो ८८ अक उत्पन्न हुआ है उसको यदि आडी रीति से जोड दिया जाय तो ८+८=१६ होता है। १+६=७ हुआ इस गणना के अनुसार भगवान महावीर ने सात भग के नियमो के अनुसार अनादि कालीन सपूर्ण द्वादशाग को इस गुणाकार की विधि से निकाल कर भव्य जोवो को उपदेश दिया था।

श्री भगवान् पार्श्वनाथ तक आये हुए समस्त द्वादशागो का विवेचन भगवान् पार्श्वनाथ ने टक भग में लिया था। १-१-१-३६ + वह टक भग भी अनादि द्वादशाग में ही मिल गया है और आगे भी मिलता ही जाएगा। भगवान् महावीर ने श्री पार्श्वनाथ भगवान के टक भग से लेकर हक भग से उपदेश किया। केवल ज्ञान की ऐसी महिमा है कि अ:ने केवल ज्ञान से सम्पूर्ण वस्तुओ को एक साथ जानने की शक्ति केवलो मे होती है, अत जैसे है वैसा ही यथार्थ पदार्थ द्वादशाग वाणो मे कहा गया है।

अब ५४ अक्षर को घुमाने से इसके अन्दर वह महत्व निकलता है। इस विषय को ७ वें श्लोक में स्वय कुमुदेन्दु आचार्य कहेंगे ॥६॥

ऊपर कहे हुए सपूर्ण नव पदों का अर्थात्—

१ सिरिसिद्ध, २ अरहन्त, ३ आचार्य, ४ पाठक ५ वर सर्व साधु ६ सद्धर्म, ७ परमागम, ८ चैत्यालय, ९ और बिम्ब ओवत्तु ॥

इन नौ पदो मे सात अक से भाग देने से बिंदियां आती हैं। इस अंक का यही एक महत्व है। आज कल प्रचलन में आने वाले पाश्चात्य गणित शास्त्र में नौ अर्थात् विषमाक को सम अंको से भाग देने पर बिंदी नही आती उदाहरणार्थ नौ अक को दो अक से भाग देने पर ४ (चार) दफे नौ नौं आकर शेष नौ बच जाता है। पर इस तरह बचना नही चाहिए। यह पाश्चात्य गणित शास्त्र की अपूर्णता समझना चाहिए। यह भूवलय भगवान महावीर की वाणी होने के कारण और सपूर्ण अंश को जानने वाला होने के कारण ऊपर कहे हुए नौ अक दो से विभक्त होकर बिंदी आ जाना और ७-६-५-४ इत्यादि पूर्ण अको से विभक्त होकर शून्य शेष रहने वाली विधि को बतलाने वाले को सर्वज्ञ कहते हैं। ऐसे नौ अंक किसी अंक से विभक्त नही हुआ या

+ १।१।३६ ऐसा कहने से प्रथम खड मंगल प्राभृत समझना चाहिए। दूसरा जो यह है कि इसे निशान श्लोक सख्या समझना चाहिए। आगे इसी तरह क्रम समझना चाहिए।

शेष रह जाय तो वह सर्वज्ञ वाणी कैसे होगी ? इस जटिल प्रश्न का, इस मुख्य प्रश्न का अगर हल हो जाता है तो जैन धर्म सार्व धर्म हो सकता है। परन्तु जैन धर्म, सार्व धर्म होते हुए भी वह ताले में या विस्तर मे बद होकर गुप्त, रूप मे ही रह गया। उसका दर्शन अन्य लोग या जैन विद्वानो की आखो के सामने आ नही पाया। यह दोप केवल जैन विद्वानो पर ही नही है। विज्ञानादि साधनादि वस्तुओ के सग्रहालय करोडो रुपये व्यय करके अपने हाथ मे रहने वाले पाश्चात्य विद्वानो के हाथ से भी नही हुआ परन्तु श्री भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन परम्परा जैन विद्वानो के द्वारा चली आती तो जैन धर्म का भी उद्धार होता जाता और सारे संसार का भी उद्धार हो जाता।

इस श्लोक के द्वारा यह निष्कर्ष निकला कि नौ अंक सात से विभक्त होकर शून्य आ जाता है। ये कैसे ? जैसे आचार्य कुमुदेन्दु स्वयमेव प्रश्न उठाकर उसका समाधान करते हैं कि यह शका परमानन्द वाली है, ऐसा वताते हैं। इस उत्तर का समाधान करते हुए आचार्य ने ऊपर दी हुई गणित विधि को वतलाया ॥७॥

नौ अक को अपने नीचे रहने वाले ८ आठ ७ सात ६ छ ५ पाच चार ३ तीन २ दो इन सख्याओ मे विभाग होने की विधि को आचार्य ने करण सूत्र में ऐसे कहा है और एक सख्या से सव सख्या का विभाग होता ही है।

नौ और चार मिल कर ००००००००००००० ये तेरह विदी अन्त मे रखना चाहिए और पहले विदी से वाये भाग से २, ३, ४, ६ यहा तक आठ श्लोको का अर्थ पूर्ण हुआ।

गौतम गणधर से जव किसी जिज्ञासुने प्रश्न किया कि भगवान के करण सूत्र की विधि क्या है ? ऐसा प्रश्न करने से गौतम गणधर ने उत्तर मे कहा कि करण सूत्र अनेक हैं उनमें से एक यह करण सूत्र है। इस सूत्र से जो अक निकले हुए हैं उन सभी अक्षरो को द्वादशाग वाणी ही समझना चाहिए। कुल अक चौरासी स्थान में ही बैठा है सवका जोड लगाने से तीन सौ उनंत्तर (३६९) अक होते हैं। अ को को पुन जोडने से १८, अठारह को पुन जोडने से ९ होते हैं जैसे ३+६+९=१८ अव अठारह आ गये, इस १८ को १-८-९ इतने बडे अंश अर्थात् चौरासी स्थान पर वैठे हुये सव के सव महान् अंक नौ के अन्दर गर्भित हो गये हैं यह कितने आश्चर्य की वात है ?

यह वात आश्चर्य की नही है वल्कि इसें भगवान के केवल ज्ञान की महिमा समझना चाहिए।

५४ अक को सयोग भग से प्रतिलोम के क्रम से ५४ वार गुणा करते आने से यह अक निकल आता है। इसकी विधि इस तरह है कि—

६४×६३=४०३२ इसमे दुनिया की सम्पूर्ण भापाओ के दो अक्षर का सम्पूर्ण शब्द निकल आते हैं। एक वार आया हुआ शब्द पुनरुक्त नहीं आता है।

उदाहरणार्थ—

१ को अ और ६४ को फ ये दोनो मिलकर (अ फ) होता है यह भापा इगलिश है। सभी लोग ऐसा कहते है कि इगलिश भाषा ईसा मसीह के समय से प्रचलित हुई है इसके पहले ग्रीक भापा थी इङ्गलिश नही थी। परन्तु भूवलय ग्रन्थ से सावित होता है कि इङ्गलिश भापा पहले भी मौजूद थी। भगवान महावीर की वाणी के अन्दर भी यह भाषा मौजूद थी। पार्श्वनाथ भगवान की वाणी मे भी मौजूद थी। इसी तरह केवल भगवान वृषभदेव तक ही नहीं परन्तु उससे भी पहिले से अनादि काल से यह भाषा मौजूद थी अगर यह वात भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ से उनको मालूम हो जाय कि यह इङ्गलिश भापा अनादि काल से मौजूद है तो लोगो को कितना आनन्द होगा। इसी तरह कानडी, गुजराती, तेलगु, तामिल इत्यादि नयी उत्पन्न हुई हैं ऐसा कहने वालो को भी इस विपय को जानना चाहिए।

अव देखिये इसी गणित पद्धति के अनुसार कही इङ्गलिश भाषा का शब्द निकाल कर देते हैं वह इस प्रकार है कि—

(of)	4032				
	2	फिराने से	fo	64 and 1	
	4030				
(off) 2nd 64	2	,,	foo	,,	,, 2
	4028				
(if) 4 ,,64	2	,,	fi	,,	,, 4
	4026				

ऊपर कहे हुए अनुसार गुणन फल से ४०३२ निकला उस में १ और ६४ मिला दिया तो इगलिश का (fo) आया अब इसमें से २ दो घटाइये तो ४०३० बाकी बचा और बचा हुआ ४०३० ये उलट कर ६४ और १ मिला दिया जाय तो (fo इस fo को first, for furlang.

इस तरह इङ्गलिश वाक्य रचना करने की मिसाल मिल जाती है। अब बचा हुआ ४०३० से और दो घटाने से ४०२८ वास होता है। इसमें से दो दीर्घ 'आ' और ६४ को मिलाने से O ff ∷ इन चार विन्दुओ का खुलासा ऊपर के मुखपत्र चार्ट पर देखो। अब इसको उलटा करने से '∷' 'आ' ffo होता है इससे ∷ फादर father fast इस तरह वाक्य रचना करने के लिए शब्द निकल आते हैं। अब बचा हुआ ४०२८ में और दो निकाल देनें से बचा हुआ २६ छब्बीस बच गया है। इसी तरह इसको भी इसी रीति से करते जायें तो अन्त में चार बिंदी आ जाते हैं। इसलिए इस भूवलय का गणित प्रामाणिक है ऐसा सिद्ध होता है। आगे इसी तरह करते जायें तो तीन अक्षर का शब्द निकल आता है। कैसे निकल आता है? उस विधि को वतलाते हैं —

४०३२ को × ६२ से गुणा किया जाय।

८०६४
२४१९२

२४९९८४ भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि निकल आयी। तीन लोक और तीन काल में रहने वाले तथा होने वाले समस्त भाषाओ की और समस्त विषयो की तीन अक्षर के शब्द निकल आते हैं। इन तीन अक्षरो की वाणी ही द्वादशाग वाणी है ऐसे कहते हैं। भगवान की तीन अक्षरो की वाणी को छोडकर अन्य प्रचलित किसी वेद मे भी देखने में नही आता है, इसलिए यह भूवलय ग्रथ प्रमाण है। उसका क्रम इस तरह से है कि— —

'कमल, ऐसा एक शब्द लीजिये—

कमल २८ ५२,५५,
मलक ५२,५५.२८,
लकम ५५, २८,५२,
कलम २८,५५,५२,
मकल ५२,२८,५५,
लमक ५५, ५२,२८

अब अनेकान्त दृष्टि तथा आनुपूर्वी क्रम से देखा जाय तो २८ को १ वावन को २, और ५५ को तीन माना जाय तो

१२३
२३१
३१२
१३२
२१३

३२१ इस रीति से अन्त तक करते जायें तो छ ०००००० बिंदी आयेंगी इसलिए भगवान की दिव्य ध्वनि को भूवलय गणित के प्रमाण मे अनेकात से यह सत्य है एकात से नही हैं। भगवान की दिव्य ध्वनि के द्वारा बारह अ ग शास्त्र का अभाव हो गया इस समय वह शास्त्र मौजूद नहीं है। ऐसे कहने वाले दिगम्बर जैन विद्वानो की यह असमझ है। श्वेताम्बर आदि समस्त जैन जैनेतर सभी विद्वान् अपने पास बचा हुआ थोड़ा बहुत अकात्मक श्लोक को ही भगवद् वाणी मानते हैं। तो भी भूवलय ग्रथ में कहा हुआ गणित पद्धति के अनुसार एक भी श्लोक नहीं निकलता है। इसलिए वे सब जो श्लोक से परिमित सख्या वाले हैं वे एक भाषात्मक कहलाते हैं। इसलिए वे परिमित श्लोक भगवान की दिव्य ध्वनि नही कहलाते हैं।

दिगम्बर विद्वान लोग कहते हैं कि 'हमारे पास इस समय अंग ज्ञान की व्युच्छुत्ति हुई है'। उनका कहना भी सच है। क्योकि सम्पूर्ण विषय और सम्पूर्ण भाषाओ को बतलाने वाले कोई भी साधन रूप बतलाने वाले की भूवलय ग्रन्थ की अ क से पढने की परिपाटी तेरह सौ वर्षो से अर्थात् श्री आचार्य कुमुदेंदु के समय से आज तक अध्ययन अध्यापन की परिपाटी वद होने के कारण अ गादि विच्छेद मानने लगे थे। अब यह भूवलय

ग्रन्थ से निकलकर ऊपर लिखा हुआ गणित पद्धति के क्रम से महान् मेधावी ही नहीं कि सामान्य पढे लिखे हुए मामूली आदमी भी आसानी से भूवलय ग्रन्थ जैसी द्वादशाग वाणि को आसानी से निकाल कर दे सकता है। अब चार अक्षर भंग आप लोगो को आसानी से निकालने वाली विधि निम्न प्रकार बतायेंगे इससे आप लोगो की समझ मे आयेगा।

४ अक्षर के भंग

आ म ल क

१)	१ २ ३ ४	आ म ल क	२)	२ ३ ४ १	म ल क आ
३)	३ ४ १ २	ल क आ म	४)	४ १ २ ३	क आ ल म
५)	२ ३ २ ५	क ल म आ	६)	३ २ १ ४	क ल म आ
७)	२ १ ३ ४	म आ ल क	८)	१ ३ ४ २	आ ल क म
९)	३ ४ २ १	ल क म आ	१०)	२ १ ४ ३	म आ क ल
११)	१ ४ ३ २	आ क ल म	१२)	२ १ ३ ४	म आ ल क
१३)	३ २ ४ १	ल म क आ	१४)	४ २ ३ १	क म ल आ
१५)	२ ३ १ ४	म ल आ क	१६)	१ ३ २ ४	आ ल म क
१७)	४ ३ ० २	क ल आ म	१८)	३ १ ४ २	ल आ क म
१९)	२ ४ ३ १	ल आ क म	२०)	० २ ४ ३	आ म क ल
२१)	२ ४ ३ ०	म क ल आ	२२)	२ ० २ ४	ल आ म क
२३)	४ ० २ ३	क आ म ल	२४)	० ४ २ ३	आ क म ल

इस चार अक्षर के समस्त अंक की राशि में सम्पूर्ण विश्व के अंक राशि आगये हैं कोई बाहर बाकी नही रह जाता है।

आगे के उत्सर्पिणि काल मे तीर्थंकर रूप में होने वाले समतभद्रादि महान मेधावी बडे बडे आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थ में या भविष्य मे होने वाले महान ग्रन्थ में जो ४ अक्षर की शब्द रचना होती है वह इस चार अक्षर रूपी भूवलय मे अबे ही मिल जाता है। इसी तरह—

"क म ल द ल" ये पाच अक्षर हैं—

ऊपर के अनुसार आच अक्षरो को अपुनरुक्त रूप से फिराते आयें तो बहत्तर शब्द निकल आयेंगे। ७३ शब्द नही हो सकते हैं कोई ७३ निकाल कर रखे तो वह पुनरुक्त हो जाता है इसलिऐं भगवान महावीर की वाणी जितनी छोटी हो उसमें पुनरुक्त दोष नही आता है। ऊपर कहे जैसा अगले आने वाले उत्सर्पिणी काल मे जितने तीर्थंकर होगे उनकी सब दिव्य ध्वनि मे निकलकर आने वाले अक्षर का भग इस भूवलय मे अभी भी मिल जायगा, यही अनेकान्त सत्य है।

इसी विधि से आगे बढते हुए छ अक्षर "कमल" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते जाए तो १२० शब्द निकलकर आएगा ऊपर कहे जैसा ही इसको भी मान लेना। इसी विधि से आगे बढते हुए सात अक्षर "कमल दल रज" इस शब्द को अपुनरुक्त रूप से घुमाते आए तो ७२० शब्द निकलकर आएगा उसमे पहिले व अन्त के दोनो शब्द पुनरुक्त रीति से आ जाते हैं इसलिए वह निकाल देने से ७१८ भाषा रह जाती हैं, वह इस प्रकार है—

वह क्रम इस प्रकार है—

$१२ \times २ \times ३ \times ४ \times ५ \times ६ = ७२० — २ = ७१८$ और ८ अक्षर की शब्दराशि को निकालकर आपके सामने रखना हमारी बुद्धि के बाहर है ऐसा रहने में इसके ऊपर का ९-१०-११-१२ इसी रीति से बढते हुए अक्षरो के स्वरूप को मिलाते हुए शब्द राशि बनाते जाना इस काल में बहुत कठिन है इसी विधि से ऊपर कहे हुए ५४ अक्षरो का एक शब्द निकालना हो तो इस अध्याय मे आये हुए ८४ स्थान हैं जो ८४ स्थान मे आयी हुई अंक राशि ५४ अक्षरो का समूह है उस राशि से अपुनरुक्त रूप से ५४-५४-५४-५४ ऐसा अक्षर निकालते आए तो ८४ शून्य आजायगा ०००००००००००००००००-
०००-
०० जब गिनती मे शून्य आ गया तो आचार्य जी का कहना सत्य है ऐसा मानना ही पडेगा। ऊपर लिखा हुआ क्रम अर्थात् ८४ स्थान प्रतिलोम क्रम है।

$६४ \times ६३ \times ६२ \times ६१$ इस रीति से ११ अंक तक आगए तो ५४ बार हो जाता है।

अनुलोम क्रम जैसे ऊपर १×२×३×४×५×६ ऐसे क्रम ५४ तक लिखा जाए तो शब्द राशि की उत्पत्ति आती है जितने बार की प्रतिलोम की सख्या है उतने बार की अनुलोम क्रम सख्या के भाग देने से उतना ही शून्य आजावेगा अब प्रतिलोम क्रम ११ और अनुलोम क्रम पद तक हम आए हैं। अब प्रतिलोम क्रम ६४ से लेकर १ तक आए अनुलोम क्रम १ से लेकर ६४ तक रहे तो ८२ अ क हो जाता है वह फिर बताया जावेगा।

अनुलोम क्रम ७२ अ क का आता है ८४ प्रतिलोम। ८४ अ क को अनुलोम ६१ अ क से भाग करने से पूरण आने के लिए जो कोष्ठक बतलाया गया है उस रीति से कर लेना। अर्थात् अनुलोम ७१ अ क को २ से गुणा करे तो जो अ क आता है उसको २ मानना इसी रीति से ३-४-५-६-७-८-९ तक कर लेना तब भाग देते आना जब भाग देते आवें तो ऊपर से नीचे जिस सख्या से भाग होता है उस संख्या को आडा पद्धति से लिख लें जो अंक आता है उसको लब्धांक कहते हैं। उसको आधा करें तो सारी शब्द राशि हो जाती हैं। ,अवधि ज्ञान सम्पन्न महा मुनि और देव देवियाँ और कुमति ज्ञान वाले नारकी जीव के लिए इतना ज्ञान है। आजकल सीमधर भगवान् के समोशरण में रहने वाले ऋद्धि धारक मुनि ही इस अंक से निकलने वाला अर्थात् ६४ अक्षर का एक शब्द ६३ अक्षर का एक शब्द ६२ अक्षर का एक शब्द जान सकते हैं। हम लोगो के ज्ञान-गम्य नहीं हैं। परन्तु आचार्य कुमुदेन्दु ने इस समस्त विधि को गणित पद्धति से जान लिया था। इसलिए उनका परम पूज्य उस मूल धवल सिद्धान्त का रचयिता आचार्य वीरसेन अपना शिष्य होते हुए भी इतना महान भूवलय जैसे ग्रं थ रचना से उनकी महान मेधा शक्ति को देख करके अपने शिष्य को ही अपना गुरु मानकर शिष्य बन गया। सो ऐसा महान प्रसग दिगम्बर जैन साहित्य मे नही मिलता है। लेकिन आचार्य जी को सल्लेखना लेने के समय में अपने शिष्य को अपना गुरु वना करके शरीर त्याग करने की परिपाटी मिलती है और चालू भी है परन्तु जीवित काल में ही शिष्य वनकर रहना महान गौरव की बात है।

ऊपर कहे हुए के अनुसार प्रतिलोम गुणा कर ५४ अक्षर की सरमाला नामक माला रूप में इसकी रचना हुई है। अब आगे आने वाले अनुलोम क्रम से आने वाले द्रव्यगम है ऐसे जानना चाहिए।

भावार्थ—

इसकी व्याख्या विस्तार के साथ ऊपर की गई है। इसलिए पुनरुक्त यहाँ नहीं किया गया है।

४७९९८०७३१६१०४३७३५७१५३२६२१०६४१४९९१६५०६५७ ५२०४११७४८६८५५७८२४०००००००००००० इस अंक के पूर्ण वैभव का अवयव अनुलोम पद्धति अनुसार है।

इस अंक मे ७१ अ क हैं इस अ क को आडा करके मिला दें तो २६१ होता है। इसको पुन जोड दिया जाय तो ९ हो जाता है।

अर्थ—इस प्रकार नौ अक में अन्तर्भाव हुआ इस अनुलोम क्रम के अनुसार ऊपर कहा हुआ प्रतिलोम के भाग देने से जो लब्धाक आता है वही भवभय को हरण वाले अ क हैं। ऊपर कहे हुए कोष्ठक मे रहने वाले प्रत्येक लब्धाक को लेकर आडा करके रख दिया जाय तो ४६९१४९४७५१२९३००-०००००००००० यही ५४ अक्षर का भागाहार लब्धांक यही अ क आडा रखकर मिला देने से ६४ होता है। इस ६४ को मिला देने से से १० होता है। दस मे भी १ एक ही है अर्थात् नम्बर १ अक्षर है और जो वचा हुआ बिंदी है। यही एक भग से निकलकर आया हुआ भगवान के नीचे रहने वाले बिंदी रूप कमल हैं।

भावार्थ—

गणित की दृष्टि से देखा जाय तो ऊपर के कहे हुए प्रतिलोम रूप छोटी राशि "नौ"। इस नौ से भाग देने से अर्थात् नौ को नौ से भाग देने से बिंदी आना था। परन्तु अब यहा दस मिल गया यह आश्चर्य की बात है। गणित के सशोधन करने वाले गणितज्ञ विद्वानो के लिए महान निधि है इसी लब्धाक को आधा करके कुमुदेंदु आचार्य भगाक को निकालने की विधि को बतलाने वाले तीन श्लोको में 'पाच' मिल जाता हैं। वह और भी आश्चर्य-कारक है। ९ से ९ को भाग देने से शून्य आना था। लेकिन ऊपर दस आया है नीचे पाच

आया है, बस व्याख्यान से इसका निष्कर्प यह निकलता है कि ६ को पाच से भाग देने से शून्य आ गया है। पाश्चात्य गणितज्ञ लोगो के मत से ६ तो ५ से विभक्त नही होता है और समाक से विपमाक का कभी भाग नही होता है ऐसा कहने का उन लोगो का अभिप्राय है। उस अभिप्राय का निरसन करने के लिए इतना वडा विस्तार के साथ लिखा हुआ भगवान महावीर की अगाध महिमाओंसे अनेकातदृष्टि से देखा जाय तो विपमाक हुआ। ६ को समाक दो चार आठ और विपमाक तीन-पाच-सात, से भी नौ विभक्त होकर शून्य आता है। गणितज्ञ विद्वानो को इस विपय पर कही वर्षो तक वैठकर खोज करनी चाहिए जैसे हमने अर्थात् जैनियो ने माना है उसी तरह जाना जाय तो आनन्द तथा प्रशसनीय माना जायेगा।

रत्नत्रय मे चारित्र तीसरा है, अनियत वसतिका और अनियत विहार अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य के और उनके महान् विद्वान मुनि शिष्य तथा उनके अन्य चतु सघ के मुनि जनो के लिए खास नियत वास करने के लिए घर नही था। अर्थात् वसतिका इत्यादि कोई स्थान नही है। और उनको किसी गाँव या किसी अन्य स्थान में पहुचने की भी कोई निश्चित योजना नही थी। उनके लिए नियमित रूप नही है। वे हमेशा गोचरी वृत्ति अर्थात् जिस प्रकार गाय या भैंस घास या रोटी देने वाले से राग द्वेष न करके चुपचाप आहार खाती है उसी तरह दिगम्बर साधु किसी खास व्यक्ति के या अन्य काला या गोरा व्यक्ति को ख्याल या अपेक्षा न करके केवल उनके द्वारा शुद्ध आहार राग द्वेष भाव से रहित लेते हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि—

गृहस्थ धर्म मे अव्रती, अणुव्रती तथा महाव्रती इस तरह पात्र के तीन भेद बतलाते हैं पहले अव्रती मे पात्रापात्र दोनो हैं। असयमी अपात्र में शुद्धाशुद्ध के विचार से रहित होकर भक्ष्य और अभक्ष्य का कोई नियम नही रहता है, और पशु के समान उनके खान पान का हिसाब रहता है। वैसे आज कल के लोग आहार विहार का कोई विचार न करके एक दूसरे की झूठन को भी नही छोडते हैं और न उसको अशुद्ध मानते हैं और न इनको रात और दिन का ख्याल आता है। यही चिन्ह अपात्र अविरत मिथ्यादृष्टि का है।

कुमुदेन्दु आचार्य ऐसे गृहस्थ श्रावक के बारे मे कहते हैं कि—

ये लोग गधे के समान खाना खाते है। उसी प्रकार आजकल के गृहस्थ रहते है जब खेत मे किसान बीज वो देता है तब शुरू मे धान का अकुर उत्पन्न होकर ऊपर आना आरम्भ होता है। तब उस समय कदाचित गधा आकर उसको खाने लगे तो सबसे पहले उसका मु ह धान की जड तक घुसकर जड सहित उखाड लेता है और उसके साथ मिट्टी का ढेर भी आता है। उस समय मे गधा अपने मुंह में लेकर घास को खाने लगता है तब मिट्टी भी उसके साथ जाती है। जब मिट्टी साथ जाती है तब केवल बीच मे से खाकर दोनो तरफ छोड देता है। तब दोनो तरफ छोडे हुए को कोई ग्रहण नही कर सकता और दोनो तरफ से भ्रष्ट होता है। उसी तरह अव्रती अपात्र मनुष्य आप जो खाते हैं वह खाना अणुव्रती या महाव्रती नही खा सकते हैं। इसलिए उनका खान पान हेय माना गया है। ऐसा आहार खाने से कुष्ठादिक अनेक रोग होते हैं जैसे कहा भी है कि—

मेधा पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्ति कुष्ठरोग च कोकिलः।
कण्टको दारुखण्डञ्च वितनोति गलव्यथाम्।
व्यञ्जनांतर्निपतितस्तालु विधृति, वृश्चिकः॥

भोजन के समय चीटी अगर पेट में चली जाय तो बुद्धि नष्ट होती है, जू पेट में चली जाय जलोदर रोग उत्पन्न होता है, मक्खी पेट में चली जाय तो वमन अर्थात् उलटी करा देता है, मकडी पेट मे चली जाय तो कुष्ठ रोग होता है।

छोटे काटे या छोटे तिनके इत्यादि पेट में चले जाय तो कठ में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

इसी तरह मार्कंडेय ऋषि ने भी कहा है कि —

अस्तगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।
अन्न माससम प्रोक्त मार्कंडेयमहर्षिणा॥

मार्कंडेय ऋषि ने सूर्यास्त होने के बाद अन्न ग्रहण करना मास के समान तथा जलपान करना रुधिर के समान कहा है। इसलिए उत्तम बुद्धिमान

मनुष्य को रात्रि को अन्न और पानी का त्याग कर देना चाहिए।

ऊपर के कहे हुए जो चारित्र की हानि या नाश करने का साधन है उन सबको त्याग कर जब अणुव्रती तथा क्रम से महाव्रती बनता है तभी शुद्ध चारित्र को प्राप्त कर सकता है।

शुद्ध चारित्र केवल महाव्रती मुनि ही पालन कर सकता है। यह शुद्ध चारित्र निरतिचार अठारह हजार शीलो के तथा चोरासी लाख उत्तर गुणो के पालने से होता है। इन चारित्र के अंक भग को निकालने की विधि को ऊपर कहे हुए गणित से लिया है।

यदि आत्मतत्व की दृष्टि से देखा जाय तो समस्त भूवलय स्वरूप अर्थात् केवली समुद् घात, लोक पूरण समुद्घात रूप आत्मतत्त्व व्यवहार और निश्चय दो विभाग से होता है। इसी तरह ऊपर कहा हुआ भागाहार लब्धांक को भी दो भाग करने से ६४ शेष रह जाता है, ऐसा कुमुदेंदु आचार्य कहते हैं।

प्रतिलोम से लिखा हुआ "रुदळिरते" प्रतिलोम से पढते जाय तो "तेरळिदरु" इस तरह शब्द बन जाता है। यह "रुदळिरते" शब्द किस भाषा का है सो हमे पता नही लगा। जो ऊपर लब्धाङ्क आया है वह ६४ है, उसको आधा किया जाय तो ? ६८ होता है। इसकी विधि इस तरह है—

२३४५७४७३७५६४६५०००००००००० इसमे इसका निष्कर्ष यह निकल। कि अनेकात दृष्टि से देखा जाय तो ६४ मे ६८ भाग होता है ऐसा आचार्य ने वतलाया है।

इसका आचार्यों ने सगाक ऐसा कहा है। गणित विधि बहुत गहन होने के कारण पुनरुक्ति दोष नहीं आता। महान् मेधावी तपस्वी हैं वे इसे पुनरुक्त न मानकर जो रस इस गणित से आता है उस रस को आस्वादन करते हुए आनन्द की लहर में मग्न हो जाते हैं।

प्रतिलोम को अनुलोम से भाग देते समय लब्धाक के इसी विधि में अन्तिम भागाक मे जो गलती है उस गलती को ऊपर के कोष्ठक मे देख लेना ऊपर के लब्धाक गणित के अन्त मे सभी शून्य ही आना चाहिए था परन्तु नही आया, अंक ही आ गया है।

१२०७५१७६४२५७३८६८७५७३२४१०२२६४७२८८४६३७४६७२६७५५-६२३४३७८४२६०७१३६१२०७५१७६४२५७३४६८७५७३२४१०२२६४७-२८८४६३७४६७२६७५५६२३७८४२६०१३६१२०७०००६४२००००००००-०००००००००००००००७४६७२६७५५६०३००००००००० यह जितने चिन्ह दिये गये हैं वे सभी अंक ६ आना चाहिए था परन्तु यहाँ ६ नही आया है।

अर्थ—प्रतिलोम '६' और अनुलोम ६ मे भाग देते समय जो गलती आती है उस गलती को वतलाने के लिए जितनी गलती आयी है उतने अंक नीचे यह (०००) चिन्ह दिया गया है। उस गलती को जान बूझकर ही हमने डाला है और आचार्य ने इसको ऊपर छोड दिया है। क्योंकि यदि ऐसे गलत अंक को नही रखते तो सम्पूर्ण भगवद्गीता नही निकल सकती थी और न प्राकृत भगवद् गीता ही। इसीलिए इस अक्षर को वतलाने के लिए जैन ऋग्वेद के समान महर्षि के द्वारा रचित अनादि कालीन ३६३ मत जैन ऋग्वेद में नही निकलते। अनादि ऋग्वेद के सम्बन्धी १० मडल के अष्टक ८८८८८८८-८८८८ अर्थात् श्री नेमि गीता के प्रथम अध्याय का ७ वा सूत्र—

"सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वैश्च"

इस सूत्र के अनुसार आठ अनुयोग द्वारा ऋग्वेद नही आता था। वही ऋग्वेद अनादि कालीन गणित को नही मिलता था। जैन पद्धति के वाल्मीकि ऋषि ने रामायण के अंक के अन्त में स्तवनिधिब्रह्म देव की स्तुति के द्वारा पहले होने वाले आजकल के वैदिको मे प्रचलित रहने वाले, साम्य वेद के पूर्वाचिका और उत्तरार्चिका नामक महान् भाग नही निकल सकता था। और पूर्वाचिका के अर्थ के अन्दर ही उत्तर अर्चिका मिलकर हमारे गणित पद्धति के अनुसार सागत्य कानडी पद्य के अनुसार नही आ सकता था। उसके ६५ पद्य के १ अध्याय मे प्रत्येक श्लोक मे ६५ अध्याय होकर ६५ सागत्य पद्य मे पुन ६५ सागत्य पद्य आडा और सीधा मिलाकर १०० श्लोक वाल्मीकि, रामायण के अन्तर्गत देखने में नही आ सकता था।

रामायण के वालकाड, अयोध्या काड और अरण्य काड ये तीनों काड

देखने मे नही आ सकने थे। इसके अलावा और भी कितनी अद्भुत साहित्य कला को हम गणित के द्वारा नही छुडा सकते और जैसे कितने ही रस-भरित काव्य (साहित्य) के नष्ट होकर गिर जाने से यहा हमने गलत सख्या को रख दिया है। इसका उत्तर आगे दिया गया है।

१७६ श्लोक के नीचे दिये गये प्रतिलोम१७१६५४३९९४६०२११६०-२२८६७११८८४९२०८८२२३४९५७०९७६०७७०७५९५३९९३७७५४३५४-६३१६९९३३३१२०००००००००००० हैं। आगे उस जगह पर २९ अक स्वच्छ चन्द्रमा की चादनी के समान निकलकर आते हैं। यहा तक २४ श्लोक पूर्ण हुए।

अब आचार्य कुमुन्देदु ने स्याद्वाद का अवलम्बन करके गणित के बारे में आनन्द दायक उत्तर देते हुए कहा कि कोई गलती नहीं है। क्योकि जिस गलती से महत्व का कार्य साघन होता है ऐसी गलती को गलती नही माना जा सकता जिस छोटी गलती से ही महान् गलती होती है उसी को गलती माना जाता है। परन्तु यहाँ ऐसा नही है यह मगल प्राभृत है, अत यहाँ अमगल रूप गलती नही आनी चाहिए ऐसे यदि तुम प्रश्न करोगे तो ऊपर के कोष्ठक मे दिए हुये (४६९१) इत्यादि रूप से ऊपर से नीचे उतरते हुए लब्धाक को देखो उसमें किसी प्रकार की गलती नही दीखती। गलती के बदले मे अतिशय महिमा के (१) अक की उत्पत्ति होती है यदि उसका आधा किया गया तो '६८' आकर '९' नामक ५ अको से भाग हो गया। यह अतिशय धवल की महिमा नही है क्या ? ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य भूवलय ग्रन्थ में लिखते हैं। इस प्रकार २५ श्लोक तक पूर्ण हुए।

मन्मथ का बाण सीधा नही है वह तो टेडा है मन्मथ का पुष्प बाण स्त्री और पुरुष के ऊपर छोडाजाय तो तीर जैसे हृदय में घुसकर बार बार वेदना उत्पन्न करता है उसी तरह मन्मथ के बाण भी स्त्री पुरुष के हृदय मे घुस कर हमेशा भोग की तीव्र वेदना उत्पन्न कर देते हैं। जिस तरह पुष्प मृदु होने पर भी पुरुष या स्त्री को अपनी सुगन्धि से बार बार सुगन्धित करता है उसी तरह मन्मथ का बाण मृदु होने पर भी स्त्री या पुरुष के भोगने की वेदना को उत्पन्न कर देता है। इसी तरह छोटी छोटी गलती से अनेक प्रकार की महान् २ गलती होती है। भोग का विरोध करने वाले योग को योग का विरोध करने वाले भोग को समान करके ॥ २६ ॥

प्रति दिन बढाई जाने वाली अतिशय आशा रूपी अग्नि ज्वाला की शक्ति को दबाकर उसके बदले में उपमा रहित, योगाग्नि रूपी ज्वाला को बढाते हुए कर्म को नाश करने से सिद्ध हुआ गणित का पाँच अ क योगी लोगो के लिए पञ्च अग्नि के समान है॥ २७ ॥

ये पञ्चाग्नि रूपी रत्न ही पाँच प्रकार की इन्द्रिया हैं ॥२८॥

जिस कार्य की सिद्धि के लिए मनुष्य पर्याय को हमने प्राप्त किया उस पर्याय से अद्भुत लाभ होने वाले कार्य को सतत करते रहने से कर्म का बध नही होता परन्तु छोटे छोटे सासारिक कार्यो के करने से कर्म का बध होता है ॥२९-३० ॥

इस गणित की जो मनुष्य हमेशा भावना करता है उनके हृदय मे दिगम्बर मुद्रा या भगवान जिनेश्वर की भावना हमेशा पूर्ण रूप से भरी रहती है ॥३०॥

तर्क में न आने वाले और स्वात्म-चिंतवन में ही देखने या आने वाले इस पाँच अ क की महिमा केवल अनुभव-गम्य है ॥ ३२ ॥

तीसरा दीक्षा कल्याण होने के बाद छद्मस्थ अवस्था में माने गये जिनेश्वर को यह भक्ति है ॥ ३३ ॥

यह जो पाँच अ क हैं वह जैन दिगम्बर मुनियो को देखने में आया हुआ है ॥ ३४ ॥

ख्याति को प्राप्त हुआ यह अ क विज्ञान है॥ ३५ ॥

यह छोटे छोटे बालको से भी महान् सौभाग्य को प्राप्त कर देने वाला है ॥ ३६ ॥

जिनेन्द्र देव ने गणित के इस अ क के ऊपर ही गमन किया है अर्थात् यह क्षेत्र भी है ॥ ३७ ॥

बडे २ कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला आत्मस्वरूप नामक हयभूवलय है ॥ ३८ ॥

श्री भगवान महावीर स्वामी की वृद्धि समान यह अध्यात्म-साम्राज्य है ॥ ३९ ॥

मन रूपी सिंह के ऊपर आकाश गगा के समान अधर भाग में स्थित कमल है ॥ ४० ॥ २८ से लेकर ४० तक अन्तर पद्य को नीचे दिया जाएगा यह प्रत्येक चौथे चरण का अक्षर है। इससे पहले २७ श्लोको के पहले तीन चरणो को मिलाकर पढ लेना चाहिए।

अर्थ—जैसे उत्तम सहनन वालों का शरीर है। वैसे इस काव्य की रचना उत्तम है।

इस काल के पृथ्वी के भव्य जीवो के भाव में करुणा अर्थात् दया के अप्रतिम रूप अर्थात् केवली समुद्घात को वतलाने वाला यह काव्य है पौर पच परमेष्ठियो का यह दिव्यरूपी चरण भूवलय काव्य है और ऊपर का आया हुआ पाच का चिन्ह है ॥ ४३ ॥

जगल में तप करके आत्म-योग द्वारा अपने शरीर को कृश करते समय श्री जिनेन्द्र देव का अतिम रूप ही मनमें धारण करना सर्व साधु का अन्तिम रूप है अर्थात् अरहत सिद्ध आचार्य और उपाध्याय ये चार और जिन धर्म जिनागम, जिन विंव तथा जिन मदिर, इन दोनो चार चार अ को को मिलाने वाला वीच का पाँच अक है। यदि चारो ओर देखा जाय तो पाँच ही अक है। इस रीति से ही काव्य की रचना हुई है। यही साधु समाधि है।

इसके आगे ४३ से ५५ श्लोक तक के अन्तर पद्यो में देख लें।

अर्थ—इन पाँच को सख्यात से ४३ असंख्यात से ॥ ४४ ॥ तक और वहुत वडे अनन्त अ क से अर्थात् इन तीनो से पाँच को जानना चाहिए ॥ ४५ ॥ यह जिनेन्द्र भगवान का ही स्वरूप दिखाया गया है ॥ ४६ ॥

वह साधु मन वचन से अतीत यानी अगोचर है ॥४७॥
वह साधु दुष्ट कर्मों को भस्म करने के लिए दावानल के समान है ।४८।
ऐसा ज्ञानी ध्यानी साधु ही वास्तविक योगी है ॥४९॥
ऐसा ही योगी साधु आचार्य पद के योग्य माना गया है ॥५०॥
ऐसा साधु ही परम विशुद्ध मुक्ति के सुख को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥
वह योगी दिन प्रतिदिन अपने आध्यात्मिक गुणो में निरन्तर वृद्धि करता जाता है ॥५२॥

उस साधु को घर तथा वन का रहस्य अच्छी तरह ज्ञात (मालूम) होता है ॥५३॥

वह योगी ध्यानी साधु जिनेन्द्र भगवान के समान अपना उपयोग शुद्ध रखने मे लगा रहता है, अत. वह अन्य साधुओ के समान शुद्ध उपयोगी होता है ॥५४॥

विवेचन—शारीरिक सगठन के लिए हड्डियों का महत्वपूर्ण स्थान है, इस हड्डियो के सगठन को 'सहनन' कहते हैं। संहनन के ६ भेद हैं—१-वज्र ऋषभ नाराच (वज्र के समान न टूट सकने वाली हड्डियो का जोड और वज्र सरीखी हड्डी की संधियो मे कीली), २ वज्र नाराच (वज्र सरीखी हड्डिया हों जोड वज्र समान न हो), ३ नाराच (हड्डिया अपने जोडो तथा सधियों में कील सहित हो) ४ अर्द्ध नाराच (हड्डिया आधी कीलित हो) ५ कीलक (हड्डियां कीलो से मिली हो), ६ असप्राप्ता सृपाटिका (माप की हड्डियो की तरह शरीर की हड्डिया विना जोड के हो, केवल नसो से वधी हुई हो)।

समुद्घात—मूल शरीर को न छोडते हुए आत्मा के कुछ प्रदेशो का शरीर से वाहर निकलना समुद्घात है, उसके ७ भेद हैं—

१ कषाय, २ वेदना, ३ विक्रिया, ४ आहारक, ५ तैजस, ६ मारणान्तिक और ७ केवल समुद्घात।

इस प्रकार विविधि विषयो का प्रतिपादन करने वाला यह भूवलय सिद्धांत ग्रन्थ है ॥५५।

पूर्व काल मे वाँधे गये कर्मों का जितना ही वमन (निर्जरा या क्षय) किया जाय उतना ही आत्मिक गुणो का विकास होता है और जव आत्मिक गुणो का विकास होता है तव सगीत कला में परम प्रवीण गायको की गान कला के समान उपदेश देने की शक्ति वढ जाती है ॥५६॥

तव हृदय मे नित्य नवीन ज्ञान रस की धारा प्रवाहित होती है। जैसे रात्रि मे पढा हुआ पाठ दिन मे स्मरण हो जाता है। उसी प्रकार योगी को रात्रि समय का ज्ञान-चिन्तवन दिनमें उपस्थित हो जाता है। ऐसे ज्ञानी साधु पाठक यानी उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं ॥५७॥

उपाध्याय परमेष्ठी कहलाने वाले एक ही व्यक्ति अवस्था के भेद से क्रमश आत्मिक योग मे बैठ जाने पर साधु परमेष्ठी, अठारह हजार शील व ५ आचार के पालन करने के समय मे आचार्य परमेष्ठी, चारो घातियाँ कर्मो का क्षय कर लेने के पश्चात् अरहन्त परमेष्ठी तथा चारो अघातिया कर्मो का क्षय करके मोक्ष पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

उस आध्यात्मिक ज्ञान को अपने वश मे करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी हैं ॥५८॥

उस ज्ञानरूपी अमृत रस को अपने मधुर उपदेश द्वारा भव्य जीवो को पिलाने वाले आचार्य परमेष्ठी हैं ॥५९॥

ऐसे आचार्य परमेष्ठी समस्त जीवो को ज्ञान उपदेश देते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं ॥६०॥

वे समस्त इन्द्रियो को जीतने वाले हैं ॥६१॥

सम्पूर्ण जीवो के लिए नई नई कला को उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥६२॥

सम्पूर्ण असत्य के त्यागी महात्मा होते हैं ॥६३॥

वे महान मनुष्यो के अग्रगण्य होते है ॥६४॥

सम्पूर्ण विषयो को बटोर कर बतलाने वाला द्वादशांग है ॥६५॥

अनुपम समता को कहने वाले हैं ॥६६॥

नये नये मार्दव आर्जव गुण को उत्पन्न करने वाले हैं ॥६७॥

सम्पूर्ण ऋषियो मे अग्रगण्य हैं ॥६८॥

नये नये उपदेश देने वाले आचार्य हैं ६९॥

पवित्र औषध ऋद्धि के धारक हैं ॥७०॥

अनेक बुद्धि-ऋद्धि तथा सिद्धि के धारक हैं ॥७१॥

वृषभसेन आद्य गणधर के वशज हैं ॥७२॥

श्री ऋषभदेव के समय से चलने वाले समस्त विषयों को जानने वाले ॥७३॥

दयालु होने से सम्पूर्ण हरितकाय के भक्षण के त्यागी हैं ॥७४॥

जिस प्रकार आकाश मार्ग से जाने वाला प्राणी अव्याहतगति होने के कारण तीव्र गति से गमन करता है, उसी प्रकार तीव्र प्रगति से जो आचार-सार के अगणित आचार को स्वय आचरण करते हैं और अन्य भव्य जीवो को आचरण कराते है वे आचार्य होते हैं ॥७५॥

विवेचन—आकाश मार्ग से जाने वाले चारण ऋद्धि-धारी साधु विद्याधर या विमान जितने वेग से गमन करते है, उस वेग की अगणित विधि को भूवलय की गणित पद्धति से जाना जा सकता है। वह इस प्रकार है।

गणित का सबसे जघन्य अंक २ दो माना गया है क्योकि एक को एक से गुणा या भाग करने पर कुछ भी वृद्धि आदि नही होती।

२ को यदि वर्ग किया जावे (२×२=४) तो ४ अंक आता है, चार को चार से एक वार वर्ग करने से (४×४=१६) १६ होते है, यदि ४ को तीन वार रखकर गुणा किया जावे तो [४×४×४=६४] ६४ आता है, यदि चार को चार वार गुणा किया जावे तो [४×४×४×४=२५६] २५६ होता है। यदि ४ के वर्गित सर्वगित अंको के २५६ को इसी पद्धति से वर्गित सर्वगित किया जावे तो सर्वगित फल ६१७ अंक प्रमाण आता है जोकि प्रचलित गणित पद्धति के दस शख के १९ अंक प्रमाण सख्या से बहुत बडी अंक राशि होती है। दो के वर्ग ४ की सर्वगित सख्या जब इतनी बडी होती है तो विचार कीजिये कि भूवलय में प्रतिपादित ९ अंक की वर्गित सर्वगित सख्या कितनी बडी होगी? ऐसी गणित—पद्धति से आकाश मे गमन करने की तीव्रतम प्रगति को भी जाना जा सकता है।

नौ अंक के समान आचार्य जगत के सम्पूर्ण पदार्थो के मर्म को दिखलाकर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थो तथा मुनियो को आचार के पालन करने की प्रेरणा करता है ॥ ७६ ॥

धर्म साम्राज्य के सार्व-भौमत्व को प्रगट करके आचार्य ९ अंक के समान समस्त आचार धर्म को पालन करते हैं ॥७७॥

इस ससार में उत्तम क्षमा आदि दशधर्मो का प्रचार करने वाले गुरु आचार्य महाराज हैं। तथा सिद्ध भगवान के सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाले आचार्य हैं ॥७८॥

अन्तर श्लोक

इसी प्रकार सारतर आत्म-स्वरूप को बतलाने वाला भूवलय है ॥७९॥

धीर वीर मुनियो के आचरण का प्रतिपादक यह भूवलय है ।८०॥

सरल मार्ग को बतलाने वाला भूवलय है ॥८१॥

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने मार्ग मे चलते हुए अपने शिष्यो को जो पढाया वह यह भूवलय सिद्धान्त है ॥८२॥

यह भूवलय शूर वीर मुनियो का काव्य है ॥८३॥

रत्नहार मे जडे हुए मुख्य रत्न के समान भूवलय ग्रन्थ-रत्नो में प्रमुख है ॥८४॥

आत्मा की निर्मल ज्योति-रूप भूवलय है ८५॥

अत्यन्त सरलता से सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है ॥८६॥

क्रूर कर्मो का अजेय शत्रु भूवलय ग्रन्थ है॥८७॥

शूर वीर ज्ञानी ऋषियो के मुख से प्रगट हुआ यह भूवलय है ॥८८॥

आत्मा की सार ज्योति-स्वरूप यह भूवलय है ॥८९॥

सरलता से आत्मतत्व को बतलाने वाला भूवलय है ॥९०॥

जिस प्रकार रत्नो मे माणिक श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार शास्त्रो मे श्रेष्ठ शास्त्र यह भूवलय है ॥९१॥

श्री वीर जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय है ॥९२॥

श्री वीर भगवान की दिव्यवाणी स्वरूप यह भूवलय है ॥९३॥

श्री महावीर महादेव के प्रभा-वलय के समान यह भूवलय है ॥९४॥

विशाल आत्मवैभवशाली यह भूवलय है ॥९५॥

अनन्त आचार की वृद्धि करने वाला यह भूवलय है ॥९६॥

इस प्रकार अति उत्कृष्ट आचार को प्रतिपादन करने वाले आचार्य के समान यह भूवलय है ॥९७॥

अत्यन्त वैभवशाली वैराग्य को उत्पन्न करने वाला यह भूवलय है ।९८।

भव्य जीवो के हृदय में भक्ति उत्पन्न करने वाला भूवलय है ॥९९॥

श्लोक

जिस प्रकार सिद्धरसायन द्वारा कालायस (काला लोहा) भी सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार पतित ससारी जीव को देह से भेद-विज्ञान उत्पन्न करके मुक्ति प्रदान करने वाला भूवलय है ॥१००॥

घातिकर्म नष्ट करके जीवराशि मे जीवनमुक्त ईश्वर (अर्हन्त) होकर भव्य जीवो की रक्षा करता हुआ धर्म तीर्थ द्वारा उनका कल्याण करके वह लोक के अग्र-भाग में विराजमान सिद्धराशि में सम्मिलित हो जाता है ॥१०१॥

जब यह आत्मा सासारिक व्यथा से पृथक् हो जाता है तब मुक्ति स्थान में आत्मा के आदि अनुभव को अनन्तकाल तक अनुभव करता है ॥१०२॥

अनादिकाल से सलग्न क्रोध काम लोभ मायादिक को जब यह आत्मा नष्ट कर देता है, तब वह आत्मा सिद्धालय में अपने आपको जानता देखता हुआ समस्त पदार्थों को जानता देखता है । समस्त सिद्ध निराकुल होकर आनंन्द से रहते है ॥१०३॥

णमोकार मत्र मे प्रतिपादित पाच परमेष्ठी आत्मा के पाच अग स्वरूप हैं । जब यह आत्मा सिद्ध हो जाता है तब वह भेद-भावना मिट जाती है और सभी सिद्ध एक समान होते हैं ॥१०४॥

अन्तर श्लोक

९ अ क के समान सिद्ध भगवान परिपूर्ण हैं ॥१०५॥

सिद्धो के रहने का स्थान ही भूवलय है ॥१०६॥

णमोकार मत्र की सिद्धि को पाये हुए सिद्ध भगवान हैं ॥१०७॥

सिद्ध भगवान अनन्त अ को से बद्ध हैं यानी सख्या मे अनन्त हैं ॥१०८॥

वे अनन्तज्ञानी हैं ॥१०९॥

वे तीन कम ९ करोड मुनियो के गुरु हैं ॥११०॥

वे निर्मल ज्ञान शरीर-धारी हैं ॥१११॥

वे भौतिक शरीर के अवयवो से रहित हैं किन्तु आत्म-अवयव (प्रदेशो) वाले हैं ॥११२॥

परिपूर्ण ९ अ क समान परिपूर्ण दर्शन वाले वे सिद्ध भगवान हैं ॥११३॥

'आदौ मकारप्रयोग मुग्द' के अनुसार सिद्ध भगवान आदि अक्षर वाले हैं ॥ ११४॥

वे अन्न आदि अन्य पदार्थों की सहायता से जीवन व्यतीत नहीं करते अत स्वतन्त्र-जीवी है ॥११५॥

वे अत्यन्त रुचिकर सर्वस्वरूप सुख के सार का अनुभव करते हैं ॥११६॥

वे सिद्ध भगवान अवतार (पुनर्जन्म) रहित होकर अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं ॥११७॥

वे अनन्त वीर्य वाले हैं ॥११८॥

वे अनन्त सुखमय हैं ॥११९॥

वे गुरुता लघुता-रहित अत्यन्त रुचिकर अगुरुलघु गुणवाले हैं ॥१२०॥

उन्होने नवीन सूक्ष्मत्व गुण को प्राप्त किया है ॥१२१॥

वे महान कवियो की कविता द्वारा प्रशसा के भी अगोचर हैं ॥१२२॥

वे अव्यावाध गुण वाले हैं ॥१२३॥

वे समस्त ससारी जीवो द्वारा इच्छित महान् आत्मनिधि के स्वामी है ॥१२४॥

वे ही अर्हन्त भगवान के तत्व (रहस्य) को अच्छी तरह जानने वाले हैं ॥१२५॥

उन्होने समस्त विशाल जगत को अपने ज्ञान दर्शन द्वारा देखा है ॥१२६॥

इस कारण मैं उनके चरणो को नमस्कार करता हूँ ॥१२७॥

क्योकि उन्होने (सिद्धो ने) समस्त ससार-भ्रमण का नाश कर दिया है ॥१२८॥

विवेचन—सिद्ध परमेष्ठी में वैसे तो अनन्त, पूर्ण विकसित शुद्ध गुण होते हैं किन्तु ८ कर्मों के नष्ट होने से उनके ८ विशेष गुण माने गये हैं।

ज्ञानावरण कर्म के नष्ट होने से लोक अलोक के त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को उनकी समस्त पर्यायो सहित एक साथ जानने वाला अनन्त ज्ञान होता है ॥१॥

दर्शनावरण कर्म के समूल नाश हो जाने से समस्त पदार्थों की सत्ता का प्रतिभासक दर्शन गुण है ॥ २॥

मोहनीय कर्म के समूल क्षय से आत्मा की अनुपम अनुभूति कराने वाला सम्यक्त्व गुण है ॥३॥

अनन्त पदार्थों को निरन्तर अनन्त काल तक युगपत् जानते हुए भी आत्मा में निर्बलता न आने देकर अनन्त शक्तिशाली रखने वाला वीर्य गुण है। जो कि अन्तराय कर्म के क्षय से प्रगट होता है ॥४॥

उक्त चारो गुण अनुजीवी गुण हैं।

वेदनीय कर्म नष्ट हो जाने से आत्मा मे आकुलता-वाधा आदि का न रहना अव्यावाध गुण है ॥५॥

आयु कर्म सर्वथा न रहने से शरीर की अवगाहना (निवास) मे न रह कर स्वय अपने आत्म-प्रदेशो मे निवास रूप अवगाहनत्व गुण है ॥६॥

नाम कर्म द्वारा पौद्गलिक शरीर के साथ ससारी दशा मे आत्मा सतत स्थूल रूप वना रहता है। नाम कर्म नष्ट होने से आत्मा मे उसका सूक्ष्मत्व गुण प्रगट होता है ॥७॥

गोत्र कर्म आत्मा को ससार मे कभी उच्च-कुली, कभी नीच-कुली वनाया करता है। गोत्र कर्म नष्ट हो जाने पर सिद्धो मे गुरुता (उच्चता), लघुता (नीचता) रहित अगुरुलघु गुण प्रगट होता है ॥८॥

अन्तिम चारो गुण प्रतिजीवी गुण हैं। ये ४ अनुजीवी तथा ४ प्रति-जीवी गुण सिद्धो मे पाए जाते हैं।

अर्हन्त भगवान्—

व्यास पीठ मे उल्लिखित अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन वाणी, जिन धर्म, जिन चैत्य, जिन चैत्यालय, ९ स्थानो का सूचक ९ अक क्या ९ केवल लब्धियो के अधिपति अर्हन्त भगवान को सूचित करता है ? हा वे ही अर्हन्त भगवान इष्ट देव हैं ॥१२९॥

विवेचन—विशेष आध्यात्मिक निधि के प्राप्त होने को 'लब्धि' कहते हैं। अर्हन्त भगवान को चार घाति कर्म नाश करने के अनन्तर ९ लब्धिया प्राप्त होती हैं। (१) केवल ज्ञान, (२) केवल दर्शन, (३) क्षायिक सम्यक्त्व, (४) क्षायिक चारित्र, (५) क्षायिक दान, (६) क्षायिक लाभ, (७) क्षायिक भोग (८) क्षायिक उपभोग, (९) क्षायिक वीर्य (अनन्त वीर्य) ये नौ लब्धियां हैं।

ज्ञानावरण के नाश से केवल ज्ञान लब्धि प्रगट होती है जिससे अर्हन्त भगवान त्रिलोक, त्रिकाल के ज्ञाता होते हैं।

दर्शनावरण कर्म के नाश हो जाने से लोकालोक की सत्ता की प्रतिभासक केवलदर्शन लब्धि प्राप्त होती है।

दर्शन मोहनीय कर्म सर्वथा हट जाने से, अक्षय आत्मानुभूति कराने वाली क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि प्रगट होती है।

चारित्र मोहनीय नष्ट हो जाने पर आत्मा मे अनन्त काल तक अटल अचल स्थिरता रूप क्षायिक चारित्र लब्धि का उदय होता है।

दानान्तराय के क्षय होने से असख्य प्राणियो को अपनी दिव्य वाणी द्वारा ज्ञान दान तथा अभय दान करने रूप अर्हन्त भगवान के अनन्त दान लब्धि होती है।

लाभान्तराय के नष्ट हो जाने से बिना कवलाहार किए भी अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर की पोषक अनुपम पुद्गल वर्गणाओ का प्रति समय समागम होने रूप क्षायिक या अनन्त लाभ नामक लब्धि प्राप्त होती है।

भोगान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान पर देवो द्वारा पुष्प वर्षा होती हैं, वह क्षायिक भोगलब्धि है।

उपभोगान्तराय के क्षय हो जाने पर अर्हन्त भगवान को जो दिव्य सिंहासन, चमर, छत्र, गन्धकुटी आदि प्राप्त होते हैं वह क्षायिक उपभोग लब्धि है।

वीर्यान्तराय के क्षय हो जाने पर जो अर्हन्त भगवान के आत्मा में अनन्तशक्ति प्रगट होती है वह क्षायिक या अनन्त वीर्य लब्धि है।

उन नौ लब्धियो के स्वामी अर्हन्त भगवान है, उनसे ही आध्यात्मिक इष्ट मनोरथ सिद्ध होता है, अत वे ही इष्ट देव है।

इष्ट देव श्री अर्हन्त भगवान ने चार घाति कर्मों का क्षय करके ससार के परिभ्रमण का अन्त किया और ओकार के अन्तर्गत अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भूवलय सिद्धि के लिए उपदेशामृत की वर्षा की ॥१३०॥

गन्धकुटी पर रक्खे हुए सिंहासन के सहस्रदल कमल के ऊपर चार अगुल अधर विराजमान अर्हन्त भगवान ने अनन्त अको को गणित मे गर्भित करके तीन सध्या काल में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा भव्य जीवो को कहा। वे ही जिनेन्द्र भगवान हैं ॥१३१॥

शान्त वैराग्य ज्ञान आदि रसो से युक्त भूवलय सिद्धान्त को अभव को श्री जिनेन्द्र भगवान ने तीनकाल-वर्ती विषयो को अन्तर मुहूर्त मे प्रतिपादन करके धर्म तीर्थ बना दिया ॥१३२॥

ओ एक अक्षर है और उसपर लगी हुई बिन्दी एक अक है, इस प्रकार ॐ (ओ) की निष्पत्ति है। समस्त भूवलय ६४ अक्षरात्मक है। ६४ अक्षर ६ में गर्भित हैं। वह कैसे ? सो कहते हैं—६४ अक्षर (६+४=१०) १० रूप हैं। १० मे एक का अक 'ओ' अक्षर रूप है और बिन्दी अक रूप है। इस तरह ॐ मे ६४ अक्षर गर्भित हैं। अक ही अक्षर हैं और अक्षर ही अक हैं ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है ॥१३३॥

स्पष्टीकरण— ० (बिन्दी) को अर्द्ध रूप मे विभक्त करके उसके दोनो टुकडो को विभिन्न प्रकार से जोडने पर कनडी भाषा मे समस्त अक बन जाते हैं जैसे ० (बिन्दी) को आधे रूप में विभक्त करने से ⁀ दो टुकडे हुए उस टुकडा का आकार क्रमश एक आदि अक रूप बन जाता है।

मन्मथ (कामदेव) की गुदगुदी मे जीने वाले समस्त नर पशु आदि प्राणियो को श्री जिनेन्द्र भगवान के चरणो का स्मरण करने से पाच अक (५)की सिद्धि होती है अर्थात् पच परमेष्ठी पद प्राप्त होता है ॥१३४॥

श्री अर्हन्त भगवान के परमौदारिक शरीर में नख (नाखून) और केश (बाल)एक से रहते हैं, बढते नही हैं। उन अर्हन्त भगवान के एक सर्वाङ्ग शरीर से द्वादश अग रूप द्रव्य श्रुत प्रगट हुआ। वह द्वादश अग एक ॐ रूप है ॥१३५॥

अर्हन्त भगवान की उपर्युक्त अनुपम चराचर पदार्थ गर्भित दिव्य-वाणी को सुनकर विद्याधर, व्यन्तर, भवनामर, कल्पवासी देवो ने श्री जिनेन्द्र देव में अचल भक्ति प्रगट की ॥१३६॥

रसना इन्द्रिय की लोलुपता से विरक्त भव्य मनुष्य ६ अक परिपूर्ण भगवान का उपदेश सुनकर पूर्ण तृप्त हुए और अनुपम भूवलय को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर चले गये ॥१३७॥

कभी भी रचमात्र कम न होने वाला एक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर समवशरण में विराजमान श्री जिनेन्द्र देव के सिर के ऊपर तीन छत्र झुक रहे हैं, देवो द्वारा पुष्प वृष्टि होती है तथा पीठ के पीछे प्रभामडल होता है। ऐसी ज्ञान प्रभा प्रगट करने वाला भूवलय है ॥१३८॥

भूवलय के प्रभावशाली इस 'आ' (दूसरे) मगल प्राभृत में विविधता परिपूर्ण ६५६१ अक्षर प्रमाण श्रेणी बद्ध श्लोक हैं। अन्तर श्लोको के अक्षर आगे बताते हैं ॥१३६॥

अन्तर श्लोक

अन्तर मे ५८७७ ॥१४०॥

अनेक भाषामय काव्य प्रगट होते हैं ॥१४१॥

अ को द्वारा अक्षर बनालेने पर उन विविध काव्यो का निर्माण होता है ॥१४२॥

बडी युक्ति से उन अ को को परस्पर मिलाने से उन काव्यो का उदय होता है ॥१४३॥

[८३४२] आठ तीन चार दो एक ॥१४४॥

११२५०० ॥१४५॥

यह अ क चारित्र का वर्णन करने वाला है ॥१४६॥

अन्तरान्तर में जो काव्य प्रगट होता है, वह चारित्र का वर्णन करता है ॥१४७॥

इस अन्तराधिकार में जितने अक्षर हैं उन्हे बतलाते हैं ॥१४८॥

वे अक्षर जितने हैं उतने ॥१४९॥

वर्ण मिलाने से ॥१५०॥

जो कठिनाई से प्राप्त हुआ ॥१५१॥

उससे अ क रूपी यश काव्य की सिद्धि होती है ॥१५२॥

यह ऋषीश्वर भगवान जिनेन्द्र देव का वाक्य है ॥१५३॥

अन्तर श्लोको की अक्षर सख्या ७८४८ हैं ॥१५४॥

१ से प्रगट हुआ ७७८५। अन्तर मे ७८४८ अ काक्षर रहने वाला सर्व सम्मत 'अ' अध्याय भूवलय है ॥१५५॥

६५६१+अन्तर ७८४८=१४४०९

अथवा

अ (प्रथम) अध्याय ६५६१+अन्तर ७७८५=१४३४६+ 'अ, (दूसरा) अध्याय १४४०९=२८७५५ अक्षर हैं दोनो अध्यायो में १८ अ क चक्र हैं।

इस द्वितीय अध्याय के मूल श्लोको श्रेणी-बद्ध आद्य अक्षरो से (ऊपर से नीचे तक पढने पर) जो प्राकृत गाथा प्रगट होती है उसका अर्थ निम्न-लिखित हैं।

प्रथम सहनन (वज्रऋषभ नाराच) तथा समचतुरस्र सस्थान-धारी, दिव्य गन्ध सहित एव नख केश न बढने वाला अर्हन्त भगवान का परमौदारिक शरीर होता है।

तथा मध्यवर्ती (२७वें) अक्षर की श्रेणी से जो सस्कृत श्लोक बनता है उसका अर्थ निम्नलिखित है—

अविरल (अन्तर रहित) शब्दो के समुदाय रूप, समस्त जगत के कलङ्क को धो देने वाली, मुनियो द्वारा उपास्य तीर्थ-रूप सरस्वती (जिन वाणी) हमारे पापो का क्षय करे।

तीसरा अध्याय

आ दिदेवनु आवियकालदि पेळ्द । साधनेयध्यात्म योग ॥ दाविय अ ज्ञानवळिद धर्मध्यान । साधित काव्य भूवलय ॥१॥
णे रदोळात्मनभ्युदय सौख्यवपोदे । दारियुदोरेताग अ ज् ज ॥ सारा त्मशिखियेरि बरुवागयोगद । सारवैभववु मगलवु ॥२॥
हि तवावतिशय मगलप्राभृत । सततवु भद्रपर्याय ॥ ज्ञा वज्ञात तत्वगळनेल्लव पेळ्व । ख्याताक शिवसौख्य काव्य ॥३॥
म् नवनु सिंहपीठवनागिपकाव्य । दनुभव जिनमार्गवागे ॥ न नेकोनेवोगिसुत् अध्यात्मयोगद । घनसिद्धात लेक्कवलि ॥४॥
अ रिवुदे ज्ञान तन्नरिविनोळ्नोळ्पुदे । सरुवज्ञ दर्शन् ति येंब ॥ परमनकाणकेइवेरडरोळ्बेरेवुदे । सरुवचारित्र अनंत ॥५॥

परमात्मनरिव अनन्त ॥६॥ करुणेयुबेरेद अनत ॥७॥ वरसिद्धगोष्ठियनंत ॥८॥ अरिवु तन्नात्मअनंत ॥९॥
अरिदुनोडिदरिगनत ॥१०॥ दोरेवुदेमूरुरत्नाक ॥११॥ सरससख्यातदनंत ॥१२॥ सरमगियोळगसख्यात ॥१३॥
बरुवुद गुणिसलनत ॥१४॥ करगदनत सख्यात ॥१५॥ परिशुद्ध चारत्रिदक ॥१६॥ विरचित गणनेयनत ॥१७॥

ण वशुद्ध चारित्रदतिशयादिदलि । अवनियधरिसुव नव लि ॥ सवरदे मेरुवग्रदेनिल्वकुळितिर्प ॥ नवयोगशक्तियंकवदु ॥१८॥

नवशुद्द दर्शनयोग ॥१९॥ अवरु ध्यानिपशुद्धयोग ॥२०॥ अवनियमरेवसुज्ञान ॥२१॥ नवमाकदद्वयुतयोग ॥२२॥
सुविशाल पृथ्विधारणेय ॥२३॥ अवसरदोळ्बद योग ॥२४॥ सविद्वैतअध्यात्मयोग ॥२५॥ नवदेवतेय काव्ययोग ॥२६॥
नवमांकदावियोग ॥२७॥ अवरु साधिपशक्तियोग ॥२८॥

न् मसिद्धपरमात्मएन्नुतमनदलि । ममकारवेन्नात्म रा ग ॥ समनिसेद्रव्यागम बंधदोळ् कट्टि । दमलात्मयोग चारित्र ॥२९॥
ते नम शुद्धात्मयोगायेन्नुत । आनत भावस्वभाव ॥ ध्यानान त् ददेंबाह्याभ्यतर । वेनिल्ल परभाववेनुत ॥३०॥
हि तयोगवताळ्दवसरदोळ्योगि । अतिशय बहिरतरंग ॥ धा त्रियनेनहनेल्लव मरेदातनु । प्रीतियोळ्मेरुविनग्र ॥३१॥
म् थनिसिदध्यात्मयोग वैभवकेंदु । सततदुद्योग पर ना गि ॥ हितवेनगागेलोकाग्रवेरुवेरुवेनेंब । मतियुतनागुत योगि ॥३२॥

हितदनुभवहोदिवाग ॥३३॥ अतिशय शिवभद्रसौख्य ॥३४॥ सततदभ्यासद बुद्धि ॥३५॥ हितवीवचारित्रशुद्ध ॥३६॥
हतिसलुवीर्यांतराय ॥३७॥ हतवुदर्शनमोहनीय ॥३८॥ अथवाउपशमवागे ॥३९॥ अथवाक्षयवागलात्म ॥४०॥
हिनदेशुद्धात्मस्वरूप ॥४१॥ नुत शुद्धसम्यक्त्वसार ॥४२॥ नुतस्वसवेद विराग ॥४३॥ अतिशय सबलविराग ॥४४॥
हितवदेतन्नस्वरूप ॥४५॥ हतकर्मलीनवात्मनोळु ॥४६॥ अथवास्वरूपाचरण ॥४७॥

गु रुगळाचरिसुव चारित्रसारद । परिये देशचारित्र ॥ विरवि म् अप्रत्याख्यान वुपशम । बरलथवा क्षयोपशमं ॥४८॥
णे रदे क्षयवागे देशचारित्रद । दारियु सकलचारित्र ॥ शूर ज्ञा निगळसोम्मागुवकालदे । मूरने क्रोधादिनाल्कु ॥४९॥
हि तवल्लदिरुवकषायगळुपशमं । अथवाक्षयवुपशम ना ॥ सततोद्योगद फलदिंदक्षयवागे । क्षिति पूज्यमहाव्रतबहुदु ॥५०॥
जु ण्गुजुगु रेनुवदिव्यध्वनि सारद । गणनेयसकलचारित्रा नृ ॥ क्षणक्षणकाव्रतउज्वलवागुत । कुणियुतबहुदात्मयोग ॥५१॥

त् नगेबंद ध्यानदनुभवदिंदलि । घनवाद यथाख्यात ज निसे ॥ गुणस्थानवेरुव परमावधियागे । जिनरयथाख्यातवदु ॥५२॥
तो रदेतोरुत जारुतबरुतिर्प । चारित्रदंतल्लवदु ॥ शूर न योगददारिदवैतंद । चारित्रसार भूवलय ॥५३॥

सेरुत गुणस्थानदग्र ॥५४॥ सारात्म चारित्रयोग ॥५५॥ भूरिवेभवदात्मयोग ॥५६॥ दारियसिद्ध लोकाग्र ॥५७॥
नेर कषायवियोग ॥५८॥ शूर कषायद भाव ॥५९॥ दारिये शुद्धविशेष ॥६०॥ चारित्रवे यथाख्यात ॥६१॥
दूरपूर्णतेयाअयोग ॥६२॥ शूरअयोगीकेवलियु ॥६३॥ आरेंदु गुणस्थानदग्र ॥६४॥ शूररध्यात्मस्वातन्त्र्य ॥६५॥
गारादससारनाश ॥६६॥ नेरदेवेंहर्वाजितवु ॥६७॥ पूर्णदडदे कपाटकवु ॥६८॥ सारप्रतर लोकपूर्ण ॥६९॥
वेरिद बळिक सिद्धत्व ॥७०॥

वि ष पूर्ण कुंभदेम्भत्नाल्कु लक्ष । वशद औंदमृत शरावे ॥ य श वदरोळगे अंधकनु आकाशदि । नेशेदचिंतामणि रत्न ॥७१॥
शु भ भद्रवागि बिह्न्ते मानवदेह । अभवनागलु बदिुदुद ला ॥ उभयभवार्थ साधनेय तद्द्वय । शुभमंगललोक पूर्ण ॥७२॥
द् र्शनज्ञान चारित्रमूरग । स्वर्शमणि सोकलाग ॥ मर् क ट मानवनादन्ते मानव । स्वर्मनवळिवुदेनरिदे ॥७३॥
ध रणियमेलिर्दु धरेयन्तरगद । परिपरियणुविनविष या ॥ वरिदुतन्नात्मन दर्शनवेरसिर्द । धरेयग्र लोकव होन्दे ॥७४॥
चा मरवादतिशयवावैभव । आमहात्मरिगिल्लवागे ॥ प्रेम च राचरवन्नेल्ल काणिप । कामिनि मोक्षव पोन्दि ॥७५॥

भामेयोळ् कूडुवनात्म ॥७६॥ प्रेमादिगळगेल्द कामी ॥७७॥ श्रीमयसुख सिद्ध भद्र ॥७८॥ आ महात्मनु भूमियळिद ॥७९॥
सीमेयगडिदान्टिदभव ॥८०॥ नेमदें चिरकालविरुव ॥८१॥ स्वामियेजगदादिगुरुवु ॥८२॥ राम लक्ष्मण हृदयाब्ज ॥८३॥
नामरूपगळेल्लवळिद ॥८४॥ कामसनिभनल्लि बेरेद ॥८५॥ गोमटेश्वरनय्य वृषभ ॥८६॥ श्री महासूक्ष्मस्वरूप ॥८७॥
आमहिमनु श्री अनत ॥८८॥ भूमिकालातीत संज्ञा ॥८९॥ स्वामि अनन्ताकवलय ॥९०॥

रि द्धिवैभवदलि ज्ञान साम्राज्य । शुद्धदर्शनद अन् क् अ ॥ होद्दे चारित्रव देहद सेरेमने ॥ इद्दरुबंधवळिवुदु ॥९१॥
त्, नुविद्दरेनवनमलात्म सपद । जिननन्ददे तानक् षु वध ॥ दनुभव होन्दुवध्यात्मदोळिरुवाग । घनतेय देहवळियुव ॥९२॥
तो रुव मुनिमार्गदारंकेयिहदेह । सेरुतलात्मन बळिय ॥ सा ग वनावाग कारागृहदल्लि ॥ सेरिरुवात्मन बिडिसे ॥९३॥
भ यविर्निसिल्लदे ध्यानदोळा योगि । नयमार्गवनु बिडदिरुव न् ॥नियतदोळात्मनोळ् बाळ्वाग ध्यानाग्नि । लयमाळ्पुदघवनेल्लवनु ॥९४॥
व शवागलाध्यान तनुवु कायोत्सर्ग । दसमान पल्यंकय मी ॥ वशदेरडरोळोन्दासनदोळगिर्दु । रस परिपूर्णनागुवनु ॥९५॥

वशद रागवनु चिंतिपनु ॥९६॥ स्वसमाधियोळगे निल्लुवनु ॥९७॥ स्वसंपूर्णनागुतलिवनु ॥९८॥
हुसिमार्गवनु तोरेदिहनु ॥९९॥ बशिवनु अपराधगळनुम् ॥१००॥ यसेवनु कर्म दडवनु ॥१०१॥
होस दीक्षेवडेवनन्तिमनु ॥१०२॥ यशवे लक्ष्यवनु साधिपनु ॥१०३॥ होसदाद गुणदोळगवनु ॥१०४॥
रससिद्धियन्न बेंडविन्न ॥१०५॥ कुसुमकोबंडवल्लणन्न ॥१०६॥

वसिरनु वंडिसुतिहनु ॥१०८॥ यशद चारित्रवोळिहनु ॥१०९॥ एसेवनु परद्रव्यगळनुम् ॥११०॥
हुसिय प्रेमव तोरेविहनु ॥१११॥ रिसिय रूपिन भद्रवेंहि ॥११२॥ असम भूवलयवोळिहनु ॥११३॥
यशद मंगलद प्राभृतनु ॥११४॥

भ यवेन्तेन्दु केळु तलायोगियु । जयिपपरानुरागवनु ॥ नयद लि चितिप आकुलितेय विद्दु स्वयशुद्ध रूपानुचरण ॥११५॥
य शवदु शाश्वतसुखवेन्दरियुत । असमान शान्तभाववलि ॥ त स स्थावर जीवहितवनु माधिप । हुसयळिवेल्ल पौद्गलिक ॥११६॥
द लिवन्द सुखदु खगळलि आकुलितेय । वलवेण्टिहुदेन्द म् अवनु ॥ वळिसार्द व्याकुलवेल्लव केडिपनु । कलिलहन्तकनात्मशुद्ध ॥११७॥
नु वपद धर्मद गणितव गुणिसुत । अवरोळगात्म गौरव ण ॥ लुलवनुसाधिसुतिपं कालदोळनुराग । ददयवविनिसिल्लदिहनु ॥११८॥
ज यजयवेन्नुत तन्न देहदोळिहं । स्वयंशुद्धआत्मन न वनु ॥ भयविद बिडिसुत परद्रव्यवनुरागद । जयवन्ने चिंतिसुतिहनु ॥११९॥
ण वपद योगवनदरोळु रतियिर्द । सवियादकाक्षर सार त ॥ नवमाङ्क गणितदोळु स्वद्रव्यवरिवनु । भवभय नाशनकरनु ॥१२०॥

अवतारविनिसिल्लदवनु ॥१२१॥ कविदकळतलेयनोडिपनु ॥१२२॥ अवनु निरंजनपदनु ॥१२३॥
सुविशाल धर्मसाम्राज्य ॥१२४॥ अवनु धर्मदवेट्टदवेरि ॥१२५॥ कविकल्पनेगे सिक्कदिहनु ॥१२६॥
अवश्ररिसुव तत्वगळनु ॥१२७॥ नववनु भागिपनेरडिम् ॥१२८॥ भवसागरवनु गुणिसुव ॥१२९॥
नवकार जपदोउगिरुवम् ॥१३०॥ नवस्वर्गगळ कूडिसुव ॥१३१॥ नवसिद्धकाव्य भूवलय ॥१३२॥

द रुसनमाडे परद्रव्यंगळ । वरुवा कर्मद वंध ॥ वर ग् म्यक्त्व शुद्धवागिसदेन्दु । अरिवरु मूवरु गुरुगळ् ॥१३३॥
च् रितेयोळात्मन संसारदिं कित्तु । अरहन्त सिद्धरम् म नके ॥ वरुवन्ते माडलु सिद्धतानवकेम्ब । परम स्वरूपाचरणर् ॥१३४॥
छो द्यवागिरुव चारित्रवम् सारिद । रादतराचार्य अवर य् अ ॥ साध्य असाध्यवेम्बवेरडनु तिळिदिह । आद्याचार्यरु हितवर् ॥१३५॥
म हर्वारिदेवन वाणियिंवदिह । महिमेयभद्रसौख्यवु श् री ॥ सहनेय धर्म निराकुलवेन्नुव । महिमेयंकाक्षर वाणी ॥१३६॥
ह रुषवर्द्धनवाद आ निराकुलितेय । सरमागे मगलवर श् री ॥ करुणेय वेरेसिह गणितदे गुणिसिह । वरुव दयापर धर्म ॥१३७॥

अरहतदेवर कृपेयु ॥१३८॥ वरुवुदु संख्यात गुणित ॥१३९॥ परमौषध रिद्धिय गणित ॥१४०॥
सरलाक बुद्धियरिद्धि ॥१४१॥ परिपरियतिशय सिद्धि ॥१४२॥ गुरुगळाशिसुतिह सिद्धि ॥१४३॥
शरणु बंदवर पालिसुव ॥१४४॥ हरुपवायकवाद वाक्य ॥१४५॥ परिपूर्ण भरतद सिरियु ॥१४६॥
परम सम्यज्ञान निधियु ॥१४७॥ सरस साहित्यद गणित ॥१४८॥ अरिवु येळनूरहदिनेंदु ॥१४९॥
परमभाषेगळेल्ल वरिव ॥१५०॥ अरहंत रोरेद भूवलय ॥१५१॥

वी रमहादववाणिय सर्वस्व । शूरदिगवरमुनियु ॥ सारिद गु रुगळु वारिगोळ वरुवाग । नेरदध्यात्म भूवलय ॥१५२॥
रों षवळिद काव्यसिद्धसंपदकाव्य । आशेय भव्यभावुक रु ॥ लेसिनिभजिसुत वरुव निर्मलकाव्य । श्री ज्ञान गणितद काव्य ॥१५३॥

अ ष्ट कर्मगळ निर्मूलवमाळ्प । शिष्टरोरेद पूर् वे काव्य ।। दृष्टांतदोळगेल्ल वस्तुवसाधिप । अष्टमंगलविह काव्य।।१५४।।
त् नुमन वचनद कृतकारितनुमोद । जिन भक्ति न् वाद ।। गुणकारवेन्नुव गणकरिंबदिह । अनुभव वैभव काव्य ।।१५५।।
थ ळथळिसुव दिव्य कलेगळरवत्त् नाल्कु । गेलुवकदनम न काव्य ।। बळेसुत चारित्रव शुद्धगोळिसुत । वळियसारिपदिव्य काव्या।१५६।।

इळेय पालिप नव्यकाव्य ।।१५७।। बेळेव सर्वोदय काव्य ।।१५८।। घळिगे वट्टल दिव्य काव्य ।।१५९।।
सुळिय बाळेय वग्र काव्य ।।१६०।। तिळियादसरसाक काव्य ।।१६१।। गिळिय कोगिले दनि काव्य ।।१६२।।
यळेवेण्णदनियंक काव्य ।।१६३।। इळेगादि मनसिज काव्य ।।१६४।। सुलिवल्ल सुलियद काव्य ।।१६५।।
इळेय कळ्तले हर काव्य ।।१६६।। वळिय सेरलु व्रतकाव्य ।।१६७।। गेलवेरिदर व्रत काव्य ।।१६८।।
नलविनध्यात्मद काव्य ।।१६९।। सलुव दिगम्बर काव्य ।।१७०।।

क मटिक मार्तिनिंदलि बळेसिह । धर्म मूरनूररव् तूर म ।। निर्मलवेन्नुत वळिय सेरिपकाव्य । निर्मल स्याद्वाद काव्य ।।१७१।।
त् नगे बारद मातुगळनेल्लकलिसुतम् । विनयदध्यात्मं अ चल ।। घनदंकएळु साविरदिन्नुरु तोवत्तु । एनलु अतरदलि बरुवा।१७३।।
ता नल्लिहत्तूवरे साविरअरवत्तारु । रानदवेरडम् ह अ ।। काणुवद् हदिनेंटुसाविरदेळनूर । काणदनलवत्तनाल्कंक ।।१७४।।
रो दनवेल्लवनळिसुव (अोडिप) सोहं । आदि अोदोबत्तु बद् आ ।। साधिसि मूरु काव्य वकूडिदक्षर । आदि जिनेंद्र भूवलयम् ।।१७४।।

इस तीसरे 'आ' अध्याय में ७२९० अक्षराक हैं। अंतर काव्य में १०,५६६ अंकाक्षर हैं। कुल मिला देने से १७८५६ अकाक्षर होते हैं। अथवा पहला और दूसरा अध्याय मिला कर २८७५५ और दस अध्याय के १७८५६ मिलकर ४६६११ अंक हुए।

इस अध्याय मे आने वाली प्राकृत गाथा:—

आणेहिं अणन्तेहिं गुणे हि जुत्तो विशुद्धचारित्तो। भवभयदन्जणदच्छो महवीरो अत्यकत्तारो ।।

संस्कृत श्लोक:—

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाजनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं एन तस्मय् श्री गुरवेन्नमह ।।

इस श्लोक मे एन के स्थान मे व्यंजन "येन" रहना चाहिए था, किन्तु अक भाषा मे स्वर होने के कारण उसे ही रखा गया, है या यो समझिये कि धातूनामनेकार्थत्वात् धातुओ के अनेक अर्थ होने से एन, और येन दोनो समान ही हैं। अतः विद्वानो को इसकी शुद्धि न करके मूल कारण का अन्वेषण करना चाहिए।

यह भूवलय नामक अपूर्व चमत्कारिक ग्रन्थ सर्वभाषामयी होने के कारण प्रत्येक पेज ७१८ (सात सौ अठारह) भाषाओ से संयुक्त है अतः इस प्रकार व्यतिक्रम यदि आगे भी कहीं दृष्टिगोचर हो तो उसका सुधार न करके मूल कारणो का ही पता लगाना चाहिए। हो सकता है कि पुनरावृत्ति होने के समय यह स्वय सुधर जाय।

(संशोधक)

तीसरा अध्याय

कर्म भूमि के प्रारम्भ काल मे श्री ऋषभनाथ भगवान ने भोले जीवों के अज्ञान को हटा कर अध्यात्म योग के साधनीभूत धर्म ध्यान को प्राप्त करा देने वाला जो प्रथम बताया था उसी को स्पष्ट कर बताने वाला यह भूवलय काव्य है ॥१॥

श्री आदिनाथ भगवान के द्वारा प्राप्त हुये उपदेश मे अभ्युदय और नि-श्रेयस का मार्ग जब सरलता से प्राप्त हो गया तब धर्म रूप पर्वत पर चढने के लिए उत्सुक हुये आर्य लोगो को योग का मङ्गलमय सम्वाद प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

यह मगल प्राभृत प्राणिमात्र का सातिशय हित करने वाला है। क्यों-कि ज्ञात और अज्ञात ऐसी सम्पूर्ण वस्तुओं को बतलाकर ऐहिक सुख तथा पार-मार्थिक सुख इन दोनो को सम्पन्न करा देने वाला है ॥३॥

यह मगल प्राभृत मन को सिंहासन रूप बनाने वाला है। तथा काव्य-शैली के द्वारा जिन-मार्ग को प्रगट करते हुए अध्यात्म योग को भीतर से बाहर व्यक्त कर दिखलाने वाला है। तथा यह मगल प्राभृत या भूवलय ग्रन्थ अक्षर विद्या में न होकर केवल गणित विद्या मे विनिर्मित महा सिद्धान्त है ॥४॥

जानना ही ज्ञान है और अन्दर देखना ही दर्शन है। इन दोनों को पूर्ण-तया सर्वज्ञ परमात्मा ने ही प्राप्त कर पाया है। जानने और श्रद्धान करने के बीच मे मिलकर रहने वाला चारित्र है जो कि अनन्त है ॥५॥

अब आगे अनन्त शब्द की परिभाषा बतलाते हैं—

अनन्त के अनन्त भेद होते हैं जिन सब को सर्वज्ञ परमात्मा ही देख सकता तथा जान सकता है और दूसरा कोई भी नही ॥६॥

पाप को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है और पुण्य को भी अनन्त के द्वारा नापा जाता है। याद रहे कि आचार्य श्री ने यहा पर अनन्त शब्द से दया धर्म को लिया है ॥७॥

सब जीवो में श्रेष्ठ श्री सिद्ध भगवान हैं उनको भी अनन्त से नापा जाता है ॥८॥

अपनी आत्मा को जानना भी अनन्त है, यानी उसमें भी अनन्त गुण हैं ॥९॥

यह सब जान कर अपने अन्दर ही देखना भी अनन्त गुण है ॥१०॥

अपने आप को प्राप्त करना सारे रत्नत्रय का अङ्क (मुख्य स्थान) है सो भी अनन्त है ॥११॥

सरलता से इस अनन्त को सन्यात राशि से भी गिनती कर सकते हैं। उदाहरण के लिए चौबीस भगवान में से प्रत्येक में अनन्त गुण हैं ॥१२॥

इसी रीति से असंख्यात से भी अनन्त को गुणा कर सकते हैं ॥१३॥

तथा अनन्त को भी अनन्त से गुणा किया जा सकता है ॥१४॥

परमोत्कृष्ट शुद्ध चारित्र का अङ्क यही है ॥१५॥

इन सभी बातो को ध्यान में लेकर अनन्त की रचना की गई है ॥१६॥

महामेरु पर्वत के शिखर पर अधर विराजमान योगिराज अपनी अपूर्व योगशक्ति के द्वारा इस अक की महिमा को देख पाये हैं ॥१७॥ यहा पर योग शब्द से पृथ्वी धारण समझना, जो कि विशुद्ध चारित्र के अतिशय से उपलब्ध हुई है ॥१८॥

जितना चरित्र अक है उतना ही दर्शन योग का अक है ॥१९॥

ऐसा सयमी महापुरुषो के शुद्धोपयोग ध्यान द्वारा जाना गया है ॥२०॥

यहाँ पर बताई हुई पृथ्वी धारणा या सुमेरु पर्वत मे पृथ्वी या सुमेरुगिरि न लेकर अपने चित्त में कल्पित सुमेरु पर्वत या पृथ्वी को लेना, जो कि अपने ज्ञान में गृहीत हैं ॥२१॥

यह भूवलय ग्रन्थ भी उन्हीं योगियो के ज्ञान मे योग के समय झलका हुआ है। भूवलय ग्रन्थ नवमाङ्क से बद्ध होने के कारण अद्वैत है। क्योकि १ के विना ९ नही होता और जहा पर ९ होता है वहाँ १ अवश्य होता है। एव अद्वैत भी अनन्त है ॥२२॥

जो पार्थिवीय सुमेरु है वह एक लाख योजन परिमित माना गया है जो

कि असख्यात प्रदेशी है। किन्तु योगियो के ध्यान मे आया हुआ सुमेरु पर्वत तो इससे कई गुणा अधिक है, जो कि अनन्त रूप है ॥२३॥

उस कल्पित पृथ्वी के ध्यान किये विना अनन्त का दर्शन नही हो सकता ॥२४॥

इस कल्पित पृथ्वी की धारणा मूल पृथ्वी के विना नही होती अत यह कथचित् अद्वैत भी है ॥२५॥

इस विशाल योग मे अर्हत् सिद्धादि ९ देवताओ का समावेश हो जाता है ॥२६॥

जो ९ देवता इसी योग शक्ति के द्वारा अपने अनन्त गुणो को प्रकाश मे लाये हुये हैं ॥२६॥

इस अद्भुत महत्वशाली योग को हम नवमाक का आदि योग कह सकते है ॥२८॥

"नम सिद्ध परमात्म" (सिद्धपरमात्मने नम) ऐसा मन म कहते हुए, ममकार ही मेरा आत्म राग है, इस प्रकार अपने मन मे भाते हुए द्व्यागम बधन मे इसे बाध कर उसी मे रमण करन का नाम अमल चारित्र है।

विवेचन —यहा कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक मे यह बतलाया है कि योगी जन बाह्य इद्रिय-जन्य परवस्तु से समस्त ममकार अहकार रागादिक को हटा कर इससे भिन्न अपने अन्दर योग तथा सयम तप के द्वारा प्राप्त करके देखे हुए शुद्ध आत्माके स्वरूपमे प्रीति करते हैं, उसी को अपना निज पदार्थ मान कर परवस्तु से राग नही रखते अर्थात् केवल अपने आत्मा पर आप ही राग करते और उसी मे रत होते हुए द्रव्यागम मे उसे बाँधकर उसी मे रमण करते हैं। इसी को अमल अर्थात निर्मल चारित्र बतलाया गया है।

द्रव्यागम क्या वस्तु है ?—

श्री वृषभनाथ भगवान ने अनादि काल से लेकर अपने काल तक चले आये हुए समस्त विषयो को उपर्युक्त क्रमानुसार नवमाक बधन मे बाध कर द्रव्यागम की रचना की। उसके बाद अपने सयम के सम्पूर्ण द्रव्यागम को विभिन्न विधि से नवमाक पद्धति के द्वारा रचा और पूर्व मे कथित नवमाक मे बाधकर मिला दिया। तत्पश्चात् आगे अनागत अनत समय मे होने वाले समस्त द्रव्यागम विषय को सक्षेप से तीसरे नवमाक बधन मे बाध कर रचा और उसे भी पूर्वोक्त नवमाक मे मिला दिया, और जो तीन काल सम्बधी द्रव्यागम को भिन्न २ रूप मे रचना की गयी थी वह सभी इसी मे एकत्रित होकर नवमाक रूप बन गयी। यह द्रव्यागम इस भरत क्षेत्र मे लगभग अजितनाथ भगवान् के समय तक स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप मे चला आया और अतराल काल मे नष्ट-सा हो गया। पुन अजितनाथ भगवान् ने वृषभनाथ भगवान् के कथन को और अनादि कालीन कथन को मिश्रित कर चौथे नवमाँक पद्धति का अनुसरण करके रचना करते हुए अपने समय के समस्त द्रव्यागमो को पूर्वोक्त क्रम मे मिला दिया और सक्षेप मे अनागत काल मे होने वाले समस्त द्रव्यागम को छठवे तथा नववे बध मे बाधकर पूर्वोक्त सभी अनादि कालीन द्रव्यागम रूपी नवम बध मे बाँध कर सुरक्षित रक्खा। यह द्रव्यागम सभवनाथ के अतराल काल तक चला आया, इसी क्रमानुसार सातवें नववे तथा आठव नवव भगादि रूप से भगवान् महावीर श्री कुन्दकुन्दाचार्य भद्रबाहु स्वामी, धरसेण आचार्य, वीरसेन, जिनसेन और कुमुदेन्दु आचार्य तक चले आये। इस क्रम के अनुसार कुमुदेन्दु आचार्य ने अपने समय के सम्पूर्ण विषय को नवमाक बध विधि को अपने दिव्य अक तथा गणित ज्ञान के द्वारा रचना कर भूवलय रूप से अनादि कालीन-सिद्ध द्रव्यागममे मिला दिया और अनागत काल के सम्पूर्ण द्व्यागम को भिन्न नवमाक मे सक्षेप रूप से बाध कर मिला दिया इसी तरह अतीत, अनागत और वर्तमान के समस्त द्रव्यागम एकत्रित करके सुरक्षित रखने की जो विधि है वह जैनाचार्यों की एक अद्भुत कला है।

आत्महित मे सलग्न होने के अवसर मे योगी अतिशय सपूर्ण विश्व की बाह्य और आभ्यतर दोनो प्रकार की वस्तुओ से अपने ध्यान को हटाकर आत्मा मे अत्यन्त मग्न होकर मेरु के शिखर क समान निश्चल स्थित होता है ॥३०॥

आत्महित करने के लिये स्वानुकूल योग धारण करते हुए वह योगी बहिरग और अतरग अतिशय को प्रगट करने के लिये सम्पूर्ण विश्व की वस्तुओ को भूल कर उत्साह से महान मेरु पर्वत के अग्रभाग पर है ॥३१॥

मथन किये हुए अध्यात्म योग के वैभव की प्राप्ति के लिए प्रयत्न

होने वाले उपसर्ग तथा धूप सर्दी बरसात इत्यादिक परीषहो को सहन करते हुए मन में विचार करता है कि जैसा मैंने पूर्व जन्म में कर्म किया था उसी के अनुसार पाप का उदय आकर मुझे फल देकर जा रहा है। इसे तो मुझे आनन्द के साथ सहन कर लेना चाहिए। ऐसा विचार कर वे मुनिराज एकदम उपशम श्रेणी पर चढ जाते हैं। तब इस मुनि को आकाश मे गमन करने तथा जल के अन्दर गमन करने की ऋद्धि प्राप्त होती है तथा इन्हे यहा पर्वत के शिखर पर भूमि के अन्दर एव आकाश मार्ग में गमन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। ऋद्धि के मोह से दूसरे सासादन गुणस्थान मे गिर जाता है।

वह मुनि दश पूर्व तक जिन वाणी का पाठी होकर भी फूटे हुए घडे के समान होता है अत वह भिन्न दश पूर्वी या भिन्न चतुर्दश पूर्वी कहलाता है। ऐसे लोगो को महान् आचार्य नमस्कार नही करते।

अब जो क्षपक श्रेणी प्राप्त कर आगे बढने वाला अपूर्व करण गुणस्थानी जीव है वही वास्तविक अपूर्व करण वाला होता है क्योकि वह आगे आगे अपूर्व यानी पहिले कभी भी प्राप्त नही होने वाले ऐसे परिणामो को प्राप्त होता हुआ अविच्छिन्न गति से बढता चला जाता है। और वही अभिन्न दशपूर्वी या अभिन्न चतुर्दशपूर्वी होता है, उसी को महात्मा लोग नमस्कार करते हैं।

इसी विषय को गणित मार्ग से बतलाते हुए श्री आचार्य कुमुदेन्दु जी ने कहा है कि आठवा गुणस्थान अपूर्व करण है और उससे आगे जो छः गुण स्थान हैं उन दोनो को जोडने से चौदह होते हैं। अब उन चौदहो को भी जोड देने से एक और चार मिलकर पाच बन जाते हैं। तथा पञ्चम गति मोक्ष है। उसी मोक्ष को अगति स्थान भी कहते हैं ॥६४॥

अध्यात्म साधन मे जो मुनि इस प्रकार आगे बढता चला जाता है यानी क्षपक श्रेणी मे चढता चला जाता है वह अनादि काल से खोये हुए अपने स्वातन्त्र्य को क्षण मात्र मे प्राप्त कर लेता है ॥६५॥

तब ससार का अभाव हो जाता है ॥६६॥

अन्तिम भव का मनुष्य देह दूर होकर आत्मा अशरीरी बन जाता है। अथवा यो कहो कि शरीरी होते हुए अमूर्त्त ही रहता है।६७।

अब आगे केवली समुद्घात का वर्णन करते हैं—

अरहन्त परमेष्ठी के जो चार अघातिया कर्म शेष रह जाते हैं उनमे से एक आयु कर्म की स्थिति कुछ न्यून तथा नामादि कर्मो की स्थिति कुछ अधिक होती है तो वे अरहन्त परमेष्ठी अपनी आयु के शेष होने में अन्त मुहूर्त बाकी रहने पर केवली समुद्घात करना प्रारम्भ करते हैं। सो प्रथम एक समय मे अपने आत्म-प्रदेशो को चौदह राजू लम्बे और अपने शरीर प्रमाण चौडे ऐसे दण्ड के आकार मे कर लेते हैं। फिर एक समय मे उन्ही आत्म प्रदेशो को पूर्व से पश्चिम वातवलयो के प्रान्त तक फैला लेते हैं कपाट की तरह। इसके बाद एक समय में आत्म-प्रदेशो को उत्तर से दक्षिण मे फैलाते हैं जिसको प्रतर कहा जाता है। इसके भी बाद मे एक समय में उन्ही आत्म प्रदेशो को वातवलयो तक में भी व्याप्त करके लोकपूर्ण कर लेते हैं इस प्रकार चार समयो मे करके फिर इसी क्रम से चार समयो में अपने आत्म-प्रदेशो को वापिस स्वशरीर प्रमाण कर लेते है ऐसे आठ समय मे केवलि समुद्घात करते हैं। इस क्रिया से नामादि तीन अघातिया कर्मो की स्थिति आयु कर्म के समान हो जाती है। इसको स्पष्ट करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने दृष्टान्त देकर समझाया है कि जैसे गीले कपडे को इकट्ठा करके रखे तो देरी से सूखता है किन्तु उसी को अगर फैला देवें तो वह शीघ्र ही सूख जाया करता है उसी प्रकार आत्मा भी अपने अघातिया कर्मों को समान बनाकरके खपाने मे समर्थ होता है।

तब अघाति कर्मों को नाश कर सिद्ध परमात्मा होता है।६८-७०।

किसी एक स्थान मे विष से परिपूर्ण चौरासी ८४ लाख घडे रखे हुए हैं उनके बीच मे एक अमृत भरा हुआ कलश है। किसी अधे पुरुष ने आकाश से इच्छित फल को देने वाले चिंतामणि रत्न को फेंक दिया।७१।

वह चिंतामणि रत्न शुभ भाग्य से उस अमृत कुभ में गिर जाता है, उसी प्रकार चौरासी लाख जीव-योनि इस जगत मे हैं। उसके भीतर अमृत से भरे हुए कुभ के समान एक मनुष्य योनि ही है। उस मानव योनि में पूर्व जन्म मे किये हुए अल्पारभ परिग्रह रूपी शुभ कर्मोदय से अधे मनुष्य के हाथ से गिरे हुए रत्न के समान मनुष्य देह रूपी अमृत कुभ मे भद्रता पूर्वक जीव गिर जाता है। यह मनुष्य भव कैसा है? सो कहते हैं —

जैसे गगा नदी है उसके दोनो तटो पर शुद्ध तथा निर्मल जल रहता है, एक तट पर मनुष्य जन्म का सार्थक अर्थात् अमृत कु भ के समान अपने को अखडित चक्रवर्ती पद तक ऐहिक सुख को प्राप्त करता है अत मे पारमार्थिक सुख प्राप्त करने के लिए लोक-पूर्ण समुद्घात फल को प्राप्त करते हुए चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली तथा सिद्ध भगवान बनकर अखड नित्य सुख को प्राप्त होता है। जैसे उसने उभय सुख की प्राप्ति कर लिया उसी तरह चौरासी लाख विष-कुम्भ के समान योनियो मे रहने वाले सम्पूर्ण जीव निकायो को अमृत कुम्भ के समान उत्कृष्ट मानव योनि रूप बनाकर, साथ ही साथ उनको सन्मार्ग बतलाते हुए उन जीवो को भी सिद्ध शाश्वत सुख प्राप्त करा देते हैं। इस प्रकार ऐसे सुन्दर महत्वपूर्ण विषय को छोटे सूत्र रूप से दिया गया है सो देखये—"उभय भवार्थ साधन तट द्वय शुभ मगल लोक पूर्ण" ॥७२॥

दर्शन, ज्ञान, और चारित्र ये तीनो अग आत्मा का स्वरूप है। यह तीनो प्रत्येक जीव के अदर हैं। इन तीनो को रत्नत्रय कहते हैं। इन तीनो को पारसमणि के समान समझना चाहिए जैसे पारस मणि लोहे को स्पर्श कर देने से सोना बन जाता है उसी प्रकार आत्मा के अ दर तादात्म्य सबध रूप से रहने वाले रत्नत्रय रूप पारस मणि का अनादि काल से स्पर्श नही किया। जिन्होने इसका स्पर्श कर लिया उन्होने ससार से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त कर ली। इस समय में भी भव्य ज्ञानी जीव अपने अदर छिपे हुए रत्नत्रय रूपी मणि को एक सेकड भी स्पर्श करले तो वह भव्य जीव अज्ञान, अदर्शन, और दुश्चारित्र को अ तर मुहूर्त से दूर हटाकर मर्कट रूप में विचरने वाले शीघ्र मनुष्य बन जाता है और मनुष्य देव बन जाता है और देव पुन उत्कृष्ट मनुष्य पर्याय प्राप्त कर लेता है तब मनुष्य मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है, तब मन इद्रिय, शरीर ये सब नष्ट होकर सिद्ध पद प्राप्त करने में क्या देर है? अर्थात् कुछ देर नही ।७३।

इस पृथ्वी पर रहते हुए इस पृथ्वी के अ तरग के विषय तथा पृथ्वी के बहिरग विषय को, अनेक प्रकार की भिन्न भिन्न आयु के विषय को जानते हुए भी ज्ञान दर्शन से मिश्रित अपने आत्मतत्व में मग्न होकर तीन लोक के अग्र भाग मे मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ।७४।

विवेचन—

यह पृथ्वी अनेक परमाणुओ के पिड से बनी हुई है उदाहरणार्थ—जैसे एक सरसो के दाने के ऊपर का लाल रग और उसके अ दर का सफेद रग है उसे सम्पूर्ण को पेल कर उसका तेल निकाल दिया जाय तो उस तेल का रग पीला निकलता है। इसके अलावा अनेक रङ्ग इसमे बनते जाते हैं। उसमें से प्रत्येक अणु अर्थात् अ श लेकर उसको और भी छोटे छोटे करते जाय तो केवली-गम्य शुद्ध परमाणु तक चला जाता है। आज कल वैज्ञानिको ने मशीन के द्वारा स्कन्ध काटे हैं किंतु उन्हें अन्तिम अर्थात् फिर जिसका टुकडा करने मे न आवे इस प्रकार का सूक्ष्म परमाणु उन वैज्ञानिको को अभी तक नही मिला तो भी महानशक्तिशाली हैड्रोजन बम, ऐटम बम बना लिया है किंतु केवली-भगवान के समान सूक्ष्म परमाणु देख नही सके।

केवली गम्य जो शुद्ध परमाणु है उसकी शक्ति अचिंत्य है। वह एक परमाणु अनादि कालीन ऐतिहासिक पदार्थ है, आगे अनन्त काल पर्यन्त ऐतिहासिक पदार्थ बनने वाला है। वह इस प्रकार है—वह इतना सुदृढ है कि चक्रवर्ती के चक्ररत्न से भी वह नही कट सकता, पानी उसे गीला नही कर सकता, अग्नि उसे जला नही सकती, कीचड मे घुसकर वह कीचड रूप नही बन सकता, वह कल भी था, एक मास पीछे भी था तथा एक वर्ष से भी उत्तरोत्तर आगे था। इस रूप से एक परमाणु का इतिहास यदि लिखते जावें तो अनादि काल से लेकर अनन्तकाल पर्यन्त समाप्त नही हो सकता। यह भूवलय ग्रन्थ कालानुयोग प्रकरण की अपेक्षा से है इस परमाणु का कथन करते आयें तो वह इस प्रकार है—

"आयासं खलु खेत्तम्"

आकाश की प्रदेश-श्रेणी को क्षेत्र कहते हैं। केवली-गम्य परमाणु जितने आकाश में रहता है उसे सर्वजघन्य क्षेत्र कहते हैं। इसी प्रकार यदि दो परमाणु मिलाये जाय तो दो अणुका सर्वजघन्य क्षेत्र हो जाता है। अर्थात्

जितनी सख्या आगे बढाते जायें उतनी ही वृद्धि होकर अन्त में बृहद्‌ब्रह्माण्ड पर्यन्त हो जाता है। यह भूवलय के क्षेत्रानुयोग-द्वार का कथन है। इसी वस्तु को यदि भूवलय के भाव प्रमाणानुगमन योग द्वार की अपेक्षा से देखा जाय तो इतना महान् अद्भुत अर्थात् १ परमाणु रूप बृहद् ब्रह्माण्ड पर्यन्त स्कध का १ सिद्ध जीव के ज्ञान मे गर्भित है। सिद्ध जीव अनन्त हैं। एक एक सिद्ध जीव मे एक एक वृहद् ब्रह्माण्ड का विषय यदि गर्भित है तो अनन्त सिद्ध भगवानो के ज्ञान को इकट्ठा करने पर कितने बृहद् ब्रह्माण्ड का ज्ञान होगा ? उन सभी ज्ञान को लिखने के लिए जैनो का कथन है कि एक हाथी के ऊपर की अम्बारी भरी हुई स्याही से यदि लिखा जाय तो उससे केवल १ अ श लिखा जा सकता है तो भूवलय के समस्त भागो को यदि लिखा जाय तो कितनी स्याही लगेगी ? इसको सोच लीजिये।

ईश्वर वादी ग्रन्थो मे भी भगवान् की महिमा अवर्णनीय है। कहा भी है कि —

> असितगिरिसम स्यात् कज्जल सिन्धुपात्रे,
> सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
> लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
> तदपि तव गुणानामीश पार न याति॥

अर्थ—पर्वत के बराबर कज्जल को समुद्र रूपी पात्र में घोलकर स्याही बनाई जाय और कल्पवृक्ष की कलम से यदि शारदा स्वय भगवान के गुणो को अहर्निशी लिखती रहे तो भी वह पार नही पा सकती।

तो जब एक भगवान में इतनी शक्ति है तो जहा पर अनेको सिद्ध भगवान हैं वहा पर कितनी शक्ति होगी ? यह नही कहा जा सकता। इन समस्त सिद्ध भगवान की कथा कितनी स्याही से लिखी जा सकती है? इस विषय को आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान पौराणिक ढोग अर्थात् व्यर्थालाप कहते थे, किन्तु उनके समक्ष जब ६४ अक्षरो से गुणाकार किये हुए अ क, ९२ डिजिट्स (स्थान पर बैठने वाले अ क) को अक्षर बनाकर यदि अपुनरुक्त रूप से लिखते जाय तो क्या उपर्युक्त स्याही का अनुमान गलत है ? कदापि नही। जब यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो चुकी तब पुन भगवान की शक्ति

अपार है ही ॥७४॥

अत्यत अतिशयशाली छत्र चमरादि वैभव उन महात्मा योगियो के पास न होने पर भी वे महात्मा योगी जन सम्पूर्ण चराचर वस्तु को दिखा देने वाली मोक्ष रूपी कामिनी को प्राप्त कर लेते हैं ॥७५॥

मुक्त अवस्था मे यह जीव समस्त चराचर पदार्थों को जानने वाला हो जाता है इसलिए अलकार की भाषा में मुक्ति रूपी भामिनी का यह सग करने लगता है ॥७६॥

मुक्त जीव यद्यपि समस्त प्रकार के सासारिक प्रेम का पूर्ण त्यागी है, फिर भी वह मुक्ति कामिनी का कामी है। ॥७७॥

चराचर पदार्थो के जानने के कारण जो सुख मिलता है वही सर्व श्रेष्ठ सिद्ध सुख है और सब सुख ससार मे असिद्ध ही है ॥७८॥

अर्हंत अवस्था मे समवसरण मे अधर स्थिर होकर चराचर को जानता था परन्तु सिद्ध अवस्था मे लोक के अग्र भाग मे विना आधार के स्थिर रहता है और अपनी आत्मा मे ही स्थिर रहकर देखना जानता है ॥७९॥

ससार अवस्था मे जानने देखने की सीमा थी परन्तु सिद्ध अवस्था मे देखने जानने की सीमा न रहकर अपरिमित हो गई ॥८०॥

ससार अवस्था मे सुख क्षणिक था परन्तु सिद्धावस्था मे वह क्षणिकता नष्ट हो गई और नित्य सुख हो गया ॥८१॥

ससार अवस्था मे जो सब से लघु था वह ही मुक्त अवस्था मे सबका स्वामी और सब का गुरु हो जाता है ॥८२॥

ससार अवस्था में जिसको कोई ध्यान मे भी न लाता था वह ही मुक्त हो जाने पर राम लक्ष्मण आदि महापुरुषो के हृदय कमल में वास करने लगता है ॥८३॥

ससारावस्था मे इस जीव के साथ नाम कर्म उत्पन्न होने वाले रूप रस गन्ध स्पर्श आदि पौद्गलिक भाव थे परन्तु सिद्ध हो जाने पर वह नही रहे इसलिए अरूपी अमूर्तिक हो गया ॥८४॥

ससार अवस्था में यह जीव नाना कामनाओ से लिप्त रहता था परन्तु

सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण कामनाओ से रहित हो जाने से स्वय ही कमनीय हो गया ।८५।

ऐसे गुण विशिष्ट कौन हैं ? तो कहना होगा कि वे युग के प्रारम्भ मे होने वाले गोम्मटेश्वर के पिता जगद् गुरु आदिनाथ भगवान हैं ।८६।

वे सबसे महान हैं तो भी सबसे सूक्ष्म हैं ।८७।

अनन्त गुणो के स्वामी होने के कारण वे महान हैं ।८८।

क्षेत्र और माला की परिधि से रहित हैं ।८६।

अनन्त अ कवलय से वेष्टित हैं अर्थात् इनके अनन्त गुणो को अनन्त अको के वलयो से ही जान सकते हैं ।६०।

अर्हंत अवस्था मे ऋद्धियो का वैभव था, सम्पूर्ण ज्ञान साम्राज्य प्राप्त था, और चारित्र मे लीन थे इसलिए परमौदारिक देह में रहने पर भी देह के विकारो से अलिप्त थे इसीलिए उन्होने अन्त में देह वन्ध को तोड दिया ।६१।

जिनका मन अपने आत्म सम्पत्ति मे लीन है वह हमेशा भगवान जिनेश्वर के समान अक्षुब्ध अर्थात् राग रहित वीतरागी होकर अपने आत्मानुभव में लीन रहता है। इस प्रकार से अक्षुब्ध आत्मानुभव मे रत रहने वाले के अत्यन्त निविड कर्मो की अनन्त निर्जरा होती है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

विवेचन—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक में शुद्धात्म रत ध्यानी योगी के योग सामर्थ्य का वर्णन इस प्रकार किया है कि ज्ञानी योगी के शरीर होने पर भी न होने के समान है, कारण यह है कि जिस योगी का मन सदा आत्म-सम्पत्ति रूपी सम्पदा मे मग्न रहता है वह हमेशा वीतराग जिनेन्द्र भगवान के समान अक्षुब्ध है, ऐसे शुद्धात्म अनुभव में रहनेवाले योगी के अनादि काल से लगे हुए अत्यन्त कठिन कर्मो के पिघलने मे क्या देरी है ? अर्थात् कुछ नही।

इसप्रकार श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने यहा तक सिद्ध भगवान तथा अर्हंत भगवान के गुणो का वर्णन किया। अब ६३ तिरानवे श्लोक से आचार्यादि तीन परमेष्ठियो के स्वरूप का वर्णन करेंगे।

ससारी जीव को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए तेल, साबुन, मर्दन, कपडे लत्ते, कोट कम्वल इत्यादि अनेक प्रकार के चीजो की जरूरत पडती है। जब वह ससारी जीव मुनि व्रत धारण करता है तब उसे अपनी आत्म रक्षा करने के लिए शरीर की रक्षा करना पडता है। अनादि काल से शरीर रूपी कारागृह में बन्धे हुए आत्मा को बाहर निकाले बिना उसकी सेवा नहीं हो सकती क्योकि शरीर की सेवा वास्तविक सेवा नही है क्योंकि उसकी सेवा जितनी ही अधिक की जाती है उतनी ही और आकाक्षा दिनो दिन बढती जाती है पर यदि आत्मा की सेवा एक बार भी सुचारु रूप मे हो जाय तो पुन कभी भी उसकी सेवा करने की आवश्यकता नही पडती। अत आत्मा को शरीर से मुक्त करना ही यथार्थ सेवा है ॥६३॥

तिल मात्र भी भयभीत न होते हुए जब ध्यान में रत होकर नयमार्ग को न छोडने वाले नियम से आत्मा में रत होने वाला योगी ध्यानाग्नि के द्वारा अनन्त कालीन पापकी निर्जरा करले, इसमे क्या आश्चर्य है ? अर्थात् नही है।

निर्भय होकर योगी नये मार्ग पर बढता चला जाता है। नियम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन होता है तब ध्यानाग्नि द्वारा अनन्त राशि सचित पाप कर्मो का नाश कर देता है। इसमे कुछ भी आश्चर्य नही है ।६४।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस श्लोक में यह बतलाया है कि—

योगी समस्त मदो से दूर रहकर व्यवहार और निश्चय दोनो नय मार्ग का आश्रय लेता हुआ स्व वशीकृत खड्गासन अथवा पद्मासन से ध्यान में रत होता है और तब स्वरस से परिपूर्ण हो जाता है ।६५।

स्वरस मे परिपूर्ण हो जाने पर अपने वशीभूत हुए मार्ग का ही चिंतवन करता है ।६६।

स्वसमाधि में स्थिर हो जाता है ।६७। स्व में सम्पूर्ण हो जाता है ।६८। समस्त मिथ्या मार्गो को छोड देता है ।६६। पूर्वकृत अपराधो को बहा देता है ।१००। कर्म रूपी दड को जला देता है ।१०१। नवीन दीक्षित को जैसे आनन्द का अनुभव होता है वैसा आनन्दानुभव होने लगता है ।१०२। यश को पैदा करने वाले लक्ष्य को सिद्ध कर लेता है ।१०३। नवीन गुणो की वृद्धि से युक्त होता है ।१०४। इस सिद्धि की इच्छा से रहित होता है।

भावार्थ—ससारी जीव जिस प्रकार नाना ऋद्धियो की इच्छा से

आकुलित रहता है इस प्रकार वह किसी भी ऋद्धि की इच्छा से आकुलित नही रहता। यहा उपयोगी होने से श्रीभर्तृहरि और शुभ चद्रो चार्य का कथानक लिख देना उचित है। एक राजा के दो पुत्र थे, एक का नाम भर्तृहरि और दूसरे का नाम शुभचन्द्र था ससार की दशा का विचार कर दोनो वैरागी हो वनवासी हो गये। भर्तृहरि रस आदि ऋद्धियो के साधन करने वाले गुरु के शिष्य हो गये और शुभचन्द्र किसी भी ऋद्धि को न चाहने वाले आत्म योगी वीतराग साधु के शिष्य वने। भर्तृहर ने वहुत वर्षो की साधना के वाद रस ऋद्धि को प्राप्त की अर्थात् इस-पारद को सिद्ध कर लेने के कारण सुवर्ण बनाने लगे।

एक दिन उन्हे अपने भाई का ख्याल आया कि मैने तो रस सिद्धि प्राप्त करली है और मेरे भाई ने क्या सिद्ध किया है इसलिए एक शिष्य को शुभचद्र की तलास मे भेजा। इधर उधर खोजते हुए शिष्य ने शुभचद्र को दिगम्वर (वस्त्र आदि के आवरण से रहित) वेप मे देखा और मन मे सोचा कि हमारे गुरु के तो वडे ठाठवाद हैं परन्तु इनके शरीर पर तो वस्त्र तक नही हैं। अस्थि-मात्र शेष हैं, आहारादि भी नही मिलता। इस तरह मन मे दु:खित हो शिष्य गुरु भर्तृहरि के पास लौट गया और सव वृत्तान्त कह सुनाया।

भर्तृहरि ने अपने भाई की यह दशा सुनकर सिद्ध रस तू वडी मे भर भेजा और कहलाया इससे मन चाहा सोना वनाकर वस्त्र आहार आदि आवश्यक वस्तुओ की प्राप्त करना।

शिष्य सिद्ध रस से भरी तुम्वडी लेकर शुभचद्र के पास पहुचा और गुरु का वक्तव्य कह सुनाया। शुभचद्र ने यह सव सुना, मन मे भर्तृहरि की बुद्धि पर दया भाव किये और शिष्य से कहा कि इस रस को फेंक दो तो वह श्रम साध्य सिद्ध रस को इस प्रकार निरर्थक फेकने के लिए राज़ी न हुआ। परन्तु वापिस रस को ले जाने से गुरु नाराज हो जायेंगे इस बात से इसको शिला पर फेंक देना पडा। वापिस लौटकर जव गुरु भर्तृहरि से सव वृत्तात कहा तो वे वड़े दु खित हुए और स्वय भाई के पास पहुचे। शुभचन्द्र को अत्यन्त दुर्बल देखकर आश्चर्य मे आ गये और सिद्ध रस लेलेने का आग्रह करने लगे। भर्तृहरि की भ्रांति को दूर भगाने के उद्देश्य से शुभचद्र ने रस भरी तू वडी पत्थर पर पटक दी जिससे सव रस फैल गया। अव तो भर्तृहरि के हाहाकार का ठिकाना न रहा वे अपने रस सिद्धि की कठिनता और उसके लिए किये गये परिश्रम का वार वार वखान करते हुए उलाहना देने लगे।

यह देखकर शुभचन्द्र तो जमीन पर से धूलि चुटकी मे उठाई और शिला पर डाल दी जिससे सम्पूर्ण शिला सोने की वन गई और भाई भर्तृहरि से वोले कि—भाई! तुमने अपने इतने समय को व्यर्थ ही रस सिद्धि के फेर मे पडकर गवा दिया। सोने से इतना प्रेम था तो अपने राज महल मे वह क्या कम था। वह वहा अपरिमित था। उसे तो आत्म गुण की पूर्णता प्राप्त करने के लिए हम लोगो ने छोडा था। आत्मसिद्धि हो जाने पर वह जड पदार्थ अपने किस काम का है? इसलिए यह सव छोडकर आत्म सिद्धि से लगाना उचित है।

शुभचन्द्र की यह यथार्थ बात सुनकर भर्तृहरि को यथार्थ ज्ञान होगया और वे दिगम्वर वीत रागी यथार्थ साधु वन गये।

इसीलिए योगी आत्मसिद्धि करते हैं और इस सिद्धि की तरफ लक्ष्य नही करते।१०५।

रस सिद्धि जव नही चाहते तब काम देव का प्रभाव उनपर पड़ही कैसे सकता है? अर्थात् कामवासना उनको नही सताती।१०६।

योगी उस समय नवीन नवीन पदार्थो का ध्यान मे चिंतवन करता है।१०७। क्षुधा आदि परिष है पर विजय करते हुए शरीर से दडित करता है।१०८। कीर्ति देने वाले चारित्र मे स्थिर रहना है।१०९। पर द्रव्यो को फेंक कर पृथक् कर देना है।११०। दिखावटी प्रेम से रहित होता है।१११।

इसी प्रकार के ऋषि रूप को धारण करने वाले भद्र देही होते हैं।११२।

इस मध्य लोक की पृथ्वी पर रहकर भी आत्म रूपी भूवलय मे रहता है अर्थात् अपने शुद्धात्म स्वभाव मे रत रहता है।११३।

विश्व से ख्याति को आत्मा को फैलाने वाले मगल प्राभृत मे रहता है।११४।

विशेषार्थ—समस्त मगल प्राभृत में २०७३६०० अक्षर अक है वे ही पुन पुन घुमा फिरा कर समस्त भूवलय मे प्रयुक्त हुए हैं इसलिए भूवलय ही

मगल प्राभृत है और मगल प्राभृत ही भूवलय है। इसी भूवलय के अक्षरो को भिन्न भिन्न प्रणालि से भिन्न भिन्न पृष्ठो के पढने पर ३२४०० भूवलय वन जाते हैं।

सर्व जीवो के भय को निवारण करने वाले योगी को भय कहा से आयेगा। जिस योगी ने परानु राग को जीत लिया है इन योगी राज को भय कहा से होगा, स्वय शुद्ध रूपानु चरण मे रत रहने वाले योगी को भय कहा? सम्पूर्ण नय मार्ग की आकुलता को छोडकर आत्म चितवन मे रहने वाले योगी पूछता है कि भय कैसा है ॥११५॥

जो योगी असमान शान्त भाव में रहने के कारण त्रस स्थावर जीवो के हित को साधन करने वाला होता है, वह योगी शाश्वत मुक्ति सुख को प्राप्त कर लेता है। क्योकि वह योगी देहादिक ससार के सम्पूर्ण पोद्गलिक पदार्थों को अपने से भिन्न समझता है और वह योगी विचार करता है कि इन पौद्गलिक पर पदार्थों मे होने वाले सुख दु ख की आकुलता का कितना वल है इसको मैं देख लू गा। इस प्रकार धैर्य धारण करते हुए सम्पूर्ण कर्म मल को नाशकर शुद्धआत्मा वन जाता है ॥११६-११७॥

अर्हंत्सिद्धादि नव पदो को गुणा कार रूप अपने आत्म गौरव को वढते हुए वह योगी अपने आत्मस्वरूप को शुद्ध वनाता है तो उसके पास पर पदार्थो के प्रति तिलमात्र भी राग नही रह जाता है ॥११८॥

हे आत्मन! जय हो जय हो! इस प्रकार परम उल्लास को प्राप्त होते हुए तथा पर पदार्थों के लगाव को दूर हटाते हुए केवल अपने शुद्ध आत्मा के चितवन में ही लीन हो रहा है ॥११६॥

वह योगी—जव अर्हंत्सिद्धादि नव पदो के चितवन में एकाग्रतापूर्वक तल्लीन होता है एव नवम अङ्क की महिमा को प्राप्त करता है तव उस समय उस नवम अङ्क की महिमामय अपने आप को ही अनुभव करते हुए तथा नवम अङ्क और अक्षर को समान देखते हुये वह भव भय का नाश करने वाला होता है ॥१२०॥

जव तक कि यह ससारी जीव नवम अक और अक्षरो मे भेद समझता जा रहा था तभी तक इसको जन्म मरण करना पड रहा था। अत जव उन दोनो में अभेद स्थापना कर लेता है तो सहज मे जन्म मरण से रहित हो जाता है। ॥१२१॥

अज्ञान रूपी जो अधकार था अव वह नष्ट हो गया अर्थात् उसको भगा दिया ॥१२२॥

वह योगी निरजन पद का धारी होता है ॥१२३॥

उनको विशाल धर्म साम्राज्य मिल जाता है ॥१२४॥

धर्म रूपी पर्वत की शिखर पर पहुच जाता है ॥१२५॥

अर्थात् धर्म द्रव्य लोक के अन्त तक है इस लिये यह आत्मा उसके अन्त तक पहुच जाता है।

उसकी कवि कल्पना भी नही कर सकता है ॥१२६॥

अपने आत्म-तत्व के साथ अन्य सपूर्ण तत्व को जानता है ॥१२७॥

सभी गणित शास्त्र तत्वज्ञो का यह कथन है कि नव अ क को दो अक से विभाजित करने पर शेष शून्य नही आता है किन्तु जैनाचार्यों ने असाध्य कार्य को भी साध्य कर दिया है, अर्थात् नव को दो से विभाजित करके शेष शून्य को वचा दिया है। इसका विवरण दूसरे अध्याय के विवेचन में कर चुके हैं, वहा से समझ लेना ॥१२८॥

यह योगी अनादि काल से चले आये भव समुद्र के जन्म रूप जल के कणो को ऊपर रहे हुए गणित रूप से जान लेता है।

नवकार मत्र को जपते रहता है ॥१२०॥

अ. इ. उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ इन नव स्वरो को मिला देता है। ऐसे

योगियो का गुण गान करने वाला यह भूवलय है। परद्रव्य के दर्शन करने से जिस कर्म का बध होता है वह कर्म सम्यक्त्व को शुद्ध नही करता है ऐसा अरहंत, आचार्यादि, गुरुओ ने समझाया है। परम स्वरूपाचरण मे रहने वाले आत्मा को ससार से निकाल कर सम्यक्त्व चारित्र मे रहने के कारण मन की ओर अरहत और सिद्धो को लाकर स्थिर करने से सिद्ध पद प्राप्त होता है। ऐसा अरहत परमेष्ठियो ने कहा है। अर्थात् कानडी काव्य का १ छन्द सागत्य २ चरित्र मे ही गर्भित है ऐसा भी इसका अर्थ होता है।

जिन जिन भावो मे जो असाध्य है, इस बात को वृषभ सेन आदि आचार्यों ने साध्य कहा है भव्य जीवो को आचार विचार चारित्रादि मे स्थित करने वाले अन्य आगम मे किसी प्रकार उघृत नही किया है ॥१३५॥

सभी आचार्यो ने परम्परा परिपाटी के अनुसार मगल तथा सुख मय निराकुलतायें सराहनीय धर्म को अकाक्षर मिश्र रूप से उत्पन्न होने वाली वाणी की परम्परा पद्धति के अनुसार ही भगवान महावीर की वाणी से लिया है, इसलिये यह वाणी यथार्थ रूप है ॥१३६॥

यह निराकुल अर्थात् आकुलता रहित मार्ग मगल रूप होने के कारण सतोष की वृद्धि करने वाला है। और परम अर्थात् उत्कृष्ट करुणामय गणित से निकल आता है इसलिए इसका दूसरा नाम दयामय धर्म भी है ॥१३७॥

यह धर्म अरहत भगवान के मुख कमल से प्रकट हुआ है ॥१३८॥

सख्यात अको से भी गुणा कर सकते है ॥१३९॥

उत्कृष्ट औषध ऋद्धि गणित को यह वतलाने वाला है ॥१४०॥

आठ प्रकारो की बुद्धि ऋद्धि को सुलभ अको से बतलाने वाला है ॥१४१॥

भिन्न भिन्न अनेक अतिशय युक्त सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला है॥१४२॥

भव्य जीवो का उपकार करने के लिए आचार्यो ने लिखा है ॥१४३॥

ससार सागर में अनेक वार भ्रमण करते करते अत्यंत भय भीत होते आये हुए जीवो की रक्षा करता है सभी जीवों को हर्ष उत्पन्न करने वाला यह वाक्य है। यह वाक्य सम्पूर्ण भरत खड की सम्पत्ति है ॥१४६॥

परमोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान की निधि है ॥१४७॥

सुलभ साहित्य का गणित है ॥१४८॥

परम उत्कृष्ट ज्ञान को ७१८ भाग में विभाजित किया गया है ॥१४९॥

उन अनेक प्रकार की विधियो को भाषाओ के नामसे अकित किया है वे सभी इस भूवलय मे हैं ॥१५०॥

इसलिये अरहत देव ने ही इस भूवलय का कथन किया है ॥१५१॥

इस श्री महावीर की सर्वांग सुन्दर दिव्य ध्वनि को शूर दिगम्बर मुनियो ने मार्ग मे विहार करते समय अध्यात्म रूप मे लिखा तद्रूप यह भूवलय ग्रन्थ है॥१५२॥

इस काव्य को पढने से सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो जाती है। शेष को नष्ट कर सिद्ध पद को प्राप्त करता है। इस लिए भव्य भावक (जीवो) मनुष्य के द्वारा इसकी आराधना करते हुए गुणाकार रूपी काव्य है ॥१५३॥

इस भूवलय ग्रन्थ में साठ हजार प्रश्न हैं। इन प्रश्नो उत्तर को देते समय प्रत्येक प्रश्न पर दृष्टान्त पूर्वक विवेचन है। इस ग्रन्थ को चौदह पूर्व तथा उस से प्रकट हुई वस्तु भी कहते हैं। जिन्होने अष्ट कर्मों को नष्ट किया है ऐसे भगवान ने कहा है। अत इस भूवलय ग्रन्थ में अष्ट मगल द्रव्य हैं ॥१५४॥

जिनेन्द्र देव की भक्ति करते समय मन वचन काय को कृत कारित अनुमोदना इन तीनो से गुणा करने से नौ गुणनफल आता है। फिर इन अको को अरहन्त सिद्धादि नौ पदो से गुणा करने से ८१ (इक्यासी) सख्या हो जाती है। इस प्रकार गणना करने वाले 'गणक' ऐसा कहते हैं। उन गणको के अनुभव मे आया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१५५॥

इस भूवलय मे चौसठ कलायें है। यह सव चौसठ कलाएँ नौ अक में ही अन्तर्गत हैं। यह नौ अक समस्त जीवो के चारित्र को शुद्ध करते हुए

अपने आत्मा के समीप में लाने वाला यह दिव्य भूवलय काव्य है ॥१५६॥

जनता का पालन, सच्चरित्र द्वारा कराने वाला यह काव्य है ॥१५७॥

इस काव्य को पढने से सर्व प्रकार की उन्नति होती रहती है इसलिये सर्वोदय काव्य है ॥१५८॥

काल को वताने वाली जल, घटिका के समान यह दिव्य एक है॥१५९॥

केलो के पत्ते के उद्गम काल में जैसी कोमलता और सुन्दरता रहती है वैसे ही यह मृदु सुन्दर काव्य है ॥१६०॥

अत्यत सूक्ष्म अक्षर वाला यह सरसाक काव्य है ॥१६१॥

तोता और कोयल के शब्द के सामान सुनने मे प्रिय लगने वाला यह काव्य है ॥१६२॥

कुमारी बालिका की बोली जैसे सुनने में प्रिय लगती है और माग-लिक होती है वैसे ही यह काव्य सुनने में प्रिय लगता है और मगल को देता है ॥१६३॥

प्रथम कामदेव गोम्मटेश्वर का यह काव्य है ॥१६४॥

अदत धावनदि अठाईस मूल गुणो को धारण करने वाले दिगम्वर मुनियो का यह काव्य है ॥१६५॥

सम्पूर्ण जगत के अज्ञान अधकार का नाश करने वाला यह काव्य है। ॥१६६॥

इस काव्य का अध्ययन करने वाला मनुष्य व्रती बन जाता है ॥१६७॥

व्रत को उज्ज्वल करने वाला यह काव्य है ॥१६८॥

आनन्द को अत्यत बढाने वाला यह आध्यत्मा काव्य है ॥१६९॥

दिगम्वर मुनि विरचित यह काव्य है ॥१७०॥

जिसको कर्णाटक कहा जाता है उस भाषा का नाम वास्तव में कर्माटक है यह बात कर्णाटक राज्य के दो करोड़ आदमियो में आज भी प्रचलित है। भगवान की वाणी भी मूल में इसी भाषा मे प्रचलित हुई थी इसलिए ग्रन्थ को कुमुदेन्दु आचार्य ने इसी भाषा में लिखा है।

इस भूतल पर तीन सौ त्रेसठ मत देखने मे आ रहे हैं जो कि एक दूसरे से परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं और सदा ही लडते रहते हैं उन सव को एकत्रित करके मैत्रीपूर्वक रखने वाला स्याद्वाद है। एव उस स्याद्वाद के द्वारा श्री आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ मे वडी खूवी के साथ शातिपूर्वक उन सव को अपनाया है ॥१७१॥

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से जिन भाषाओ का लाभ हमको नही हैं उन सब भाषाओ का ज्ञान भी सरलता पूर्वक हो जाता है। एव विनय पूर्वक इसका अनुमान करने से अध्यात्मसिद्धि होकर वह आदमी अचल वन जाता है। इस प्रकार प्रतिपादन करने वाले इस तीसरे अध्याय में, ७२९० अङ्क हैं जिन में आ जाते हैं ऐसे दश चक्र हैं। उन्ही दशचक्रो को दूसरी रीति से पढने पर १०५६६ अक और निकलते हैं। इन दोनो को मिलाने पर १४४ कम १८००० अक्षर हो जाते हैं ॥१७२॥

सम्पूर्ण ससार के दु.ख को नष्ट करने वाला सोऽहं यह अपूर्व मन्त्र हैं इसका अर्थ होता है कि युग के आदि में होने वाले भगवान ऋषभ देव की सिद्धात्मा का जैसा स्वरूप है वैसा ही मेरा भी स्वरूप है।

प्रश्न -सिद्ध भगवान तो अनादि से हैं फिर श्री ऋषभदेव को ही क्यो लिया? इसका उत्तर यह है कि—श्री ऋषभ देव भगवान ने ही प्रारम्भ में अपनी पुत्री सुन्दरी को अक भाषा में यह भूवलय ग्रन्थ पढाया था। जो कि नौ ९ अको में सम्पादित किया हुआ है ॥१७४॥

इति तीसरा आ ३ प्लुत अ अध्याय समाप्त हुआ।

इस अध्याय के अन्तर्गत प्राकृत भगवद्गीता है उसको यहा उधृत करते हैं।

आणेहि अणन्तेहि गुणेहि जुत्तो विशुद्धचारित्तो ।
भवभयदञ्जणवच्छो महवीरो अत्थकतारों ।

अर्थ—आ (णा) णेहि यान ज्ञानादी अनन्त गुणो से युक्त विशुद्ध चारित्र वाले भव भय का नाश करने वाले भगवान महावीर ही इस ग्रंथ के अर्थ कर्ता हैं।

इसी के अन्तर्गत यह निम्न लिखित मगलाचरण का श्लोक निकलता

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित एन तस्मै श्री गुरु वेन्नमः ॥

इस श्लोक मे आये हुये 'एन' के स्थान पर सस्कृत भाषा की दृष्टि से 'येन' होना चाहिये परन्तु चित्र काव्य और श्लेषाल कार में एक तथा ये को एक ही मान लिया जाता है। इसी प्रकार गुरुवेन्न नम के बारे में भी समझलेना ।
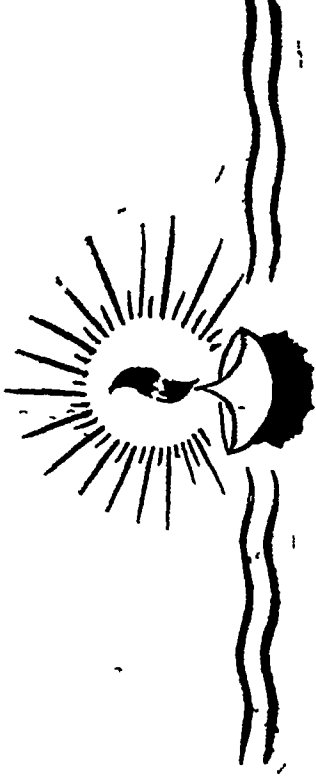
चौथा अध्याय

इ॰ ष्टोपदेशव नष्ट कर्माशव । स्पष्टदे अरहतरु श्॰ री ॥ अष्टगुणान्वित सिद्धर स्मरिसिद । अष्टमजिन सिद्ध काव्य ॥१॥
य॰ शश्वतिदेविय करविडिदादि । वृषभजिनेशन काव्य ॥ अश री॰ र सिद्धत्व वडर्दु वाळुव काव्य । ऋषिवंशदादि भूवलय ॥२॥
मू॰ रुवेळेयोळु सामायिकवेनिल्व । वीरजिनेन्द्रदारियद ॥ सेरि प॰ द्वतियतिशयवनुभव । सारभव्यर दिव्य काव्य ॥३॥
ल॰ क्षणवरियुत स्वसमयवद सारि । अक्षरदकदोळ्वे र सि॰ ॥ शिक्षेयोळेंदिद्रिय मत्तु मनवनु । लक्षणदिंस्तब्धगोळिसि ॥४॥
त॰ नुवनु मरेयुत जिनरूपे नानेंब । घनविद्ये यनुभववागे ॥ म॰ नवेसिमृहासनवागिरलमलात्म । जिननते कमलदासनदि ॥५॥

घनवैभवदिंद कुळितु ॥६॥ जिननते कायोत्सर्गदलि ॥७॥ अनुदिनदभ्यासबलदि ॥८॥
दिनदिनयोगहेच्चुतिरे ॥९॥ इननतंतण्पिन ज्योति ॥१०॥ घनवागि बेळगुतलिरलु ॥११॥
तनगेताने ब्रह्मनेनुव ॥१२॥ जिन धर्मदनुभव वरलु ॥१३॥ ऋणद देहव मरेतिहरु ॥१४॥
एणिकेगे बारदध्यात्म ॥१५॥ घनप्रतिक्रमण तानागे ॥१६॥ चिन्मुमय मुद्रेयदोदगे ॥१७॥
घनरत्न मूरर वेळकु ॥१८॥ तनगेताने वंदु वेळगे ॥१९॥ मनुमथनुपटल करगे ॥२०॥
जिननाथनोरेद भूवलय ॥२१॥ तनुविनोळात्म भूवलय ॥२२॥ वेनुतितु निलुव कुळ्ळिरुव ॥२३॥
तनुवदे स्वसमय सार ॥२४॥

न॰ अवदकदते स्वयम् परिपूर्णद । अवयववदे शुद्ध गु॰ णद ॥ अवतार स्थानद हृदिनाल्करल्लद । चिन्मुमय सिद्ध सिद्धांत ॥२५॥
त॰ नुवनु परवेंदरियुत आपर । दनुरागवनु तोरेदाग ॥ जिन र॰ सिद्धर रूपिननुभव हेच्चुत । तनु रूपिनतात्म रूपु ॥२६॥
क॰ रगुवुदास्रव बरुव वधवदिल्ल । निराकुलतेय पद्म वे॰ ळु ॥ सरमालेयतें तन्नेदेयलिकाण्वाग । अरुहनपददंग गुणित ॥२७॥
त्॰ रतरवाद अद्भुतपरिणामद । सरस संपदवेल्ल अव न॰ ॥ हरुषवनेरिप समयद लब्धियु । बरुवागआ अंतरात्म ॥२८॥

बरुवाग अवनतरात्म ॥२९॥ परिणाम लब्धियागुवदु ॥३०॥ वरलरहंत तानेनुव ॥३१॥
वरुषवर्द्धनकादि एनुव ॥३२॥ बरे वरुवाग तन्नात्म ॥३३॥ गुरुवादे जगकेएंदेनुव ॥३४॥
अरहतरनु कडेनेनुव ॥३५॥ परिशुद्ध नाने एदेनुव ॥३६॥ परमात्म पदवडर्देनुव ॥३७॥
गुरुपद दोरेयितेंदेनुव ॥३८॥ सिरियायुतुज्ञानवें देनुव ॥३९॥ परममंगलनाल्कु एनुव ॥४०॥
परमात्म चरण भूवलय ॥४१॥

ता॰ नु तन्नंद पडेव कार्यदोळिर्पे । आनन्द शाश्वत सुख म॰ ॥ तानु तन्निंदले तनगागि पोदुव । तानल्लदन्यरिगरिया ॥४२॥
सि॰ वनव शाश्वत निर्मल नित्यनु । भववनेल्लव केडिसुव् ह॰ ॥ अविरल सुखसिद्धियवने महादेव । अवनादि मगल भद्र ॥४३॥
रि॰ द्धियाशेय होद्धदिरुव चिन्मयनु । शुद्धत्ववेल्लमह श्॰ री ॥ बुद्धिर्द्धियाचार्य पाठक साधुवु । शुद्ध सम्यक्त्वदसारा ॥४४॥

वी* तरागनु निरामयनु निर्मोहियु । कातरविनितिल्लदिह ।। ख्यात री* योळु बाळुव भव्यरिगाश्रय । पूत पुण्यनु शुभ सौख्य ।।४५।।
रों* ष तोषगळिल्ल क्रोध मोहगळिल्ल । आशेयनंतानुबध ।। प* असरिसन्नेडेयिल्लदवननुभव काव्य। श्री ज्ञान सिद्ध भूवलय ।।४६।।

श्री ज्ञानाडिद दिव्य वाणि ।।४७।। घासि अप्रत्याख्यान ।।४८।। राशि कषायगळळिगुम् ।।४९।।
मासुत प्रत्याख्यान ।।५०।। रोषद सूक्ष्मसम्ज्वलन ।।५१।। लेसिन जलरेखेयन्ते ।।५२।।
आशाजलद संज्वलन ।।५३।। लेसिनिं भावदोळ् मेरेये ।।५४।। तासुतासिनोळगनन्त ।।५५।।
राशिकषायभेदगळ ।।५६।। घासिय माडुतवहुदु ।।५७।। लेसिन जलरेखेयन्ते ।।५८।।
मासदे बन्दुसेरुवुदु ।।५९।। आसेय भेदविज्ञान ।।६०।। राशिमाळ्पुदु तुषगळनु ।।६१।।
माषदकाळिनन्तात्मा ।।६२।। श्री सनन्ददलि योगदोळु ।।६३।। श्री सिद्धालयवे अल्लिहुदु ।।६४।।
आसिद्धालयद अनन्त ।७५।। राशिय सिद्ध भूवलय ।।६६।।

इ* दरोळगिरुव षड्द्रव्यगळेल्लव । हुदुगिसिकोन्डिह प र* म ।। पदप्राप्त जीवने पंचास्तिकायदे । अदु मत्ते एळु तत्वगळ ।।६७।।
नृ* वपदार्थगळेम्ब अवसर वस्तुव । नवयवदोळु तुम्बि म* रळि ।। अवनेल्लवनोन्दकूडिसि तिळियुव । अवुगळ लेक्कवे जीव ।।६८।।
द* रुशन ज्ञान चारित्रव वशगोन्डु । सरमाले इवनेल्ल मुरु गु* ।। शरदश्रोम्वत्तेळु ऐदारु कूडलु बरुवु द्दिप्पत्तेळरंक ।।६९।।
भू* वलय सिद्धान्त दिप्पत्तेळु । तावेल्लवनु होन्दिसि रु* व ।। श्री वीरवाणियोळ्वह "इ" मगल काव्य । ईविश्वदूर्ध्वलोकदलि ।।७०।।
दि* वगळग्रद तुत्ततुदियलि बेळगुव । शिवलोक सलुव मान व्* वरु ।। धवल छत्राकार दग्रदगुरुलघु । सवियात्म गुणदोळगिहरु ।।७१।।

अवरव्याबाध गुणरु ।।७२।। नवनवोदित सूक्ष्म घनरु ।।७३।। अवरवगाहदोळिहरु ।।७४।।
सवियनन्तद ज्ञानधररु ।।७५।। नव सम्यक्त्व दर्शनरु ।।७६।। अवरनन्तानन्त बलरु ।।७७।।
अवरनागत सुखधररु ।।७८।। अवरती तद ज्ञानधररु ।।७९।। सविरुपिनशरीर घनरु ।।८०।।
अवरुशाश्वतरुचिन्मयरु ।।८१।। अवरावागलु नित्यर् ।।८२।। अवरसुखवु वेकेन्देनुव ।।८३।।
नवपद काव्य भूवलय ।।८४।।

वि* श्वदग्रके गमनवनिट्टु आ योगि । विश्वेश्वर सिद्धवर वे* ।। दस्वरूपरध्यानिसुत भावदोळिर्प । विश्वज्ञ काव्यदग्रविदु ।।८५।।
प्* रमामृतकाव्य अरहन्त भाषित । गुरु परम्परे यादि प* दद ।। गुरु सिद्धपदप्राप्तियागवेकेम्वर्गे । सरसविद्यागम काव्य ।।८६।।
प* द्धतियोळु चक्रबध हंसदवध । शुद्धाक्षराक र* क्षेयनु ।। होद्दिद अपुनरुक्ताक्षर पद्मद । शुद्धद नवमांक बंध ।।८७।।
व* र पद्म महापद्म द्वीप सागर बध । परम पल्यद अ मृ* बु बध ।। सरस सलाके श्रेणिय अकदबध । सरियागेलोकदबध ।।८८।।
रो* मकूपद बध क्रौंच मयूरद । सीमातीतद वन्ध ।। कामन प* दपद्म नख चक्रबधद । सीमातीतद लेक्क बन्ध ।।८९।।

ने मदकिरणदबध ।।९०।। स्वामिय नियमदबन्ध ।।९१।। हेमरत्नद पद्मबन्ध ।।९२।। हेमसिंहासन बन्ध ।।९३।।
ने मनिष्टेय व्रतबन्ध ।।९४।। प्रेमरोषब गेल्वबन्ध ।।९५।। श्री महावीर नबन्ध ।।९६।। ई महियतिशयबध ।।९७।।

णु* णुपाद गुडुचाद धर्म कर्मदलोह् । वनुभववदे स्वर्ण श्री* ।। अनुभवगम्यद समवसरण काव्य । घनसिद्धरसदिव्यकाव्य ।।१५४।।
त* नुवनकाशकेहारिसिळिलिसुव । घनवैमानिक दिव्य काव्य ।। प* नसपुष्पद काव्य विश्वम्भर काव्य । जिनरूपिनभद्र काव्य ।।१५५।।
न्* नेकोनेवोगिसि भव्यजीवरनेल्ल । जिनरूपिगैदिपकाव्य ।। र* णकहळेय कूगनिल्लवागिप काव्य । दनुभवखेचर काव्य ।।१५६।।
ते* रनुयळेयुवदारियोळ् बरुवक । दारैकेय मादलद । सार मा* दंववनु बेरसिमाडुवदिव्य । नूरारुरोग नाशकद ।।१५७।।

दारिय पुष्पायुर्वेद ।।१५८।। मारनगेयकेदगेय ।।१५९।। सारहुविन दिव्य योग ।।१६०।।
साराग्निपुट दिव्य योग ।।१६१।। पारदपादरिपुष्प ।।१६२।। पारद जयदग्नि योग ।।१६३।।
सारात्मशुद्धि पारदव ।।१६४।। नूरारुसपुटयोग ।।१६५।। सारस्वतर वाहनद ।।१६६।।
एरिसितिळिव पारदद ।।१६७।। श्रीरमेगिरियर्कर्णकेय ।।१६८।। सेरिसेबरुव हूवगळ ।।१६९।।
दारियगुणवृद्धियक ।।१७०।। मूररवर्ग शलाके ।।१७१।। यारैके यिरुव भूवलय ।।१७२।।
शूररकाव्य भूवलय ।।१७३

से* रदमनवनु पारददोळु कट्टि । नूरुसाविर हूवुगळ ।। सारव त्* न्दुमाड़ त रसमणियनु । सेरिसे भूवलय सिद्धि ।।१७४।।
स* रुवार्थसिद्धियप्रदश्वेत (शिलेयद) क्षत्रव । बरेदकमार्ग मृ* बरलु ।। अरुहादि ओवत्तम् बेरेसिह् ताणदो (लरियिरिसिद्धान्तवदम्)
ळरिवसिद्धान्त भूवलय ।।१७५।।

आ* गममार्गदहदिमूरु कोटिय । तागिदआयुर्वेद (प्राणावाय)।। सागरवन् ने* रिअपुनरुक्तंकद (अपुनरक्ताक्षर) । सागर रत्नमंजूष ।।१७६।।
इ* रुव भूवलय दोळेळ्नूरहदिनैदु । सरस भाषेगळवतार ।। न* ररिगे प्रथम संयोगदे बहुदेब । शिरियिह् सिद्ध भूवलय ।।१७७।।

सरियिह् एरडने योग ।।१७८।। सिरियिह् मूरु सयोग ।।१७९।। सिरियिह् नाल्कु संयोग ।।१८०।।
परिबाह् अरवत्तनाल्कु ।।१८१।। परमात्म कलेयक भंग ।।१८२।। परमामृतद भूवलय ।।१८३।।

रि* ढियादामूरु आदिभगदतेर । होददिकोडिहअकगळ ।। म* द्दिनोळेळु साविरदिन्नूरतो बत्तु । सिद्धाक बागलु "इ"ल्लि ।।१८५।।
या* वअतर आरेरडोमुवत्ताहत्तु । ईवक्षरगळेल्लवा ह* ।। पावन दंकगळतर काव्यव । नोवदे [भावदेवरुवंकवेल्ल]काव भूवलय ।।१८६।।

"इ" ७२९०+ अतर = १०९२६ = १८२१६ अथवा अ । इ – ४६६११ +१८२१६=६४८२७ । अब पहले अक्षर से लेकर ऊपर से नीचे तक आ जाय तो प्राकृत भाषा भगवद्गीता अर्थात् पुरुगीता आती है सो देखिये, यिय मूल ततकत्ता सिरिवीरो इदभूदिविप्पवरो ।

उवतंते कत्तारो अणुतं ते सेसाआइरिया ।।४।।

इसी प्रकार सस्कृत भाषा भी निकलती है–श्री परम गुरवे नमह । श्री परमगुरवे परंपराचार्य गुरवे नमह । श्री परमात्मने नमह ।

इति चतुर्थोध्यायः ।

चौथाअध्याय

यह भूवलय आत्मा के लिये इष्ट उपदेश है, यह अष्ट कर्म को नष्ट करने वाला है। अर्हन्त भगवान की लक्ष्मी को प्रदान करने वाला और अष्ट गुणों से युक्त सिद्ध परमेष्ठियों में सदा स्थिर रहने वाला अष्टम जिन (चन्द्रप्रभु) सिद्ध काव्य है ॥१॥

श्री वृषभ देव ने जब यशस्वती देवी के साथ विवाह किया उस समय का यह काव्य है और सशरीर अवस्था अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त कराने वाला यह काव्य है।

यह ऋषि वंश का आदि स्थान भूवलय है ॥२॥

यह तीन काल में होने वाले सामायिक को बताने वाला, उन वीर जिनों के मार्ग का अतिशय अनुभव करा देने वाला सार अध्यात्मिक काव्य है ॥३॥

स्वशुद्धात्मा के कथन रूपी अक्षर को जानकर उसी शिक्षा के द्वारा मन और पाचो इन्द्रियों को लक्षण से स्थिर करके स्वशरीर को भूलकर "भगवान जिनेन्द्र देव के समान मैं स्वय हू" ऐसी महान् निष्ठा का अनुभव होकर निजमन ही भगवान के लिये सिंहासन स्वरूप प्रतीत होता है और मेरी आत्मा भगवान् जिनेश्वर के समान हृदय रूपी पद्मासन पर विराजमान होकर सुशोभित हो रही है ॥४, ५॥

जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव समवशरण में अष्ट महा प्रातिहार्य तथा ३४ अतिशयो से समन्वित होकर प्रशान्त मुद्रा से विराजमान हैं उसी प्रकार मेरी आत्मा भी हृदय रूपी पद्मासन पर विविध प्रकार के वैभव से सुशोभित हो रही है ॥६॥

इसी प्रकार मेरी आत्मा जिनेन्द्र देव के समान कायोत्सर्ग मे खडी हुई है ॥७॥

कायोत्सर्ग में किसके बल से खडा है ?

कायोत्सर्ग में होने वाले ३२ दोषो से रहित निरन्तर सिद्धात्मा के अभ्यास के बल से योगी खडा है ॥८॥

जैसे जैसे अभ्यास बढता जाता है वैसे वैसे योग भी बढता जाता है ॥९॥

तत्पश्चात् शीतल चन्द्रमा के समान आत्म-ज्योति बढ़ती जाती है ॥१०॥

तब आत्मज्योति पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जाती है ॥११॥

ऐसा हो जाने पर वह अपने को आप ही ब्रह्मस्वरूप अनुभव करने लगता है ॥१२॥

इस प्रकार अनुभव करते हुए जब विशुद्ध जैन धर्म का अनुभव आता है ॥१३॥

तब अनादि काल से प्राप्त कर्म रूपी शरीर को भूल जाता है ॥१४॥

गणना में न आने वाले अध्यात्म को ॥१५॥

पाप रूप महान् प्रतिक्रमण रूप होकर ॥१६॥

चिन्मय अर्थात् चित्स्वरूप मुद्रा प्राप्त होती है ॥१७॥

तत्पश्चात् उपर्युक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी रत्न की ज्योति प्रगट हो जाती है ॥१८॥

तब वह ज्योति अपने पास पहुचकर स्वयमेव अपनी आरती करती है ॥१९॥

ऐसा होते ही मन्मथ रूपी पटल पिघल जाता है ॥२०॥

मन्मथ रूपी पटल पिघलने के बाद जिस प्रकार भगवान् जिनेन्द्र देव को संपूर्ण भूवलय दिखाई देता है उसी प्रकार उस आत्मरत योगी को सकल भूवलय दिखाई पड़ता है ॥२१॥

तब अपने शरीरस्थ आत्मरूपी भूवलय में समस्त भूवलय दिखाई पडता है ॥२२॥

इस प्रकार विचार करके अपनी आत्मा के निकट विराजमान हुये योगी को ॥२३॥

वही शरीर स्वचिन्मय सार है ॥२४॥

जिस प्रकार ९ अक के ऊपर कोई दूसरी सख्या न होने से ९ को परिपूर्ण अक माना जाता है उसी प्रकार शुद्ध गुण अवयवो से सहित शुद्ध आत्मा भी परिपूर्ण है। वही परिपूर्ण शुद्धावस्था सिद्ध पद मे है। वह सिद्ध पद चोदह

गुणस्थान के अन्त में चिन्मय सिद्ध स्वरूप है ऐसा भूवलय सिद्धान्त का कथन है। इस प्रकार अनुभव होने के बाद अपने शरीर को पर मानते हुये उसे त्याग देने के पश्चात् श्री जिनेन्द्र भगवान् तथा सिद्ध भगवान के स्वरूप को अनुभव अपने आत्म में बढ़ते जाने से ऐसा प्रतीत है कि "इस आत्म का रूप ही मेरा शरीर है" ॥२५, २६॥

इस प्रकार जब आत्मरत योगी की भावना सिद्धात्मा में सुदृढ हो जाती ह तब आने वाला कर्मास्र तथा वध रुक जाता है। तत्पचात् वह निराकुल होकर भगवान के चरण कमल के नीचे सात कमल को माला रूप मे जब अपने हृदय में धारण करके देखता है तब अरहन्त भगवान के गुणाकार द्विगुण वृद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥२७॥

तव विविध भाँति के चित्र विचित्रित अद्भुत परिणामो के साथ सरस सपत्ति उस योगी के हृदय मे हर्ष को बढाने वाली काललब्धि जब प्राप्त हो जाती है तब उस अन्तरात्मा अर्थात् उस योगी की अन्तरात्मा को परिणाम लब्धि होती है ॥३०॥

विवेचन :—

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जी ने इस भूवलय के "चतुर्थ" अध्याय में २७ वें श्लोक से लेकर ३० वे श्लोक तक इस प्रकार विवेचन किया है कि जब जिनेन्द्र देव तथा सिद्ध भगवान् के स्वरूप का अनुभव बढता जाता है तब अपने आत्म रूपी शरीर मे रत हो जाता है। तब सत्ता में रहने वाले कर्म स्वय पिघल जाते हैं और वाहर से आने वाले नये कर्म रुक जाते हैं। तत्पश्चात् निराकुलता उत्पन्न करने वाले ७ कमलो की माला के समान जब अपने हृदय मे योगी देखने लगता हैं तब अरहन्त भगवान् के चरण के नीचे सात कमलो के द्वारा अपने शुभ परिणामो को द्विगुण २ वृद्धि प्राप्त कर लेता है वह द्विगुण इस प्रकार है

```
  २२५ × २२५
  ----------
     ११२५
     ४५०
    ४५०
  ----------
    ५०६२५
```

तत्र विलक्षणपरिणमन सहित सरस सपत्ति के द्वारा उसके हर्ष को बढाने वाली काय लब्धि प्राप्त होने से उस अन्तरात्मा को करण लब्धि होती है।

करण लब्धि भेदाभेद रत्नत्रयात्मक रूप मोक्ष मार्ग को दिखाती है, तथा सकल कर्मक्षय के लक्षण स्वरूप मोक्ष को दिखलाती है और आगे अतीन्द्रिय परम ज्ञानानन्दमय मोक्ष स्थल को अनेक नय निक्षेप प्रमाणो से खिदा देती है। उसे करण लब्धि कहते हैं। वह करण तीन प्रकार का है—

अध प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण तथा अनिवृत्ति करण। प्रत्येक करण का समय अन्तर्मुहूर्त होता है। उस अन्तर्मुहूर्त मे पहले की अपेक्षा दूसरा सख्यात गुण हीन काल होता है जो कि अल्प समय मे ही अधिक विशुद्धि को प्राप्त होता है और अध प्रवृत्ति करण से प्रति समय अनन्तगुण विशुद्धि रूप धारण करते हुये अन्तर्मुहूर्त तक चला जाता है अर्थात् पहले समय मे जितनी विशुद्धि प्राप्त हुई थी उससे अनन्त गुणी विशुद्धि दूसरे समय मे प्राप्त होती है।

अध प्रवृत्ति करण प्रत्येक समय मे अनन्तगुण विशुद्धि करता हुआ निरन्तर अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त चला जाता है। वहा पर होने वाली विशुद्धि असख्यात लोक प्रमाण गणना का महत्व रखती हुई चरम काल पर्यन्त समान वृद्धि से होती जाती है।

प्रश्न—लोक तो एक ही है, फिर असख्यात लोक की कल्पना कैसे हुई ?

उत्तर—एक परमाणु के प्रदेश मे अनन्तानन्त जीव रहते हैं। उन अनन्त जोवो मे से एक जीव के अनन्तानन्त कर्म होते हैं। ये समस्त जीव और अजीव एक परमाणु प्रदेश मे भी रहते हैं। एक परमाणु प्रदेश मे इतने ही जीव और अजीव समाविष्ट होने से असख्यात परमाणु प्रदेशात्मक इस लोक मे अनन्तानन्त पदार्थ रहने मे क्या आश्चर्य है ? अर्थात् असख्यात लोक प्रमाण हो सकते हैं।

स्थिति वधापसरण का कारण होने से इस करण को अध प्रवृत्ति करण कहते हैं। यहा पर भिन्न समयवर्ती जीवो के परिणाम समान भी होते हैं। तदन्तर यहा से ऊपर अपूर्वकरण नामक करण होता है। उस करण मे प्रति समय में असख्यात लोक मात्र परिणाम होते है। जोकि क्रम से समान सख्या से बढ़ते हुए असख्यात लोक मात्र हुआ करते हैं। जोकि स्थिति

वधापसरण, स्थिति काण्डकघात, अनुभाग काण्डकघात, गुणसक्रमण और गुण श्रेणी निर्जरा इत्यादि क्रिया करने का कारण होते हैं।

वहा से ऊपर अनिवृत्तिकरण मे प्रति समय एक ही परिणाम होता है। स्थिति वधापसरणादि क्रियायें पहले की भाँति होती हैं। उस करण के अन्तिम समय मे होने वाली क्रिया को देखिये —

चारो गतियो मे से किसी भी गति मे जन्मा हुआ गर्भज, पचेन्द्रिय, सज्ञी पर्याप्तक सर्वविशुद्धि वाला जागृत अवस्था मे रहते हुये जीव प्रज्वलित होने वाली शुभ लेश्या को प्राप्त होकर, ज्ञानोपयोग मे रहने वाला होकर अनिवृत्ति करण रूप शक्ति को प्राप्त होता है वह शक्ति वज्रदडकघात के समान घात किये हुये ससार दुर्ग रूपी मिथ्यात्वोदय को अन्तर्मुहूर्त काल में विच्छेद कर सम्यग्ज्ञान लक्ष्मी के सगमोचित सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति का शुभ मुहुर्त यही है।

उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय में पापान्धकार को नाश करने के लिए सूर्य, सकल पदार्थों को इच्छा मात्र से प्रदान करने वाला चिन्तामणि, कभी भी न्यून न होने वाला, संवेगादि गुण की खानि ऐसा सम्यक्त्व होता है। और तब सम्यग्दर्शन हो जाने से ससार से मुक्त होने को स्वय अरहन्त देव स्वरूप वह अतरात्मा अपने को मानता है ॥३१॥

अनादि काल से आज तक अनन्त जन्म-मरण धारण किये और प्रत्येक जन्म मे अनित्य जयन्तिया (वर्ष वर्द्धनोत्सव) मनाई। परन्तु आज से (करण लब्धि हो जा पर) नित्य जीवन की प्रथम जयन्ती (वर्ष वर्द्धन महोत्सव) प्रारम्भ हुई, जो अनन्त काल पर्यन्त उत्तरोत्तर विजय देती हुई स्थिर रहेगी। इतना ही नही सव, ससारी जीव भी इसका जयगान करते हुये वर्षवर्द्धन महोत्सव मनाते रहेगे ॥३२॥

इस प्रकार नित्य सुखानुभव के प्रथम वर्ष प्रारम्भ होने के पश्चात् अपने आत्मा में ॥३३॥

तीनो लोको का मैं स्वय गुरु वन गया, ऐसा चिन्तन करता है ॥३४॥

मैंने अपने अन्दर अरहत भगवान को देख कर पहिचान लिया ॥३५॥

में समस्त परभाव रूप अशुद्धियो से रहित परम् विशुद्ध हू ॥३६॥

अव हम अन्तरात्मा पद से परमात्मा वन गये ॥३७॥

अव हमें सच्चा पचपरमेष्ठी का पद प्राप्त हो गया ॥३८॥

सम्पत्ति के दो भेद हैं। (१) अन्तरग सम्पत्ति (लक्ष्मी) और (२) वाह्य सम्पत्ति (लक्ष्मी)। धन गृह, वाहन इत्यादि से लेकर समवसरण पर्यन्त समस्त वस्तुयें वहिरग सम्पत्ति (लक्ष्मी) तथा ज्ञान, दर्शनादि अनन्त गुणो वाली अतरग सम्पत्ति (लक्ष्मी) है। इन दोनो सम्पत्तियो को प्राकृत और कानडी भाषा मे 'सिरि' और सस्कृत, हिन्दी इत्यादि मे श्री कहते हैं। लौकिक काव्य की रचना के प्रारम्भ और आत्म-शुद्धि के प्रारम्भ मे या दीक्षा के प्रारम्भ मे 'सिरि' और 'श्री' शब्दो का प्रयोग मगलकारी मान कर किया जाता है। कहा गया है कि —

"आदौ सकार प्रयोग सुखद"। अर्थात् आदि में सकार का प्रयोग सुखदायक होता है। 'सिरि' और 'श्री' ये दोनो शब्द हमे आत्म ज्ञान रूप में उपलब्ध हुये हैं, ऐसा वे योगी चिन्तन करते हैं ॥३९॥

मगल चार प्रकार के होते हैं। [१] अरहत मगल, [२] सिद्ध मगल, [३] साधु मगल, (४) तथा केवलि भगवान प्रणीत धर्म मगल ॥४०॥

ऊपर कहा हुआ जो भगवान का चरण है वही परमात्म-चरण रूप भूवलय है ॥४१॥

अपने आप के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले तथा उस कार्य में रहने वाले आनन्द से शासित जो आत्म रूप सुख है वह अपने आत्म ज्ञान-गम्य है, अन्य कोई जानने मे अशक्य है ॥४२॥

वही शिव है वही शाश्वत है, निर्मल है, नित्य है और अनन्त भव को नष्ट करने वाले अविरल सुख सिद्धि को प्राप्त किया हुआ महादेव है। वही अनादि मगल स्वरूप है ॥४३॥

वह ऋद्धि इत्यादि की आशा न करने वाला चिन्मय रूप है। अत्यन्त निर्मल शुद्धात्मा को प्राप्त हुआ बुद्धि, ऋद्धिधारी, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी है। यही शुद्ध सम्यक्त्व का सार है ॥४४॥

वह यही मेरी शुद्धात्मा वीतराग, निरामय, निर्मोही है। समस्त प्रकार के भय और चिन्ता से रहित है। ससारी भव्यजन के लिए इहलोक और परलोक

के सुख का साधन है, पवित्र है, पुण्यमय है तथा उत्तम सौख्य को देने के लिए आश्रयदाता है ॥४५॥

राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदि से रहित है, क्रोध, मान, माया लोभ जो अनन्तानु बन्धी की चौकडी है उससे रहित तथा अन्य प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान, सज्वलन इत्यादि कषायो के भेदो से रहित आप अपने अन्दर ही अनुभव किया हुआ शुद्धात्म काव्य नामक शिरीर अर्थात् सिद्ध भगवान का यह भूवलय है॥४६॥

यही भगवान की दिव्य वाणी है ॥ ४७ ॥

प्रत्याख्यानावरण नामक ॥ ४८ ॥

कषाय के ढेर को ॥ ४९ ॥

भस्म करते आये हुए प्रत्याख्यान ॥ ५० ॥

संयम को न घातने वाला सूक्ष्म सज्वलन कषाय है ॥ ५१ ॥

वह निर्मल जल रेखा के समान है ॥ ५२ ॥

ऐसे निर्मल जल के समान उज्ज्वल कषाय के मन्दोदय-वाले आत्मानुभव मे मग्न होते हैं ॥ ५३ ॥

अपने आत्मा के अन्दर हमेशा रमण करते हैं ॥ ५४ ॥

प्रति समय में अपने आत्मा के अन्दर ॥५५ ॥

कषाय राशियो कें ढेर को ॥५६॥

नाश करते हुए आता है कि ॥५७॥

जैसे निर्मल जल रेखा के समान ॥५८॥

तव अत्यन्त निर्मल शुद्धात्म-स्वरूप अपने अन्दर जैसे निर्मल गगा का पानी अपने घर मे आकर पाइप के द्वारा प्रविष्ट होता है और पीने योग्य होता है उसी प्रकार जैसे-जैसे कषाय ढेरो का उपशम होता जाता है वैसे ही अपने अन्दर आकर निर्मल शुद्ध भावो का प्रवेश होता है ॥५९॥

तव उसी समय उस योगी को भेद-विज्ञान प्राप्त होता है। यानी सम्पूर्ण पर-वस्तुओ से भिन्न तथा अपने शरीर से भी भिन्न विज्ञानमय आत्मानन्द सुख स्वरूप का अनुभव वह जीव प्राप्त कर लेता है ॥६०॥

तब उस समय आत्म-ध्यान-रत योगी जैसे उडद के ऊपर के छिलके को अलग कर देता है ॥६१॥

उसी तरह छिलके से भिन्न उडद की दाल के समान अत्यत परिशुद्ध अपने आत्मा मे रत होते हुए ॥६२॥

भगवान जिनेश्वर के समान निश्चल योग मे स्थिर होकर वैठ जाता है ॥६३॥

इस प्रकार योगी अपने योगान मे जिस समय रत रहता है उस समय अपने आत्मा के अन्दर ही सिद्धालय को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मैं इस समय शुद्धस्वरूप हू और अन्य किसी स्थान मे नही हू। शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर मैं सच्चे सिद्धालय में विराजमान हूँ ॥६४॥

उस सिद्धालय के अनन्त ॥६५॥

राशि के तुल्य यह सिद्ध भूवलय है ॥६६॥

इस भूवलय मे रहने वाले समस्त ६ द्रव्य पचास्ति काय सप्ततत्त्व नौ पदार्थ नामक वस्तुओ को मिलाकर गणित के अनुसार जानने वाला परमात्म स्वरूप जीव ही गणित है ॥६७-६८॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इन तीनो को मिलाकर सकलित कर गुणा करने से अर्थात् ३ × ३ = ९ × ३ = २७ इस तरह करने से २७ अक आता है। ६९॥

इस भूवलय सिद्धान्त के ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ९ पदार्थ इन सभी को मिलाकर आया हुआ जो २७ है यही श्री भगवान महावीर की वाणी के द्वारा आया हुआ यह मगल काव्य है। तीनो लोको के अग्र-भाग मे अनन्त, अनागत काल तक हमेशा प्रकाशमान होने वाला वह शिवलोक प्राप्त करने वाला मानव धवल छत्राकार के अग्र-भागमे अगुरुलघु आदिअत्यत अमृतमय शुद्धात्म गुणो मे चिरकाल पर्यन्त वास करता है। इसी प्रकार मेरी शुद्धात्मा भी धवल छत्राकार के मध्य मे अगुरुलघु सहित अत्यन्त अमृतमय सिद्धात्मा के गुणो मे विराजमान है ॥७०-७१॥

विवेचन—मोक्ष मे परमात्मा के अगुरुलघु नामक एक गुण है, यह गुण आत्मा का स्वभाविक गुण है, इस गुण के बल से आत्मा नीचे नही गिरता है और सिद्ध लोक से वाहर अलोक आकाश मे भी नही जाता है। इस प्रकार इस अगुरुलघु गुण का स्वभाव है। यह अगुरुलघु नामक जो गुण है आत्मा के

आठ गुणो मे से एक गुण है। इसी तरह आगम मे आठ कर्मों को आपस मे गुणाकार करके निकालते समय नाम कर्म के अनेक भेदो मे से एक अगुरु लघु नामक शब्द भी आता है वह नही समझना चाहिए। क्योकि सिद्धो के आठ गुणो मे जो अगुरुलघु शब्द आया है उसे 'अगुरुलघुत्व' कहते हैं इसलिए दोनो भिन्न-भिन्न हैं। वह अगुरुलघुत्व गुण कर्म से रहित है और जो अगुरुलघु है वह कर्म से सहित है।

सिद्ध भगवान अव्यावाध गुण से युक्त हैं।

अव्यावाध—

जिस जगह मे हम वैठे हैं उस जगह मे दूसरे मनुष्य नही बैठ सकते है इतना ही नही किन्तु हमारे पास भी नही वैठ सकते हैं, इसका कारण यह है कि उनके शरीर का पसीना हमको अपाय कारक होता है अर्थात् दोनो जनो का पसीना आपस में विरोध रूप है। परन्तु सिद्ध भगवान के एक ही जगह मे अनन्त सिद्ध भगवान होने पर भी हमारे शरीर धारी के समान उनको कोई भी बाधा नही होती है। श्री महावीर भगवान सर्व जघन्यावगाह के सिद्ध जीव हैं। उनके जीव प्रदेश में अनन्तानन्त सिद्ध जीव एक क्षेत्रावगाह रूप से हमेशा रहते हुए भी परस्पर बाधा रहित हैं ॥७२॥

सूक्ष्मत्व गुण—

प्रत्येक सिद्ध जीव मे सूक्ष्मत्व नामक एक गुण है। इस गुण से महान गुणो से युक्त अनन्त जीवो मे रहने वाले अनन्तानन्त गुणो के समूह को एक ही जीव ने अपने अन्दर समावेश कर लिया है इसी का नाम सूक्ष्मत्व है।

उदाहरणार्थ एक कमरा लीजिए उस कमरे को चारो ओर से बन्द करके उसके भीतर हजारो विद्युत दीपक रखिये। पहले समय मे एक बल्व का बटन दवाया जाय तो एक दीपक जलता है तब उस दीपक का प्रकाश कमरे के आकाररूप फैल जाता है, अर्थात् जिस समय उस बल्व का प्रकाश फैल जाता है उस समय उस कमरे के अन्दर रखी हुई कोई चीज विना प्रकाश से बच नही सकती, सभी पदार्थों पर प्रकाश पडता है। उसी समय अगर उसी कमरे के अन्दर दूसरा बटन दवाया जाय तो उतना ही प्रकाश उसमे ही समावेश हो जाता है और उसमे भिन्न प्रकाश मालूम न होकर एक रूप दीखता है। इसी तरह हजारो बल्बो के बटनो को दवाते जायें तो उन सबका भी प्रकाश उसी मे शामिल होते हुए उसमे भिन्नता दिखाई नही देती है। तब इन हजारो बल्वो का प्रकाश जैसे एक ही प्रकाश में समा गया? सबसे पहले जो एक दीपक का अखड प्रकाश था, उसमे जितने-जितने और प्रकाश पडते गये उतने-उतने पहले के दीपक सूक्ष्म रूप होते हुए प्रकाश गुण बढता जाता है। जहा मूर्ति रूप पुद्गल मे यह शक्ति देखने मे आती है, तो अमूर्त रूप सिद्धो मे अन्य सिद्धो का सूक्ष्मत्व गुण के कारण समावेश होनेमे कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् नहीं है ॥७३॥

अवगाहगुण का विवेचन—

एक क्षेत्र मे अनेक पदार्थों का समावेश हो जाना अवगाहन शक्ति है। जैसेकि ऊटनी के दूध से भरे हुए घडे मे चीनी समा जाती है उसके बाद उसमे भस्म भी समा जाती है। कोई किसी को रुकावट नही पहुचाती, उसी प्रकार जिन आकाश के प्रदेशो में एक आत्मा के प्रदेश हैं उन्ही मे अनन्त आत्माओ के प्रदेश भी समा जाते है और धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गल परमाणु भी बने रहते हैं। इसी को अवगाहन गुण कहते हैं। इसी प्रकार इस भूवलय मे जितने प्रतिपाद्य विषय है उनके वाचक शब्द है और भिन्न-भिन्न अर्थ है, वे सब एक दूसरे को न तो बाधा देते हैं और न विरुद्ध अर्थ कहते हैं, सव विषय परस्पर मे एक दूसरे की सहायता करते हुए रहते है ॥७४॥

जैसे सिद्ध भगवान मे अनन्त ज्ञान रहता है, उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ मे भी अनत ज्ञान भरा हुआ है ॥७५॥

जिस प्रकार सिद्धो मे अनन्त दर्शन, सम्यक्त्व रहता है उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ मे सम्यक्त्व तथा अनत दर्शन विद्यमान है शब्द रूप मे अनत बल सहित है ॥७६-७७॥

वे सिद्ध अनागत सुख के धारक है ॥७८॥

वे अतीत ज्ञान के धारक हैं ॥७९॥

शरीर रहित होने पर भी उनका आकार चरम शरीर से किंचित् ऊन है और आत्मघन प्रदेश रूप है ॥८०॥

वे शाश्वत और चित्स्वरूप है ॥८१॥

वे हमेशा नित्य हैं ॥८२॥

उनका सुख हमको प्राप्त हो ॥८३॥

इन सब को बतलाने वाला यह नव पद काव्य नामक भूवलय है ॥८४॥

प्रश्न ?

६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्व, ६ पदार्थ ये मिलकर २७ हुए। २७ चक्र कोष्ट भूवलय मे हैं तब आप नवपद भूवलय कैसे कहते हैं ?

उत्तर—२७ सत्ताईस सख्या के अक ७+२ जोड देने से ६ होते है इस लिए नव पद से निर्मित भूवलय हैं।

सिद्ध लोक के अग्रभाग की तरफ गमन अर्थात् उपयोग करने वाले योगीराज विश्व के अधिपति हुए, सिद्ध परमात्मा वेद अर्थात् जिन वाणी रूप हैं। ऐसे ध्यान करते हुए अपनी आत्मा को प्रफुल्लित करने वाला यह विश्वज्ञ काव्य सभी काव्यो मे अग्रसर है, अर्थात् यह अग्रायणीय पूर्व से निकला हुआ काव्य है ॥८५॥

यह काव्य अरहत परमेष्ठी की दिव्य वाणी के अनुसार और श्री वृषभसेनादि आचार्य परपरा के आदि पद से आने के कारण परमामृत काव्य अर्थात अत्यन्त उत्कृष्ट अमृतमय काव्य है। अपने को गुरु या अरहत या सिद्ध पद प्राप्ति की जो इच्छा रखता है उन्ही को यह भूवलय काव्य रास्ते मे सरस (सुगम) विद्यागम को पढाते हुए अत मे परम कल्याण कर देने वाला है ॥८६॥

विवेचन—यहा तक कुमुदेन्दु आचार्य ने ८६ श्लोक तक अरहत की अतरग सम्पत्ति के वारे मे, सिद्ध भगवान के गुणो के वारे मे और तीनो गुरु आदि समस्त आचार्यो के शीलगुणादिक के वर्णन मे ६ द्रव्य ५ अस्तिकाय, ७ सात तत्व और नौ ६ पदार्थादिक के वर्णन मे बहुत सुन्दरता के साथ लिखे हैं। ये सब तीन लोक के अतर्गत हैं, इतने महान होते हुए भी इनका एक जीवात्मा के ज्ञानके अदर समावेश है। ऐसे जोव सख्या में अनन्त हैं। उन अनतो मे से प्रत्येक जीव के अदर ऊपर कहे हुए समस्त विपय समाविष्ट हैं। उन सब विपयो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने एकत्र रूप मे अपने भूवलय ग्रन्थ मे समाविष्ट किया है। यह किस तरह से समाविष्ट है ? इस का उत्तर निम्नलिखित श्लोको मे निरूपण किया है। हम पहिले से ही लिखते आए हैं कि इस भूवलय मे कोई भी अक्षर नही है। यदि भिन्न-भिन्न ग्रन्थो की रचना जैसे का तैसा भिन्न-भिन्न करते तो उन ग्रन्थो मे इतने विपय समावेश नही कर सकते थे, परन्तु अनादि काल से चले आये दिव्य ध्वनि के आधार से सम्पूर्ण विषयो को आदि से लेकर अनत काल तक ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ६ अको मे गर्भित करते हुए उन अको मे परस्पर गुणाकार करते हुए अनत गुणाकार तक अर्थात् सिद्ध-भगवान के अनत ज्ञान तक ले जाकर उस महान् अक राशि को अर्धच्छेद रूप गणित रूपी शस्त्र द्वारा काटते हुए जघन्य सख्या से २ तक लाकर दिखाने के लिए चक्र वध रूप २७×२७ कोठा वना कर अनेक प्रकार की पद्धति से निकाल कर अक रूप कोष्ठक मे भरा है। यह कोप्टक अनेक विकल्प रूप है। वे विकल्प कितने प्रकार के हैं ? जितनी अर्धच्छेद-शलाकायें हैं उतने मात्र हैं। वे अर्वच्छेद-शलाका कितने प्रकार की हैं ? इसके उत्तर मे आचार्य समाधान करते है कि हमने उसे अनन्त राशि से लिया हे। हमारे अनत वार अर्धच्छेद करते चले आने पर भी वह शलाकाछेद भी अनन्त होना अनिवार्य है, अर्थात् वह अनन्त अर्धच्छेद हैं। इन समस्त अनन्त राशियो को उपर्युक्त कोष्ठको मे सख्यात रूप से हम भर चुके हैं। इसलिए समस्त भूवलय मे समस्त विपयो को गर्भित करने मे हम समर्थ हुए। मगल प्राभृत के इस चौथे 'ई' अध्याय के अक्षर रूपी काव्य मे जो भिन्न २ प्रकार की भापायें और विपय उपलब्ध होते हैं, वे वडे महत्वशाली तथा रुचिकर श्लोक हैं। इसे देखकर पाठकगण को स्वाभाविक रूप से आनन्द प्राप्त होगा ही, किन्तु उन्हें सावधान रहकर केवल प्रस्तुत आनन्द मे ही रत नही हो जाना चाहिए क्योकि यदि वे केवल इसी मे मग्न रहेगे तो आगे आने वाले अत्यन्त सूक्ष्म विपय को समझ नही सकेंगे।

नम्म ज्ञानवदेष्टु निम्म ज्ञानवदेष्टु, नम्मनिंमेल्लरर्गे पेळ्व।
नम्म सर्वज्ञ देवन ज्ञान वेष्टेंब हेम्मेय गणित शास्त्र दोळु।
नम्मय गणित शास्त्रदोळु। निम्मय गणित शास्त्र दोळु॥
इत्यादि—

अर्थात् हमारा ज्ञान कितना है, तुम्हारा ज्ञान कितना है तथा हम सब को सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लगाने वाले सर्वज्ञ भगवान् का ज्ञान कितना है ? इन सब को वताने वाला गौरव शाली यह गणितशास्त्र भूवलय है'। यह गणित

शास्त्र हमारे ज्ञान की भी गणना करता है, आपकी (हम से भिन्न जीव के) भी गणना करता है। इस प्रकार यह गणित शास्त्र हमारे गौरव को बढाता है। आपके गौरव को बढाता है और सबके गौरव को बढाता है।

भूवलय रचना चक्रवन्ध पद्धति —

इसकी पद्धति मे (१) चक्रवन्ध, (२) हसवन्ध, (३) शुद्धाक्षर बन्ध, (४) शुद्धाक वन्ध, (५) अक्षवध (६) अपुनरुक्ताक्षर वध (७) पद्म वन्ध (८) शुद्ध नवमाक वन्ध (९) वर पद्म वन्ध (१०) महा पद्म वन्ध (११) द्वीपवध (१२)सागर वन्ध (१३) उत्कृष्ट पल्य वन्ध (१४) अम्बु वन्ध (१५) शलाका वन्ध (१६) श्रेण्यक वन्ध (१७) लोकवन्ध (१८) रोम कूप वन्ध (१९) क्रौञ्च वध (२०) मयूर बन्ध (२१) सीमातीत वध (२२) कामदेव वन्ध [२३] कामदेव पद पद्मवन्ध [२४] कामदेव नख वन्ध [२५] कामदेव सीमातीत वन्ध [२६] गणित वन्ध [२७] नियम किरण वन्ध [२८] स्वामी नियम वन्ध [२९] स्वर्ण रत्न पद्म वन्ध [३०] हेमसिंहासन बन्ध [३१] नियमनिष्टाव्रत बन्ध [३२] प्रेमरोषविजय वध [३३] श्री महावीर वन्ध [३४] मही-अतिशय वध [३५] काम गणित वध [३६] महा महिमा वध [३७] स्वामी तपस्वी वध [३८] सामन्तभद्रवध [३९] श्रीमन्त शिवकोटि वध [४०] उनकी महिमा तप्त वध [४१] कामित फल वध [४२] शिवाचार्य नियम वध [४३] स्वामी शिवायन वध [४४] नियमनिष्ठा चक्र वन्ध [४५] कामित वध भूवलय "९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १०० १०१ १०२ १०३ १०४ १०५ १०६ १०७ १०८।

छह प्रकार के सहनन होते हैं, ४४ आदि का वध उत्तम सहनन है। ४४ सहनन का अर्थ हड्डी की रचना है उत्तम सहनन का अर्थ वज्र के समान निर्माण हुए हड्डी और सधि वधन इत्यादि जो चीजें हैं ये सभी वज्र के समान वने हुए है। यह सहनन तद्भव अर्थात् उसी भव मे मोक्ष जाने वाले भव्य मनुष्यो को होता है। तद्भव मोक्षगामी वज्र समान सहनन वाले मनुष्य के शरीर को किसी मामूली शस्त्र के द्वारा काट नही सकते हैं। जैसे शरीर आदि भूवलय के कर्ता गोमटेश्वर अर्थात् वृषभनाथ भगवान के पुत्र बाहुवली का भी था। वही बाहुवली भूवलय ग्रन्थ के आदि कर्ता थे। उनका शरीर जैसा था वैसी ही दृढ इस भूवलय चक्र वध की रचना की है। इसलिये इस वध का नाम उत्तम संहनन चक्रवध उत्कृष्ट शरीर का राग उस बाहुवली के शरीर स स्थान ४७ समचतुर सस्थान अर्थात् सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार अ गोपाग की सवसे सुन्दर रचना की है। इस भूवलय गन्थ के अनेक वध हैं। इन सभी वधो मे से एक ४६ सूत्र वलय वध है ४७ प्रथमोपशम सम्यक्त्व वध ४८ गुरु परम्परा आचाम्ल व्रत वध, ४९ रात् तप वध, ५० कोष्ठक वध, अध्यात्म वध, ५१ सोपमर्ग तथा तपो वध, ५२ (उपसग आने पर भी तप जैसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत होता है, उसी प्रकार वक्तव्य विषय मे वाधा पड जाने पर भी अपने अपने अर्थ को स्पष्ट वतलाता है) ५३ उत्तम सुपवित्र भाव को देने वाला सत्य वैभव वध है, ५४ उपशम क्षयादि वध है।

५५ नव पद वधन से वधा हुआ योगी जनो का चारित्र वध है। ५३ अवतरण रहित अपुनरावृत्ति नवमाक वध होने से यह सुवध है। तेरहवाँ गुणस्थान प्रदान कर आत्मा के सार धर्म की राशि को एकत्रित कर वीर भगवान के अनन्त गुणो में सम्मिलन कर देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०९ ॥११०॥१११॥११२॥११३॥

अनन्त पदार्थों से गर्भित यह भूवलय है शुद्धात्मा का सार यह भूवलय है धीर, वीर पुरुषो का चारित्र वल है। भव्य जीवो को अपवर्ग देने के लिए यह आवास स्थान है। निर्ममत्व अध्यात्म को वढाने वाला है, क्रूर कर्म रूपी शत्रु का नाश करने वाला ट, भव्य जीवो को मार्ग वतलाने वाला यह भूवलय है। अनेक वैभव को देने वाला सत्यवलय अर्थात् भूवलय है। अनेक महान उपसर्ग को दूर करने वाला भूवलय है, शुद्ध आत्मा के रूप को प्राप्त कर देने वाला आदिवलय है। अत्यन्त क्रूप कामादि को नाश करने वाला भूवलय है, चारित्र सार नामक यह सद्वलय है। अत्यन्त ज्ञान रूपी अमृत से भरा यह भूवलय है। हमेशा जागृतावस्था को उत्तम करने वाला भूवलय है। अत्यन्त सम्पूर्ण कठिन कर्मों का नाश करने वाला भूवलय है। ससार मे अनेक प्राणी निर्भयता से परस्पर विरोध करते हुये दूसरे जीवो के प्रति अनेक प्रकार के कष्ट पहुचाकर अन्त में क्रूर परिणाम के साथ मरकर कुगति मे जाते हैं अर्थात् आपस में विरोध करते हुये पापमय धर्म को अपना धर्म मानकर निर्दयता पूर्वक अनेक जीवो को घात

पहुचाते हुये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसे समय में इस संसार मे पुण्य मय दया धर्म के प्रचार के साथ फैलाते हुए आने वाले के सम्पूर्ण कष्ट नाश होते हैं। उस समय मोक्ष मार्ग खुल जाता है। जिस समय संसार मे मनुष्य के अन्दर सुख का मार्ग मिलता है तब जीव संसार से छूटने की इच्छा करते है, तब उनको ठीक समाधि से मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा होती है। जब मोक्ष प्राप्त करने की समाधि उन्हे प्राप्त हो जाती है तब गुरू और शिष्य का भेद समाप्त हो जाता है ॥ १३० ॥

उसी समय अपने अन्दर शुद्ध होने का समय प्राप्त होता है। तब उसी समय जिन धर्म का अतिशय चारो ओर प्रसारित होता है जब महान द्वादश अगो का द्वादश अनुभव वृद्धि प्राप्त कर लेता है उसी का नाम जिन वर्द्धमान भगवान का धर्म है ॥१३१॥

समाधि के समय मे मगल प्राभृमयि यौवनावस्था को प्राप्त होता है जैसे कि चरखे पर कातने से रूई का धागा बढता जाता है उसी तरह अध्यात्म वैभव भी तारुण्य को प्राप्त होता जाता है। यही शूरवीर मुनि का मार्ग है।

इसी प्रकार नवमांक मे अपने अन्दर ही तारुण्य को प्राप्त कर अपने अदर ही दृढ रहता है ॥१३२॥

यौवनावस्था मे यदि कोई रोग हो जाये तो जैसे वह स्वास्थ्य को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जब अध्यात्म योग समाधि को प्राप्त हो जाता है तब रोग, क्रोधादि मव को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार नवमांक वन्ध सागर पल्य शला का रूप होते हुए भी अपने अन्दर रहता है। ऐमा कथन करने वाला कर्म सिद्धांत वन्ध है ॥१३३॥

श्री गुरु पद का सिद्धांत है ॥१३४॥

यह नाग, नर, अमर काव्य है ॥१३५॥

उसी समय कहा हुआ योग काव्य है ॥१३६॥

यह आत्मध्यान काव्य है ॥१३७॥

नाग पुष्प, चम्पा पुष्प, वैद्य काव्य है ॥१३८॥

योग, भोग को देने वाला सिद्ध काव्य है ॥१३९॥

अतृप्त, भोग को नाश करने वाला काव्य है ॥१४०॥

श्री शिवकोटि आचार्य शिवानन के रोग को नाश किया हुआ यह काव्य है।

नाग पुष्प, कृष्ण पुष्प स्पर्श होने से स्वर्ण बनाने वाला सिद्धात काव्य है। कभी भी असत्य न होने वाला काव्य है।

नाग अर्जुनक द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य है, अर्थात् नाग अर्जुन के कक्षपुट मे रहने वाला कक्षपुटांक है ॥१४१।१४२।१४३।१४४।१४५।

श्री गुरु सेनगण से चला आया हे। प्रेम से कहा हुआ सिद्धात है।

महान सुवर्ण को प्राप्त करा देने वाला काव्य है।

राग और विराग दोनो को बतलाने वाला भूवलय है ॥१४६, १४७ १४८, १४९, १५०, १५१, १५२॥

ऊपर कहा हुआ अष्टमहा प्रातिहार्य वैभव का हमने यहाँ तक विवेचन कर दिया है। यह काव्य अष्टम श्री जिनचन्द्रप्रभु तीर्थंकर से सिद्ध करने के कारण यह अन्तिम आत्म सम्पत्ति नामक अष्टम जिनसिद्ध काव्य है ॥१५३॥

अब आगे श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि रसमणि सिद्धि तथा आत्म सिद्ध का एक ही श्लोक मे साथ साथ वर्णन करेंगे ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

आत्मा मृदु है और स्वर्ण मृदु है लोहा कठिन है, और कर्म भी कठिन है जब लोहा और कर्म दोनो ही मृदु होते है तो वह समवशरण का वैभव बन जाता है जब कर्म नर्म हो जाता है तो आत्मा जाकर समवशरण मे विराजमान हो जाता है और जब लोहा नर्म होता है तो वह स्वर्ण बन जाता है ऐसे दोनो को एक साथ अनुभव करा देने वाला यह काव्य समीकरण काव्य अथवा धन मिन्न रस दिव्य काव्य है ॥

विमान के समान शरीर को उडा कर आकाश मे स्थिर करने वाला यह काव्य है।

यह पनस पुष्प का काव्य है।

यह विश्वम्भर काव्य है।

यह भगवान जिनेश्वर रूप के समान भद्र काव्य है।

भव्य जीवो को उपदेश देकर जिन रूप प्राप्त कराने वाला काव्य है।

सिद्ध रसमणि के प्रताप से आकाश में उड कर लडती हुई सेनाओ के युद्ध को बन्द कर देने वाला काव्य है। आकाश में गमन करने वाले खेचरता के अनुभव का काव्य है ।।।१५६।।

मादल (विजौरा)—जैसे एक रथ को रस्सी पकड कर हजारो आदमी खीचते हैं वैसे ही मादल रस से वने हुए रसमणि के आश्रय से हजारो रोग नष्ट हो जाते हैं ।।१५७।।

पुष्पायुर्वेद से यह काम सिद्ध हो जाता है ।।१५८।।

बाहुबलि अपने हाथ मे केतकी पुष्प रखते थे। उस केतकी पुष्प के सिद्ध हुए पारद में भी सैकडो रोगो को नष्ट करने की शक्ति रहती है ।।१५६।।

आयुर्वेद के वृक्ष आयुर्वेद, पत्र आयुर्वेद, पुष्प आयुर्वेद, फल आयुर्वेद आदि अनेक भेद हैं, उनमें से यह पुष्प-आयुर्वेद है। श्रेष्ठ पुष्प-निर्मित दिव्य योग है ।।१६०।।

अग्निपुट के चार भेद हैं—१ दीपाग्नि, २ ज्वालाग्नि, ३ कमलाग्नि, ४ गाढाग्नि। यहा चारो ही अग्नियो का ग्रहण है ।।१६१।।

पादरी पुष्प से भो रस सिद्ध होता है ।।१६२।।

पारा अग्नि का सयोग पाकर वढ जाता है, परन्तु इस क्रिया से उड नही पाता ।।१६३।।

सर्वातम रूप से शुद्ध हुए पारे को हाथ में लेकर अग्नि में भी प्रवेश किया जाता है ।।१६४।।

सैंकडो अग्नि पुट देने से पारे मे उत्तरोत्तर गुण वृद्धि होती जाती है ।।१६५।।

जो इस क्रिया को जानता है वह वेद्य है ।।१६६।।

तैयार किया हुआ शुद्ध निर्मल पादरस को साफ से कमरे में अग्नि के ऊपर रखकर थोडी देर के बाद ऊर्ध्वं गमनरूप में उडाकर जैसे कमरे के नीचे दोपक जलता रहता है उसी प्रकार यह पारा उडकर छत से नीचे के दीपक के समान चमकता हुआ छत्राकार मे स्थिर रहता है, उस समय वह व्यक्त रूप में आखो से देखने मे नही आता अर्थात् जैसे शरीर को छोडकर प्राण निकल जाते समय आखों से दीखता नही है, उसी प्रकार पारा भी नही दीखता है। वहुत से विवाद करने वाले अज्ञानी लोग इसके मर्म अर्थात् भेद को न जानने वाले उसे यह समझते हैं कि यह आकाश मे उड गया अर्थात् नष्ट हो गया और अपना काम वेकार हुआ ही समझते हैं। परन्तु वह पारा कही भी नही जाता है जहाँ का तहा ही है, किंतु विद्वान लोग, पारा उडते समय उसके नीचे की अग्नि को हटा कर तुरन्त ही उसके नीचे कागज का सहारा लगाते हुए जहा पारा ठहरता है वहा तक कागज नीचे पकडे रहते हैं। तव वह पारा उस कागज मे आकर ठहर जाता है। इसी प्रकार जगल में आकाश स्फटिक भी रहता है। सूर्योदय के ममय में जैसे सूर्य क्रमश ऊपर २ गमन करता है, और जव ठीक वारह वजे के समय ठीक वीच मे आता है और स्थिर रहता है तब उसके बाद पश्चिम की तरफ उतर जाता है और साय काल मे अस्त होता है। उसी प्रकार यह आकाश स्फटिक भी नीचे उतरते–उतरते सध्या काल में जमीन में प्रवेश भीतर ही भीतर करता जाता है। रात के वारह वजे तक इसी क्रमानुसार वढते २ एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। इस को अधो-गमन या पाताल-गमन कहते हैं।

यदि आकाश स्फटिक मणि पर सिद्ध रसमणि सहित पुरुष वैठ जाय तो मणि के साथ-साथ सूर्य के साथ २ आकाश में और पृथ्वी के अन्दर गमन कर सकता है अर्थात् आकाश मे ऊपर उड सकता है और नीचे पृथ्वी के अदर घुसकर भ्रमण कर सकता है ।।१६७।।

गिरिकर्णिका नामक एक पुष्प है। इस पुष्प के रस से पारा सिद्ध किया जाता है जो ऊपर वताये हुए आकाश गमन और पाताल गमन दोनो मे ठीक काम देता है ।।१६८।।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न पुष्पो के रस से पारा सिद्ध किया जा सकता है ।।१६९।।

उससे भिन्न-भिन्न चमत्कारिक कार्य किये जा सकते हैं ।।१७०।।

उन भिन्न पुष्पो के नाम तीन अक के वर्ग शलाकाओ से जो अक्षर प्राप्त हो उनसे मालूम हो सकता है ।।१७१।।

इस प्रकार कार्य-क्रम को वतलाने वाला यह भूवलय है ।।१७२।।

शूरवीर दिगम्बर मुनियो के द्वारा सिद्ध किया हुआ काव्य भूवलय नामक है ॥१७३॥

जैसे दिगम्बर मुनि अपने चचल मन को बाध लेते हैं अर्थात् स्थिर कर लेते हैं उसी तरह सैकडो हजारो पुष्पो के रस से पारा स्थिर किया जाता है। इस तरह भूवलय से मन और पारा दोनो स्थिर किये जाते हैं ॥१७४॥

सर्वार्थसिद्धि के अग्रभाग मे सिद्धशिला है उसके श्वेत छत्राकार रूप मे लिखा हुआ अक मार्ग जो आता है उसी अक को अरहतादि नौ अको से मिश्रित अपने अदर देखना, जानना ही भूवलय नामक सिद्धात है ॥१७५॥

परमागम मार्ग से आयुर्वेद को निकाल दिया जाय तो—१३ ००००००० करोड पदो को मध्यम पद से गुणाकार करने से २१२५२८००२५४४००००००० इतने अक्षर आगम मार्ग से सिद्ध हैं अर्थात् निकल आते है। ये अक एक सागर के समान हैं। तो भी यह अकाक्षर ४ पुनरुक्त रूप है। इसलिए यह सागर रूप 'रत्न मजूषा' नाम से प्रसिद्ध है ॥१७६॥

इस भूवलय मे ७१८ भाषाओ के अवतार हैं, यह अवतार प्रथम सयोग से भी निकल आता है ऐसा कहने वाला यह सिद्ध भूवलय नामक काव्य है॥१७७॥

दूसरे सयोग से भी आता है ॥१७८॥

तीसरे सयोग से भी आता है ॥१७९॥

चौथे सयोग से भी आता है ॥१८०॥

६४ अक्षर सयोग से भी आता है ॥१८१॥

इससे परमात्म कला अक भी देख सकते हैं ॥१८२॥

इसलिए यह परम अमृतमय भूवलय है ॥१८३।

इस तरह [१] ६४×१=६४ [२] ६४×६३=४०३२

[३] ६३×६२=२४९९८४ [४] ६२×६१=१५२४९०२४

इस क्रम के अनुसार है। इस प्रकार महाराशि को बतलाना ही परमात्मा का अर्थात् केवली भगवान की ज्ञानरूपी कला है। यह कला इसमे गर्भित होने के कारण यह भूवलय ग्रन्थ परमात्म-रूप है।

उत्तरोत्तर ऋद्धि प्राप्त योगी मुनि के समान पहले के तीन अकोने समस्त अको को अपने अदर समावेश कर लिया है। उसी तरह यह चौथा अध्याय भी यहा ७२९० अको को अपने अदर गर्भित कर नौ अक मे सिद्धाक रूप होकर श्रेणी रूप मे स्थित है, अर्थात् १० चक्र के अदर यह गर्भित है ॥१८४॥

इतने अको मे से और भी अतर रूपसे निकाल दिया जाय तो १०९२६ इतने और भी अक आ जाते हैं, इतने अको को अपने अदर गर्भित करता हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ॥१८५॥

' इ' ७२९०+ अतर १०९२६=१८२१६।

अथवा 'आ' – ई = ४६६११+१८२१६=६४८२७।

इति चौथा 'इ' अध्याय समाप्त हुआ।

चौथे अध्याय के प्रथम अक्षर से लेकर ऊपर से नीचे तक पढते जाय तो प्राकृत गाथा निकल आती है उस का अर्थ इस प्रकार है—

इस भूवलय ग्रन्थ के मूल तन्त्र कर्ता श्री वीर भगवान हैं। उनके पश्चात् इन्द्रभूति ब्राह्मण, उपतत्र कर्ता हुए, कुमुदेन्दु आचार्य तक सभी आचार्य अनुतत्र कर्ता हैं। अब आगे इस अध्याय के बीच मे आने वाले सस्कृत गद्य का अर्थ कहते हैं —

श्री परम पवित्र गुरु को नमस्कार, श्री परमगुरु और परम्परा आचार्यो को नमस्कार, श्री परमात्मा को नमस्कार।

पांचवां अध्याय

ई॰ ग आवाग हिन्दण मुनदके बहा । नागतकाल वेल्लवनु ।। आग स॰ दनुतव सागुत काणुव । श्री गुरुवयवर ज्ञान ।।१।।
य॰ वेयकाळिन कृपेत्रवळतेयोळडगिसि । अवरोळनत वस क॰ लान् ।। कवनवदोळ् सवियागिसिपेळुव । नव सिरिइरुव भूवलय ।।२।।
मृ॰ र्मद सम्यज् ज्ञान वात्मनरूपु । निर्मलानन्तद अ सक ल॰ धर्मव परसमयद वक्तव्यतेयलि । निर्मलगोळिसुव ज्ञान ।।३।।
णा॰ णवरणीय कर्मवळियलु । तानु केवल ज्ञानियागि ।। आनन्द क॰ रनु आत्म स्वरूपव ताळ्व । श्री निलयान् क ओम्बत्तु ।।४।।
या॰ वाग नोडिदरावागअललिये । ठाविनपूर्णान्कवेनसि ।। ताव्का लु॰ ष्यव होन्दुवन्कगळनु । तीविकोन्डिरुवात्म नवम ।।५।।
पावन परिशुद्ध नवम ।।६।। ईविश्व परिपूर्ण नवम ।।७।। साविर लक्षान्क नवम ।।८।। पावन सूच्यग्र नवम ।।९।।
श्री विश्वदादियु नवम ।।१०।। साविर कोटिगळ् नवम ।।११।। साबु वाळ्विकेयोल्ल नवम ।।१२।। साबु नोवुगळल्लि नवम ।।१३।।
नावुगळरियद नवम ।।१४।। श्री वीरनरिकेय नवम ।।१५।। दावानल कर्म नवम ।।१६।। ऋवागमवर्प नवम ।।१७।।
ओविद्यासाधन नवम ।।१८।। पावनवागिप नवम ।।१९।। कावुदेल्लवनु इ नवम ।।२०।। तावुताविनोळेल्ल नवम ।।२१।।
श्रीवीर सिद्धान्त नवम ।।२२।। श्री वीरसेनर नवम ।।२३।। नावुगळळेयुव नवम ।।२४।। कावुतलिरुव भूवलय ।।२५।।
व॰ रव हस्तद नवपदद निर्मलदन्क । गुरुगळयवर इ ष॰ टदन्क ।। सरससाहित्यदवर्णनेगादिय । वरदकेवललब्धियन्क ।।२६।।
हा॰ रदग्रदरत्न नायक मणियन्क मूरु । मूर्ल ओम्बत्र् अ॰ न्क नूरु साविर लक्ष कोटियोळ् ओम्बदम् । दारिवेगेयलोम्बत् अन्क।।२७।।
रि॰ द्धि सिद्धिगळनु कूडिसि कोडुवन्क । होद्दि बरुव दिव्यव् वि॰ द्ये ।। अध्यात्मसिद्धियसाधिसिकोडुवन्क । शुद्धकर्माटकदन्क।।२८।।
य॰ शस्वतियाडुव प्राकृत लिपियन्क । रसद समस्कृत ध॰ रव्यदन्क।। असमानद्रविडआन्ध्र महाराष्ट्र। वशदलिमलेयाळदन्क२९
रिसिय गुर्जर देशदक ।।३०।। रससिद्ध अन्गद अन्क ।।३१।। यशद कळिन्गद अन्क ।।३२।। रसद काश्मीरान्गदन्क ।।३३।।
ऋषिय कम्भोजादियन्क ।।३४।। वसनद हम्मीरवन्क ।।३५।। यश शौरसेनीयदन्क ।।३६।। रस वालियन्क दोम्बत्तु ।।३७।।
वशवा तेबतियादियन्क ।।३८।। रसवेन्गि पळुविन अन्क ।।३९।। असमान वन्ग देशान्क ।।४०।। विषहर ब्राम्हियाद्यन्क ।।४१।।
रस नेमि विजयार्धदन्क ।।४२।। व्यसनवळिप पद्मदन्क ।।४३।। रस सिद्धि वय्दर्भयरन्क ।।४४।। वशद वय्शालियाद्यन्क ।।४५।।
रसद सौराषट्र दाद्यन्क ।।४६।। यशद खरोष्ट्रिय अन्क ।।४७।। वशद निरोष्ट्रद अन्क ।।४८।। वशदापभ्रम्शिकदन्क ।।४९।।
विशेय पय्शाचिकरन्क ।।५०।। यशद रक्ताक्षरदन्क ।।५१।। वशवादरिष्ट देशान्क ।।५२।। कुसुमाजियर देशवन्क ।।५३।।
रसिकर सुमनाजियन्क ।।५४।। रसदयन्द्रध्वजदन्क ।।५५।। रस जलजद दलदन्क ।।५६।। वशद महा पद्मदन्क ।।५७।।
रसदर्ध मागधियन्क ।।५८।।
आ॰ रस पारस सारस्वतदन्कम् । बारस देशदाद्यन्क ।। वीर व॰ शद देशदारय् के सेरिद । शूर मालव लाट गवुड ।।५९।।
इ॰ वुगळ नेरेनाड मागध देशान्क । अवराचेय विहारान्क ।। नव मृ॰ दक्षरद उत्कल कन्याकुब्जान्क । सर्विय वराह नाडन्क ।।६०।।
रि॰ द्धिय वय्श्रमणर नाडिनन्कवु । शुद्ध वेदान्तदाद्य स॰ र । इद्लूले इरुव सन्दर्भद नाडन्क । एद्दु बरुव चित्रकरद ।।६१।।
य॰ डगय्य नाडन्क वेन्वेने ब्राम्हिय । एडगय्य सरद क॰ न्नडद मडुविनन्कदे बेरेसलु अय्दय्दादन्क ।। एडबलसवन्वरियन्क ।।६२।।

५४ मे १ मिलकर = ५५ = १० (यह सौंदरिय अन्क) पोडविय हदिनेन्दु लिपिय ॥६३॥ बिडिसलार् ओम्बत्तरन्क ॥६४॥
गडिय मूरल मूररन्क ॥६५॥ सडगरदलि हदिनेन्दु ॥६६॥ डिडिगळनोड गूडिदन्क ॥६७॥ कडेगे ऐवत्नालकरन्क ॥६८॥
ओडगूडे त्रयहदिनेन्दु ॥६९॥ नडेय मूरर ओम्बत्तन्क ॥७०॥ अडविय बनवासियन्क ॥७१॥ मडदिय त्यागिगळन्क ॥७२॥
इडिदु कूडिदर् ओम्दे अन्क॥७३॥ बिडिसि नोडिदरोम्दे अन्क ॥७४॥ गुडियोळाडुव ज्ञानदन्क ॥७५॥ नुडियु करमाटकद्अन्क ॥७६॥
हिडिय मातुगळ भूवलय ॥७७॥ ओडगूडे करमाटकद्अनक ॥७८॥

प॰ रमस् पेळिद हदिनेन्दु मानिन । सरसद लिपि ई नवम ॥ वर सृ॰ नगल प्राम्रुतदोळु अन्कव । सरिगूडि बरुवे भाषेगळम् ॥७९॥
र॰ सवु मूलिकेगळ सारव पीर् वन्ते । होस करमाटक भाषे ॥ रस श्॰ री नवमान्कवेल्लरोळ्बेरेयुत । होसेदु बन्दिह ओम् ओम्दन्क ॥८०॥
सृ॰ रम् वादा ओम्कार दोळडगिद । सर्वज्ञ वाणियम् होसेये ॥ श् रे॰ यम् पोन्दुतगणितबन्धदोळ् कट्टि । धर्म साम्राज्यदन्कदोळु ॥८१॥
प॰ दवागिसि पद पद्मवनागिसि । हरुदय पद्मा दलरि ॥ सद य॰ त्ववेनिसिमेवुळ होक्कु केल्वर । ह्रुदयके कर्मदाटवनु ॥८२॥
रा॰ गव वय्राग्यवनोम् दे बारिगे । तागिसे कर्णाऽकद ॥ बागिल सा॰ लिनिम् परितन्द कारण । श्री गुरु वर्धमानान्क ॥८३॥

९×६ = ५४ ईगदु सम्ख्यातदन्क ॥८४॥ तागल सम्ख्यातदन्क ॥८५॥ वेगदनन्त सम्ख्यान्क ॥८६॥ रागद मध्यमानन्त ॥८७॥
तागेलु उत्क्रुष्टानन्त ॥८८॥ आगुवनन्तानन्तान्क ॥८९॥ श्री गुरु मध्यमानन्त ॥९०॥ ओम् गुरु उत्कृष्टानन्त ॥९१॥
आगर रत्नत्रयान्क ॥९२॥ चागर शाश्वतानन्त ॥९३॥ जागरविरुव भूवलय ॥९४॥

ग॰ मनिसे 'अथवा प्राक्रुत संस्कृत । विमल 'मागध पिशाच' सृ॰ भा ॥ सम 'भाषाश्च शूरसेनी च' द । क्रमदे' षष्टोतर' दभूरि ॥९५॥
द॰ रुशिसे 'भेदोदेशविशेषआ'द । वर'विशेषादपभ् रम्शह ॥ परम् प॰ दधतियिन्तिवरनु सूररिम् । परि गुणिसलु हदिनेन्दु ॥९६॥
म॰ रळिसलथवा 'कर्णाट मागध'वरे। वरलु'मालव लाट गौड' । वरि॰ यिरि 'गुर्जर प्रत्येक त्रवमित्य' । वरद 'ष्टादश महा भाषा' ॥९७॥
म॰ रळि मरलि बेरे विधदिन्द पेळुव । गुरुवर सन्ध भेदगळ ॥ व॰ र काव्य सरणिय शब्दियन्तिरळीग । सरस सर्वन्दरिय रिदन्क ॥९८॥
ण॰ वमान्क गणनेयोळ् भूवलय सिद्धात । अवरनुळोमवव र॰ नक ॥ नवमवु प्रतिलोमवागिसि बन्दन्क । सविय भूवलय सिद्धात ॥९९॥
सा॰ विरदेन्दु भाषेगळिरलवनेल्ल । पावन महावीर वाणि ॥ काव ध॰ र्मांकवु ओम्बत्तागिर्पाग । तावु एळ्नूर् हदिनेन्दु ॥१००॥

६×३=१८ । १८×३ =५४ कावुदु हम्सद लिपियम् ॥१०१॥ नावरियद भूत लिपियु ॥१०२॥ श्री वीर यक्षिय लिपियु ॥१०३॥
ठाविन राक्षसि लिपियु ॥१०४॥ तावलि ऊहिया लिपियु ॥१०५॥ कावे यवनानिय लिपियु ॥१०६॥ कावद तुर्किय लिपियु ॥१०७॥
पावक द्रमिळर लिपियु ॥१०८॥ पावेय सइन्धव लिपियु ॥१०९॥ ताव मालवणीय लिपियु ॥११०॥ श्री विधकीरिय लिपियु ॥१११॥
पावन नाडिन लिपियु ॥११२॥ देव नागरियाद लिपियु ॥११३॥ वय्विध्य लाडद लिपियु ॥११४॥ काविन पारशि लिपियु ॥११५॥
काव आमित्रिक लिपियु ॥११६॥ भूवलयद चाणक्य ॥११७॥ देवि ब्राह्मियु मूलदेवि ॥११८॥ श्री वीर वाणि भूवलय ॥११९॥
देवि सवन्दरिय भूवलय ॥१२०॥

पु॰ दट भाषेगळेळु नूरन्क मातिन । गट्टिय लिपिगळिल्लदं न् क॰ हुट्टदनक्षर भाषेय नरियुव । हुट्टलिल्लद लिपियन्क ॥१२१॥
व॰ र 'सर् वभाषाम इ भाषा' एन्नुव । अरहन्त भाषितव् वाक्य मृ॰ वर 'विश्व विद्यावभासिने'(एन्नुव)एन्देम्बा परिभाषेय अंक ॥१२२॥
वा॰ सवरेल्लराडुव दिव्य भाषेय । राशिय गणितदे कट्टि ॥ आशा ध॰ र्माम्रुत कुम्भवोळडगिसि श्रीशनेळ् नूरन्क भाषे ॥१२३॥
इ॰ वरोळ् हुदुगिह हदिनेन्दु भाषेय । पदगळ गुणिसुत बरुव र॰ सदनव तोरेवु तपोवनवनु सेरे । हरुदय के शान्ति ईवन्क ॥१२४॥

रि* पिगळेल्लरु कूडि महिमेय लिपिगळ । वशगोन्डु भाषेय सर म* हसगोळिसुत ईगरण हिन्दरण मुन्दे । वशवप्प मातुगळन्क ॥१२५॥
या* व भाषेगळलि एप्ट्ंक वेन्नुव । ठाविन शन्केगे तावु ॥ तावु स* मन्वयगोळिसि समाधान । वीव सिद्धान्त भूवलय ॥१२६॥
ई विश्ववाळुव अन्क ॥१२७॥ श्री वीरवारिणय अक ॥१२८॥ साविरलक्षशन्केगळ ॥१२९॥ ठाविन उत्तरदन्क ॥१३०॥
पावन स्वसमयदक ॥१३१॥ श्राविद्य काव्यद श्रंक ॥१३२॥ कावनाडुव मातिनंक ॥१३३॥ ई विश्वदध्यात्मदंक ॥१३४॥
तीविकोन्डिह दिव्य अक ॥१३५॥ सावनळिसुव चक्रान्कम् ॥१३६॥ धावल्य बिन्दुविनन्क ॥१३७॥
श्रा* विश्वदक 'त्रिषष्टिहि चतुहषष्टि' । पावनवादा श्रंक मृ* तीवि 'र्‌वावर्‌णाह शुभमतेमताह'द। काव 'प्राकृतेसंस्कृतेचा'।१३८।
रा* 'पिस्वयम् प्रोक्ताह स्वयम्भुवा' । आपद विरुवन्कदश्र ब* न् ॥ धापद सम्योगदोळु अरवत्नाल्कु । श्रीपदपद्म सम्पुगिसे ॥१३९॥
गु* गुपाद ब्राह्मिय एडगय्योळकित । गुणनद सरमाले ब न* धापद सम्योगदोळु अरवत्नाल्कु । श्री पद पद्म सम्पुगिसे ॥१४०॥
स* रस सउंदरिय वलद कय्योळच्चोत्ति । अरवत्नाल्कु ध* दणुविनोळ् आदीश्वरेदखरोष्टिय। तनियाद वृषभांकितवु ॥१४१॥
र* सयुतवा 'अकारादि हकारान्ताम्' । वश 'शुद्धाम् मुक्तावली' म् क* रस 'मिवस्वर व्यन्जनमीदेन द्वि । वश 'दाभेद युपय्यु ॥१४२॥
ए* वर 'घीम् श्रयोगवाह्' द 'परयताम् सर्व' । विवर 'विद्यासु' म्* 'सरग'॥ नव 'ताम्‌श्रयोगाक्षरसम्भूतिम्'। सवि नय्कबीचाक्षरयश्चि
म्* नु 'ताम् समवादि दधत्ब्राह्मि मेधा । विन्यति सुन्दरो, वर भ* घन 'सुन्दरी गणितमृस्यानम्'स'क्रमहि । धनवह'सम्यगधास्यत्।१४४।
क* र ततो भगवतो वक्त्रानिहिस्रुता । क्षरावलीम् सिद्ध व* ह 'नमइ'। सरतिव्यक्तसुमन्गलाम् सिद्ध' गुरु मात्रुकाम् 'स भूवलय
द* रुशनमाडलन्याचार्यं वान्ग्मय । परियलि ब्राह्मियु व य* दे । हिरियळादुदरिन्द मोदलिन लिपियक । एरडनेयदु यवनाक१४६
म्* रळिद दोप उपरिका मूरदु । वराटिका नाल्कने श्रंक ॥ सर्व जे* खरसापिका लिपि श्रइदंक । वरप्रभारात्रिका श्रारुम् ॥१४७॥
सर उच्चतारिका एळुम् ॥१४८॥ सर पुस्तिकाक्षर एन्टु ॥१४९॥ वरद भोगयवत्ता नवमा ॥१५०॥ सर वेदनतिका हत्तु ॥१५१॥
सिरि निन्हतिकाहन्नोंदु ॥१५२॥ सर माले अक हनेरडु ॥१५३॥ परम गणित हदिमूरु ॥१५४॥ सर हदिनाल्कु गान्धर्व ॥१५५॥
सरि हदिनय्दु श्रादर्श ॥१५६॥ वर माहेश्वरि हदिनारु ॥१५७॥ बरुव दामा हदिनेळु ॥१५८॥ गुरुवु बोलिदि हदिनेन्टु ॥१५९॥
इरुविवेल्लवु श्रक लिपियु ॥१६०॥
ति* रियन्च नारकररियद हदिनेन्दु । परिशुद्ध लिपियंक व* वनु । वरेयलु बहुदुहेळ केळलु बहुदव । सरसान्क अक्षर लिपियोळ्१६१
र* सभाव काव्य सन्दर्भदुचित नुडि । यशस्वती देविय म* गळ ॥ होसदाद रीति देसिक दरिकेयनेल्ल । हेसरिट्टुकलियलु बहुदु१६२
य* शस्वतियम्मन तन्गि सुनन्देय । वसरलि बनद अनगजन न* । यशद कामायुर् वेददोळ् तयागव । रससिद्धियिम् कारणबहुदु ॥१६३॥
ए* वमन्मथ रोळगादिय मन्मथ । अवनादि केवलिनम्र ह* सुविशाल कायद परमात्म रूपनु । अवनिन्द सव्नदरि कन्डु ॥१६४॥
अवधरिसुत तन्गिर्वन्क ॥१६५॥ छवियोळु कारणब सत्यान्क ॥१६६॥ नवमन्मथरादियन्क ॥१६७॥
भवभय हरण दिव्यान्क ॥१६८॥ अवरोळु प्रतिलोमदन्क ॥१६९॥ अवनु कूडलु श्रोम्वत्त् श्रोम्दु १७०॥
नवकार मन्त्रवु श्रोम्दु ॥१७१॥ सवणर धर्मान्क श्रोम्दु ॥१७२॥ सवियागिसिरुव भूवलय ॥१७३॥

अनुलोम १-२-३-४-५-६-७-८-९
प्रतिलोम ९-८-७-७-५-४-३-२-१
लव्धान्क १-१-१-१-१-१,१-१-१-० श्रोम्गत्श्रोम्दु

णि* जव हत्तनु श्रोम्बत्तागिसिवन्क । अदरनुलोमान्कपद पू* श्र ॥ अदरलिवरुवसोन्नेय विट्टश्रोम्वत्तु । पदगळकाव्यभूवलय ।१७४।

मि❀ कृकिह एळ्नूरु नकृषरभावेयम् । दक्किप द्रव्याग श्रम र❀ तकृक ज्ञानव मुन्दकरियुव श्राशेय । चोकृक कन्नाड भूवलय ॥१७५॥
त❀ रुणनु दोर्वलियवरक्क ब्राम्हियु । किरियसौन्दरि श्ररि ति❀ र्द ॥ श्ररवत्नाल्कक् षर नवमान्कसोन्नेय । परियिह काव्य भूवलय ॥१७६॥

सरमगृगिकोप्टक काव्य ॥१७७॥ गुरूगळिम् परितन्दगणित ॥१७८॥ गुरुगळय्वरगणितान्क ॥१७९॥
श्ररहन्तरीरेविह गणित ॥१८०॥ सिरि वृषभेश्वर गणित ॥१८१॥ गुरुवर श्रजित सिद्धगणित ॥१८२॥
परमात्म शम्भव गणित ॥१८३॥ सुरपूज्य श्रभिनन्दनेश ॥१८४॥ सुर नर वन्दय श्री सुमति ॥१८५॥
तिरियन्च गुरु पद्म किरण ॥१८६॥ नरकर वन्द्य सुपार्श्व ॥१८७॥ गुरुलिन्ग चन्द्र प्रभेश ॥१८८॥
सिरि पुष्पदन्त शीतलरु ॥१८९॥ गुरु श्रेयाम्स जिनेन्द्र ॥१९०॥ सरुवज्ञ वासुपूज्येश ॥१९१॥
श्ररहन्त विमल श्रनन्त ॥१९२॥ हरुषन श्री धर्म शान्ति ॥१९३॥ गुरु कुन्थु श्रर मल्लि देव ॥१९४॥
सिरि मुनि सुव्रत देव ॥१९५॥ हरि विष्टर नमि नेमी ॥१९६॥ वर पार्श्व वर्धमानेन्द्र ॥१९७॥
गुरु माले इप्पत्नाल्कुम् ॥१९८॥

त❀ रुण मन्मथनारु सोन्ने एरडु । सरियोम्दु श्रन्तर बो❀ ध ॥ सरस कव्य यागमदरवत् नाल्क क्षर । विरुव 'ई'-काव्यवु ऐदु॥१९९॥
शिरसिनन्तिह सिद्धराशि [भूवलय] ॥२००॥
म❀ नविडेश्रोम्बत् श्रोम्दुसोन्नेयु एन्दु । जिनमार्गदतिशय ध❀ र्म ॥ वेनुत स्वीकरिसलु नवपद सिद्धय । घनमर्म काव्य भूवलय ॥२०१॥

५ वा ई ८०१९+श्रन्तर १२००६=२००२५ श्रथवा श्र-ई ६४,८२७+ई २०,०२५=८४,८५,२

पहले श्रेणी के सुरु के श्रक्षर से लेकर नीचे पढते श्राचाय तो प्राकृत निकलता है—

ईयम्णाया वहारिय परम्परा गद्म् मणासा ।
पुव्वाइरिया श्राराणु सरणं कदं तिरयण निमित्तम् ॥५॥

वीच मे लेकर ऊपर से नीचे के तरफ इसी श्लोक के समाण पढने श्राजाय तो स स्कृत श्लोक निकलता है—

सकल कलुष विध्वसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं ।
धर्म संबन्धकं भव्य जीव मनः प्रति वोधः ॥

९५ श्लोक से इनिवर्टिड कामा तक पढते जाय तो पुन सस्कृत काव्य की दूसरी भाषा निकलती है। श्रर्थात्—

प्राकृक, सस्कृत, मागध, पिशाच, भाषाश्च, सूरशेनीच । षष्ठोत्तर भेदा देश विषेशादपभ्रंशह ॥
कर्णाट मागध मालव लाट गौड गुर्जर प्रत्येकत्रय मित्याष्टादश महा भाषा । सर्व भाषा मई भाषा विश्वविद्यालयाव भाषिणे ॥
त्रिषष्टिः चतुषष्ठिर्वा वर्णाहा शुभमते मतह । प्राकृतेसंस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताह स्वयभुवह ॥
श्रकारादि हकाराता शुद्धाम् मुक्तावली-मिव । स्वरव्यजन भेदेन द्विधाभेदमुपेयुषीम् ॥
श्रयोगं वाह पर्यंतां सर्व विद्या सुसगताम् । श्रयोगाक्षर संभूतिम् नैक वीजाक्षरैश्चिताम् ॥
समवादि-ददत्ब्राम्ही मेधाविन्यति सु दरी । सुंदरी गणित स्थान क्रमैः सम्येग्हस्यत् ॥
ततो भगवतो वक्त्रानिहह श्रताक्षरावलीं । नवदति व्यंक्ति स मंगलां सिद्ध मात्रुकाम् ॥

पांचवां अध्याय

अब हम पाचवे अध्याय का विवेचन करेंगे ।

इस समय वर्तमान काल, बीता हुआ अनादि काल और इस वर्तमान के आगे आने वाला भविष्य काल, इन तीनो कालो के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारो दिशाओ ईशान, वायव्य, आग्नेय और नैऋत्य, ऊर्ध्व आकाश और नीचे के भाग मे यानी आकाश की सभी दिशाओ में, विद्यमान समस्त पदार्थ अर्हन्त सिद्ध परमेष्ठी के ज्ञान मे स्पष्ट झलकते हैं। ससार का कोई भी पदार्थ उनके ज्ञान से बाहर नही है।

विवेचन —अतीत (भूत) काल बहुत विशाल है, जितना-जितना पीछे जाते हैं, आकाश की तरह उसका अत नही मिलता। इस लिये इस काल को अतीत काल या अनादि काल कहते हैं। इतना विस्तृत होने पर भी अनागत काल से भूतकाल बहुत छोटा है। अतीत काल को अनन्ताङ्क से गुणा करने पर जितना लब्धाङ्क आता है उतना अनागत काल है। इन दोनो कालो के बीच मे वर्तमान काल समय मात्र है, यह वर्तमान काल बहुत छोटा होने के कारण भूतकाल और भविष्य काल को छोटी कडी के समान जोडता है। इसी तरह क्षेत्र भी है, क्षेत्र का अर्थ आकाश है। यह आकाश अनन्त-प्रदेशी होते हुए भी तीन लोक की अपेक्षा से असख्यात-प्रदेशी भी है। परमाणु की अपेक्षा से सख्यातप्रदेशी (एक प्रदेशी) भी है।

एक घडा रक्खा हुआ है उसके बाहर किसी भी ओर देखा जावे आकाश ही आकाश मिलता है उस का अन्त नही मिलता, इसलिये आकाश को 'अनन्त-प्रदेशी' कहा है। घडे के भीतर जो आकाश है वह सीमित है, क्यो कि वह घडे के भीतरी भाग के बराबर है, अत. उसका अन्त मिल जाता है। फिर भी उस छोटे आकाश के प्रदेशो को अको से गणना नही कर सकते, इसलिये वह असख्य प्रदेशी है। यदि उस घडे के भीतर बहुत छोटा (सख्यात प्रदेशी) मिट्टी का बर्तन रख दिया जाय तो उस मे जो आकाश के प्रदेश हैं वे सख्यात हैं, उनकी गिनती की जा सकती है। १, २, ३, ४, ५ आदि रूप से उनकी गणना कर सकते हैं। इस प्रकार अखण्ड आकाश को घट आदि पदार्थो की अपेक्षा के भेद से खण्ड रूप और आकाश की अपेक्षा अखण्ड रूप कह सकते हैं। उस छोटी मटकी के अदर जो आकाश का प्रदेश है उसमें रक्खे हुए एक परमाणु को आकाश का सर्व-जघन्य प्रदेश कह सकते हैं। उस परमाणु को आदि लेकर १-२-३-४-५ आदि परमाणु बढाते हुये समस्त आकाश के प्रदेशो की पक्ति जानना केवली-गम्य है क्योकि केवल ज्ञान के द्वारा समस्त विश्व के पदार्थ जाने जाते हैं ॥१॥

ऊपर कही हुई समस्त वस्तुओ को सरसो के दाने के बराबर क्षेत्र में छिपा कर उसमें अनन्त को स्थिर करके उस मालाक को नौ अंक मे मिश्रित करें, मृदु रूप में करने वाले नव श्री अर्थात् अर्हंन्त सिद्धादि नव पद रूप में रहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥२॥

विवेचन —असख्यात प्रदेश वाले इस लोक में अनतानन्त पुद्गल परमाणु परस्पर विरोध रहित अपने-अपने स्वरूप में स्थित हैं। (परमाणु प्रदेशेष्वनन्तानन्तकोटयः जीव राशय) इस उक्ति के अनुसार वैद्य-शास्त्र के कर्ता वाग्भट्ट ने कहा है। जीव राशि मे से प्रत्येक जीव में अनन्त कर्म वर्गणाओ का कैसे समावेश होता है ? इस बात का खुलासा पिछले अध्याय में कह चुके हैं। आकाश प्रदेश मे अनन्त जीव और उनके कर्माणुओ को जानने के ज्ञान को नवमाक में बद्ध कर अनेक भाषात्मक रूप में व्यक्त करके उन सब को एकत्र करके इस भूवलय ने कथन किया है।

लोक में अनादि काल से ३६३ मत है, एक धर्म कहता है कि संपूर्ण जीवो की रक्षा करनी चाहिए। दूसरा धर्म कहता है जीवों का नाश करना चाहिए। तीसरा धर्म कहता है ज्ञान ही श्रेयस्कर है, तथा चौथा धर्म कहता है कि अज्ञान ही श्रेष्ठ है। इस तरह परस्पर हठ करके कलह करते रहते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतो में परस्पर सघर्ष होने के कारण जैनाचार्यों ने इन धर्मो को पर-समय में रखा है। इन सब पर-समयो को कहने के जो वचन हैं उसको पर-समय-वक्तव्य कहते हैं। जब इन सभी धर्मो को एकत्र करके कहने के लिए वाक्य की रचना होती है तब सभी धर्मो को समन्वित करके छोड देता है। यह समन्वय दृष्टि भूवलय का एक विशिष्ट रूप हुआ है। ३६३ इस अंक को

दाहिनी तरफ से मिलाने पर ६ और ३ = ९ आता है और वायी तरफ से ३ और ६ मिला देने से ९ आता है। इस प्रकार इन अको मे समन्वय कर देता है। यह क्रिया सम्यक् ज्ञान मात्र से ही साध्य है, अन्यथा नही। यही ज्ञान सभी मतो को समन्वय करने वाला है, और यही सम्यकज्ञान दर्शन चारित्र के साथ मिलकर रत्नत्रय स्वरूप करके छोड देता है। वह रत्नत्रय ही आत्मा का स्वरूप है। सम्पूर्ण मल दोषो से रहित होने के कारण अनतानत वर्ग स्थान के ऊपर जाकर सव को जान लेता है। इसी तरह अनतानन्त वर्ग स्थान के नीचे उतर कर सर्वोत्कृष्ट असख्यात तक आकर, वहा से जघन्य असख्यात मे उतर कर वहा से पुन सर्वोत्कृष्ट असख्यात तक आकर और पुन वहा से २ अक तक आकर वहा से गणनातीत होकर एक अक्षर रूप में होता है। अव कुमुदेन्दु आचार्य इस नवमाक की महिमा का वर्णन करते हैं ॥३॥

ज्ञानावरण कर्म का सर्वथा क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्त सुख देने वाला अन्तरग बहिरग लक्ष्मी का आश्रयभूत यह नवमाक है ॥४॥

यह नवमाक जहा भी देखे, सभी जगह पूर्णाङ्क दिखाई देता है नवाक से पहिले के अक अपूर्ण और मलिन दीख पडते हैं। उन अको को अपने अन्त-र्मुख करके पूर्ण और विशुद्ध वनाने वाला यह नवमाक है ॥५॥

भावार्थ—नव ९ अक से पहिले के अक एक दो आदि सव ही अपूर्ण हैं क्योकि उनसे अधिक–अधिक सख्या वाले अक मौजूद है। एक नवमाक ही ऐसा है जहा सख्या पूर्ण हो जाती है क्योकि उसके आगे कोई अक ही नही हैं। यह नवमाक पावन और परिशुद्ध है ॥६॥

विश्व भर में व्याप्त यह नवमाक है ॥७॥

हजार, लाख आदि गिनती मे भी नवमाक है ॥८॥

पावन सूच्यग्र में भी नवमाक है अर्थात् छोटे से छोटे भाग मे भी नवमाक है और वडे से वडे भाग में भी नवमाक है ॥९॥

श्री विश्व अर्थात् अतरङ्ग विश्व में भी नवमाङ्क है ॥१०॥

हजारो करोडो आदि रूप से रहने वाला नवमाङ्क है ॥११॥

जन्म मरण जिस प्रकार परस्पर सापेक्ष हैं, वैसे ही नवमाक की अपेक्षा अन्य सभी अङ्क रखते हैं। मरण अन्त को कहते हैं, सख्या का अन्त-मरण, नवमाक प्राप्त हो जाने पर हो जाता है। नवम अङ्क प्राप्त हो जाने के बाद ही सख्या का जन्म हो जाता है अर्थात् ९ के वाद एक, दो वोले जाते हैं इसी-लिए जन्म मरण रूप दोनो अवस्थाओ मे नवमाक रहता है ॥१२॥

सुख दुःख दोनो मे नवमाक काम आता है ॥१३॥

छद्मस्थ की बुद्धि के अगम्य नवमाक की गम्भीरता है ॥१४॥

श्री वीर भगवान का ज्ञान-गम्य यह नवमाक है ॥१५॥

कर्म वन के लिए दावानल के समान जलाने वाला नवमाक है ॥१६॥

ऋपि-सूत्र द्वादशाग नवमाक से वद्ध है ॥१७॥

समस्त विद्याओ का साधक नवमाक है ॥१८॥

वाणी को पवित्र करने वाला नवमाक है ॥१९॥

विश्व का रक्षक यह नवमाक है ॥२०॥

विश्व मे व्याप्त नवमाक है ॥२१॥

श्री वीर भगवान का सिद्धान्त नवमाक है ॥२२॥

श्री वीरसेन आचार्य का सिद्धान्त नवमाक है ॥२३॥

हमारा (कुमुदेन्दु आचार्य का) सिद्धान्त नवमाक है ॥२४॥

इन सव ९ अङ्को का रक्षक भूवलय है ॥२५॥

यह नवमाक वरद हाथ के समान है, नव पद पच परमेष्ठियो का इष्ट है, सरस साहित्य के निर्माण मे प्रधान है। क्षायिक नव केवल लब्धि (क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य) प्रदान करने वाला है ॥२६॥

रत्न हार की मध्यवर्ती प्रधान मणि के समान ही गणित का यह अङ्क प्रधान अक (नव ९) है। ३ अक को ३ अक से गुणा करने पर यह नवमांक होता है। सौ, हजार, लाख, करोड आदि जितनी सख्या है उनमे एक सख्या घटा दी जाय तो नौ अक ही सर्वत्र दिखाई पडता है। जसे १०० में से १ घटा देने से ९९ हो जाता है, १००० मे से १ घटा दें तो ९९९ हो जाता है, १०००-०० मे से १ घटा दें तो ९९९९९ हो जाता है, १०००००००० मे से १ घटा दें तो ९९९९९९९९ हो जाते हैं ॥२७॥

१००००००००००००००००००००
—१

६६६६६६६६६६६६६६६६६६६६

केवलज्ञान आदि ज्ञान ऋद्धि जंघा आदि से आकाश में गमन करा देने वाली चारण-ऋद्धि और अणिमादिक अतिशय प्रदान करने वाली समस्त ६४ ऋद्धियों की सिद्धि कर देने वाला यह नवमांक है। सदा साथ-साथ रहने वाला दिव्य विद्या रूप यह नवमांक है। अध्यात्म-सिद्धि का मार्ग करा देने वाला नवमांक है। अष्ट कर्मों को नष्ट कर देने वाला नवमांक है। अथवा शुद्ध कर्णाटक भाषा का महानकाव्य है। अथवा घाति-कर्मों के नष्ट हो जाने के बाद बचे हुए ८५ अर्थात कर्मों का वर्णन करने वाला यह काव्य है। इसलिए (१) शुद्ध कर्नाटक है ॥२८॥

यशस्वती देवी द्वारा बोली जाने वाली प्राकृत भाषा १, लिपि २, रस भरी सरस नित्य संस्कृत भाषा ३, अस्मात् द्राविड़ ४, (१ कानडी, २ तामिल, ३ तेलङ्गी, ४ मलेयाल और ५ तुलु) इन पांच भाषाओं को एक द्राविड़ भाषा कहते हैं ५, महाराष्ट्र ६, गुर्जर ७, अंगद ८, कलिंग ९, काश्मीर १०, काम्भोज ११, हम्मीर १२, शौरसेनी १३, वहाली (पाली) १४, तिब्बत १५, वेंगी इत्यादि सात सौ भाषायें हैं। वंग १६, निपहर ब्राह्मी। नेमि विजयार्द्ध १७, पद्म १८, वैदर्भी १९, वैशाली २०, सौराष्ट्र २१, खरोष्ट्र २२, नीरोष्ट्र २३, अपभ्रंशिका २४, पैशाची २५, रक्ताक्षर २६, अरिष्ट २७, डुमुमाली २८, सुमना-जी २९, ऐन्द्रध्वजा ३०, रसज्वलज ३१, महा पद्म ३२, अर्द्ध मागधी ३३। यहा तक ५८ श्लोक हो गये। आगे ५९ श्लोक से लिखेंगे ॥२९ से ५८ तक॥

३४ आरस, ३५ पारस, ३६ सारस्वत, ३७ बारस, ३८ वीर वश, ३९ मालव, ४० लाट (लाड देश में इस भाषा के अनेक भेद हैं) ४१ गौड (गौड देश के पास रहने वाले मागध), ४२ मागध के बाहर का देश विहार, ४३ नौ अक्षर वाले, ४४ कान्य-कुब्ज, ४५ वराह (वराड), ४६ ऋद्धि प्राप्ति को कर देने वाले वैश्रवण, ४७ शुद्ध वेदान्त भाषा तथा दो ढाई हजार वर्ष पहिले की संस्कृत भाषा को गीर्वाण भाषा कहते हैं। धवलत्र के श्रुतावतार नामक दूसरे खण्ड के संस्कृत विभाग में गीर्वाण इसी को कहा है।

ऋग्वेद अभिमन्त्र स्तोत्र आदि इसी भाषा द्वारा श्री भूवलय में कहे गये हैं।

जिस देश में जो भाषा बोली जाती है, वह उसी देश में लोगों का उपकार करती है और उसे "सर्व" कहते हैं। ५८ 'तिलक भाषा' (स्त्रियों द्वारा कही जाने वाली भाषा) अर्थात् तिलक लगा कर अपना अभिप्राय बताना, सब देश में तरह तरह से लोगों का उपकार करती है। जैसे कि—तीलो भाषा तिलक भाषा है। यहीं लोगों में परस्पर बातें करते हो गयी तो वहां बातें अपने माथे की स्त्रियों का तिलक निकाल देती हैं। यदि 'मारवाड़ हो गई' यह कहना होता है तो तीन अर्थात् उनमें स्त्रियां सा तिलक लगा देती हैं। उसका अभिप्राय यह है कि स्त्री का स्वभाव सब देशों में एक जैसा रहता है। वहां की स्त्रियां इकट्ठी हुई कि बातों बातों में गाली देने लगती हैं और वहां चोर आदि ज्यादा इकट्ठे हुए तो मारपीट भी करने लगते हैं। ज्योतिष चित्र में २-३ आदि लिखा दिखाते हैं।

भगवान ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री को जो लिपि (अक्षर लिखा) दहिने हाथ की हथेली पर लिख कर सिखाई थी उनमें जो अक्षर हथेली के सीधे भाग पर लिखे गये थे उनका आश्रय लेकर बोली जाने वाली भाषा एक प्रकार की हुई और हथेली के निम्न भाग में लिखी गई लिपि (अक्षर) का आश्रय लेकर जो भाषा बोली गई वह दूसरे प्रकार की भाषा हुई। इसी प्रकार दक्षिण देश के भिन्न-भिन्न भागों में बोली जाने वाली आठ भाषाएं हैं।

अथवा—

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च सूरसेनीच।
षट्टोत्तर भेदाहिदेशविशेषादपभ्रंश ॥

अर्थ—प्राकृत, संस्कृत, मागध, पिशाच, शौरसेनी तथा अपभ्रंश इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणाकार करने पर १८ महाभाषाएँ क्रम से होती हैं ॥९५ ९६॥

पुन—कर्णाटक, मागध, मालव, लाट, गौड और गुर्जर इन मूल ६ भाषाओं का ३ से गुणा करने पर १८ महाभाषायें हैं ॥९७॥

इस रीति से दिगम्बर जैन आचार्यो के सघ भेद के कारण काव्य रचना की पद्धति सरणी तथा शैली आदि बदलती रहती है किन्तु यह परिवर्तन हमे यहा इष्ट नहीं है अपितु भगवान ऋषभनाथ ने अपनी सुपुत्री सुन्दरी को जो कभी न बदलने वाली अक विद्या सिखलाई थी, वही अक विद्या हमे यहा इष्ट है ॥९८॥

क्योकि नवमाक विद्या सदा एक ही रूप मे स्थिर रहती है, इस कारण अनुलोम प्रतिलोम पद्धति द्वारा नवमाक से भूवलय सिद्धान्त की रचना हुई है ॥९९॥

जगत मे प्रचलित हजारो भाषाओ को रहने दो । भगवान महावीर की वाणी नवमाक मे व्याप्त होने के कारण नवमाक पद्धति से ७१८ भाषाओ का प्रगट होना क्या आश्चर्यजनक है ? ॥१००॥

इसी प्रकार ऊपर कहे अनुसार ४६ भाषाओ के अलावा और भी भाषा तथा लिपि कुमुदेन्दु आचार्य उद्धृत करते हैं—

हस, भूत, वीरयक्षी, राक्षसी, ऊहिया, यवनानी, तुर्की, द्रमिल, सैंधव, मालवणीय, किरीय, नाड्, देवनागरी, वैविध्यन, लाड, पारसी, आमित्रिक, भूवलयक, चाणक्य, ये ब्राह्मी देवी की मूल भाषाये हैं। ये सभी भाषायें श्री भगवान् महावीर की वाणी से निकल कर भूवलय रूप बन गयी हैं।

यह सुन्दरी देवो का भूवलय है ॥११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२० ।

इस ससार (विश्व) मे सात सौ क्षुद्र भाषाऐं हैं, उन सब भाषाओ की लिपि नही है । शेष भाषाओ को बोलने वाले कहीं किसी प्रदेश में रहने वाले हैं । किसी देश मे क्षुद्र भाषा बोलने वाले प्राणी नही हैं जहा हो वहा भाषा भी उत्पन्न हो सकती है । जो भाषा जहा उत्पन्न होने वाली है उसको वहा के प्राणी जान सकते है । क्योकि यह भूवलय ग्रन्थ त्रिकालवर्ती चराचर वस्तु को देखने वाले महावीर भगवान की वाणी से निकला है । इसलिए इससे जान सकते हैं ॥१२१॥

अर्हन्त भगवान की वाणी को सर्व-भाषामयी भाषा कहते हैं। सम्पूर्ण जगत में जो भाषाऐं है वे सभी भगवान महावीर की वाणी से बाहर नही । अत अर्हन्त भगवान की दिव्य भाषा को विश्वविद्याभाषिणी भी कहते हैं। इस भूवलय ग्रन्थ मे चौसठ अक्षर होने के कारण विश्व की सर्व विद्याओ की प्रभा निकलती है । इसलिये विविध भाषाओ को कुमुदेन्दु आचार्य ने अक मे बद्ध कर दिया है ॥१२२॥

स्वर्गा मे प्रचलित भाषा को दिव्य भाषा कहते हैं। उन सब भाषाओ की एक राशि बनाकर के गणित के बध से बाधते हुए जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी सात सौ भाषाओ मे मिलती हुई धर्मामृत कुम्भ मे स्थापित हुई है ॥१२३॥

इस कुम्भ मे समावेश हुई सब भाषाओ में रहने वाले पदो को गुणा करके बुद्धिमान दिगम्बर जैन ऋषि जब अठारह भाषा के लिपिबद्ध के महत्व को तपोवन मे अध्ययन करते हैं तब उनके हृदय को शान्ति मिलती है ॥१२४॥

इन महिमामयी लिपियो को अपने हाथ में लेकर महा ऋद्धि-प्राप्त ऋषियो ने सुन्दर काव्य रूप बनाया है । वर्तमान अतीत और अनागत काल मे होने वाली सब भाषाओं के अक इसमे हैं ॥१२५॥

किस भाषा मे कितने अक हैं और कितने अक्षर हैं इन सब को एक साथ आचार्य जी ने कैसे एकत्रित किया । इन शकाओ को समन्वय रूपात्मक सिद्धान्त रूप से उत्तर कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१२६॥

इस भूवलय ग्रन्थ मे सर्वोपरि रहने वाला जो नौ अक है, वह विश्व का आधिपत्य करने वाला है ॥१२७॥

श्री भगवान महावीर की अनक्षरी वाणी इन्ही नौ अक रूप मे थी ॥१२८॥

शका अनेक प्रकार की होती है । शका मे शका ही उत्तर रूप से अर्थात् पूर्ण से उत्तर न मिलने वाला और उत्तर मिलने वाला इत्यादि रूप से अनेक समाधान होते हैं । उन सबका ॥१२९॥

जिस जगह मे शका उत्पन्न होती है उसी जगह में समाधान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३०॥

इस भूवलय में स्वसमय-वक्तव्यता, परसमय-वक्तव्यता और तदुभय-वक्तव्यता ऐसे तीन प्रकार की वक्तव्यता का अर्थ प्रतिपादन करना है । स्वसमय

का अर्थ आत्म-द्रव्य है। स्वसमय वक्तव्यता मे केवल आत्म द्रव्य का कथन है। पर-समय का अर्थ पुद्गल आदि द्रव्य हैं। उसका जहा वर्णन हो उसे 'पर-समय वक्तव्यता' कहते हैं। जिसमे 'स्व' यानी आत्म-द्रव्य की और पर पुद्गल द्रव्य की बात आई हो उसे उभय वक्तव्यता कहते हैं।

इन तीनो तरह की वक्तव्यताओ मे से इस भूवलय ग्रन्थ मे स्वसमय-वक्तव्यता की प्रधानता है ॥१३१॥

यह भूवलय—सहज अक्रमय काव्य को उत्पन्न करने वाला है ॥१३२॥

इस भूवलय ग्रन्थ को सबसे पहले गोम्मट देवने प्रकट किया था ॥१३३॥

यह भूवलय ग्रन्थ समस्त जीवो के लिए अध्यात्म विद्या को प्रगट करने वाला है ॥१३४॥

इसके सिवाय और भी समस्त प्रकार की विद्याओ को निकालने वाला है ॥१३५॥

मरण को जीतकर नित्य जीवन देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१३६॥

इस भूवलय मे जो चक्राक है सो सब धवल बिन्दु के समान हैं ॥१३७॥

श्री स्वयम्भू भगवान के बताए गए हुये ६३ अथवा ६४ अक्षर प्राकृत भाषा मे तथा सस्कृत भाषा में विद्यमान हैं ॥१३८॥

ये सभी अक्षराङ्क पवित्र हैं और विश्व को नापने वाले हैं। इन अक्षरो को परस्पर सयोगात्मक करके अनेक प्रकार के बन्धनो में बाँध कर चक्राकार पद्म रूप मे बनाने वाला यह भूवलय है। चक्र के भीतर २७×२७ = ७२९ आरे बनते हैं ॥१३९॥

इस भूवलय काव्य को आदिनाथ भगवान ने श्री ब्राह्मी देवी की हथेली में लिख कर प्रगट किया था ब्राह्मी देवी की हथेली अत्यन्त मृदु थी इसलिए यह भूवलय भी अतिशय कोमलरूप है। उपर्युक्त अक्षरो को गुणाकार रूप में लाकर रत्नहार की भाति उनसे गुथा हुआ यह भूवलय काव्य है। इस भूवलय ग्रन्थ को श्री भगवान ने ब्राह्मी देवी की हथेली में लिखा था और कागज, कलम तथा स्याही की सहायता के विना सिर्फ अपने अगुष्ठ से लिखा था और आठ-आठ अक्षरो वाली आठ पक्तियो मे लिखा था जो कि लेख कहलाया। इसलिए उसका दूसरा नाम 'खरोष्ठ' पड गया ॥१४०॥

इसी ६४ अक्षर मय काव्य-ग्रन्थ को श्री ऋषभदेव भगवान ने सुन्दरी की हथेली मे एक आदि नौ अको मे गर्भित करके लिखा था जिन नौ अको को पहाड़ा के प्रस्तार रूप मे करने से उस में विश्व भर की महिमा आजाती है जिस की लिपि अक गणित कहलाती है ॥१४१॥

अथवा प्राकृत सस्कृतमागधापिशाचभाषाश्च।
पाठोत्तर [९५] भेदो देशविशेषापभ्रंश । [९६]
कर्णाटमागधमालवलाटगौडगुर्जरप्रत्येकत्रय—
मित्यष्टादशमहाभाषा [९७]
सर्वभाषामयीभाषा विश्वविद्यावभासिने ।१४२।
त्रिषष्टिश्चतु षष्टिवावर्णा. शुभमते मताः ।
प्राकृते सस्कृते चा [१३८] पिस्वय प्रोक्ता.स्वयम्भुवा ।१३९।
अकारादिहकारान्ता शुद्धा मुक्तावलीमिव ।
स्वरव्य जनभेदेन द्विधा भेदमुपेयु-।१४२।षीम् ।
अयोगवाहपर्यन्ता सर्वविद्यासु सङ्गताम् ।
आयोगाक्षर सम्भूति नैकबीजाक्षरैश्चि-[१४३] ताम् ।
समवादी दधत् ब्राह्मीमेवाविन्यपि सुन्दरी ।
सुन्दरी गणितस्थानं क्रमैः सम्यगधास्यत ॥१४४॥
ततो भगवतोवक्त्रा नि सृताक्षरावलीम् ।
नम इति व्यक्तासु मंगलां सिद्ध मातृकाम् ॥१४५॥

अर्थ—भगवान ऋषभनाथ के मुख से प्रगट हुए अ कार से हकार तक अयोगवाह अक्षरो (क ख प फ) सहित शुद्ध मोतियो की माला की तरह वर्ण-माला को ब्राह्मी ने धारण किया। जो (वर्णमाला) कि स्वर और व्यजनो के भेद से दो प्रकार है, समस्त विद्याओ से सगत है, अनेक बीजाक्षरो से भरी हुई है, नम सिद्धेभ्य से प्रगट हुई सिद्धमातृ का है। भगवान ऋषभ नाथ की दूसरी पुत्री सुन्दरी ने क्रम से ९ अको द्वारा गणित को मोतियो की माला को की तरह धारण किया।

ब्राह्मी देवी वृषभनाथ भगवान की बडी पुत्री होने के कारण ब्राह्मी लिपि को ही पहली लिपि माना गया है। दूसरी लिपि यवनाक लिपि है ऐसा अन्य आचार्यों का भी मत है ॥१४६॥

"दोषउपरिका तीसरी भाषा है, वराटिका (वराट) चौथी है। सर्व-जी, अथवा खरसापिका लिपि पाचवी है। प्राभृतिका छटी है ॥१४७॥

उच्चतारिका सातवी हैं, पुस्तिकाक्षर आठवी है, भोगयवत्ता नौवी है। वेदनतिका दशवी है। निन्हतिका ११ वी, सरमालाक १२वी, परम गणिता १३ वी है, १४ वी गान्धर्व, १५ आदर्श, १६ माहेश्वरी, १७ दामा १८ बोलिदी ये सब अङ्क लिपिया जाननी चाहिए ॥१४८॥

दिगम्बर मुनियो के सघ भेद के कारण भाषाओ में भी भेद देखने में आया है। परन्तु इन में भेद रूप समझकर परस्पर विरोध रूप मे ग्रहण नही करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जितनी भी प्रचलित भाषायें हैं उनमें भेद मानना चाहिए ॥१४८—१६०॥

ऊपर कही हुई बातो को नारकी जीव, तिर्यंच जीव नही जानते हैं। परिशुद्ध अक को देवता लोग, मनुष्य जान सकते हैं। कोई लिपि न होने पर भी ध्वनि शास्त्र के अवलम्बन से केवल नौ अको से ही लिख सकते हैं कह भी सकते हैं और सुन सकते हैं, ऐसे सरसाक लिपि को अक्षर लिपि रूप मे परिवर्तन कर सकते हैं ॥१६१॥

विवेचन—श्री भूवलय ग्रन्थ में एक भी अक्षर नही है १ से लेकर ६४ तक अङ्क रूप में रहने वाले १२७० चक्र हैं। उन चक्रो के द्वारा १६००० अक चक्रो को निकाला जाता है।

भगवान ऋषभनाथ ने यशस्वती और दोनो पुत्रियो ब्राह्मी, सुन्दरी को अक्षर तथा अक पद्धति से भूवलय पढाया था। उनकी देशभाषा में आने वाला काव्य रस, शब्द रीति आदि जो उस समय थी उसको हम आज भी भूवलय द्वारा पढ सकते हैं। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं ॥१६२॥

विवेचन—यह भूवलय ग्रन्थ आधुनिक शैली में लिखा गया है अत आज कल के विद्वान इसको दशवी शताब्दी का मानते हैं अथवा अमोघवर्ष नृपतुग के तथा इन्द्रनदी श्रुतावतार के ग्रन्थ के तथा और भी कुछ श्लोक भूवलय में मिलते हैं। अत यह सर्व भाषामय न होकर यदि एक ही भाषा मे होता तो उसी के अनुसार इसका प्रचार हो सकता था। ऐसा कुछ लोग कहते है परन्तु अनेक भाषायें कनडी से सम्मिश्रित होकर गणित रूप से उनका प्रादुर्भाव होता। दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु ने अपने स्वतन्त्र अनुभव द्वारा यद्यपि इस भूवलय की रचना की है फिर भी यह काव्य परम्परा से भगवान जिनेन्द्र देव के मुख से प्रगट हुए शब्दो मे से चुन कर बनाया गया है। इस तरह प्रामाणिक परम्परा से यह भगवान की वाणी रूप काव्य है। चौथे काल में भी यह अकमयी भाषा थी। इसलिए आचार्य कुमुदेन्दु 'उस काल की भाषा को भी गणित से ले सकते हैं, ऐसा लिखा है।

यशस्वती देवी की छोटी वहिन सुनन्दा के गर्भ से पहले कामदेव बाहु-बली का जन्म हुआ। वे काम शास्त्र तथा आयुर्वेद के ज्ञाता थे। किन्तु उन्होने उन दोनो विषय मे त्याग तथा रस सिद्धि को बतलाया ॥१६२॥

श्री गोम्मटदेव (बाहुबली) कामदेवो मे पहले कामदेव (अपने समय में सबसे अधिक सुन्दर) थे। इसके सिवाय वे प्रथम केवली भी थे, अत उनको हमारा नमस्कार हो।

प्रश्न—भगवान ऋषभनाथ को बाहुबली से पहले केवल ज्ञान हुआ था अत बाहुबली को प्रथम केवली कहना उचित नही।

उत्तर—बाहुबली भगवान ऋषभनाथ से पहले मुक्त हुए हैं अत उनको प्रथम केवली कहा गया है।

सुन्दरी ने अपने पिता से भी २५ धनुष अधिक ऊचे अपने भाई बाहु-बली को देखकर भक्ति की और जगत मे यही सबसे अधिक विशालकाय परमात्मा हैं, ऐसा अनुभव किया ॥१६४॥

सुन्दरी देवी ने अपने बडे भाई से चक्रबन्ध गणित को जाना और १० के भीतर ९ अक को गर्भित हुआ समझा ॥१६५॥

उस गणित के मानचित्र (छवि) मे अन्तर्भूत सत्माक है ॥१६६॥

समस्त कामदेवो में प्रथम बाहुबली द्वारा कहा हुआ यह अक है ॥१६७॥

जन्म मरण रूपी भवभय को हरण करने वाला यह अक है ॥१६८॥

उन अंकों में प्रतिलोम अंक को स्थापित करना, उसके ऊपर अनुलोम अंक को स्थापित करना ।।१६९।।

उन दोनों को जोड देने पर नौ बार १-१ तथा एक बिन्दी आती है ।।१७०।।

इस रीति से नवकार मत्र एक ही है ।।१७१।।

दिगम्बर मुनियो का धर्मांक १ है ।।१७२।।

इस रीति से मृदु-काव्य रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ।।१७३।।

अनुलोम १२३४५६७८९
प्रतिलोम ९८७६५४३२१
१११११११११०

इस रीति से जो १० अंक आये वह दस धर्म का रूप हैं इसलिए वह परिपूर्णांक ९ मे गर्भित है। वह कैसे ? समाधान-बिन्दीको छोड देने से ९ रह गया। इस प्रकार परिपूर्णांक ० से बना यह भूवलय ग्रन्थ है ।।१७४।।

शेप ७०० भाषाऐं अंको द्वारा लिखे हुए होने के कारण अनक्षरी भाषाऐं हैं। द्रव्य प्रमाणानुगम के ज्ञाता दिगम्बर मुनि उन भाषाओ को जानते हैं। उनके ज्ञान को आगे दिखावेंगे। ऐसा प्रतिपादन करनेवाला यह कर्माटक भूवलय हैं ।।१७५।।

वाहुवली, ब्राह्मी ओर सुन्दरी ने जो अपने पिता भगवान ऋषभनाथ से ६४ अक्षर तथा बिन्दी सहित ९ अंक सीखे थे, उसे अब बतावेंगे ।।१७६।।

उस सवको पहाडे रूप गणित से जाना जा सकता है ।।१७७।।

यह सव गुरु-परम्परा से आया हुआ गणित है ।।१७८।।

पांच परमेष्ठियो से अर्थात् ५ से गुणा किया हुआ यह गणित अंक है ।।१७९।।

सवसे पहले तीर्थंकरो ने इसे सिखाया ।।१८०।।

सवसे पहले भगवान ऋषभनाथ ने इस गणित को सिखाया ।।१८१।।

फिर भगवान अजितनाथ ने इसका प्रतिपादन किया ।।१८२।।

इसी प्रकार श्री सम्भवनाथ ने इसे सिद्ध किया ।।१८३।।

तत्पश्चात् देवो द्वारा वन्दनीय श्री अभिनन्दननाथ तीर्थंकर ने इसे बतलाया ।।१८४।।

देव, मनुष्यो द्वारा पूज्य श्री सुमतिनाथ ने इसे कहा ।।१८५।।

तत्पश्चात् श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र ने इसको वतलाया ।।१८६।।

श्री सुपार्श्व नाथ तीर्थंकर धर्म प्रचार करके अन्त में शेप कर्म क्षय करके मोक्ष चले गये। नारकी जीव इनकी वाणी को स्मरण करते हैं ।।१८७।।

चन्द्रप्रभतीर्थंकर की दिव्य ध्वनि सुनकर उन्हे 'चन्द्रशेखर' अथवा 'शिव, गुरु लिंग' इत्यादि नामो से पूजते हैं ।।१८८।।

इसी प्रकार पुष्पदन्त और शीतलनाथ भगवान का उपदेश क्रम समझना चाहिए ।।१८९।।

श्री श्रेयांश तीर्थंकर का भी यही क्रम है ।।१९०।।

श्री वासुपूज्य का क्रम भी यही है ।।१९१

श्री अरहनाथ तीर्थंकर, विमलनाथ, और अनन्तनाथ का भी यही क्रम रहा ।।१९२।।

श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ का क्रम भी इस तरह है ।।१९३।।

श्री कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ तीर्थंकर का भी यही क्रम है ।।१९४।।

श्री मुनिसुव्रततीर्थङ्कर का क्रम भी इसी तरह था ।।१९५।।

श्री नमि और नेमिनाथ तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।।१९६।।

और पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर तथा श्री वर्द्धमान तीर्थङ्कर का क्रम भी इसी प्रकार था ।।१९७।।

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करो ने भूवलय को रचना (अपनी दिव्य-ध्वनि द्वारा) की थी इसलिए यह भूवलय ग्रन्थ की परिपाटी प्रमाण रूप मे अनादि काल से चली आई है ।।१९८।।

अब इस पाचवें अध्याय को कुमुदेंदु आचार्य सकेत रूप करते हुए अंक से सम्पूर्ण विपयो को बतलाते हैं। इसी अंक से इस अध्याय के समस्त अंक का भी ज्ञान होता है। वह इस प्रकार है—

वाहुवली ने अपनी तरुण अवस्था मे इस भूवलय काव्य मे गर्भित अन्तर काव्य का परिज्ञान कर लिया था। ६००२१ अथवा १२०६ यह अक ६४ अक्षर का ही भग है, इससे अत्यन्त सुन्दर सरस काव्यागमरूप भूवलय निकल आता है। इस लिए इस अध्याय का नाम "ई" अध्याय लिखा है ॥१९९॥

जगत के अग्र-भाग मे सिद्ध समुदाय है। जोकि तीन लोक रूपी शरीर के मस्तक स्वरूप है। इसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी मस्तक के समान महत्व-शाली है ॥२००॥

जिन मार्ग का अतिशय मानकर स्वीकार करने से नव पद सिद्धि के घन मर्म रूपी पाचवा अध्याय भूवलय नामक काव्य श्रेणी मे ग्यारहवा चक्र है। इसके सब अक्षराक ८०१९ हैं। २०१

पाँचवें "ई" ८०१९॥+अन्तर २२००६=२००२५

अथवा अ–ई ६४, ८२७+ई २०, ०२५ = ५४, ८५, २।

जो इस अध्याय मे श्रेणी-वद्ध प्राकृत गाथा निकलती है उस गाथा को और उसका अर्थ यहाँ दिया जाता है।

"ऊपर कहे हुए" अनुसार यह भूवलय ग्रन्थ आचार्य परम्परा से चला आया है उन सव मुनियो की सख्या तीन कम नौ करोड कहते हैं। उनके द्वारा कहे हुए इस भूवलय ग्रन्थ को समस्त भव्य जीव अध्ययन करें, सुने और मनन करे। इसका भक्ति तथा त्रिकरण शुद्धि-पूर्वक अध्ययन करने से इस लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति होती है अन्त मे मोक्ष प्राप्त होती है।

मध्यम श्रेणी के सस्कृत काव्य का अर्थ—

यह भूवलय काव्य पढने से समस्त कर्म रूपी कलक नाश होकर श्रेयोमार्ग की प्राप्ति होगी। सदा धर्म का सम्वन्ध तथा अभ्युदय को देने वाला यह काव्य है। एव हमेशा भव्य जीवो को प्रतिवोध करने वाला यह भूवलय काव्य है।

छटा अध्याय
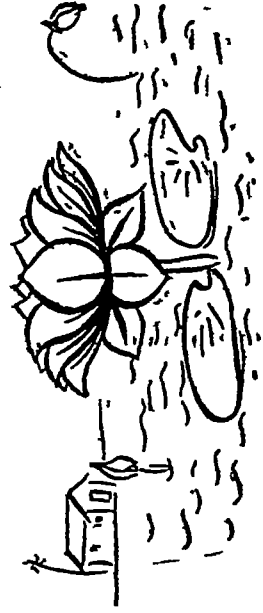
अ॰ रि गरण मुन्दरणानागत हिन्दरण । सागिद कालवेल्लरली ॥ सागु तका॰ एुव सर्वज्ञदेवन । योगव काण्व भूवलय ॥१॥
स॰ र्वज्ञदेवनु सर्वांगदिम् पेळ्द । सर्वस्व भावेयस र॰ गि ॥ पर्वदन्ददलि हव्वुत होगि लोकाग्र । सर्वार्थसिद्धि वळसि ॥२॥
मु॰ क्तियोळिह् सिद्ध जीवर तागुत । व्यक्ताव्यक्तवदागि ॥ स क॰ लवु कर्माटदणुरूप होन्दुत । प्रकटदे ओम्दरोळ् अडगि ॥३॥
ह॰ दिनेन्दु भावेयु महाभावेयागलु । वदिय भावेगळ् एळ्लुनूर म॰ हृ दयदोळडगिसि कर्माट लिपियागि । हुदुगिसिदन्क भूवलय ॥४॥
ग॰ रुड गान्धर्व किन्नररु किम्पुरुषरु । नरक तिर्यंच पु॰ ळिन्द ॥ नररू देवतेगळनक्षर भावेय । तिरुगिसि गणिसळु बहुदु ॥५॥
ग॰ मकद कलेयोळु तोर्प वय्विध्यद । सम् विषमान्कद आग ण॰ य ॥ विमलव समलव क्रम मूरमगिय । गमकदि तिळियलु बहुदु ॥६॥
ह॰ कसेरलेन्टेण्दु ममगळ्एरड कूडे । सकळवु विषम एळुव य॰ ॥ हकद वन्धद वन्ध पाहुड भेदव । नकलन्क सूक्षानुक दरिविम् ॥७॥

प्रकटिसलध्यात्म योगि ॥८॥ सकलद्वि सम्योग भग ॥९॥ विकलाक सम्योग भग ॥१०॥ सकलवु अपुनरुक्तांक ॥११॥
निखिल द्रव्यागमदग ॥१२॥ ओकृटि ओम् ओण्णु ओम् अक ॥१३॥ प्रकटित सर्वं भाषाक ॥१४॥ विकलवागिहसर्व बंध ॥१५॥
सकल नोमर्व उत्कृष्ट ॥१६॥ अ फलक अनुत्कृष्ट वध ॥१७॥ निखिल जघन्य अजघन्य ॥१८॥ सकलवु सादि अनादि ॥१९॥
सकलवु ध्रुव अध्रुवाक ॥२०॥ निखिलवु वध स्वामित्व ॥२१॥ शकमय बधद काल ॥२२॥ प्रकट बधातर काल ॥२३॥
हक वध सन्निकर्षांक ॥२४॥ शक भगविचय विभाग ॥२५॥ सकल भागाभाग क्षेत्र ॥२६॥ निखिलद परिमाण स्पर्श ॥२७॥
सकल कालातर भाव ॥२८॥ सकलाक अल्पवहुत्व ॥२९॥ सकल वधद नाल्कु गुणित ॥३०॥

य॰ रव प्रकृति स्थिति अनुभाग सरणिय । सरिय प्रवेशद् प॰ रकृति॥ विरचित गुणकार'एन्टेन्दु'वन्दुद। मरळि अवम् 'एन्ट'रिंद ॥३१॥
य॰ दविन्द गुणिगलु वर्पएळ्नूरर । वशदोळुवन्आल्क र॰ कळेये ॥ यशस्वति देविय मगळरिवेळ्नूर । पशु देव नारक भावे ॥३२॥
ण॰ ववन्वद ई भावेगळेल्लवु । अवतरिसिदि कर्मवाट ॥ सव का॰ येन्देन्नदे सवियागिसिकोन्डत्रि वरद काव्य भूवलय ॥३३॥
म॰ नुमथनरवत्त नारकुरुलेय वल्ल । जिन धर्मदनुभवद् श॰ रधि ॥ घन कर्माटकदादियोळ् वहुभावे । विनयत्व वळवडिसिहुदु ॥३४॥

$88 \times 8 = 704 - 4 = 700$ ।

सुनयनुनयनउगिहुदु ॥३५॥ जिन धर्मवदु मानवर ॥३६॥ तनुवनेल्लव होगड वहुदु ॥३७॥ मनदोपनु कोल्लुवुदु ॥३८॥
पन भावेगळ तेरनगहुद ॥३९॥ धनद सम्पदवेल्ल वहुदु ॥४०॥ मनुजर मोक्षकोय्युवुदु ॥४१॥ तनियाद भावेगळिहुदु ॥४२॥
कोनेगे मतगळकूडिपुदु ॥४३॥ जिनमार्गदणुव्रत वहुदु ॥४४॥ घनवादेळ्नूर्हदिनेन्दु ॥४५॥ जिन वर्धमान भावेगळ ॥४६॥
ननेकोनेपोगिसुव भाव ॥४७॥ जिनर भूवलयदोळि हुदु ॥४८॥ घनकले अरवत्तनाल्कु ॥४९॥
तनगे तागे तन्नोळगे ॥५०॥ जीनि नितुम् विश्व भूवलय ॥५१॥

भु॰ ननयव सिद्धांतद अन्ननम् तोविकोन्डा अक्षरद ॥ पाव क॰ रेल्लर्ग मूरारु मूररर । आ विश्वधर्मवेल्लवनु ॥५२॥
य॰ शगोन्दु उत्ताव्रयुत (अनेल्लय) अनेकात । रमवोळु ओम्कारद म॰ कम् ॥ यशवावक्षरदोन्दिगे त्रेसेविह । होसवादनाविय ग्रन्थ ॥५३॥

ल॰ व मात्रवादरू भेदवम् तोरदे । शिव विष्णु जिन ब्रह्म भू पा॰ भवभय हरिसेम्ब रत्न मूरन्कदे । नवकैलाश वैकुण्ठ ॥५४॥
य॰ शसत्य लोक वीमूरन् कदग्रद । सु सौभाग्य दध्यात्म वनु ॥ प॰ सरिप समवसरण दिंद होरबन्दु । दिशेगळ्हत्तनु व्यापिसिरुव ॥५५॥
म॰ हावीरवाणि येम्बुदे तत्वमसियागि । महिमेय मगलवदु प॰ रा ॥ भूरुहत्वबअणुविनोळ् तोरुव । महिमेयवहिसिहदिव्यप्राभृतद॥५६॥
महु सिद्धि काव्य वेनुदेनिप ॥५७॥ सहनेयम् दयेयोडवेरसि ॥५८॥ महिमेय समतावाददलि ॥५९॥ सिहि समन्वयदोडवेरसि ॥६०॥
कहियन् कवम् कळेदिरिसि ॥६१॥ महिय भूवलयदोळ् वहिसि ॥६२॥ सहनेय विद्येयोळ् कूडि ॥६३॥ षहदन्कवदनेल्ल गुणिसि ॥६४॥
महिमेय भाग सम्ग्रहिसि ॥६५॥ इह परवेरडरोळ् कट्टि ॥६६॥ रहमदन्कव नेलेगोळिसि ॥६७॥ वहिसिद धर्मदोळ् इरिसि ॥६८॥
छह खण्डदागम विरिसि ॥६९॥ णहदक अपुनरक्त लिपि ॥७०॥ टहवद तिरुगिसि बिडिसि ॥७१॥ गहनद विषयव वहिसि ॥७२॥
इहदोळु मोक्षव वहिसि ॥७३॥ अहमीन्दर पदविय सहिसि ॥७४॥ महावीर सिद्ध भूवलय ॥७५॥ महिमेय तुरयुरत्न वलय ॥७६॥
वो॰ षवु हदिनेन्टु राशियागिर्वाग । ईशरोळ् भेद तोरुवुदु ॥ राशि र॰ त्नत्रयदाशेय जनरिगे । दोषवळिद वुद्धि बहुदु ॥७७॥
स॰ हवास सम्सार वागिर्प काल । महिय कळुतले तोरुवुदु ॥ मह णा॰ णावरणीय दोषवदळियलु । बहु सुखविह मोक्ष बहुदु ॥७८॥
वि॰ ष हरवागलु चैतन्यवप्पन्ते । रससिद्धि अमृतद श॰ क्ति ॥ यशवागे एकान्त हटवदुकेट्टोडे । वशवप्पनन्तु शुद्धात्म ॥७९॥
र॰ तुनत्रयदे आदियद्वैत । द्वितीयवु द्वैत वेम्बन् क॰ तृतीयदोळने कालवेने द्वैताद्वैतव। हितदि साधिसिद जैनांक ॥८०॥
हि॰ रियत्वविवु मूरु सर मणिमालेय । अरहत हारदरत्न मृ॰ सरपणियन्ते मूरर मूर ओम्बत्त । परिपूर्ण मूरारु मूरु ॥८१॥
य॰ शदन्कवदरोळगोमृदम् कूडलु । वशदा सोन्नेगे ब्रामृह् इ॰ वेसरिन लिपियक देवनागरियेम्ब । यशवदे ऋग्वेददंक ॥८२॥
मृ॰ नुजराडुव ऋक्कु दिविजराडुव ऋक्कु । दनुजराडुव ऋक्कु द॰ नुद॥ विनयवु गोब्राह्मणेभ्यह शुभमस्तु। जिनधर्मसमसिद्धिरस्तु ॥८३॥
घनद प्राकृत वृद्धिरस्तु ॥८४॥ जिनवर्धमानांक नवम ॥८५॥ एनुवक लिपिय अक्षाम्श ॥८६॥ एनुव समस्त शून्यांक ॥८७॥
दनुज मनुजरयुक्यदंक ॥८८॥ सनुमत धर्मदयुक्याक ॥८९॥ अनुदिन बाळ्विके यत्नुर ॥९०॥ मनुजरेल्लर धर्मदक ॥९१॥
कोनेयादि परिपूर्णदक ॥९२॥ मनु मुनिगळ ध्यानदक ॥९३॥ कनसिनोळ् शुभदादियक ॥९४॥ मनुमथरादयनुतदंक ॥९५॥
जिनरूप साधनेयनुक ॥९६॥ इननते ज्योतियादयनुक ॥९७॥ घन कर्माटक रिद्धियंक ॥९८॥
तनुविन परिशुद्धदनुकम् ॥९९॥ कोनेयादि ब्राह्मि भूवलय ॥१००॥

सु॰ विशाल गणनेय पूर्वानुपूर्विय । सविषयवागलद्वैत मृ॰ सवियादियदु पश्चादानुपूर्वियदागे । नवदनुते कोनेगे अद्वयुत ॥१०१॥
द॰ रुशनज्ञान चारित्रव् मूर रोळ् । परमात्मरूपडगिरला शा॰ सिरि मूर तदुभयवेने यत्रतत्रानु । वर पूर्वेय पपुदुअद्वयुत ॥१०२॥
ध॰ र्मवदिनु समन्वयवागलु । निर्मलव्अद्वयुत्अ शा स॰ तर ॥ शर्मरिगा मूरु आनुपूर्विगेवदु । धर्मद ऐक्यवनु साधिपुदु ॥१०३॥
मृ॰ नर्वार्थियद अनेकांत जयुनर । जिन निरूपितवह शास् त्र॰ र ॥ वनुभय द्वयुत कथनुचिदद्वयुतद । घनसिद्धियात्म भूवलय ॥१०४॥
सनुमत विव्य सिद्धांत ॥१०५॥ जिन सिद्धरात्म भूवलय ॥१०६॥ कोनेयादियनुक भूवलय ॥१०७॥ घनधर्मदनुक भूवलय ॥१०८॥
जनरिगननुत भूवलय ॥१०९॥ नेनेवाग सिद्ध भूवलय ॥११०॥ अणुमहान् काव्य भूवलय ॥१११॥ जिनरवाक्यार्थ भूवलय ॥११२॥

मन शुद्धियात्म भूवलय ॥११३॥ तनुविन अतनु भूवलय ॥११४॥ तनगात्म शुद्ध भूवलय ॥११५॥ कनकद कमल भूवलय ॥११६॥
आ* दिगनादिय कालवे निन्नेयु ई दिन नीनु बाळुवुदु ॥ आदियवश र* तुनत्रयगळ साधिप । नादि अनन्तवे नाळे ॥११७॥
ग* मनिसलेल्लर्गे सम्यक्त्व रत्नद । क्रमदन्कवघुनाम् हु* ट्टि॥ समतेय खड्गदिम् क्रोधमानवगेल्व चिनलांकनाळेय दिवस ॥११८॥
म* नद दोषके शास्त्र तनुविन दोषके । घन हृदिमूरु कोटियवश् अ* जिनर वय्द्यागम वचन दोषके शब्द । वेनुवन्क मूरु भूवलय ॥११९॥
मि* दु मधुरतेयिंद ह्रुदयवाळुवदिव्य । हवनाद मुववीश्री व* यण ॥ ह्रुदयांक पद्मद दलवेरि नाळेय । हृदनकाणिसुवअद्वैत ॥१२०॥
दि* नुविंदु वर्तमान निन्नेयतीतवु । घननाळे अनागतवा भू* तणवु द्वैताद्वैत जयनव कूडिप । मनुज दिविज धर्मदन्क ॥१२१॥
जिन वर्धमान धर्मांक ॥१२२॥ मनुजरेल्रिगोम्दे धर्म ॥१२३॥ तनु विनोळात्म सद्धर्म ॥१२४॥ घननाळे इन्दु निन्नेगळ ॥१२५॥
कोनेयादियन्क मूराक ॥१२६॥ जिन धर्मदैवया सिद्धात ॥१२७॥ मनुजरिग् ओम्दे सद्धर्म ॥१२८॥ मनुजर ज्ञानसूत्राक ॥१२९॥
शरणसदे वाळ्व(सूत्राक)सम्यक्त्व ॥१३०॥अनुजरागिसुव सन्मन्तर ॥१३१॥ घन विराड्रूप सूत्राक ॥१३२॥ जिन विष्णु शिव दिव्य ब्रह्म ॥१३३॥
तनयर सलहुव मन्त्र ॥१३४॥ घनवध पुण्य सद्वध ॥१३५॥ विनय सद्धर्मद् अहिंसे ॥१३६॥ घनसत्य भद्र भूवलय ॥१३७॥
प* रिशुद्ध व्रतगळम् अणु महान् एन्नुव । हनुमन्त जिन व* ररन्क॥ मुनिसुव्रतर कालदे वद रामाक । जिन धर्म वर्धमानाक ॥१३८॥
रि* द्धियोळ् श्री वालि मुनिगल गिरियंक । शुद्ध सम्यक्त्व ल* क्षणद॥ वृद्धिरिद्धियोळगण यशद समन्वय । शुद्ध रामायणदंक ॥१३९॥
क* विगे वाल्मीकिय रसदूट उणिसुव । सविये महाव्रतदक । य* वेय मुच्चुव कालदलि यहदोषय । नवशुद्धिगोळिप दिव्यांक ॥१४०॥
हि* रिय दोषगळिगे अणु व्रतगळनित्तु । हिरिय महाव्रत सि द्धि ॥ धरेगे मंगलवप्राभृतद दर्शनवित्तु परिशुद्धवागिसिदक ॥१४१॥
य* शस्वति देविय वसिरिन्द वन्दन्क । वशद ब्रह्माण्ड द* अक्षरद॥ रसवनन्गय्य मूलदलि सुरिसिदंक ॥ विषहर नीलकंठाक ॥१४२॥
मृ* नमथ दोर्बलियादिय तगिगे । घनद् नवमाक दर्शन धा* अनुभव वन्नित्तु जिनरादि ओम्वत्त । तनुजर्गे शून्यदोळ् तोरि ॥१४३॥
जिन धर्मद् ओमवत्तम् सारि ॥१४४॥ जिन स्मार्त विष्णुगळन्क ॥१४५॥ तनुविनोळात्मन तोरि ॥१४६॥
कोनेयलि 'सोन्ने' यागिसुत ॥१४७॥ तनुदोष ओम्दे एन्देनुत ॥१४८॥ सुनय दुर्नयगळ तोरि ॥१४९॥
कोनेगे दुर्नयगळ केडिसि ॥१५०॥ सुनयद अतिशयवेरसि ॥१५१॥ कोनेगे अनेकान्तवेरसि ॥१५२॥
चिनुमयत्वव तनगिरिसि ॥१५३॥ दनुजर हिम्सेयम् बिडिसि ॥१५४॥ जिनमार्ग सुन्दरवेनिसि ॥१५५॥
विनय धर्मांक भूवलय ॥१५६॥
ते* रस गुणस्तथानदन्त के वरुवाग । दारि सम्यक्त्ववेन्दे न* व॥ सार श्रीजिन वाणियनुभववन्दाग । नूरुसागरकर्म केडुगु ॥१५७॥
ण* वपददादिय अरहत ओम्दुस् । अवेरडरलि सिद्धम् त* नवदादि मूरन्क आचार्य नालकर । विवर उपाध्याय ऐदु ॥१५८॥
दु* रितव वहनवे साधु समाधिय । सरुव साधुत्व आररलि ॥ वरे ना* ळे सद्धर्म एळन्क आगम परिशुद्ध जिनबिम्ब एन्टु ॥१५९॥
क* विद गोपुर द्वार शिखर मानस्तम्भ । दवनिय विम्बालय म* नवमवेन्देनुवरु आगम परिभाषे । विवरवे नव पददम् क ॥१६०॥
हि* रियाशे यिदरलि बयकेयद्वैतवु । वरमुन्द के द्वैत धे* नु॥ सरियवरिगे मुक्तियुभयमुक्तिय लाभ गुरुपदसिद्धि ईर्वरिगे ॥१६१॥

या* वाग दोरेवुदी श्राग अनेकात । ताविन नयमार्ग दोरेये ॥ नावा य* श होन्दे जैनत्व लाभद । सावकाशवे हृदिनाल्कु ॥१६२॥
श्राविध योग राहित्य ॥१६३॥ श्री विश्वदग्र वैकुन्ठ ॥१६४॥ कावदे कैलास मुक्ति ॥१६५॥ श्री वीरवाणिय विद्ये ॥१६६॥
नावु बेकेन्नुव सिद्धि ॥१६७॥ कावन्क सत्यद लोक ॥१६८॥ पावन परिशुद्ध लोक ॥१६९॥ सावु हुट्टुगळिल्लदिह श्री ॥१७०॥
भाव अभाव राहित्य ॥१७१॥ नोवुगळाशिप मुक्ति ॥१७२॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥१७३॥

ह* रि हर जिन धर्मदरिवु सूरार्सूरु । सरसिजदलदक्षर, सृ* श्रोम्॥,बरुवन्कगणनेयमूरुकालदोळ् कूडे। परिदुबदिहकाव्यसिद्धि ॥१७४॥
व* शवागे श्रोम्बत्तु कामदम् जनरिगे। हसिवु बायारिके निद्र् श्र* देसेगेट्टु हृदिनेन्दु इत्यादि भवरोग । हेसरि ल्लदन्ते होगुवुदु ॥१७५॥
न* वदन्क सिद्धियकरण सूत्राक्षर । दवयव सर्ववुव सृ* य ॥ सविय भाषेगळेन्टोम्देळर वस्य । श्रवुगळे मूरारुमूरु ॥१७६॥
ति* रेयु कालगळु ई बरुव मूरुगळलि । हरिव भव्यर भवदभ य* सरुवार्थसिद्धि सम्पदद एरडु भव। परिशुद्ध जीव स्वभाव ॥१७७॥
परदुगेय्यलु बद लाभ ॥१७८॥ श्ररहन्त रूपिन लाभ ॥१७९॥ करुणेय मारिद लाभ ॥१८०॥ गुरु हम्सनाथ सन्मार्ग ॥१८१॥
श्ररहन्त रडरिद मार्ग ॥१८२॥ चिरकालविरुवसौभाग्य॥१८३॥ सरुवराराधित धर्म ॥१८४॥ गुरुपरम्परेयादि लाभ ॥१८५॥
धरसेन गुरुगळ श्रन्ग ॥१८६॥ हरुष वर्धनरादि भग ॥१८७॥ मरणकालदेसिद्धकवच ॥१८८॥ हरिहर सिद्ध सिद्धात ॥१८९॥
श्ररहन्तराशा भूवलय ॥१९०॥

त* त्वार्थ सूत्र महार्थ प्रसन्गद । सत्यार्थ दनुभव मू* रु ॥ रत्न प्रकाश वर्धन दिव्य ज्योतिय । तत्व एळ्र समन्वयद ॥१९१॥
च* रितेय सान्गत्य रागदोळडगिसि । परितन्द विषयगळेल् ल* श्ररहत मुख पद्मवेने सर्व श्रन्गदिम् । होरदु बदिह दिव्यध्वनिय ॥१९२॥
च* दुरिन 'श्ररी' भूवलय सिद्धात दोळ् । हुदुगिसि पेळ्ददिव्यश्रा ग* र ॥ पद पददक्षरदक श्रकदरेखे । श्रदर क्षेत्रगळ स्पर्शनव ॥१९३॥
त* निकाल कालद श्रन्तर भावद । कोनेगल्पबहुत्व विन्तह र* जिन धर्मवदु मानव जीवराशिय । घन धर्मवागिसिदंक ॥१९४॥
मनुजरोळ्यक्य वप्पन्द ॥१९५॥ दिन दिन प्रेम व्रुध्यग ॥१९६॥ घन दुष्कर्म विध्वम्स ॥१९७॥ जिन शास्त्र वेल्लर्गेम्बग ॥१९८॥
विनयवेल्लरिगे समांग ॥१९९॥ जनपद नाडिन संग ॥२००॥ जनरिगय्दने काल (भंग) दंग ॥२०१॥ कोनेगाररोळु इल्लदग ॥२०२॥
एनुवंगधर ज्ञानरंग ॥२०३॥ जनरिगे [बह श्ररी] वशवाद धर्म ॥२०४॥

य* ण थण थण वेम्ब द्वैत श्रद्वैतद । कोनेगे जैनर म न* त्र सेरि॥ जिनरेन्दु नाल्केळुएन्दुकाव्याक्षर । घनव्राह्मि सन्द्रियंक ॥२०५॥
श्रा* गमविदर'श्ररी'भागदेबंदन्का रागविरागसाम्राज्य ॥ श्रागु थ* एन्टेन्दु श्रोम्बत्तु श्रोम्दोम्दु । तागुवक्षरद भूवलय ॥२०६॥

ई ८७४८+ श्रन्तर ११९८८=२०,७३६=१८=९ श्रथवा श्र–ई ८४८५२+२०,७३६=१०,५५,८८

पहले श्लोक के श्रेणीवद्ध काव्य—

* ईस मुहग्गहवयण भूवलय दोषवि रहिय शुद्धं । श्रागर्मामिदि परि कहिय तेणदु कहिया हवन्ति तच्चत्था ॥६॥

* कानडी काव्य के मध्यमें से निकलनेवाले सस्कृत श्लोक—

कारकं पुण्य प्रकाशक पाप प्रणाशकम् इद शास्त्र हुश्रव भूवलय सिद्धांतनामध्येयं श्रस्य मूल ग्रन्थ . . . . . ॥

छठा अध्याय

विद्यमान वर्तमान काल, आने-वाला अनागत काल, और बीता हुआ अतीत काल, इन तीनो कालो के प्रत्येक समय मे अनत घटनायें घटित होती हैं तथा होगी। उस-उस घटना के समीप जाकर प्रत्यक्ष रूप में दिखा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है, तथा त्रिकालवर्ती अरहत देव के योग को भी दिखाने वाला यह भूवलय है ॥१॥

प्रत्येक शब्द मुख आदि से उत्पन्न होकर अपने कानमे पहुचने तक त्रेलके समान वढते वढते लोकाग्र (लोक शिखर) को स्पर्श कर (छू कर) सर्वार्थ-सिद्धि के चारो ओर होकर पुन समस्त लोक में व्याप्त होते हुए कान को स्पर्श कर स्थिर हो जाता है। अर्थात् किसी व्यक्ति के मुख से निकला हुआ शब्द सपूर्ण लोकमे घूमकर कान में पहुचता है। शब्द वर्गणाओमे इतनी तीव्र गमन करने की शक्ति है। तो श्री सर्वज्ञ भगवान के सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी के तीन लोक में व्याप्त होने मे क्या आश्चर्य है ? अर्थात् कुछ आश्चर्य नही ॥२॥

विवेचन—अनादि काल से जितने भी शब्द निकले हैं वे सव कालाणु के साथ आकाश प्रदेश में हमेशा के लिए स्थित हैं। आगे होने वाले सभी शब्द राशि उन हीं कालाणु के प्रदेश मे घुसकर मिल जाती है। इस रीति से समस्त शब्द-राशि एक क्षेत्रावगाह रूप से स्थित हो जाती है। इसमें से हमको जिस वस्तु का नाम-निर्देश शब्द चाहिये उस को महर्षि गण अपनी योग दृष्टि से जानकर सूत्र रूप में रचना कर लेते हैं। उसको ज्ञापक सूत्र अथवा प्रज्ञापक सूत्र कहते हैं। उसके विस्तार रूप व्याख्या को सूत्रार्थ पौरुपी व्याख्यान कहते हैं। इस व्याख्यान को बुद्धि ऋद्धि आदिमें जो प्रवीण होते हैं, वे ही इसका अर्थ कर सकते हैं। हमारे समान छद्मस्थ ज्ञानियो से नही हो सकता।

दृष्टात के लिए-भूवलयमे आया हुआ षट्खड आगम और कषाय पाहुड आदि हैं। ग्रन्थ का विवेचन करते हुए 'कपाय' शब्द मे रहने वाले तीन अक्षरो को "पेज्ज" शब्द के दो अक्षरो में सग्रह करके सूत्र-बद्ध कर दिया है। सूत्रके इन ही दो अक्षरो का वीरसेन, जिनसेन, आचार्यो ने साठ हजार श्लोको में विस्तार कर दिया है। उन ही ६०००० साठ हजार श्लोको को गणित पद्धति से मिला कर श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय मे ७१८ अठारह भापाओ में निवद्ध कर दिया है।

कपायपाहुड तथा जय धवल को गणित से निकाला है। और इसके प्रथमानुयोग कथन को गणित पद्धति से निकाल कर व्यास ऋषि ने जयाख्यान काव्य लिखा है, उसने २२ वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की दिव्य ध्वनि से प्रगट द्वादशाग शास्त्र का सग्रह करके हरिवशी और कुरुवशी राजाओ का कथन जिनवंश और मुनिवश के कथन के साथ मिलाकर २५००० हजार श्लोको के साथ जयाख्यान ग्रन्थ की रचना की थी।

व्यास से लेकर आज तक के विद्वानो ने अपने बुद्धि कौशल से घटा वढा कर रद्दोवदल करते हुए उस महाभारत को सवा लाख श्लोको में विस्तृत कर दिया। इसलिए द्वादशाग पद्धति के साथ में उसका मेल न खाने से अथवा नव-माक गणित पद्धति मे न आने से असगत होने के कारण जैनो ने उसे नहीं माना।

यहा पर यह शंका होती है कि व्यास ऋषि को जिस प्रकार इस ग्रन्थ मे मान्य किया है उसी प्रकार और जैन ग्रन्थो मे इस का उल्लेख क्यो नही मिलता है ?

इसका समाधान यह है कि यहा पर व्यास शब्द से तीन कम नव करोड मुनियो को लिया गया हैं। उन्हीं मे से किसी एक महर्षि के द्वारा इसका निर्माण हुआ है।

न्यूनकोटिनवाचार्यान् ज्ञानदृक्चरणाचितान्।
ज्ञानदृक्सुखवीर्यार्थमानमानम्यार्यवंदितान् ॥

अर्थात्—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक तीन कम नव करोड मुनि महाराज लोग हैं जो कि अनन्त ज्ञान अनन्तदर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टयो के लाभ के लिए आर्य-लोगो के द्वारा वन्दना किये जाते हैं, उन महर्षियो को मैं नमस्कार करता हू।

इस श्लोक के प्रारम्भ मे जो तकार अक्षर आया हुआ है वह भगवद्गीता जयाख्यात और ऋग्वेद इन तीनो से सम्बन्ध रखने वाला है। क्योकि ॐ तत्स-वितुर्वरेण्य इत्यादि जो गायत्री मन्त्र है उसके एक एक अक्षर का सम्बन्ध यहाँ चौवन-चौवन श्लोको तक चल कर जहा गायत्री मन्त्र पूर्ण होता है उसमे ऋग्वेद जयाख्यान गीता और भगवद्गीता ये तीनो आ जाते हैं। उन सब का समाहार रूप सग्रह इस भूवलय की गणित पद्धति के अनुसार एक तकार में आ जाता है। त् अक्षर नित्य सदा से चला आया है ॥२॥

जब भगवान् घाति कर्मो का नाश करके केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं तो अपनी वाणी द्वारा विश्व भर को प्रतिबोधित करते हैं इसके बाद अघाति कर्मों का नाश करने के समय मे उसके पूर्व में जब केवली समुद्घात करते हैं तो अपने आत्म-प्रदेशो द्वारा समस्त लोक का स्पर्श करके फिर वापिस हो शरीरमे आ जाते हैं इसका तात्पर्य यह है कि भगवान अपनी वाणी द्वारा पूर्व में विश्व को व्यक्त करते हुए अन्त मे सम्पूर्ण कर्माटक के अणु रूप में होते हुये अव्यक्त रूपमें आ जाते हैं ॥३॥

जिस प्रकार केवली समुद्घात के समय केवली के आत्म-प्रदेश मोक्ष मे रहने वाले सिद्ध जीवो को स्पर्श कर लेने पर (लोक पूर्ण समुद्घात के अनन्तर) पुन अपने मूल शरीर मे आ जाते हैं। इसी प्रकार कर्णाटक भाषा १८ महा-भाषाओ रूप होकर ७०० क्षुल्लक भाषाओ को अपने अन्तर्गत करके पुन अपनी कर्णाटक लिपिबद्ध रूप बनाने वाला यह 'भूवलय' है ॥४॥

सात सौ क्षुल्लक भाषाओ को तथा १८ महाभाषाओ को उपर्युक्त गुणा-कार क्रम से ६४ अक्षरो के साथ गुणा करने पर सुपर्ण कुमार, (गरुड), गधर्व, किन्नर, किम्पुरुष, नरक, तिर्यञ्च, भील (पुलिन्द), मनुष्य और देवो की भाषा आ जाती है ॥५॥

जिस प्रकार नाट्यशास्त्र मे गमक कला द्वारा विविध नृत्य क्रिया प्रगट होती है उसी प्रकार उपर्युक्त ३ पहाडे के अनुसार गुणा करते समयसम तथा विषम अक निकलते जाते हैं। उन लब्धाक तथा भग अको से विमल और समल पदार्थ प्रगट हो जाते हैं ॥६॥

जिस प्रकार ह् (६०) को क् (२८) का योग करने पर ८८ होता है फिर ८ और ८ को योग कर (जोड) देने पर १६ होते हैं, उस १६ के अक १ तथा ६ को परस्पर जोडने से विषम अक ७ होता है। यह ह् क् बन्ध वध-पाहुड से प्रगट हुआ है जहा पर सूक्ष्म अतिसूक्ष्म विवेचन है ॥७॥

जो अध्यात्म योगी हैं वे ही इस अक-प्रक्रिया को बतला सकते हैं ॥८॥

सक्षेप मे हम उस प्रक्रिया का नाम बतला देंगे। बन्ध-पाहुड मे विषम योग भग से प्रारम्भ होता है ॥९॥

विषम योगभग में ही सम विषम अक बन जाते हैं ॥१०॥

उन अको से जो शब्द बनते हैं वे सब अपुनरुक्त होते हैं ॥११॥

इस प्रक्रिया से समस्त द्रव्य आगम (द्वादश अग) प्रगट हो जाता है ॥१२॥

वह द्रव्य आगम एक-एक राशि रूप हो जाता है। तब तेलगू भाषा में 'वकटि' कनडी भाषा मे 'ओदु' तामिल भाषा मे 'ओंनु' तथा इसी प्रकार अन्य भाषाओ मे 'ओम्' निकल कर आता है ॥१३॥

उन शब्द राशियो में सर्व भाषाओ के अक प्रगट हो जाते है। अब ८८ बन्ध का नाम कहेगे ॥१४॥

सर्वबन्ध, नौ सर्वबन्ध, उत्कृष्ट बध, अनुत्कृष्ट बध, जघन्य बध, अजघन्य बन्ध, सादि बन्ध, अनादि बन्ध, ध्रुव बन्ध, अध्रुवबन्ध, निखिलबन्ध, बन्ध स्वामित्व, बन्ध काल, बन्धान्तर काल, ह् क् बन्ध सन्निकर्ष, मगलिक्य, भागा-भाग, क्षेत्रबन्ध, परिमाण बध, स्पर्शबन्ध, कालान्तर बध, भाव बन्ध, अल्प बहुत्व बन्ध, इस तरह २२ बन्ध हुए ॥१५-२९॥

इन २२ *बन्धो को प्रकृति, स्थिति अनुभाग और प्रदेश बध से गुणा करने पर २२×४=८८ अठासी भेद हो जाते हैं ॥३०॥

---

* १ प्रकृति बध, २ स्थिति बध, ३ अनुभाग बध और ४ प्रदेश बध बध के दो चार भेद हैं। इनमें भी प्रत्येक के १ उत्कृष्ट २ अनुत्कृष्ट ३ जघन्य, और ४ अजघन्य, इस तरह ज्ञानावरणादि कर्मों की प्रकृति (स्वभाव) ज्ञान को ढकना आदि है। कर्मों के इन स्वभावो का आत्मा के सम्बन्ध को पाकर प्रगट होना प्रकृति है। और आत्मा के साथ कर्मो के रहने की काल-मर्यादा को स्थिति बध कहते हैं। कर्मो में फल देने की शक्ति की हीनता वा अधिकता को अनुभाग

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध का प्रकृतिके द्वारा रचा हुआ ऊपर आया जो गुणाकार आठ-आठ ८, ८ है पुन. उसे आठ से अथवा आठ कर्मों से गुणाकार करें तो सात सौ चार (८८×८=७०४) होते हैं ॥३१॥

उसमें से चार कम कर दिया जाय (७०४—४=७००) तो ७००रह जाते है। इन क्षुल्लक भाषाओं का प्रमाण यशस्वती की पुत्री ब्राह्मी देवी ने पशु देव, नारकियों की भाषाओं को जो वृषभनाथ भगवान से सीखा है वे भाषाएं निकल आती हैं। ये भाषाएँ नव अंक रूप कर्म सिद्धात के अवतार रूप होने के कारण कर्माटक भाषा रूप होकर परिणत हुई हैं। ऐसा कहते हुए रसायन के समान अपने भीतर समावेश कर लेने वह् वालाभूवलय काव्य है ॥३२-३३॥

बाहुबली ने भगवान ऋषभदेव से चौंसठ कलाओं को समझ लिया था। कर्नाटक देश के आदि से आने वाली भाषा ने सम्पूर्ण विषयत्व को अपने भीतर गर्भित कर लिया है ॥३४॥

कर्माटक भाषा में कर्म की कथा और कर्म से मुक्त होने की कथा का वर्णन है अत इसमें अनेक नय गर्भित हैं। उन सब को यदि सक्षेप में कहा जावे तो एक सुनय और दूसरा दुर्नय है। जगत में अनन्त नय होने के कारण अथवा ३६३ मत होने के कारण प्रत्येक मत और नय अपने आपको श्रेष्ठ तथा शेष सबको कनिष्ठ कहती है, अत वह दुर्नय है, क्योंकि जिस अश को वह कहती है पदार्थ उतना ही नही है, और अश भी पदार्थ के हैं उन अवशिष्ट अशो की उपेक्षा करने के कारण वह दुर्नय सिद्ध होती है। इस कारण इस दुर्नय को एकान्त पक्ष कहते हैं। सुनय इससे विपरीत है वह विविध अपेक्षाओं से पदार्थ के समस्त अशो का समावेश तथा समन्वय करती है। इसलिए उसको सुनय, सम्यग्नय, प्रमाणाधीन नय, आदि अनेक नामो से पुकारते हैं। इस तरह सुनय तथा दुर्नय है। समस्त दुर्नयो को और समस्त सुनयों को बतलाकर सबका ठीक समन्वय करने वाली कर्माटक भाषा है। समस्त ससारी जीवो को ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों ने अपने आधीन कर लिया है उन सब अनादिअनन्त जीवो का कथन करने वाली यह कर्माटक भाषा है, इसलिए इसमें सुनय और दुर्नय अन्तर्भूत है ॥३५॥

जब इस भूवलय ग्रन्थ का स्वाध्याय श्रद्धा-पूर्वक किया जाता है तब दुर्नय निकलकर कल्याणकारी केवल सुनय मात्र शेष रह जाती है ॥३६॥

जब यह मानव सुनय और दुर्नय के स्वरूप को समझ लेता है तो जैन धर्म में रुचि प्राप्त करता है यानी उसके अन्तरङ्ग में जैन धर्म प्रविष्ट हो जाता है ॥३७॥

इस मानव का मन स्पर्शनादि पांचों इन्द्रियों में प्रवृत्त होता है उससे मनमें जो चंचलता उत्पन्न होती है, उसको यह भूवलय ग्रन्थ निर्मूल करने वाला है ॥३८॥

जब उपर्युक्त दोष दूर होकर मन परिशुद्ध हो जाता है तब इस भूवलय की गणित पद्धति के द्वारा समस्त भाषाओं में तत्व को जानने की शक्ति उसे सहज प्राप्त हो जाती है ॥३९॥

जब गणित शास्त्र का सम्पूर्ण रहस्य प्राप्त हो जाता है तब फिर तीन लोक का सम्पूर्ण ऐश्वर्य हस्तगत होने में क्या देर लगती है ॥४०॥

इस प्रकार यह गणित शास्त्र इस जीव को मोक्ष देने वाला है ॥४१॥

इस भूवलय शास्त्र में विश्व की समस्त भाषाओं का समावेश है। यानी इसमें भिन्न भिन्न प्रकार की भाषाएँ बन जाती हैं ॥४२॥

इस भूतल पर नाना प्रकार के परस्पर विरुद्ध जो मत प्रचलित हैं उन सबको यह भूवलय एकता के सूत्र मे बाध कर सार्थक तथा सफल बनाने वाला है ॥४३॥

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्येता को क्रम से क्रम जिन-मत-सम्मत अणुव्रत धारण करने की योग्यता तो अवश्य प्राप्त हो जाती है ॥४४॥

बंध कहते हैं तथा बंधने वाले कर्मो की परमाणु सख्या को प्रदेश बंध कहते हैं। उत्कृष्ट आदिक भेदो के भी १ सादि (जो टूटकर पुन बंधा हो) २ अनादि बंध (अनादि काल से जिसके बंध का अभाव न हुआ हो) ३ ध्रुवबंध अर्थात् जिसका निरन्तर बंध हुआ करे और ४ अध्रुवबंध अर्थात् जो अन्त सहित बन्ध हो, इस प्रकार चार भेद हैं। इन बन्धो को नाना जीवों की तथा एक जीव की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणा स्थानों में यथासभव घटित कर लेना चाहिए।

जब वह अणुव्रतो पर रुचि प्राप्त कर लेता है तब फिर उसको इस बात का भी पूर्ण विश्वास हो जाता है कि भगवान महावीर की वाणी मे सात सौ अठारह भापा होती हैं जैसा कि इस भूवलय ग्रन्थ मे है ।४५-४६।

जब यह विश्वास होता है कि भगवान महावीर की वाणी सात सौ अठारह भापाओ मे सम्पूर्ण तत्व का प्रकाश करने वाली है तो उस जीव के चित्त मे एक प्रकार का उल्लास होता है एव उस उल्लास को पैदा कर देने की शक्ति जिन भगवान के इस भूवलय ग्रन्थ मे है ।४७-४८।

भगवान जिनदेव की वाणी जो ६४ अक्षरो के गुणाकार-मय हैं वह निरर्थक नही है ।४९।

जब इस प्रकार की प्रतीति हो जाती है तब वह जीव उन चौंसठ अक्षरो को गुणाकार रूप से अपने अनुभव मे लाता है एव वह सहज मे द्वादशाङ्ग का वेत्ता बन जाता है ।५०।

उस महापुरुष के अनुभव मे जो कुछ आता है उसी को अभिव्यक्त करने वाला भूवलय है ।५१।

विश्व भर मे विखरे हुए जो भिन्न-भिन्न तीन सौ तिरेसठ मत हैं उन सब को चौसठ अक्षरो के द्वारा नौ अङ्को मे बाधकर एकीकरण कर बतलाने वाला यह भूवलय है ।५२।

द्वैत यानी दो और अद्वैत यानी एक इन दोनो को मिलाने से तीन बनता है जोकि रत्नत्रय स्वरूप होते हुए अनेकान्त रूप है एव ॐकार मय है जोकि अनादि से चला आया हुआ है उसी ॐकार के अङ्कको चौंसठ अक्षरो मे अभिव्यक्त करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य ने इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है इस लिए यह कथचित् सादि तो कथचित् अनादि रूप भी है ।५३।

इस जगत मे शिव, विष्णु, जिन, ब्रह्मा आदि महान देव हैं जोकि सभी कैलाश, बैकुण्ठ सत्यलोक आदि मे रहते हैं ऐसा कहकर अपने अपने अपने मान्य देव की श्रेष्ठता प्रगट करते हैं और पक्षपात करके परस्पर विरोध बढ़ाते हैं। परन्तु भूवलय के कर्त्ता श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने उस विरोध को स्थान न देते हुए समस्त जीवो को अध्यात्म मार्ग ही कल्याण कारी बताया है। तदनुसार समवशरण से मिलने वाले सिद्धान्त को जगत मे दशो दिशाओ में फैलाकर पारस्परिक विरोध मिटाने का भूवलय द्वारा प्रयत्न किया है ।५४-५५।

जितने प्राभृत हैं वे सब द्वादशाग से ही निकले हैं प्राभृत का अर्थ अनादि काल के सम्पूर्ण वेद को अनुरूप मे बतला देना है। इसलिए इसका नाम प्राभृत रखा गया है कि महान विपय को सूक्ष्म रूप मे कहने वाला है। वह कैसे हैं सो कहते हैं—

भगवान महावीर की वाणो से 'तत्त्वमसि' यह शब्द निकला हुआ है उसका अर्थ यह है कि "तत्" 'वह' 'त्व' 'तू' 'असि' यानी' है'। अर्थात् 'वह तू है'। ऐसा 'तत्त्वमसि' का अर्थ है। इससे यह सिद्ध हुआ कि तत् अर्थात् 'सिद्ध परमेष्ठी' 'त्वमसि 'हे आत्मन तू ही है ।५६।

"तत्त्वमसि" असि आ उ सा" इत्यादि महामहिमा-शाली मन्त्रो से भरे होने के करण इस भूवलय को महासिद्धि काव्य कहते हैं ।५७।

किसी कारणवश लोग सहिष्णुता (सहनशीलता) की बात करते हैं। परन्तु असहिष्णुता (दूसरो की बात या काम न सहसकने का स्वभाव) होने से सच्ची सहिष्णुता प्रगट नही होती है। सहिष्णुता के लिए मनुष्य के हृदय मे दया का होना आवश्यक है, दया के विना सच्ची सहिष्णुता नही आ सकती कहा भी है कि "दयामूलो भवेद्धर्म" यानी—जहा दया है वही धर्म है, जहा दया नहीं है वहा धर्म कहा से आवेगा ? आत्मा का स्वभाव दयामय है, अत आत्मा का धर्म दयामय ही है। अत जहा दया है वहा पर सहनशीलता स्वय आ जाती है। दया के सुरक्षित रखने के लिए ही समस्त व्रतो का पालन किया जाता है। जैसे कि "अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रत विशोधयेत्" यानी-अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए मूलव्रतो की शुद्धि करे ।५८।

ससार के सभी जीव कर्म-बन्धन की दृष्टि से समान हैं। दीखने वाला छोटा जीव जैसे कर्म जाल मे फसा हुआ है वडा जीव भी उसी प्रकार कर्म से पराधीन है। इसी कारण महान ज्ञानी योगी सब जीवो को अपने समान समझते हैं। इसी कारण वे सभी छोटे वडे जीव पर दया भाव रखते हैं। जब सब जीवो की आत्मा एक समान है तब उनको दु ख का अनुभव भी एक समान होता है इसलिए सब पर दया करनी चाहिए ।५९।

हृदय में जब ऐसा भाव आता है तब समन्वय को बुद्धि उत्पन्न होती है। समन्वय बुद्धि वाला व्यक्ति ही समाज को, देश को, जाति धर्म, देव आदि

को समन्वय भाव से देखता है। तब वह समन्वय अमृतमय बन जाता है।६०।

ऐसी भावना जब हृदय मे जाग्रत होती है तब "मैं 'बडा हू शेष सब प्राणी मुझ से छोटे हैं।" ऐसा छोटा भाव हृदय मे नही रहता उस समय वह त्रिलोकपूज्य माना जाता है।६१।

तब उसके जितने भी गुण हैं वे सभी भूवलय (जगत) के लिए प्रतिफलीभूत होकर पुन प्रज्वलित अवस्था प्राप्त करा देते हैं।६२।

तब वह जीव ५८ श्लोक मे कहे अनुसार दयामय होने के कारण अपनी सहनशीलता के सभी गुणो को सुरस विद्यागम रूपी भूवलय मे देखता हुआ सतोष से अपना आत्म-कल्याण कर लेता है।६३।

इस भूवलय ग्रन्थ का अध्ययन करने से मनुष्य मे सहनशीलता आती है जैसे कि—

किसी एक राजकीय वगीचे मे आकर एक तरुण सुन्दर सुडौल ऋषि विराजमान हुआ। उसी बाग में राजा सोया हुआ था और उसकी रानिया इधर उधर टहल रही थी। उन्होने जब उस साधु को देखा तो सब इकट्ठी होकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से उसके पास आकर बैठ गई। मुनि ने उस समय उनको अहिंसा धर्म के अन्तर्गत क्षमा धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया।

इतने में उस राजा की आख खुली तो उसने देखा कि–रानिया उस साधु के पास बैठी हैं। भ्रम से उसके मन मे यह विचार आया कि यह नवयुवक साधु इन रानियो को भ्रष्ट करना चाहता है इसीलिए यह उनसे वार्तालाप कर रहा है। इस विचार से क्रोध मे आकर राजा उस साधु के पास गया और बोला कि तुम इन रानियो के साथ क्या व्यर्थ बातें कर रहे हो ?

साधु सरल परिणामी थे। अत उन्होने राजा से मीठे शब्द मे कहा कि 'मै क्षमा धर्म का व्याख्यान कर रहा हू।' परन्तु राजा के मन में तो कुछ और ही बात समाई हुई थी इसलिए उसने उस साधु के एक तमाचा जमा दिया और बोला कि मैं देखना चाहता हू कि तुम्हारा क्षमा धर्म कहा है ?

साधु ने फिर शान्ति से उत्तर दिया कि–क्षमा धर्म मेरे हृदय में है। राजा को फिर क्रोध आया, अत उसने दूसरी बार उस साधु के ऊपर एक दण्डा जमा दिया। साधु ने शान्ति-पूर्वक फिर कहा कि–राजन्! क्षमा तुम्हारे इस दण्डे मे नही, बल्कि वह तो मेरे मन के भीतर है।

राजा को उत्तरोत्तर क्रोध आता रहा अत उसने तलवार से साधु के दोनो हाथ काट दिये और बोला कि–अब बता तेरी क्षमा कहा है ?

साधु ने शान्ति से फिर वही उत्तर दिया कि वह मेरे भीतर है।

राजा ने तब साधु के दोनो पैर भी काट दिये और बोला कि बता, क्षमा कहा है ?

इतने पर भी साधु की शान्ति भङ्ग नही हुई। वह बोला कि राजन्! मैने कह तो दिया कि वह मेरे हृदय के भीतर है, तुम्हारे इन शस्त्रो मे वह नही हो सकती है

तब राजा को होश आया और वह सोचने लगा कि मैं बडा पापी हूँ मैने बिना बात इस साधु को कष्ट दिया परन्तु महान कष्ट होने पर भी साधु जी ने अपनी क्षमा नही छोडी। ये साधु महात्मा बडे वीर गम्भीर हैं। ऐसा विचार करते हुए वह साधु महाराज के चरणो में गिर पडा और गिडगिडाने लगा।

साधु बोले कि राजन् इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? तुमने अपना कार्य किया और मैंने अपना कार्य किया तब राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि प्रभो! इसमें कोई भी सन्देह नही कि आप क्षमा के भण्डार हैं।

तात्पर्य यह है कि क्षमा के आगे सबको सिर झुकाना पडता है परन्तु यह क्षमा धर्म अध्यात्म-विद्या के अध्ययन किये बिना नही आ सकता। वह अध्यात्म विद्या इस भूवलय का सञ्जीवन है, अत यह भूवलय विश्वभर को क्षमा धर्म का पाठ पढाने वाला है।

'प' अर्थात् अट्ठावन और 'ह' यानी ६० इनको परस्पर जोड दिया जाय तो ११८ होते हैं इसका वर्ग करने पर १३९२४ होते हैं। उनमे से पुनरुक्त एक को कम करने पर १३९२३ रह जाते हैं जोकि नौ से विभक्त हो जाते हैं तो १५४७ लब्ध हुए इनमे उस पुनरुक्त एक को मिला दिया जाय तो १५४८ हो गये इनको नौ से भाग देने पर १७२ आते हैं इसमे से एक निकाल देने पर १७१ रह जाते हैं जोकि नौ से बटकर १९ आते हैं उसमें से एक निकाल दिया जाय तो १८ रह गया जिसको परस्पर जोड देने पर (१+८=९) नौ हो जाते हैं। तात्पर्य

यह है कि इह सोख्य विषम है तथा परलोक का सौख्य सम है। इन दोनो को समान रूप से बतलाने वाला यह भूवलय शास्त्र है ।६६।

र ५४ 'ह' ६० म ४२ इन तीनो को मिलाने से —

५४×६०×५२ = १६६
४
१७०
१
एक मिलाने से १७१
तीनो मिलाने से ९ नौ आता है।

१७० एक षट् खण्ड आगम मिलाने से ए ४२ और ह = ६० १ मिलाने से १७० षट् खड आगम ९ मिलाने से १७९+४२+६० = २७८+१ = २७९ २+७ = ९९+१८ = ९ उपर्युक्त लिपि हुई।

इस प्रकार महान् महान् विषयो का सुलभ रीति से इस के द्वारा अनुभव होता है ॥ ६७ से ७२ ॥

यह भूवलय ग्रन्थ इस लोक मे मोक्ष के सम्पूर्ण विषय को बतलाता है। परलोक मे अहमिन्द्र पद को प्राप्त कराकर अन्त में मोक्ष प्रदान करता है ।७३-७४।

इस भूवलय को भगवान महावीर ने सिद्ध करके अन्त मे मोक्ष फल प्राप्त किया ऐसी महिमा बतलाने वाले यह त्रय रत्न बलय यानी-रत्नत्रय रूपी वलय है ।७६।

क्षुधा तृषादि १८ दोष जिनकी आत्मा में प्रचुर मौजूद हैं उनको 'यह देव बडा है और यह देव छोटा है।' इस तरह उनको देवो में अनेक भेद दीखते हैं। किन्तु जिनके हृदय में १८ दोप नष्ट करने की तीव्र इच्छा है उनके मन में 'रत्नत्रय रूप आत्म धर्म ही स्वधर्म है' ऐसी धारणा होती है ।७७।

जिन्होने विपरीत धारणा से ससार को ही अपना घर मान लिया है उनको स्वआत्म-धर्म मे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है जब उनका ज्ञानावरण कर्म नष्ट होता है तब उन्हें अन्तकाल तक सुख देने वाले मोक्ष की प्राप्ति होती है ।७८।

किसी मनुष्य को सर्प काटता है तो वह मुरदे के समान अचेत दीखता है यदि उसे सर्प विपनाशक औपधि दी जावे तो वह तत्काल सचेत हो जाता है। पादरस में रहने वाले दोष नष्ट हो जाने पर पादरस मे अमृत के समान शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसी तरह विपरीत मान्यता से जो देव मे छोटा या वडा भाव रखता था वह अपनी विपरीत भावना (मिथ्या श्रद्धा) निकल जाने पर स्वस्थ शुद्ध आत्मा वन जाता है ॥७९॥

विवेचन—इस ससार मे शुद्धात्मा को न जानकर यह मेरा देव है यह मेरा ब्रह्म है। इस ससार मे एक ब्रह्म ही है दूसरा कोई नही है। इसलिए हमारा धर्म अद्वैत धर्म है। इत्यादि तरह से एकान्त पक्ष लेकर लोग सत्य का निर्णय नही करते, वे अन्धकार मे स्वय भटकते हैं और दूसरो को भी भटकाते हैं।

जब एक शैव शिव को जगत मे वडा मानता है तब वैष्णव अपने विष्णु को वडा मानकर विष्णु के साथ लक्ष्मी को भी मानकर द्वैत रूप मे अपने धर्म का प्रचार करता है। इस तरह दोनो देवो के भक्तो मे परस्पर विरोध फैल जाता है। इस विरोध के निराकरण के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त दो श्लोक लिखे हैं।

आगे आचार्य श्री दोनो धर्मो का समन्वय करने के लिए श्लोक कहते हैं —

रत्नत्रय धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनो में आदि का सम्यक् दर्शन अद्वैत धर्म माना जाता है। परन्तु यह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र विना पूर्ण नही होता।

तीर्थंकर जगज्ज्येष्ठा यद्यपि मोक्षगामिन·।
तथापि प ालित चैव चारित्र मोक्षहेतवे ॥

जगत में श्रेष्ठ जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के धारक तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर भी मोक्ष प्राप्ति के लिए चारित्र को आचरण कहते हैं तभी उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इसलिए सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र धारण करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

ब्रह्म को अद्वैत धर्म कहने वाले की मान्यता को सुनकर द्वैतवादी वैष्णवो को खेद हुआ अत वे बोले कि ब्रह्म अद्वैत धर्म ठीक नही है हमारा विष्णु धर्म ही (द्वैत धर्म ही) श्रेष्ठ है क्योकि विष्णु के साथ लक्ष्मी रहती है। इस प्रकार दोनो धर्मो में स्पर्धा होने लगी। तब श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा कि भाई! विवाद मत करो आप यथार्थ बात सोचो। अद्वैत भी श्रेष्ठ है और द्वैत भी क्योकि 'न द्वैत = अद्वैत इस प्रकार कहने मे दो का निषेध करके एक होता है अर्थात् दो के बिना एक नही होता।

विचार कर देखें तो अद्वैत शब्द का अर्थ ब्रह्म न होकर एक होता है तथा द्वैत शब्द का अर्थ विष्णु और लक्ष्मी न होकर दो होता है। एव इन दोनो को मिला कर तीन का अक जो बनता है वह अनेकान्त स्वरूप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कथचित् एक, और कथचित् दो ठीक होता है, अतएव दोनो का समावेश रूप रत्नत्रय धर्म अनेकान्त धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है और उसी को जैन धर्म कहते हैं। कर्मारातीन् जयतीति जिन जो सम्पूर्ण कर्मो को जीतने वाला हो उसको जिन कहते हैं और उस जिन भगवान का जो धर्म-आचरण है, वह जैन धर्म है, ऐसा सुन्दर अर्थ होता है। यही प्राणी-मात्र का धर्म सार्व-धर्म है।

कर्मों को अपने अन्दर बनाये रखना न तो द्वैत वादियो को इष्ट है और न अद्वैतवादियो को इष्ट है। इसलिए जैन धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, यह सबको मानना पडेगा।

जैन धर्म रत्नत्रयात्मक है रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन पहले है जो कि एक होने से अद्वैत हैं और उसके अनन्तर ज्ञान तथा चारित्र हैं जो द्वैत रूप हैं। इस पर अद्वैतवादी कह सकता है कि पहले आने की वजह से हमारा धर्म प्रधान है परन्तु ऐसा नही है क्योकि यहा पर जिस प्रकार पूर्वानुपूर्वी क्रम लिया जाता है वैसे ही पश्चादानुपूर्वी क्रम भी लिया जाता है। पूर्वानुपूर्वी में सम्यग्दर्शन रूप अद्वैत धर्म पहले आ जाता है तो पश्चादानुपूर्वी में चारित्र और ज्ञान रूप द्वैत धर्म पहले आ जाता है। इस युक्ति को लेकर सब का समन्वय करके एक साथ रखने वाला अनेकान्त धर्म है।

जैसे कि एक गाडी को वहन करने वाले दो चक्के होते हैं उन दोनो को एक साथ रखकर घुमाते हुये चले जाने वाला उनके बीच में धुरा होता है उसी प्रकार द्वैत और अद्वैत इन दोनो को टकराने न देकर एक साथ रखने वाला और दोनो को सफल बनाने वाला धुरें के समान यह अनेकान्त धर्म है।॥८०॥

अद्वैत द्वैत और अनेकान्त ये तीनो रत्नत्रय रूप महान धर्म हैं और अर्हन्त भगवान के हार के प्रमुख रत्न हैं। इस रत्नत्रय हार की मन, वचन काय, कृत कारित अनुमोदना रूप ३×३ = ९ परिपूर्ण अक रूप कडिया हैं। इन परिपूर्ण ९ अको मे ३६३ मतो का समावेश हो जाता है ॥८१॥

उसी परिपूर्ण ९ अक के ऊपर एक १ का अक मिलाने से एक सहित शून्य (१०) आता है। उससे ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति हुई है। उस ब्राह्मी लिपि को देव नागरी लिपि कहते है तथा उसी को ऋग्वेदाक भी कहते हैं।

एक से लेकर नौ तक अको द्वारा द्वादशाग की उत्पत्ति होती है उस ९ अक मे एक और मिलाने से उस १० दश अक से ऋग्वेद की उत्पत्ति होती है। इसी को पूर्वानुपूर्वी, पश्चात् अनुपूर्वी कहते हैं। द्वादशांग रूप वृक्ष की शाखारूप ऋग्वेद है। इसलिए इस वेद का प्रचलित नाम ऋक् शाखा है ॥८२॥

ऋग्वेद तीन प्रकार का है मानव ऋग्वेद, देव ऋग्वेद तथा दनुज (दानव राक्षस) ऋग्वेद। इन वेदो द्वारा पशुओ की रक्षा, गो-ब्राह्मण की रक्षा तथा जैन धर्म की समानता सिद्धि हो, ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं ॥८३॥

विवेचन—प्रचलित ऋग्वेद का प्रारम्भ 'अग्निमीले पुरोहितम्' से होता होता है परन्तु भूवलय में ऋग्वेद का प्रारम्भ 'ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्' से है। 'अग्निमीले पुरोहितम्' भी बाद मे आ जाता है। अब तक वैदिक लोग जैनो को वेद न मानने के कारण वेद-बाह्य कहते थे। भूवलय के अतिरिक्त अन्य जैन ग्रन्थो ने वेदो में हिंसा का विधान होने से उस को अमान्य मानकर छोड दिया है। किन्तु भूवलय मे उपलब्ध ऋग्वेद मे हिंसा विधान, मद्यपान, द्यूत क्रीडा, दुराचार आदि नही है। यह दुराचार दानवीय ऋग्वेद मे है, मानवीय तथा देवीय ऋग्वेद नही है। जैन ग्रन्थो में हिंसा का विशद विस्तृत वर्णन है उसके विपरीत हिंसा के त्याग रूप अहिंसा का वर्णन है क्योकि हिंसा का विवरण बताने पर ही अहिंसा का विधान होता

हैं। दानवीय ऋग्वेद मे मानवीय ऋग्वेद के हिंसा के विवरण के ही विधेय रूप मे वर्णन किया है, अहिंसा का विधान छोड दिया है।

मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने से दानवीय ऋग्वेद ही प्रचार में आता रहा, जैसे कि द्वादशाग वाणी विलुप्त हुई। मानवीय ऋग्वेद के लुप्त हो जाने पर मनुष्यो ने दानवीय वेद को अपना लिया। इस कारण पशु हिंसा आदि क्रियाए वेद का आधार लेकर चल पडी। इस वैदिक हिंसा को रोकने के लिए भगवान महावीर ने अहिंसा का प्रचार किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वैदिक हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई। जब भूवलय मे ऋग्वेद का समावेश उपलब्ध हुआ तब से स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी आर्य समाज की धारणा जैन धर्म या जैन समाज के प्रति बदल गई है।

तदनुसार आर्य मार्तण्ड, सार्वदेशिक पत्रिका आदि अपने मासिक पत्रो मे आर्य समाजी विद्वानो ने भूवलय गन्थ की प्रशसात्मक लेखमालाए प्रकाशित की है। उन लेख-मालाओ के आधार से कल्याण, विश्वमित्र, P.E.N. तथा आर्गनाईजर आदि विख्यात पत्रो ने भी भूवलय ग्रन्थ का महत्व विश्व मे फैला दिया है। बेंगलोर आर्य समाज के प्रमुख श्री भास्कर पत ने, अजमेर के प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० तथा विश्वविख्यात विद्वान् स्वा० ध्रुवानन्द जी को तथा अन्य आर्य विद्वानो को आमत्रित करके सर्वार्थसिद्धि वेंगलौर मे लाने का प्रयास किया। उन विद्वानो ने बेंगलौर मे भूवलय ग्रन्थ का अवलोकन करके हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की तथा श्री डा० सूर्यदेव जी ने भूवलय की महिमा में निम्नलिखित श्लोक निर्माण किया—

अनादि निधाना वाक्, दिव्यमीश्वरीयवचः ।

ऋग्वेदोहि भूवलयः दिव्यज्ञानमयो हि सः ॥

अर्थ—भूवलय ग्रन्थ अनादि अनन्त वाणी स्वरूप है, दिव्य ईश्वरीय वचन है, दिव्य ज्ञानमय है और ऋग्वेद रूप है।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य आशीर्वाद देते हैं कि इतिहास काल से पूर्व का प्रचलित वेद का ज्ञान प्रसार भविष्य में भी हो ॥८४॥

श्री जिनेन्द्र वर्द्धमानाक यंत्र तमानुपूर्वी के क्रम से नवम है ॥८५॥

यह नवमी कही जाने वाली लिपि ही अक्षाश में है ॥८६॥

विंदी से प्रारम्भ होकर विंदी के साथ ही अत होने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥८८॥

इसकी उत्पत्ति इस तरह है—

९ अक शून्य से निष्पन्न हुआ है और वह शून्य भगवान के सर्वांग से प्रगट हुआ है। जिस प्रकार हम लोग वार्तालाप करते समय अपना मुख खोलकर बातचीत करते हैं उस प्रकार भगवान अपना मुख खोलकर नही करते। भगवद्-गीता में भी कहा गया है कि—

सर्वद्वारेषु कौन्तेय प्रकाश उपंजायते।

इसी प्रकार उपनिषद् मे भी 'मौन व्याख्या प्रकटित परब्रह्म' इत्यादि रूप से कहते हैं। मौन व्याख्या का अर्थ भगवान के सर्वांग से ध्वनि निकलना है। अभी तक इसका स्पष्टीकरण नही हो सका था, किन्तु जबसे भूवलय सिद्धांत शास्त्र उपलब्ध हुआ तब से यह आधुनिक विचारज्ञो के लिये नूतन विषय दृष्टिगोचर हुआ। ऋषभनाथ भगवान् ने अपनी कनिष्ठ कन्या सुन्दरी देवी की हथेली पर अमृतागुली के मूल भाग से वायी ओर एक विन्दी लिखी। तत्पश्चात् उस विन्दी को अर्द्धच्छेद शलाका से दो टुकडो मे बनाया। उन्ही दोनो टुकडो के द्वारा अकशास्त्र की पद्धति के अनुसार घुमाते हुये ९ अक बनाये, जो कि अन्यत्र चित्र मे दिया गया है। किन्तु ९ अक में रहने वाले दोनो टुकड़ो को यदि परस्पर मे मिला दिया जाय तो पुन विन्दी बन जाती है।

यही विन्दी श्री ऋषभदेव भगवान के वन्द मुँह से हू इस ध्वनि के रूप में निकली जोकि भूवलय के ६४ अक्षराको मे से इकसठवा अ काक्षर है। यानी (०) अनुस्वार है न कि ५२ वा अक्षराक (म्) है।

अब उस विंन्दी (०) को ठीक मध्य भाग से तोडकर दो टुकडे करने से उसके ऊपर का भाग कानडी भाषा का १ अक बन जाता है, जोकि सस्कृतादिक द्राविडेतर भाषाओं में नही बनता। भगवान के सर्वांग से जो ध्वनि निकली वह भी उपर्युक्त बिन्दी के रूप में ही प्रगट हुई। इसलिए उसका लिपि आकार भी "०" ऐसा प्रचलित हुआ। इस प्रकार लिपि के आकार का और ध्वनि निकलने के स्थान का परस्पर में सम्बन्ध होने से इसी बिन्दी का दूसरा

नाम "गोड" नाम पद है। इसी विन्दी को कानडी भाषा मे सोन्ने, प्राकृत मे शून्य तथा हिन्दी भाषा मे विन्दी इत्यादि अनेक नामो से पुकारते हैं।

शून्य का अर्थ प्रभाव होता है और उस शून्य को काटकर ही कानडी भाषा के १ और २ बने। इन दोनो को मिलाकर ३ हुए और ३ को परस्पर मे गुणा करने से ६ होते हैं, जोकि सद्भाव को सूचित करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अभाव और सद्भाव कथचित् अभिन्न और कथचित् भिन्न है। एव भिन्नाभिन्न ही स्याद्वाद का मूल सिद्धान्त है। यहा तक ८७ श्लोक का अर्थ समाप्त हुआ।

ऋग्वेद जोकि भगवान-ऋषभ देव का यशोगान करने वाला है उस ऋग्वेद को देव, मानव और दानव ये तीनो ही गाते रहते हैं परन्तु उनमें परस्पर मे कुछ विशेषता होती है। मनुज और देव ये दोनो तो सौम्य प्रकृति हैं इसलिए गो, पशु और ब्राह्मण इन तीनो की रक्षा करने वाले तथा शुभाशीर्वाद देने वाले हैं एव जैन धर्म की प्रभावना करने वाले है। किन्तु दानव क्रूरप्रकृति वाले होते हैं इसलिए उसी ऋगवेद को क्रूरता के रूप से उपयोग में लाने वाले एवं हिंसा का प्रचार करने वाले हैं। अब यह भूवलय अङ्क उन तीनो के परस्पर विरोध को मिटाकर उन्हे एकता के साम्राज्य में स्थापित करने वाला है।८८। तथा उपर्युक्त अद्वैत, द्वैत और अनेकान्त तीनो मे भी परस्पर प्रेम वढाकर समन्वय करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।८९।

यद्यपि ये तीनो धर्म परस्पर में कुछ विरोध रखने वाले हैं। फिर भी इन तीनो को यहा रहना है अतएव यह भूवलय ग्रन्थ उन तीनों को नियन्त्रित करके निराकुल करने वाला है।९०।

यह भूवलल ग्रन्थ हम लोगो को वतलाता हैं कि सम्पूर्ण प्राणी मात्र के लिए समान रूप से एक ही धर्म का उपदेश देने वाला ऋग्वेदाङ्क हैं।९१।

यह भूवलय ग्रन्थ आदि में भी और अन्त मे भी परिपूर्णाङ्क वाला है। सो वताते हैं—यह भूवलय ग्रन्थ–विन्दु से प्रारम्भ होता हैं अतएव आदि अक विन्दु है उस विन्दु को काटकर कानड़ी लिपि के १-२-३ आदि नौ तक के अंक बनते हैं। अन्त में जो नौ का अङ्क है वह भी विन्दु के दोनो टुकडो से वनता है। ऐसा हम पहले भी अनेक स्थानों पर वता चुके हैं। यह भूवलय आदि में और अन्त में एकसा है।९२।

मनु और मुनि इत्यादि महात्माओं के ध्यान करने योग्य यह भूवलय ध्यानाङ्क हैं।९३।

यह भूवलय ग्रन्थ-स्वप्न में भी सव लोगों को सुख देने वाला है अतएव शुभाङ्क है।९४।

सभी मन्मथो का यह आद्यन्त अक है।९५।

जिनरूपता को सिद्ध कर दिखलाने वाला यह अंक है।९६।

जिस प्रकार चन्द्रमा के प्रकाश में आदि से लेकर अन्त तक कोई भी अन्तर नही पडता उसी प्रकार इस भूवलय में भी आदि से अन्त तक कोई अन्तर नही है।९७।

इस भूवलय की भाषा कर्मा (र्णा) टक है जोकि ऋद्धि रूप है और अपने गर्भ में सभी भाषाओ को लिए हुए है।९८।

शरीर को पवित्र और पावन वनाने वाला यह अंक है अर्थात् महाव्रतों को धारण करने की प्रेरणा देने वाला है।९९।

आदि से अन्त तक यह भूवलय ब्राह्मी (लिपि) अंक है।१००।

अद्वैत का प्रतिपादन करने वाला एक का अंक पूर्वानुपूर्वी में जिस प्रकार प्रारम्भ में आता है उसी प्रकार पश्चादानुपूर्वी में नौ के समान सवसे अन्त मे आता है, इस वात को वताने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१०१।

अद्वैत का अर्थ सम्यग्दर्शन है, क्योकि सम्यग्दर्शन हो जाने पर यह जीव अपनी आत्मा के समान इतर समस्त आत्माओं को भी इस शरीर से भिन्न ज्ञानमय एक समान जानने लगता हैं। द्वैत का अर्थ सम्यग्ज्ञान हैं, क्योकि ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण आत्माओ की या इतर समस्त पदार्थों की विशेषताओ को ग्रहण करते हुए आपापर का भेद व्यक्त हो जाता हैं। इसी प्रकार अनेकान्त का अर्थ सम्यक्चारित्र लेना चाहिए, क्योंकि वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान इन दोनो को एकता रूप करते हुए स्थिरतामय हो जाता हैं। अव पूर्वानुपूर्वी क्रम मे सम्यग्दर्शन प्रथम आने से प्रधान है, तो पश्चादानुपूर्वी क्रम में सम्यक्चारित्र प्रधान बन जाता है। इसी प्रकार यत्रतत्रानुपूर्वी क्रम में सम्यग्ज्ञान मुख्य ठहरता

है। इस तरह अपने अपने स्वरूप में सभी मुख्य और पर रूप से देखने पर गौण बनते रहते हैं। इस स्याद्वाद पद्धति से स्याद्वाद, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का पूर्णतया प्राप्त होना ही परमात्मा का स्वरूप है। और यही अद्वैत है।१०२।

इस प्रकार जो विद्वान पूर्वोक्त तीनो आनुपूर्वियो का ज्ञान प्राप्त कर लेता है उसका हृदय विशाल वन जाता है, क्योकि उसमें समस्त धर्मो का समन्वय करने की योग्यता आ जाती है। और उसके विचार मे फिर सभी धर्म एक होकर परम निर्मल अद्वैत स्थापित हो जाता है।१०३।

इस प्रकार अद्वैत का परम श्रेष्ठ हो जाना जैनियो के लिए कोई आपत्ति कारक नही है। क्योकि हम यदि गम्भीरता से अपने मन मे विचार करके देखें तो जैनियो के जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित यह भूवलय शास्त्र अनुभय रूप है। अर्थात् अथचित् द्वैत रूप हैं, तो कथचित् अद्वैत रूप है और कथचित् द्वैताद्वैत उभय रूप है। अतएव अथचित् दोनो रूप भी नही है। इस प्रकार उभय अनुभय इन दोनो की घनसिद्ध (समष्टि) रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१०४।

इसलिए यह भूवलय दिव्य सिद्धान्त ग्रन्थ है। यानी सर्व-सम्मत ग्रन्थ है अर्थात् सवके लिए माननीय है।१०५।

वस्तुत यह भूवलय ग्रन्थ जिन सिद्धान्त ग्रन्थ है।१०६।

प्रारम्भ से लेकर अन्त तक समान रूप से चलने वाला अकमय यह भूवलय ग्रन्थ है।१०७।

आत्मा का स्वरूप घन स्वरूप है इसलिए यह घन धर्मांक भूवलय है।१०८।

अक मे सख्यात असख्यात और अनन्त ऐसे तीन भेद होते है। अनन्त केवली-गम्य है। उस अनन्त राशि को जनता को वतलाने वाला यह भूवलय है।१०९।

जव अनन्त अक का दर्शन होता है तव सिद्ध परमात्मा का ज्ञान हो जाता है इसलिए नाम सिद्ध भूवलय है।११०।

यह भूवलय ग्रन्थ विन्दी से निष्पन्न होने के कारण अणुस्वरूप है और अनन्तानन्त अर्थात् ९ तक जाने के कारण महान् भी है। इसलिए यह अणु-महान् काव्य है।१११।

यह भूवलय जिनेश्वर भगवान का वाक्यार्थ है।११२।

यह भूवलय मन शुद्ध्यात्मक है।११३।

शरीर विद्यमान रहने पर भी उसे अशरीर वनाने वाला यह भूवलय है ॥११६॥

जिसको कि तुम स्वय अवगत किये हुए हो, ऐसे व्यतीत कल मे अनादि काल छिपा हुआ है। आज यानी—वर्तमान काल मे तुम मौजूद ही हो, अत वह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार आने वाले कल मे अनन्तकाल छिपा हुआ है। परन्तु जव तुम रत्नत्रय का साधन कर लोगे तो बीते हुए कल के साथ मे आने वाले कल को एक करके स्पष्ट रूप से जान सकोगे। एव अपने आप मे तुम स्वय अनाद्यनन्त हो जाओगे। अत. आचार्य का कथन है कि तुम भरसक रत्नत्रय साधन करने का सतत यत्न करो ॥११७।

इस प्रकार सच्चा रत्नत्रय प्राप्त हो जाने पर समतारूपी खड्ग के द्वारा क्रमश क्रोध, मान, माया लोभ का नाश करके आत्मा विमलाक वन जाती है और इसी का नाम अनागत काल है। इसको बताने वाला भूवलय है ॥११८॥

मन के दोपो को दूर करने वाला अध्यात्मशास्त्र है, जो कि इस भूवलय मे भरा हुआ है। वचन के दोपो को दूर करने वाला व्याकरण शास्त्र है, वह भी इसी भूवलय मे गर्भित है। इसी प्रकार शारीरिक वातादि दोषो को दूर करने वाला १३ करोड मध्यम पदात्मक वैद्यक शास्त्र भी इस भूवलय मे आ गया है। इसलिए मन, वचन व काय को परिशुद्ध वनाने वाला यह भूवलय है ॥११९॥

यह भूवलय भगवान् की दिव्य ध्वनि से प्रगट हुआ है। अत यह श्री (शोभावान्) वचन होने से अत्यन्त मृदु, मधुर और मिष्ट है। तथा हृदय कमल पर आकर विराजमान होने से मन को प्रफुल्लित करने वाला है और मन प्रफुल्लित हो जाने पर भविष्यत् काल रूपी कल पूर्ण रूप से अवगत हो जाता है तथा आत्मा अद्वैत वन जाती है ॥१२०॥

यह भूवलय ग्रन्थ भूत भविष्यत् वर्तमान कालो को एक कर के वतलाने वाला, द्वैत अद्वैत और जय इन तीनो को एक कर, वतलाने वाला एव देव,

दानव तथा मानव इन तीनो को एक साथ समता से रखने वाला है। इसलिये यह धर्मांक है ॥१२१॥

इन समस्त धर्मों को एकत्रित कर बतलाने वाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र भगवान् के धर्म का भी यह भूवलय प्रसिद्ध स्थान है। अतः धर्मांक है ॥१२२॥

वस्तुतः सभी मानवो का धर्म एक है, जिसका कि इस भूवलय में प्रतिपादन किया गया है ॥१२३॥

पति शरीर में जो आत्मा विद्यमान है, वह उत्तम धर्म वाली है ॥१२४॥

गत काल अनन्त काल तक बीता हुआ है और आने वाला काल भी अनन्त काल तक है अर्थात् आने वाला भूत काल मे भी विद्यमान है उन दोनो को वर्तमान काल कड़ी के समान जोड़ता है ॥१२५॥

आदि मे रहने पर भी आदि को देख नही सकते, और अन्त में रहने पर भी अन्त को नही देख सकते, ऐसा जो अक है वह ३×३ = ९ नौ अक है।

जैन धर्म में अनेक भेद हैं उन भेदो को मिटा कर ऐक्य करने वाला यह नव पद जैन धर्म नामक ऐक्य सिद्धात है ॥१२६॥

जगतवर्ती समस्त प्राणी मात्र के कल्याण करने वाले सभी धर्म नहीं हो सकते यद्यपि दुनिया में अनेक धर्म हैं परन्तु वे सभी धर्म कल्याणकारी नही हैं ॥१२७॥

जिस धर्मसे समस्त प्राणीमात्र का कल्याण हो उसी को सद्धर्म अथवा धर्म कहा जाता है, अन्य को नही ॥१२८॥

सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं, उन विभिन्न ज्ञानो की योग्यता को बताने वाला यह भूवलय है ॥१२९॥

हमारा ज्ञान अधिक है और तुम्हारा ज्ञान अल्प है, इस प्रकार परस्पर विरोध प्रगट करके झगडने वालो के विरोध को मिटा कर सम्यग्ज्ञान को बतलाने वाला यह भूवलय है। अर्थात् परस्पर विरोध को मिटाने वाला तथा सच्चा ज्ञान प्राप्त कराने वाला यह भूवलय है ॥१३०॥

देव लोग और राक्षस (सज्जन और दुर्जन) एक ही प्राणी के सन्तान हैं। जैन जनता भगवान महावीर की परम्परा सतान रूप से अनुगामिनी हैं अर्थात् उनकी भक्त हैं। परन्तु कलिकाल के प्रभाव से जैसे पाडव और कौरवों ने एकता को तोड कर आपस में विरोध पैदा किया उसी प्रकार जैन भाई आपसी प्रेम को नष्ट करके विरोध पैदा करके एक ही धर्म को अनेक रूप मानने लगे हैं। द्वेष भाव मिटा कर ऐक्य के लिए प्रेरणा देने वाला यह भूवलय है ॥१३१॥

अन्य ग्रन्थों में अक्षरों को कम करके सूत्र की रचना हो सकती है। परन्तु भूवलय ग्रन्थ में इस तरह नही हो सकता क्योंकि इसमें एक भाषा के साथ अनेक भाषाए और अनेक विषय प्रगट होते हैं, अतः अन्य ग्रन्थों के सूत्रो के समान इस ग्रन्थ के सूत्र नहीं बन सकते। भूवलय के एक एक अक्षर में अनेकों सूत्र बनते हैं। इसलिए भूवलय ग्रन्थ सूत्र रूप है तथा यह ग्रन्थ विराट रूप भी है ॥१३२॥

अरहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु ये परमेष्ठी विभिन्न गुणों के कारण भिन्न रूप दिखने पर भी आध्यात्मिक दृष्टि से पाचों समान हैं इनमें कोई भेद नहीं है। अपना समस्त तीर्थंकर देवत्व की दृष्टि से समान हैं, पूर्ण शुद्ध परमात्मा में जिन विष्णु शिव, महादेव और ब्रह्मा आदि नामों से कोई भेद नहीं होता ॥१३३॥

अर्हदादि देवो के वाचक अक्षरों से बना हुआ मन्त्र भक्तों की रक्षा करता है ॥१३४॥

उपर्युक्त मन्त्रो को एकाग्रता के साथ जपने वाले को सातिशय पुण्य बन्ध होता है ॥१३५॥

इसी के साथ-साथ उनको विनत भाव और अहिंसात्मक सद्धर्म की भी प्राप्ति होती है ॥१३६॥

यह भूवलय ग्रन्थ परम सत्य का प्रतिपादन करने वाला होने से सभी के लिये कल्याणकारी है ॥१३७॥

यह भूवलय का नवमाक अणुव्रत और महाव्रत का स्पष्टरूप से प्रतिपादन करने वाला है इसलिये अणु महान् (हनुमान) जिन देव का कहा हुआ यह अङ्क है। उस हनुमान जिन देव की कथा रामाङ्क में आई हुई है और रामाङ्क यानी राम कथा भी मुनि-सुव्रतनाथ भगवान की कथा में आई है। श्री मुनि सुव्रतनाथ की कथा प्रथमानुयोग में अङ्कित है। प्रथमानुयोग शास्त्र श्री द्वादशाङ्ग वाणी का एक अश है। यह भूवलय ग्रन्थ द्वादशाङ्गात्मक है, इसलिये यह जिन धर्म का वर्द्धमानाङ्क है ॥१३८॥

इस भूवलय ग्रन्थ में अनेक महान् ऋद्धियो का वर्णन है। ऋद्धिया जैन मुनियो को प्राप्त होती हैं। जिन ऋद्धियो के प्राप्त होने पर शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है और सम्यक्त्व परिशुद्ध हो जाता है उन्ही ऋद्धि वाले महर्पियो मे से एक श्री वालि महामुनि भी हैं जोकि राम-रावण के समय मे हो गये हैं। जब अपने बल के अभिमान में आकर रावण ने कैलाशगिरि को उठाकर समुद्र में डालना चाहा था उस समय श्री वालि मुनि ने अपने पैर के अंगुष्ठ से जरा सा दबाकर कैलाश पर्वत के जिन मन्दिरो की रक्षा की थी और रावण के अभिमान को दूर किया था। ऐसे शुद्ध सम्यक्त्व के धारक श्री वालि मुनि की बुद्धि ऋद्धि का यशोगान करने वाला यह भूवलय शुद्ध रामायणाङ्क है ॥१३९॥

द्वादशाङ्ग वाणी मे जो शुद्ध रामायण अंकित है उसी रामायण को लेकर वाल्मीकि ऋषि ने कवि लोगो को काव्य रस का आस्वादन कराने के लिए काव्य शैली मे लिखा और उसमे महाव्रतो की महिमा को बतलाया। उन महाव्रतो मे परिस्थिति के वश होकर यथा समय में आने वाले दोपो को दूर हटाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ परिशुद्धाङ्क है ॥१४०॥

जो परिशुद्धाङ्क—ससारी जीवो के महादुखो को दूर हटाने के लिए अणु-व्रतो की शिक्षा देता है, उन्ही अणुव्रतो के अभ्यास से महाव्रतो की सिद्धि होती है। जो मनुष्य महाव्रतो को प्राप्त कर लेता है उसको मगलप्राभृत की प्राप्ति हो जाती है। उस मगलमय महात्मा का दर्शन कराकर सम्पूर्ण जनता को परिशुद्ध बनाने वाला यह भूवलयाक है ॥१४१॥

विविध मगलरूप अक्षरो से समस्त ससार भर जावे फिर भी अक्षर बच जाता है। सबसे प्रथम उन सभी अक्षरो को भगवान आदिनाथ ने अमृतमय रस के समान यशस्वती देवी के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मी देवी की हथेली पर लिखा था वे ही अक्षर आज तक चले आये हैं। इन ६४ अक्षरो का ज्ञान होने से अनादि कालीन आत्मा के विप के समान सलग्न अज्ञान दूर हो जाता है। इसलिये इन अक्षरो का नाम 'विपहर नीलकठ' भी है। नीलकठ का अर्थ ज्ञानावरणादि कर्म हैं। वे कर्म विपरूप हैं उन कर्मों का कथन करने वाला भगवान का कठ है, इस कारण यह भूवलय का भाग नीलकंठ अक है ॥१४२॥

यदि मन्मथ राजाओं को वढिन सुन्दरो को इस नवमांक रूप भूवलय का दर्शन तथा अनुभव कराकर अरहतादि नव देवता सूचक जो ९ नौ अंक है, उस ९ अक को शून्य के रूप मे अनुभव कराकर दिया हुआ ९ वा अर्क है ॥१४३॥

जैन धर्म मे कहे हुए अर्हंतादि नव पद के समीप आकर ॥१४४॥

स्मार्त अर्थात् स्मृतियो के धर्म को और वैष्णव धर्म को इन्ही अको में समावेश और समन्वय करते हुए ॥१४५॥

इन धर्म वालो को अपने शरीर मे ही अपनी आत्मा को दिखला कर नव अक मे शून्य वतलाकर इन धर्म वालो के शरीर के दोष एक 'ह्रीं' समान है कम अधिक नही है ऐसे वतलाते हुए सम्यग्नय और दुर्नय इन दोनो नामो को वतलाया। अंत मे दुर्नय का नाश करके सुनय में अतिशय को बताकर अन्त मे उस अतिशय को अनेकात मे सम्मिलित कर दिया फिर चैतन्यमय आत्म तत्व को अपने हृदय मे स्थापित करके हिंसामय धर्म से छुडा अहिंसा मे स्थापित कर देते हैं। इसी रीति से जिन मार्ग को सुन्दर बना कर और विनय धर्म के साथ सद्धर्मांक को जगत में फैलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४६-१५६॥

चौथे गुणस्थान से लेकर तेरहवें गुण स्थान तक उत्तरोत्तर आत्मा के सम्यक्त्व गुण की निर्मलता होती जाती है जिससे कि आगे आगे असख्यात गुणी निर्जरा होती रहती है ॥१५७॥

ऊपर जो अनन्त शब्द आया है उसकी महिमा बतलाने के लिए सर्व-जघन्य संख्यात दो है। इस बात का खुलासा ऊपर बताया जा चुका है तथा एक का अक अनन्त है यह बात भी ऊपर बता चुके हैं। अब एक और एक मिलाकर दो होता है इसलिए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि सर्व जघन्य सख्यात भी अनन्तात्मक है। इतना होकर भी आगे आने वाली सख्याओ की अपेक्षासे बिल-कुल छोटा है। इस छोटे से छोटे अक को इसी से वर्गित सम्वर्गित करें तो ४ महाराशि आती हैं $२^२$=४ इसको आगम की परिभापा मे एकवार वर्गित सम्व-र्गित राशि कहते हैं।

इस राशि (४) को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो दो सो छप्पन ४×४×४×४=२५६ आता है। इसका नाम दुवारा वर्गित सम्वर्गित राशि है। अब इस राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो २५६ = ६१७ स्था-नांक आते हैं इसको तीन वार वर्गित सम्वर्गित राशि कहते हैं।

२५६×२५६×२५६×२५६×२५६×२५६ इस प्रकार दो सो छप्पन वार गुणा करनेसे जो महाराशि उत्पन्न होती है उसका नाम ६१७ स्थानाक है ।

(१) २५६×२५६ इसी रीति से वार-वार दो सो छप्पन वार करना ।

(२) ६५५३६×२५६

(३) १६७७७२१६×२५६

इस तरह से सर्व जघन्य दो को सिर्फ तीन वार वर्गित सम्वर्गित करने से ही कितनी महान राशि हो गई । इससे भी अनन्त गुणा वढकर कर्म परमाणु राशि प्रत्येक ससारी जीव के प्रति सलग्न है । उन कर्म परमाणुओं को नष्ट कर दिया जावे तो उतने ही गुण आत्मा में प्रगट हो जाते हैं । अव सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त सख्याङ्क को लाने की विधि श्री कुमुदेन्दु आचार्य वतलाते हैं—

उपर्युक्त तीन वार वर्गित सम्वर्गित राशि से वर्गित सम्वर्गित करें तो चार वार वर्गित सम्वर्गित राशि आती है । इस चार वार वर्गित सम्वर्गित राशि को इसी राशि से वर्गित सम्वर्गित करने पर पाच वार वर्गित सम्वर्गित राशि वनती है इसी प्रकार छटवें वार, सातवें वार, आठवें वार और नौवें वार उत्तरोत्तर वर्गित सम्वर्गित करते चले जावे तो जो अन्त में महा-राशि उत्पन्न होती है उसका नाम नौ वार वर्गित सम्वर्गित राशि होता है । इस राशि का नाम उत्कृष्ट सख्यातानन्त है । इसके मध्य मे दो से ऊपर जो भेद हुये सो सव मध्यम सख्यातानन्त के भेद हैं । इसमें एक और मिला देने से जघन्य असख्यात होता है यह असख्यात का एक हुआ । इस असख्यात में इतना ही और मिलावें तो असख्यात का दो हो जाता है । इस प्रकार करने पर उत्पन्न हुई महा राशि को श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने असख्यात के दो माने हैं । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करे तो असख्यात की वर्गित सम्वर्गित राशि ४ हुई । यह असख्यात की प्रथम वार वर्गित सम्वर्गित राशि हुई । असख्यात ३=४ इस चार को इसी चार से चार वार गुणा करने पर जो महा राशि उत्पन्न हो वह असख्यात की दुवारा वर्गित सम्वर्गित राशि असख्यात ४× असख्यात ४× असख्यात ४× असख्यात ४× = असख्यात २५६ होता है। इसी असख्यात महा राशि को इस महा राशि से इतनी ही वार वर्गित सम्वर्गित करने पर असख्यात की तीन वार वर्गित सम्वर्गित राशि असख्यात २५६ स्थानाक उत्पन्न होती है ।

इसी प्रकार चार वार असख्यात सम्वर्गित, इत्यादि नौ वार वर्गित सम्वर्गित कर लेने पर जो महाराशि होती है वह उत्कृष्ट असख्यातानन्त है । और इसके वीच के सव भेद मध्यम असख्यातानन्त होते हैं । इसी मे एक और मिला देने पर अनन्तानन्त का प्रथम भेद हो जाता है अर्थात् अनन्तानन्त का एक होता है और इसमें इतना ही और मिला देवे तव अनन्तानन्त का दो हो जाता है । इस दो को इसी दो से वर्गित सम्वर्गित करने पर अनन्तानन्त का ४ आता है जोकि अनन्तानन्त का एक वार वर्गित सम्वर्गित राशि होती है । अव इसको भी पूर्वोक्तरीत्य नुसार के पश्चात् नौ वार वर्गित सम्वर्गित करने से जो महाराशि होती है वह उत्कृष्टानन्तानन्त होता है । यह अनन्तानन्त परिभाषा तो गणना की अपेक्षा से वताई गई है इसमे भी अपरिमित अनन्तानन्त और हैं जिन के नाम एकानन्त, विस्तारानन्त, शाश्वतानन्त इत्यादि ग्यारह स्थानो तक चलता है । जोकि छद्मस्थ के बुद्धि-गम्य न होकर केवलि-गम्य है । यह गणित-पद्धति विद्वानो के लिए आनन्द-दायक होनी चाहिए क्योकि यह युक्ति-सिद्ध है ।

नवमाक मे पहले अरहत, दूसरे सिद्ध तीसरे आचार्य चौथे उपाध्याय, पाचवें में ॥१५८॥

पाप को दहन करने के लिए साधु समाधि में रत साधु छठा सच्चा धर्म, सातवा परिशुद्ध परमागम, आठवी जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति ।१५९।

नौवा गोपुर द्वार, शिखर, मानस्तभ इत्यादि से सुशोभित जिन मन्दिर है, आगम परिभाषा में ऊपर कहे हुए नौ को नव पद कहते हैं ॥१६०॥

इस नव पद का पहला मूल स्वरूप अद्वैत दूसरा द्वैत है इन दोनो से समान रूप से मोक्ष पद प्राप्त करने की जो प्रवल इच्छा रखते हैं। उनको एक ही समान द्रव्य और भाव मुक्ति के लाभ दोनो को ॥१६१॥

जव मिलता है तव अनेकात का मूल स्वरूप नय मार्ग मिलता है । हम लोग इसी तरह जैनत्व को प्राप्त करेंगे तो चौदहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है ॥१६२॥

तव उसमे मन वचन काय योग की निवृत्ति होती है । उसी समय विश्व के अग्रभाग पर यह आत्मा जाकर स्थित रहता है ॥१६३॥१६४॥

उसी सिद्ध अवस्था प्राप्त किये हुए स्थान को मोक्ष या बैकुण्ठ कहते हैं ।१६५।

यह श्री वीर वाणी विद्या है ।१६६।

इसी विद्या के सिद्धि के लिए हम अनादि काल से इच्छा करते थे ॥१६७॥

केवली समुद्घात के अन्तर्गत लोक-पूरण समुद्घात मे भगवान के आत्म प्रदेश सर्वलोक को व्याप्त करते हैं उससमय केवली का आत्मा समस्त जीव राशि के आत्म प्रदेश मे भी स्थित होने के कारण उस प्रदेश को सत्यलोक ऐसे कहते हैं ॥१६८॥

उस केवली भगवान के परिशुद्ध आत्म-प्रदेश हमारे आत्म-प्रदेश में सम्मिलित होने के बाद समस्त जीव लोक और भव्य जीव लोक इन दोनो लोक की शुद्धि होती है ॥१६९॥

उन भगवान के विराट् रूप का अन्तिम समय जन्म और मरण को नाश करने वाला है ॥१७०॥

और वही समस्त भाव और अभाव रहित है ॥१७१॥

इसलिए हे भव्य मानव प्राणियो ! तुम लोग इसी स्थान की हमेशा आशा करते रहो ॥१७२॥

इस प्रकार आशा को रखते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस विश्वरूप भूवलय काव्य का महत्व बताया है ॥१७३॥

श्री विष्णु का कहा हुआ द्वैत धर्म, ईश्वर का कहा हुआ अद्वैत धर्म तथा जिनेन्द्र भगवान का कहा हुआ अनेकात इन तीनों धर्मोंका ज्ञान हो जाय तो ३६३ अनादि काल के धर्म का ज्ञान होता है। उन धर्मों के समस्त मर्म के ज्ञानी लोग अपने हृदय कमल की पाखडियो में लिखे हुए अक्षरो मे ओ अक को गुणाकार रूप से गुणनकर के आये हुए अक मे अनाद्यनत काल के समयों को शलाका खड के साथ मिला देने से आया हुआ जो काव्य सिद्ध है वही भूवलय है ॥१७४॥

भूवलय के नौ अको के रहस्य को जो कोई भी मनुष्य जान लेता है, इन को वश में कर लेता है उसके निद्रा भूख प्यास इत्यादि अठारह दोष जोकि संसार के मूल हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं इनका नाम-निशान भी नही रहता है। उसको चतुर्थ पुरुषार्थ हस्तगत हो जाता है ॥१७५॥

वह नवमाक सिद्धि किस प्रकार होती है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि–इस भूवलय ग्रन्थ मे द्रव्य प्रमाणानुगम अनुयोग द्वारान्तर्गत जो करण सूत्र है उसका पुन-पुन अभ्यास करके उपस्थित कर लेने से नवमाक की सिद्धि हो जाती है। और वह पुरुष विश्व भर मे होने वाली सातसौ अठारह भाषाओ का एक साथ ज्ञाता हो जाता है। तथा तीन सौ त्रेसठ मतान्तरो का भी जानकार बन जाता है ॥१७६॥

इस ससार मे यह जीव अनादि काल से अशुद्ध अवस्था को अपनाये हुए है, अत तीन काल में एक रूप से बहने वाले अपने सहज भाव को न पहिचान कर भयभीत हो रहा है। इसलिए दोनो लोको मे सुख देने वाली अविनश्वर सर्वार्थ सिद्धि सम्पदा को प्राप्त करा देने वाले परिशुद्ध स्वभाव को प्राप्त नही किया है। इस भूवलय के द्वारा नवमाक-सिद्ध प्राप्त हो जाता है ॥१७७॥

विवेचन—परमाणु से लेकर तीनो वातवलय तक रहने वाले छ द्रव्यो से परिपूर्ण भरा हुआ क्षेत्र का नाम ही पृथ्वी है। एक परमाणु को जानने के लिए अनाद्यनन्त काल का परिचय कर लेने की भी जरूरत है। एक परमाणु के परिचय कर लेने मे अनाद्यनन्त काल बीत जाता है तो असख्यात अथवा अनन्तानन्त परमाणु के परिचय कर लेने में कितना समय लगेगा ? इस प्रश्न के वारे में श्री कुमुदेन्दु आचार्य से असख्याता सख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के अर्द्धच्छेद शलाका से भी इस परमाणु के कथन को घटा नही सकते ऐसा कहा है। इस प्रकार का महान ज्ञान इस भूवलय मे भरा हुआ है। उस सभी ज्ञान को एक क्षण मे कह देने वाला केवल ज्ञान कितना बड़ा होगा ? इस विचार को आप लोग ही करें।

एक व्यापारी थोडा सा रुपया खर्च करके बहुत सा लाभ प्राप्त कर लेता है उसके समान तीन काल और तीन लोक के ज्ञान को प्राप्त कर लेने के लिए जो थोडी सी तपस्या की जाती है उससे महान लाभ होता है, रचमात्र भी नुकसान नहीं है ॥१७८॥

इन सब में जो सच्चा लाभ है वह एक अरहत भगवान को ही प्राप्त हुआ है, ऐसा समझना चाहिए। अर्थात् वही सच्चा लाभ है ॥१७९॥

दया धर्म को वेचकर उसके द्वारा आया हुआ जो लाभ है वही यथार्थ लाभ है ॥१८०॥

दया धर्म का महत्व—

एक दयालु धर्मात्मा श्रावक अपने काम के लिए परदेश जा रहा था। बीच में भयानक जगल पडा गर्मी के दिन थे और उस जगल की जितनी घास थी वह सभी सूख गई थी। भयानक जगल होने से उस में बहुत झाड और झाडिया उपजी हुई थी। इसलिए उस जगल मे बहुत वडे-बडे हाथी और अन्य अनेक जानवर इत्यादि रहते थे। एकाएक जगल में चारो ओर आग लग गई, आग लगते ही उस जगल मे रहने वाले जीव अग्नि के भय से भयभीत होकर चिल्लाने लगे। उस चिल्लाने की आवाज उस दयालु श्रावक ने सुनकर देखा तो चारो ओर आग लगी हुई थी। और सभी प्राणी भयभीत होकर चिल्ला रहे हैं। तुरन्त ही वह दयालु श्रावक पहुचकर उन सभी प्राणियो को बचाने का उपाय सोचने लगा। अर्थात् अग्नि को बुझाने की युक्ति सोचने लगा परन्तु गर्मी के दिन होने के कारण वह अग्नि बढती जाती थी बुझने की कोई उम्मेद नही थी। वह विचारता है कि अगर इस समय पानी वरस जाय तो अग्नि ठण्डी हो जायगी अन्यथा नही परन्तु आकाश साफ अर्थात् एकदम निर्मल दीख रहा है, पानी वरसने की कोई उम्मीद नही है। अब क्या उपाय करना चाहिए ऐसा मनमे सोचते हुए उसने विचार किया कि इस अग्नि को शान्त करने के लिए एकान्त में वैठकर प्रज्ञप्ति मत्र का जाप जपना चाहिए ऐसा मन मे निश्चय करके एक झाड के नीचे वैठकर एकाग्रता से मन्त्र का जाप करने लगा। ऐसे जाप करते-करते वहुत से जाप किये तब तुरत ही वादल होकर खूब पानी बरसा जिससे अग्नि ठण्डी हो गयी और सभी जीव अपनी २ जान बचाकर शात चित्त से विचरने लगे। परन्तु दयालु श्रावक अभी तक जाप में ही था जाप करते-करते उसी जाप मे निमग्न होकर अपने शरीर को भूल गया। उसे तुरन्त सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करली। तत्काल कठिन तप के द्वारा उसने केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया। यही परजीव पर दया करने का फल है।

यह ऊपर लिखे अनुसार गुरु हसनाथ का सन्मार्ग है।१८१।

सभी तीर्थंकर परम देवो ने इसी मार्ग को अपनाया है।१८२।

यह सदाकाल रहने वाला आत्मा का सौभाग्य रूप है।१८३।

यही धर्म विश्वकल्याणकारी होने से प्राणी मात्र के द्वारा आरावना करने के योग्य है। १८४।

यह अविच्छिन्न गुरु परम्परा से प्राप्त हुआ आदि लाभ है।१८५।

यही धरसेन गुरु का अग है। अर्थात् काल दोष से जब अग ज्ञान विछिन्न होने लगा तब श्रुत की रक्षार्थ अपने अन्तिम समय में बुद्धि विचक्षण श्री भूतवलि और पुष्पदन्त नामक महर्षियो की साक्षी देकर श्रुत देवता की प्रतिष्ठापना जिन्होने की थी उन्ही गुरु देव का अनुयायी यह भूवलय है।१८६।

जिन लोगो ने अपने जन्म मे सत्य श्रुत का अध्ययन करके प्रसन्नता पूर्वक जन्म विताया उन महापुरुषो कामूल भूत गणित भग यह भूवलय है।१८७।

युद्धार्थी शूरवीर को जिस प्रकार कवच सहायक होता है उसी प्रकार परलोक गमन करनेवाले महाशय के लिए परम सहायक सिद्ध कवच है।१८८।

हरि अर्थात् सवको प्रसन्न करने वाला और हर अर्थात् दुष्कर्मों का नाश करनेवाला इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ सिद्धान्त ग्रन्थ भी यही भूवलय है।१८९।

अरहन्त पदो की आशा को पूर्ण करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१९०।

रत्नत्रय के प्रकाश को वढाने वाला तथा सत्यार्थ का अनुभव करा देने वाला एव सात तत्वो का समन्वय करने वाला तत्वार्थ सूत्र गन्थ है। उस तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ को इतर अनेक विषयो के साथ मे सगठित करते हुए इस भूवलय ग्रन्थ में भगवान के मुख तथा सर्वाङ्ग से निकली हुई वाणी का सम्पूर्ण सार भर दिया गया है। इसलिए यह ग्रन्थ दिव्य-ध्वनि स्वरूप है।१९१-१९२।

यह छठवा ई इ नामक अध्याय है। इस अध्याय में सम्पूर्ण सिद्धान्त भरा हुआ है। इसलिए इसमे जो पद का अक्षर, अक्षर का अङ्ग, अङ्ग की

रेखा, रेखा का क्षेत्र क्षेत्र का स्पर्शन, स्पर्शन का काल, काल का अन्तर, अन्तर का भाव और अन्तिम मे अल्प बहुत्व इन अनुयोग द्वारो मे उस महार्थ को मैंने अन्तर्गत बद्ध किया है अत जैन धर्म का समस्तार्थ इसमे है, जोकि मानव मात्र का धर्म है।१९३-१९४।

इस ग्रन्थ का अध्ययन करने से सम्पूर्ण मानवो मे परस्पर एकता स्थापित होती है।१९५।

जिस एकता से उत्तरोत्तर प्रेम बढता जाता है।१९६।

एकता और प्रेम के बढ़ने से सभी के दुष्कर्मा का नाश हो जाता है।१९७।

जैन शास्त्र किसी एक सम्प्रदाय विशेष के ही लिए नहीं किन्तु सबके लिये, है ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं।१९८।

जैन धर्म मे विशेषत विनय धर्म प्रधान है जोकि सबके प्रति समानता का पाठ सिखलाता है। १९९।

सब देशो में रहने वाले तथा किसी भी प्रकार की भाषा के बोलने वाले सभी मनुष्यो के साथ मे यह सम्बन्ध रखता है।२००।

यह धर्म पचम काल के अन्त तक रहेगा।२०१।

छठे काल में धर्म नही रहेगा।२०२।

ऐसा कहनेवाले अङ्ग धरो का ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है।२०३।

दूसरे इ अध्याय मे प्रतिपादन किये हुए धर्म का आराधन यदि सुगम नही है तो दुर्गम भी नही है किन्तु कुछ थोडा प्रयास करने पर प्राप्त हो जाता है।२०४।

प्रकाशमान हुआ द्वैत, अद्वैत और अनेकान्त इन तीनो का सूत्र ग्रन्थ इस अध्याय मे अङ्कित है। इस अध्याय मे आठ हजार सात सौ अडतालीस श्रेणी मे ब्राह्मी देवी का अक्षर और सुन्दरी देवी के इतने ही अक हैं।२०५।

आगम के जानकार लोग इस ई इ अध्याय मे से रागवर्द्धक और वैराग्य वर्द्धक दोनो ही प्रकार का मतलब ले सकते हैं। इसी अध्याय के अन्तर मे ग्यारह हजार नौसौ अट्ठासी अ काक्षर रखनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।२०६।

ई इ—८७४८+अन्तर ११९८८=२०७३६

अथवा अ—ई इ तक ८४८५२+२०७३६= १०५५८८

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर जो प्राकृत गाथा है उस गाथा का अर्थ यहा दिया जाता है—

भगवान के मुखारबिन्द से निकले हुए वचनात्मक यह भूवलय ग्रन्थ होने से बिलकुल निर्दोष है और शुद्ध है। इसलिए इसका दूसरा नाम महर्षियो ने आगम ऐसा बतलाया है। यह भूवलय ग्रन्थ समस्त तत्वार्थो का प्रतिपादन करने वाला है।२०६।

इसी के बीच में से जो सस्कृत भाषा निकलती है उसका अर्थ लिखा जा रहा है—

(भव्य जीव मन प्रतिबोध) कारक होता है, पुण्य का प्रकाशक होता है, पाप का नष्ट करने वाला है ऐसा यह ग्रन्थ है जिसका नाम भूवलय है इसका मूल ग्रन्थ —

सातवां अध्याय

उ* पपाद शाय्येय मारणान्तिकवाद । सफलद त्रस कोकदव् क* दुपरिम लोक पूरणदळतेयोळिह् । उपमेय त्रस नालियंन्क ॥१॥
व* रद समुद्घातदोळुलोकपूरण । सरिवोरि बरलावम रूप॥ दो र्* एताग अ इ उ ऋ ळ् ए ऐ ओ औ सर्व । वरेयलागद 'उ' भूवलय ॥२॥
वा* द वय्खरियोळु साधिसिदात्मन । साधनेयडगिदयोग॥ मोदव ता* गुव स्याद्वाद सिद्धिय । आदिगनादिय योग ॥३॥
द* रुशनशक्ति ज्ञानद शक्ति चारित्र । वेरसिद रत्नत्व र* व ॥ बरेयवारद बरेदरु ओदवारद । सिरिय सिद्धत्व भूवलय ॥४॥

परिशुद्धरात्म भूवलय (निर्मलद) ॥५॥ अरहन्त रूपळिदिरुव ॥६॥ गुरुवु सद्गुरुवाद नियम ॥७॥
हरि विरचिगळ सद्वलय ॥८॥ निरुपमवागिह् उपमा ॥९॥ सिरि सिद्धरूपिन परम ॥१०॥
अरहत राशा भूवलय ॥११॥ परमामृतसिद्धनिलय ॥१२॥ पुरुदेवनोलिदश्रीनिलय ॥१३॥
हर सिव मंगल वलय ॥१४॥ बरेयलागद चित्र सरल ॥१५॥ करुणेय फलसिद्धि निलय ॥१६॥
परिपूर्ण सुखदादि वलय ॥१७॥ गुरुपरम् परेयाशा वलय ॥१८॥ धरसेन गुरुविन निलय ॥१९॥
परमात्म रूपिन निलय ॥२०॥ बरुवकालदशान्ति निलय ॥२१॥ इरुव वस्तुवनोळ्प बुद्ध ॥२२॥
मरणवागद जीव वरद ॥२३॥ परमात्म सिद्ध भूवलय ॥२४॥

मा* न मायवु लोभ क्रोध कषायगळ् । तानवप्अ हदिनारु भन्ग ह्* तानल्लि विट्टोडे निजरूपदोळात्म । आनन्द रूपनागुवुदम् ॥२५॥
र* त्न मूरर रूप धरिसिद आ शुद्ध । नूत्नान्तरन्गद वर श्* री ॥ यत्नदिम् वन्द सद्धर्म साम्राज्य । नित्यात्म रूपवी लोक ॥२६॥
ण* वदंक परिपूर्ण वागिसिदरहन्त । अवनिगे सिद्धत्व री* ति॥ अवतारदादिये लोकागृर मुकतिय । नवमान्क प्राप्तिय लोक॥२७॥
नृ* रनु लोकद रूपपर्याय होन्दलु । हरि हर जिनरेम्न सर स* तिरेयग्र लोकाग्र मुक्तिय साम्राज्य । हरुषद लोकपूरणवु ॥२८॥
ति* रेय रूपनु होन्दिदात्मन पर्याय । विरुवाग हदिनाल्कु स र्* व ॥ वर साधु पाठक आचार्य ई गुरु । गुरुगळंकवु नवपदवु ॥२९॥
य* शदग्र सर्वस्ववा ससुद्घात । दिशेयग्रवेनिसिद सर व* यशवेल्ल ओमृदाद सूर्तिये जिन बिम्ब । हसनाद विम्बदालयवु ॥३०॥

वशवाद सद्धर्म लोक ॥३१॥ यशद दिव्यध्वनि शास्त्र ॥३२॥ रससिद्धि नवकारर्थ ॥३३॥ विषहर सौख्याक नवम ॥३४॥
असमान सिद्ध सिद्धान्क ॥३५॥ कुसुमायुधन गेल्दन्क ॥३६॥ यसश्वतिदेविय पतिय ॥३७॥ यशद सुनन्देय पतिय ॥३८॥
रसऋषि वृरुषभनाथाक ॥३९॥ वशवादमृत निभान्क ॥४०॥ असदृशअजित नाथाक ॥४१॥ वशदशम्भवर दिव्यांक ॥४२॥
रस अभिनन्दन सुमित ॥४३॥ वशद पद्म प्रभ विमल ॥४४॥ स सुपार्श्व चन्द्रप्रभांक ॥४५॥ वश पुष्पदन्त शीतलर ॥४६॥
सश्रेयाम्स वासु पूज्याक ॥४७॥ ऋषि विमलानन्त धर्म ॥४८॥ वश शान्ति कुन्थु श्री अरह ॥४९॥ यशमल्लि मुनिसुव्रतांक॥५०॥
यश नमि नेमि सुपार्श्व ॥५१॥ रस ऋषि वर्धमानान्क ॥५२॥ यशविन्तु वर्तमानाक ॥५३॥ यशदिप्पत्नाल्कु मत्पुनह ॥५४॥
विषहर काव्यदोळ् बहुदु ॥५५॥

प* द भूतकालद् इप्पत्नाल्वरन्क । पद श्री शान्ति सर्व ज* अ ॥ मुद इप्पत्मूरु अतिक्रान्त श्री भद्र । विदरंक वेप्पत्एरडु ॥५६॥

रि* षि इप्पत् ओम्दु श्री शुद्धमति देव । रस ज्ञानमति सुज् ञ* देव।। वशदइप्पत् अन्ककरुण्एाहत् ओम्बतम् । यशोधर हदिनेन्टरंक ।।५७।।
ण* वपद्म विमलाक हदिन्एळु परमेश । अब हदिनार् एम्ब दे वा* ।। नवमत्तु आरम्क जिनह ज्ञानेश्वर । नव ऐदु उत्साहरक ।।५८।।
द* नवर वन्दित शिवगण हदिम्ऊरु । घन कुसुमान्जलि दे वा* जिनरु हन्एरडक सिन्धवु हन्ओम्दु । जिनरु सन्मतियु हत्अन्क ।।५९।।

जिनरु अन्गोर ओम्बत्तु ।।६०।। जिनरु उद्धररु एन्ट्न्क ।।६१।। जिन अमलप्रभरेळु ।।६२।।
घन सुदत्त् आन्कवु आरु ।।६३।। जिन श्री धरान्कवु ऐदु ।।६४।। जिन विमल प्रभ नाल्कु ।।६५।।
जिन देव साधु मूरन्क ।।६६।। घन सागर एरडन्क ।।६७।। जिनरु निर्वाण ओम्दन्क ।।६८।।
अनुगाल विनिताद अक ।।६९।। जिन् भूत वर्तमानाक ।।७०।। एनुवाग बन्द भूवलय ।।७१।।

त* नुवळिदतनुव गेल्दन्क विन्तागे । तनुवलिववरन्कम् स* व नव।। एनुविप्पत्नाल्वरनागत तीर्थका जिन सिद्धनाम स्वरवप ।।७२।।
स* वण महापद्म मोदलागे सुरदेव । जिन एरडे सुसुपार्श्व ।। त* नि मूरु स्वयप्रभ नाल्कु सर्वात्म भू । तनुजिन ऐदवरन्क ।।७३।।
लो* कय्कर् देवपुत्राख्य आरन्कवु । आ कुल पुत्रर् सेरुवु दु* ।। श्री कर एळु महोदन्क एन्टागे । श्री कर नवम प्रोष्ठिलरु ।।७४।।
य* श जयकीर्ति हत्ता मुनि सुव्रत ।। ऋषिहन् ओम्दु एन्दुक् त* अ । यश अरद्वादश पुष्पदन्तेशरु । वशवागे हदिमूररन्क ।।७५।।

रस चतुर्दश विष्कषाय ।।७६।। यश हदिनय्दु श्री विपुल ।।७७।। वश हदिनारु निर्मलरु ।।७८।।
रिषि चित्रगुप्त सप्तदश ।।७९।। यशहदिनेन्दु समाधि ।।८०।। वश गुप्त श्री जिनरन्क ।।८१।।
रस्वयम्भू हत्ओम्बत्अंक।।८२।। यश अनिवृत्त इप्पत्तु ।।८३।। रस विजयरु इप्पत् ओम्दु ।।८४।।
यशद विमल इप्पत् एरडु ।।८५।। वश इप्पत्मूरु देवपाल ।।८६।। असमान महानन्त वीर्य ।।८७।।
रस अनागतइप्पत् नाल्कु ।।८८।। कुसुम कोदन्डदल्लणर ।।८९।। रसदेप्पत् एरडन्क नेवम ।।९०।।
दिशेयन्क ओम्बत्तु काव्य ।।९१।। रस काल तीर्थकरन्क ।।९२।। यशदन्क काव्य भूवलय ।।९३।।
वशमूरु मूरळोम्बत्तम् ।।९४।। बेसदन्क काव्य भूवलय ।।९५।।

पू* र्वापाराजित कर्मव केडिसिद । पूर्वदिप्पत्नाल्कु इनि त* ।। निर्मलदीगण इप्त्नाल्कअन्कद । धर्म मुन्दण इप्पत्नाल्कु ।।९६।।
र* सद ई कालद श्रीतीर्थनाथर । रस कूटदलि एरडेळु।। बेस र* त्नत्रय मूरु मूरल् ओम्बत्तु । वशवदे मूरु कालान्क ।।९७।। २४×३=७२
णे* रदे ई मूरु गुणकारदिम्वन्द । हारमणियन्तवद ।। सार गु* रन्थद हदिनाल्कु गुणस्थान । दारदगुणकारदिन्द ।।९८।। ३×३=९
ण* वपद प्राप्तिय गुणकार मगिगयिम् । सविहदिनाल्कन्क र* सदिम् ।। सवनिसेसाविरदेन्दुदलद पद्म । दवतारदक्षरदंक ।।९९।।
[७३×१४=१००८]
ग* मनिसि साविरदेन्दु दलगळुळ्ळ । कमलगळ् एरड्उ काल् न* नूरु ।। कृ्मपाद ओम्दरिम् गुणिसे सोन्नेयु आ, विमल सोन्ने एन्ट्,
आरेरडेरड्उ ।।१००।। [१००८×२२५=२२६८००]
दो* ष विनाशनवादओम्देपाद । दाशक्तियतिशयपुण्य ।। राशिय य* रतर गणितदोळात्मन । आ सिद्धरसव माडुवुदु ।।१०१।।
आशेयनेल्ल कूडिपुदुम् ।।१०२।। राशिकर्मव कळेयुवुदु ।।१०३।। श्रीशन माडुत बहुदु ।।१०४।। लेसनु साधिसलहुदु ।।१०५।।

राशि ज्ञानव होरडिपुवु ॥१०६॥ श्री सिद्ध पदवमाधिपुवु ॥१०७॥ राशियनोमुव्वग्गुडिपुदु ॥१०८॥ ईशत्ववदनु माधिपुवु ॥१०९॥
ईषत्प्राग् भारकेय्दिपुवु ॥११०॥ राशि सूक्ष्मतर नागिप्पुदु॥१११॥ आशेयक्षायादयवहतु ॥११२॥ नाशवयेल्लगेल्वुदु ॥११३॥
ओषध रूप वागिपुदु ॥११४॥ पोषधसमृद्ध वागिपुदु ॥११५॥ राशिय यशाहृदागिपुदु ॥११६॥ नेसिनगुरु नगुवहदु ॥११७॥
लेसनेल्लरिगे तोरुवुदु ॥११८॥ आ शक्तियनुनय काव्य ॥११९॥ श्रीनक्तियायुक्तकरनय ॥१२०॥ भूषणवागय भूवनय ॥१२१॥
के॰ ळुव भव्यर नालगेयदव । मालिनिम् परितन्दुवनु ॥ कान क॰ नापव अग्यत्तु मागिर । नीनियशन्के गुन्तरवम् ॥१२२॥
व॰ रदवागिसि अतिमरलवनागिसि। गुरु गौतमरिन्द हरिगि॥ म र॰ गान्कर् अरवन्नान्तु अक्षरविन्त । मरिदनोक आद नक्षगळोळ् ॥१२३॥
लि॰ पियु कर्माटक वागलेवेकेम्ब । नुपवित्र वारिय नोरि ॥ मग ता॰ ळनवयुडिद् नाडवागि सूत्र । नुपगम्भीर सूत्रवनि ॥१२४॥
णो॰ आगमद्रव्य शास्त्र वागिसिदन्क । ई आगम द्रव्य व र॰ द ॥ ॐ आगमद दिव्याभार हरवरवोळु गणे आगमद भूवलय ॥१२५॥
ता आगतव सिद्धान्त ॥१२६॥ को आगमनेननेके ॥१२७॥ णो आगम भाव कान ॥१२८॥ णो आगमव (अनन्त) अन्नरवु ॥१२९॥
णो आगमतद्व्यतिरिक्त ॥१३०॥ श्री आगमक्षेत्र स्पर्श ॥१३१॥ णोआगमालि बहुतर ॥१३२॥ श्रीआगतव सिद्धांत ॥१३३॥
गो आगम वध द्रव्य ॥१३४॥ आ आगमद बन्ध ॥१३५॥ णरो आगम मन्वन्तक ॥१३६॥ श्री आगतवि वन्दिगव ॥१३७॥
ई आगमव भूवलय ॥१३८॥
अ॰ ष्टमहाप्रातिहार्य वय्भववे । अष्टमहा पाडिहेरा ॥ उस हु॰ जिनेन्द्रादिगळिगे केवलज्ञान । वेमेद अशोकवृक्षगळ ॥१३९॥
व॰ रद नामगळोळु न्यग्रोधवु श्रीमुद्दु । वर सप्तपर्णक ग॰ ळु ॥ पुन्डागेसालसरलप्रियन्गु प्रियन्गुम । वरलु मूर्नाळ्कल्वाक ॥१४०॥
ल॰ क्षणवा शिरीषवु एळु श्रीनाग । वृक्ष अक्षवु धूलियव ए॰ ॥ वृक्ष पलाश एन्टोम्बत्तु हत्तअंक । लक्षिमे हन्नोन्दरम्क ॥१४१॥
म॰ रळि पाटलवु नेरिल दधिपर्णवु । वर नन्दिहत्तएरडुम घ॰ र ॥ मरणि हदिमूरुहदिनाल्कुहदिनय्दु । वरलु तिलक हदिनाक ॥१४२॥
वि॰ ळिमावु कनकेलि सम्पगे बकुल । बळिहत्तएल्हदिनेन्दु ॥ मळ र॰ न विहत्तोम्बत्तइप्पत्तु मेषशृन्ग । आळिमलेयोळगु इप्पत्तोम्दु ॥१४३॥
य॰ श धूलियुधव शालविन्तिवुगळ । वशइप्पत् एरडु वर दे॰ रसव् इप्पत्मूरिप्पत्नाल्कु एनुवन्क । रस सिद्धिगादि अशोक ॥१४४॥

यशद मालेगळ तोरणदि ॥१४५॥ असमान घटेय सरविम् ॥१४६॥ यश मन मोहक वेनिप ॥१४७॥
असमान रमणीयवेनिसि ॥१४८॥ यशदना राग पल्लवदि ॥१४९॥ यशवे पुष्प सम्कुलदि ॥१५०॥
वशवप्प रससिद्ध हूवु ॥१५१॥ रसमणि गादिय हूवु ॥१५२॥ यशस्वति देविय मुडिपु ॥१५३॥
कुसुम कोदन्डनमुवेच्चु ॥१५४॥ असदृश कामित फलद ॥१५५॥ यशद् वळ्ळिगळ हुदुगं ॥१५६॥
विषहरवाद अमृतवु ॥१५७॥ कुसुमाजि मुडिदलन्कार॥१५८॥ रस घट्टिगादिय भनुग ॥१५९॥
यशद कोम्बेगळ भूवलय ॥१६०॥

स॰ वणत्वसिद्धिय शोकवादिय दिव्य । नववृक्ष जातीयव् वा॰ द ॥ अवुगळु तमगिन्त हन्नएरडष्टुद्द । नव रत्न वर्णशोभेगळ् ॥१६१॥
व॰ र्णनवेके देवेन्द्ररनुदयानदि । निर्वाहवागद् अगिडदे ॥ ह॰ रूपवनीवुदेन्देनलेके साकदु । निर्मल तीर्थमनगलव ॥१६२॥
व॰ रद हस्तद तेरनाद छत्र त्रय । अरहंत शिरदलिर् प॰ आग॥ हरुपदचन्द्रमण्डल मुक्ताफलज्योति। वेरसि निंदिहुदु शोभेयलि॥१६३

ज॰ यद सिम्हासन नालमोर्गादिविह । नयद निर्मलमार्गदि र॰ विम्। जयरत्न स्फटिकगळ् केत्तिरुवंकदे । नयप्रमाणगळु ओम्द् आगे।।१६४
गो॰ पुरदा हिन्दे इरुव सिम्हासन । रूपळिदिह ई गणित ।। श्रीप ति॰ यडियु सोन्किद दिव्य मंगल । श्री पाहुडद शोभेयलि ।।१६५।।

कोपवळिद सिम्ह मुखगळ् ।।१६६।।	तापप्रतापद् अहिम्से ।।१६७।।	रूपदोळ् शौर्य प्रसिद्धि ।।१६८।।
व्यापित भव्याम्जहृदय ।।१६९।।	भूपरनेरगिप शक्ति ।।१७०।।	श्री पद्धतिय पाहुडवु ।।१७१।।
आ पाहुडवे प्राभृतवु ।।१७२।।	रूपस्थ वीररासनवु ।।१७३।।	दीपद ज्योतियादि भंग ।।१७४।।
रूपनेल्लरिगे तोरुवुदु ।।१७५।।	श्री पददंग तोरुवुद ।।१७६।।	श्री पद्धतियाद्यंक ।।१७७।।
यापनीयर दिव्य योग ।।१७८।।	कापाडुवुदु शान्तियनु ।।१७९।।	रूपागिबहुदु भारतिगे ।।१८०।।
श्री पदवलय भूवलय ।।१८१।।	रूप्य के बहुदु भारतदि ।।१८२।।	

ह॰ रुषद स्फटिक सिम्हासन प्रतिहार्य । सरि मुन्दे देवर ग॰ णवु।। निरुतवु कयमुगिदिहप्रपुल्लितमुख । सरसिजदिन्द सुत्तिहरु ।।१८३।।
ओ॰ डुत बन्निारि दर्शनक् एन्नुवअ । हाडो इदेम्ब दुन्दुभि ण॰ ।। पाडिन गम्भीर नादविहुदु मुन्दे । नाडिन हूगळ मळेयु ।।१८४।।
दि॰ वदिन्द बीळ्वुदु वर सूर्य शोभेय । सविय भामण्डल बन् ध॰ नव पूर्णचन्दर अथवा शन्खदन्तिह । सविय् अरवत्नाल् चामरवु।।१८५।।

नवस्वर ह्रस्व दीर्घ प्लुत ।।१८६।।	अवर वर्णगळ् इप्पत् ऐदु ।।१८७।।	सवियह वेन्दु व्यन्जनवु ।।१८८।।
सव्अम् अहक्ह यह योगवाह ।।१८९।।	विवरवदेन्तेम्ब शन्के ।।१९०।।	अवतार दुत्तर विन्दु ।।१९१।।
नव स्वरवर्णव्यन्जनद ।।१९२।।	विवरद् योगवाहगळिम् ।।१९३।।	सविय्ओम्दु अक्षचामरवुम् ।।१९४।।
अवुगळु अरवत्त नाल्कु ।।१९५।।	अवनेल्ल कूडलु ओम्दु ।।१९६।।	इवु अष्ट महाप्रातिहार्य ।।१९७।।
नवम बन्धद मंगलद ।।१९८।।	विवर मंगलद प्राभृतवु ।।१९९।।	कविगे मंगलद् आदि वस्तु ।।२००।।
शिव चन्द्रप्रभ जिनरन्क ।।२०१।।	नवमांक सिद्ध सिद्धाक ।।२०२।।	अवतार कामद वहुदु ।।२०३।।
शिव सव्ख्य रससिद्ध काव्य।।२०४।।	सवणगें अरवत्तनाल्कु ।।२०५।।	नवकार मगल ग्रन्थ ।।२०६।।
भवहर सिद्ध भूवलय ।।२०७।।	नव मन्मथरादियन्क ।।२०८।।	नवब्राम्हिलिपिय भूवलय ।।२०९।।

त॰ स लोकनालियोळडगिह भव्यर । वशगोन्ड सम्यक्तवद र॰ स ।। यशकाय कल्पद रससिद्धि हूगळो । कुसुम मगलद पर्याय ।।२१०।।
स॰ मतेयोळक्षरदंकव तोरुव । गमकद शुभ भद्रअ वर दे॰ क्रमव सक्रमगेय्द चन्द्रप्रभ जिन । नमिसुव भवतर पोरेयो ।।२११।।
ण॰ शवागदलिह अक्षरांक ननित्तु । आ सिद्ध पदविगेरिसु वा॰ ।। राशियन्कवदनु भाषामृवत्तरोळ् कट्टि । दाशेय पाहुड ग्रन्थ ।।२१२।।
ली॰ लांक ओम्बत्उ ओम्दु सोन्ने एन्टागे । मालेयल् अन्तर ह॰ रुष।। दोलेयोळओम्दुसून्रोम्दुसून्रोम्दुम्। वाळु'उ'काव्य भू(मिरय)वलय२१३

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११६०=९, अथवा अ–उ १०,५५,८८+२११५०=१,२६,७३८ ।

पहले श्लोक की श्रेणी से नीचे तक पढते जाय तो प्राकृत निकलती है ।

❖ उववाद मारणतिय परिणवयसलोय पूरणोणगदो ।
केवलिणो अबलविय सव्वजगो होवित्तसणाली ।।

❖ बीच मे से पढने से संस्कृत भाषा निकलती है—
कर्तारह् श्री सर्वज्ञदेव स्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारह् गणधर देवहः ।
प्रति गणधर देवाह्. .. ..।

सातवा अध्याय

सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जीव स्वर्ग मे उपपाद शय्या पर जन्म लेने से पहले मारणांतिक रूप मे त्रस नाली मे गमन करते हैं। केवली भगवान के लोकपूरण समुद्घात का अवलम्बन करके इस त्रसनाली को नाप सकते हैं ॥१॥

जिस समय केवली भगवान समुद्घात मे स्थित होते हैं तब एक जीव के परमोत्कृष्ट विस्तृत प्रदेशो में आत्मरूप दिखाई देता है। एक जीव की अपेक्षा इससे अधिक विस्तृत जीव प्रदेश नही होते इसी को विराट् रूप पुकारते हैं। "अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ" इन स्वरो के उच्चारण समय में सम्पूर्ण भूवलय का ज्ञान हो जाता है। इस बात का "उ" अध्याय मे उल्लेख न आने पर भी यहा लिखा है ॥२॥

अभी तक आत्मा सिद्ध करने के लिए वाक् चातुर्य का प्रयोग करना पडता था, पर अब वह वाक् चातुर्य बन्द हो गया है। अब स्याद्वाद सेआत्मा को सिद्ध किया जाता है। यह आत्मा आदि भी है और अनादि भी है ॥३॥

दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनो की सम्मिलित शक्ति को रत्नत्रय शक्ति या आत्म-शक्ति कहते हैं। इन तीनो से उत्पन्न हुए शब्द को लोकपूर्ण समुद्घात के समय में नही लिखा जाता । कदाचित् लिखा भी जाय तो पढ नही सकते। ऐसे सम्पत्ति शाली सिद्धत्व की प्रथम सिद्धि यह भूवलय है ॥४॥

ऐसे परिशुद्ध आत्मा के लिए यह भूवलय ग्रन्थ है ॥५॥

अब तक सिद्ध होने से पहले तीर्थंकर अवस्था थी अब वह नष्ट हो गई ॥६॥

अरहन्त थे तब तक सबके गुरु थे अब सद्गुरु बन गये ॥७॥

हरि और विरंचि शरीरवो के द्वारा भी आराधना करने योग्य सद्वलय हैं ॥८॥

इस तरह से निरुपमहोकर भी उपमा के योग्य है क्योकि यह त्रसनाली के भीतर है और सिद्ध परमात्मा रूप होने वाला है ॥९-१०॥

अरहन्त भगवान जिस अवस्था को प्राप्त करने के सम्मुख थे उस अवस्था रूप यह भूवलय है ॥११॥

परमामृत रूप सिद्ध भगबान का यह आदि स्थान है ॥१२॥

सबसे पहले आदिनाथ भगवान ने इस निलय को अपनाया था ॥१३॥

यह हर तथा शिव का भी मङ्गल वलय है ॥१४॥

यह चित्र लिखने में नही आ सकता फिर भी सरल है ॥१५॥

यह निलय दया धर्म का फल सिद्धि रूप है ॥१६॥

परिपूर्ण सुख को देनेवाला आदि वलय है ॥१७॥

गुरु परम्परा का आशा वलय है ॥१८॥

धरसेन गुरु का भी ज्ञान निलय है ॥१९॥

परमात्म स्वरूप का निलय है ॥२०॥

आनेवाले काल का शान्ति निलय है ॥२१॥

सम्पूर्ण वस्तुओ को देखने वाला होने से बुद्ध कहलाने योग्य है ॥२२॥

यह मरण को न प्राप्त होने वाला शुद्ध जीव है ॥२३॥

इस परमात्मा से सिद्ध किया गया हुआ यह भूवलय है ॥२४॥

विवेचन—लोक पूर्ण समुद्घात गत केवली भगवान के स्वरूप का वर्णन यहा तक हुआ। अब आगे अरहन्त भगवान से लेकर सिद्ध भगवान तक का वर्णन करेंगे ॥२४॥

क्रोध मान माया और लोभ इस तरह चार कषायें अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन रूप मे परिणत होती हैं अत कपाय के सोलह भेद हो जाते हैं। इन सबके नष्ट होजाने के बाद यह आत्मा अपने आ.म स्वरूप में लीन होकर आनन्द मय बन जाता है ॥२५॥

वह आनन्द रत्नत्रय का सम्मिलित रूप है। जोकि सर्व श्रेष्ठ, नूतनान्तरङ्ग श्री निलय रूप है। आत्मा अपने प्रयत्न पूर्वक सद्धर्म रूप साम्राज्य का आश्रय करते हुए इस रूप को प्राप्त कर पाता है। जब इस रूप को प्राप्त कर लेता है और अपने प्रदेशो के प्रसारण की पराकाष्ठा को यह आत्मा प्राप्त होता है उसी आकार में नित्य रहनेवाला यह लोक भी है ॥२६।

यह पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ लोक का जो स्वरूप है वह अरहन्त वाणी से निकले हुए नवमाक के समान परिपूर्णतावाला है। जब अरहन्त दशा मे यह परिपूर्ण अवस्था प्राप्त हो जाती है उसके अनन्तर यह आत्मा सिद्ध

बन जाती है। अरहन्त अवस्था से जो सिद्ध दशा को प्राप्त होना है उसी का नाम अवतार है। इस प्रकार से आत्मा जब सिद्धावस्था के अवतार को प्राप्त कर लेता है तो नवमाक के जो दो टुकडे हैं वे स्वय आपस में मिलकर शून्य बन गये हो तादृश हो जाता है। जिस शून्य मे सम्पूर्ण लोक समाविष्ट है।२७।

इस उपर्युक्त दशा को प्राप्त हुआ आत्मा ही हरि, हर, जिन इत्यादि सरस नामो से पुकारने योग्य बनता है क्योकि इससे वह लोक के अग्रभाग मे मुक्ति साम्राज्य को प्राप्त कर लेता हैं ॥२८॥

जब जीव ने लोक पूरण समुद्घात किया था एव लोक का सर्व स्वरूपबना था तो तेरहवे गुण स्थान में मिथ्या स्थान मे होनेवाला लब्ध्यपर्याप्त कर निगोदिया जीव जो क्षुद्रभव धारण करता है वह जीव लोक का सर्व जघन्य रूप है और लोक पूरण समुद्घात दशा उसी का अन्तिम (उत्कृष्ट) रूप है जोकि तेरहवे गुण स्थान मय है। अब तक नवपद का जघन्य रूप तीन था जोकि साधु उपाध्याय और आचार्य मय है वह नवमाक आद्य श है ॥२९॥

यह जीव सिद्धावस्था मे न तो क्षुद्र भव ग्रहणाकार रूप मे रहता है और न लोक पूरणाकार रूप मे किन्तु किञ्चिदून चरम शरीर के आकार मे रहता है वही जिन बिम्ब का रूप है और वह जहा पर जाकर विराजमान होता है वह सिद्ध स्थान ही वस्तुत जिनालय है। उसी सिद्धालय का प्रतीक यह हमारा आजकल का जिनमन्दिर है और उस मन्दिर में विराजमान जो जिन बिम्ब है वह सिद्ध स्वरूप है तथा वैसा ही वस्तुत हमारा आत्मा भी है ॥३०॥

अर्हंत सिद्ध आदि नवपद की प्राप्ति एक जिनेश्वर भगवान बिम्ब से ही होती है। अथवा समस्त सद्धर्म भी प्रसिद्ध होता है और सम्पूर्ण लोक का परिज्ञान होता है ॥३१॥

एक जिनेश्वर बिम्ब के दर्शन से सम्पूर्ण दिव्य ध्वनि का अर्थ प्राप्त होता है ॥३२॥

इस ससार में रस सिद्धि ही सम्पूर्ण सिद्ध रूप है और वही नवकार मन्त्र का अर्थ है तो भी परमार्थ दृष्टि से देखा जाय तो नवकार मन्त्र का अर्थ आत्म-सिद्धि है और वह जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन से होती है ॥३३॥ यही [illegible]

है। अर्थात् जिन बिम्ब का दर्शन करने से सब तरह का सुख होता है ॥३४॥

उपर्युक्त सिद्धाक यानी सिद्ध दशा जो है वह अनुपम है इसकी बराबरी करने वाली चीज दुनिया मे कोई नही है ॥३५॥

काम देव को भी जिसने जीत लिया है ऐसा यह अङ्क है ॥३६॥

विवेचन—अब आगे जिस-जिस नाम पर जिन बिम्ब होता है उस बात को बतलावेंगे—

यशस्वती देवी के पति और सुनन्दा देवी के पति श्री ऋषभदेव का यश गाने वाला १ अङ्क है जो ऋषभदेव महर्षि हैं जिन्होने सम्पूर्ण प्रजा को सञ्जीवित रहने का उपाय बतलाया था श्री ऋषभनाथ के बिम्ब दर्शन से अमृत यानी मोक्ष की प्राप्ति होती है।

अजित नाथ भगवान का जो दूसरा अक है वह भी असदृश्य है। सम्भव नाथ भगवान का तीसरा अक है जोकि दिव्याक है। चौथा अक अभिनन्दन का, पाचवा सुमतिनाथ का, छठा पद्म प्रभ का, सातवा सुपार्श्वनाथ का, आठवा चन्द्र प्रभ का, नववा पुष्पदन्त का, दसवा शीतलनाथ का, ग्यारहवा श्रेयासनाथ का, बारहवा वा सुपूज्य का, तेरहवा विमलनाथ का, चौदहवा अनन्त नाथ का, पद्रहवा धर्मनाथ का, सोलहवा शान्ति नाथ का, सत्रहवा कुन्थुनाथ का, अठारह वा अरनाथ का, उन्नीसवा मल्लिनाथ का, बीसवा मुनि सुव्रतका, इक्कीसवा नमिनाथ का, बाईसवा नेमिनाथ का, तेईसवा पार्श्वनाथ का और चौबीसवा अक श्री वर्द्धमान भगवान का है। ये ऋषभादि वर्द्धमानात अक हैं सो सब वर्तमान काल के अक हैं जोकि चौबीस हैं। और भी चौबीस अक इस विष हर काव्य मे आने वाले हैं ।३७ से ५५ तक ॥

अब भूतकाल के चौबीस तीर्थंकरो का नाम बतलाते समय प्रतिलोम क्रम से कहने पर चौबीसवा भगवान शान्ति हैं तेइसवा अतिक्रान्त बाइसवा श्रीभद्र इक्कीसवां श्रीशुद्धमती, बीसवा ज्ञानमति, उन्नीसवा कृष्णमति, अठारहवा यशोधर, सत्रहवा विमल वाहन, सोलहवा परमेश्वर, पन्द्रहवा उत्साह, तेरहवा शिवगण, बारहवा कुसुमाञ्जलि, ग्यारहवा सिन्धु, दसवां सन्मति, नौवा आंगर, आठवां उद्धर, सातवां अमलप्रभ, छठवां सुदत्त, पांचवा श्रीधर [illegible]

रीति से चौवीस तीर्थंकर इस भरत क्षेत्र में हुए हैं तथा होते रहेंगे। अबतक भूत तथा वर्तमान भगवानो का कथन हुआ ऐसा कहने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है। ५६-७१ तक।

अब तक मन्मथ को जीतकर अशरीरी होने वाले भूतकालीन भगवान तथा वर्तमान कालीन भगवानो का कथन हुआ। अब मन्मथ को जीतकर अशरीरी बननेवाले आगामी कालीन चौबोस तीर्थंकरो का कथन कर देने से नवमाक पूर्ण हो जाता है ।।७२।।

पहिला महापद्म, दूसरा सूरदेव, तीसरा सुपार्श्व, चौथा स्वयप्रभ, पाचवा सर्वात्मभूत, छठा देव पुत्र, सातवा उदङ्क, आठवा श्रीकद, नवमा प्रोष्ठिल, दशवा जयकीर्ति, ग्यारहवा मुनि सुव्रत, बारहवा अर, तेरहवा पुष्पदत, चौदहवा निष्कपाय, पन्द्रहवा विपुल, सोलहवा निर्मल, सतरहवा चित्रगुप्त, अठारहवा समाधिगुप्त, उन्नीसवा स्वयम्भू, वीसवा अनिवृत, इक्कीसवा विजय बाईसवा विमल, तेईसवा देवपाल, चौबोसवा अनन्त वीर्य, ये भविष्यत काल में होने वाले चौवीस तीर्थंकर हैं। ७३ से ८९ तक।

ये सब तीर्थङ्कर कुसुम बाण कामदेव का नाश करनेवाले होते हैं ।७६।

उपर्युक्त तीन काल के तीर्थंकरो को मिलाकर बहत्तर सख्या होती है जिसको कि जोडने पर (७+२=९) नव बन जाता है ।।९०।।

जिस काल में तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं उसको महापवित्र काल समझना चाहिए। उन तीर्थङ्करो का यशोगान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।

नवमाक गणित पद्धति से उपलब्ध होने के कारण इस काव्य को भी नवमाक कहते हैं।

नव का अक विपमाक है जो कि तीन को परस्पर गुणा करने पर आता है। तीन का अक भी विपमाक है जो कि तीनो कालो का द्योतक है एव विपमांक से उत्पन्न होने के कारण इस भूवलय काव्य को विपमाक काव्य भी कहते हैं ।।९१-९५।।

प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वोपार्जित कर्मो का ज्ञान कराने के लिए भूत-काल चौवीसी बतलाई गई है तथा उन कर्मो को किस उद्योग से नष्ट करना है, यह बतलाने के लिए वर्तमान तीर्थंकरो का नाम निर्देश किया गया है। और आगामी काल में समस्त कर्मों को नष्ट करके आप भी उन तीर्थंकरो के समान निरञ्जन बन जावें, इस बात को बताने के लिए भावी तीर्थंकरो का निर्देश किया हुआ है।

३×३ = ९

२४×३ = ७२

ये तीन चौवीसी के मिलकर बहत्तर तीर्थंकर हुये जो कि एक माला के मणियो के समान हैं। इनको यदि चौदह गुण स्थानो के अको से गुणा कर लिया जाय तो एक हजार आठ हो जाते हैं, यही एक हजार आठ श्री भगवान के चरणो के नीचे आने वाले कमल के दल, होते हैं। इस १००८ को भी जोड दें तो नव हो जाता है। भगवान जब विहार करते हैं और डग भरते हैं तो हरेक डग के नीचे २२५ कमल होते हैं उन दो सौ पच्चीस कमलो के पत्तो को मिलाकर कुल २२५×१००८=२२६८०० पत्ते हो जाते हैं। ९६ से १०० तक।

उपर्युक्त दो लाख छब्बीस हजार आठ सौ दल भगवान के प्रत्येक ही चरण के नीचे होते हैं जो कि दूसरा चरण रखने के क्षण तक सब घूम जाते हैं। जब भगवान दूसरा रखते हैं उसके नीचे भी इतने ही कमल और इतने पत्ते होते हैं अत उन दोनो को परस्पर गुणा करने पर लब्धाक '५१४३८२४०००' आये इन सब को परस्पर जोड देने पर भी नव ही आता है। इस प्रकार गुणा-कार करते चले जावें उतना ही अतिशय भगवान का उत्तरोत्तर बढता चला जाता है तथा उनके भक्त भव्य पुरुषो का पुण्य भी बढता जाता है। इसलिए हे भव्य जीवो ! इस भूवलय की पद्धति के अनुसार भगवान के चरण कमलो को गुणा करते हुये तुम लोग गणित शास्त्र मे प्रवीण हो जावो।

जिस प्रकार रसमणि के सम्पर्क से हरेक चीज पवित्र बन जाती है उसी प्रकार इस गणित पद्धति का ज्ञान हो जाने से यह जीव भी परमपावन सिद्ध रूप हो जाता है ।।१०१।।

यह गणित शास्त्र जीवो की सम्पूर्ण आशाओ को पूर्ण करने वाला है ।।१०२।।

यह गणित शास्त्र दुष्ट कर्मो की महाराशि को नष्ट करने वाला है ।।१०३।।

अन्तरात्मा को परमात्मा बनाने जाने वाला है ॥१०४॥

उत्तमार्थ को साधन करने वाला है ॥१०५॥

ज्ञान की राशि को बढाने वाला है ॥१०६॥

श्री सिद्ध पद का कारण भूत है ॥१०७॥

पुण्य पुञ्ज को बटोर कर इकट्ठा करने वाला है ॥१०८॥

ईशत्व प्राप्त करा देने वाला है ॥१०९॥

ईष प्राभार नाम की आठवी भूमि जो सिद्ध शिला है वहा पर पहुचा देने वाला है। क्योकि आठवे चन्द्रप्रभ भगवान के चरण कमलो को स्मरण करके प्रारम्भ किया हुआ यह भूवलय है ॥११०॥

यह महा शास्त्र गणित की महाराशि को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम बना देने वाला है ॥१११॥

इस शास्त्र के द्वारा महाराशि को अल्पाति स्वल्प रूप मे लाने पर भी उसमें कोई वाधा नही आती ॥११२॥

यह नाश को जीतने वाला है इसलिए अविनश्वर रूप है ॥११३॥

यही औषध रूप में परिणमन करने वाला है ॥११४॥

यह शास्त्र औषध के समान प्रारम्भ काल मे कुछ कटु प्रतीत होने पर भी अन्त में अमृतमय है ॥११५॥

सिद्ध की आत्मा में जिस प्रकार अवगाहन शक्ति है जिस से कि एक सिद्धात्मा में अनन्त सिद्धात्माये विराजमान हो रहती हैं उसी प्रकार इस भूवलय शास्त्र में भो अनेक भापाओ मे होकर आने वाले अनेक विषयो को समाविष्ट करने की अवगाहन शक्ति है ॥११६॥

सिद्ध भगवान के समान यह शास्त्र भी अगुरुलघु गुण वाला है ॥११७॥

अंत यह शास्त्र सर्व जीवों को अच्छी से अच्छी दशा पर पहुँचा वेने वाला है ॥११८॥

उस महान् अपूर्व शक्ति का अनुभव करा देने वाला यह काव्य है ॥११९॥

यह श्री शक्ति को बढाने वाला है अर्थात् अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी को प्राप्त करा देने वाला यह आद्याकत्तलय है ॥१२०॥

इत्यादि विशेषण वाक्यो से विभूषित यह महा काव्य है ॥१२१॥

भगवान की वाणी को सुनने वाले भव्य जीवो ने तात्कालिक परिस्थिति को लेकर जो साठ हजार प्रश्न किये थे। जिनमे कि प्राय सभी विषयो की बात थी, उन प्रश्नो का उत्तर जो अत्यन्त मृदुल और मधुर भाषा मे श्री गौतम गणधर ने दिया था। वह चौंसठ अकाक्षरो के बानवे वर्ग स्थानान्तर्गत जिन वाणी मे था। उसी को श्री गौतम गणधर के बाद में कुमुदेन्दु आचार्य तक होने वाले प्रत्येक बुद्ध महर्षियो ने छ हजार सूत्रो मे उपसहृत करके रखा था जोकि गहन था उसी विषय को सरल करते हुये श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने कन्नड भाषात्मक छह लाख सांगत्य छन्दो मे वर्णित किया है। जो कि मृदुता ललयात्मक होने से श्रोताओ के लिये हृदयग्राही बन गया है, वही भूवलय है। जो पूर्व महर्षियो के द्वारा छ हसूत्रो मे वद्ध हुआ था वह नौ आगम-द्रव्य शास्त्र था। उसका अध्ययन करते हुए तत्पर्याय रूप से परिणत होकर-कुमुदेन्दु आचार्य ने उसी के भाव छ लाख सागत्य छन्दो मे वद्ध किया। इसलिए इस भूवलय ग्रन्थ का नाम श्री आगम है जिसका कि यह सातवा "उ" नाम का अध्याय है ॥१२५॥

आगामी काल में यह भूवलय ग्रन्थ सदा बना रहेगा ॥१२६॥

इस भूवलय की रीति से बाहर का बना हुआ जो शास्त्र है वह आगम नही होगा ॥१२७॥

यह द्रव्यागम शास्त्र भाव, काल, अन्तर (अनन्त), तद्व्यतिरिक्त, क्षेत्र स्पर्शन, और अल्पबहुत्व इन अनुयोग द्वारा मे बटा हुआ है। १२७-१३४ तक।

बन्द पाहुड के आगम अवन्ध पाहुड का विषय लिखा हुआ है ॥१३५॥

अवन्ध पाहुड को श्री आगम सख्याङ्क कहते हैं ॥१३६॥

भगवान के श्री मुख से निष्पन्न हुआ यह भूवलय नामक श्री आगम है ॥१३७॥

इसीलिए इस भुवलय को आगम ग्रन्थ कहते हैं ॥१३८॥

अष्टमहाप्रातिहार्य अर्थात —

अशोकवृक्षः सरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च ।

भामंडलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणि ॥

अशोकवृक्ष देवताओ के द्वारा भगवान के ऊपर पुष्प की वर्षा होना, दिव्य

वृक्षोंके १८००० जाति के पुष्पो की वर्षा होती है और इससे सकल रोग निवारण रूप दिव्यौषधि बनती है, इससे खेचरत्व सिद्धि, जल गमन, दुर्लेहि सुवर्ण सिद्धि इत्यादि क्रियाओ को बतलाने वाले भूवलय के चतुर्खंड रूपी प्राणवाय नामक विभाग में वर्णित है। इसे पुष्पायुर्वेद भी कहते हैं ७१८ भाषात्मक दिव्यध्वनि, ६४ अक्षर रूपी चामर, एक मुख होने पर भी चतुर्मुख दीख पडने वाला सिंहासन, ज्ञानज्योति को फैलानेवाला भामडल, प्रचार करनेवाली दुन्दुभि, भगवान के ऊपर रहकर तीनो लोको के स्वामित्व को दिखाने वाला छत्रत्रय ये आठ प्रकार की भगवान की सपदायें समस्त जीवो को हित करने वाली हैं।

प्रश्न—यह कैसे ?

उत्तर—कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि प्राकृत मे अष्टमहाप्राप्ति हार्यो को पाडिहेर कहते हैं उनमे सर्व प्रथम अशोक वृक्ष प्रातिहार्य है जोकि जनता के शोक वा अपहरण करनेवाला है। उस वृक्ष का विवरण यो है —

ऋषभादि तीर्थंकरो को जिन जिन वृक्षों के मूल भाग में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ उसको अशोक वृक्ष समझना चाहिए ॥१३९॥

न्यग्रोध १, सप्तपर्ण २, शाल ३, सरल ४, प्रियङ्गु (श्वेता) ५, प्रियङ्गु (रक्त) ६। ॥१४०॥

शिरीस ७, श्रीनाग ८, अक्ष ९, धूलि १०, पलाश ११। ।१४१।

पाटल १२, जामून १३, दधिपर्ण १४, नन्दी १५, तिलक १६। ॥१४२॥

श्वेताम्र १७, कङ्केलि १८, चम्पा १९, वकुल २०, मेषश्रृग, २१ ॥१४३॥

धूलि (लाल) २२, शाल २३, धव २४, ये चौबीस क्रमश अशोक वृक्ष हैं। इन वृक्षों के फूलो कीभावना देकर अग्नि पुट करने पर पारा सिद्ध रसायन रूप मणि बन जाती है ॥१४४॥

ये सब वृक्ष रसमणि के लिए उपयोगी होने के कारण माङ्गलिक होने से इन्ही वृक्षो के पत्तो की बन्दन वार बनाई जाती है ॥१४५॥

उस वन्दन वार के बीच बीच में उस रस मणि का बना हुआ घण्टा लगा रहता है ॥१४६॥

यह वन्दनमाला देखने में अत्यन्त सुन्दर मन मोहक हुआ करती है।१४७।

इस वन्दन माला की छटा एक अनुपम रमणीय हुआ करती है जिसके प्रत्येक पक्ष मे से राग की परम्परा प्रगट होती रहती है।१४८-१४९।

यह अशोक वृक्ष अधिक मात्रा में फल और पुष्पो से व्याप्त हुआ करता है।१५०।

अगर रससिद्ध करना हो तो इन वृक्षो के क्षुद्र पुष्प न लेकर विशाल प्रफुल्लित पुष्प लेना चाहिए।१५१।

और उसी को फिर यदि रस मणि बनाना हो तो इन्ही वृक्षो के क्षुद्र (मञ्जरी रूप) फूल लेना चाहिए।१५२।

सबसे पहलान्यग्रोध नाम का अशोक वृक्ष है। उसके फूल को यश-स्वतीदेवी अपनी चोटी मे धारण करती रहती थी।१५३।

इसी प्रकार प्रथम कामदेव बाहुबलि भी कुसुमवाण प्रयोग के समय इसी फूल को काम में लेते थे।१५४।

इसीलिए सभी महात्माओ ने इस फूल को कामितफल देने वाला मानकर अपनाया है ॥१५५॥

इस फूल के उपयोग से भव्यो को जो सम्पदा प्राप्त होती है वह वृक्ष की बेल के समान उत्तरोत्तर बढती रहती है।१५६।

जिस किसी पुरुष ने विष पान किया हो तो उसकी बाधा को दूर करने के लिए इस फूल को औषधि रूप में देना।१५७।

श्री भरत चक्रवर्ती की पत्नी कुसुमाजी देवी अपने सब अलंकार इसी पुष्प द्वारा बनाती थी।१५८।

पारा को घनरूप बनाना हो तो इस पुष्प को काम में लेना।१५९।

जिस प्रकार भगवान का अशोक वृक्ष अनेक शाखा प्रति शाखाओ को लिए हुए होता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अनेक भाषा तथा उप-भाषाओ को लिए हुए है।१६०।

भगवान के जो अशोक वृक्ष बतलाये गये हैं वे सब अपने प्रत्येक भाग मे नवरङ्ग मय होते हैं जोकि नवरस के उत्पादक माने गये हुए हैं। इस प्रकार के महत्व को रखने वाला अशोक वृक्ष श्रवण सिद्धि के लिए भी परम सहायक

होता है। और अपने अपने तीर्थंकर के शरीर से बारह गुणा समुन्नत होता है।१६१।

निर्मल तीर्थं तथा मङ्गल स्वरूप रहने वाले इन अशोक वृक्षो का वर्णन करे तो कहा तक करें।

जो अशोक वृक्ष सौ धर्मेन्द्र के उद्यान मे गुप्त रूप से विद्यमान है और जो समवशरण रचना के समय मे भगवान के पीछे मे हुआ करता है उस वृक्ष की बात यहा पर नही है परन्तु भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे केवल ज्ञान पाया उसकी बात यहा पर की गई है। १६२ यहा तक अशोक वृक्ष का वर्णन समाप्त हुआ

वरदहस्त के समानभगवान अरहन्त के मस्तक पर जो छत्रत्रय होता है वह मोतियो की लूम से युक्त होता है अत ऐसा प्रतीत होता है कि मानो ताराओ से मण्डित पूर्ण चन्द्र मण्डल ही हो। १६३।

भगवान के सिंहासन प्रातिहार्य मे जो सिंह होता है वह यद्यपि एक मुख वाला होता है फिर भी चार मुख वाला दीख पडता है, क्योकि वह स्फटिकमणि निर्मित होता है। एव वह सिंहासन भगवान के नय और प्रमाणमय सन्मार्ग का प्रतीक रूप से प्रतीत होता है।

उस सिंह के ऊपर एक हजार आठ दलका कमल होता है जिसकी लाल परछाई उस स्फटिकमणिमय सिंह मे झलकती रहती है। इसीलिए दर्शको को उसके रत्नमय होने मे सन्देह नही रहता जहां पर कमल की परछाई नही रहती वहा पर सिंह सफेद रहता है।१६४।

बारह सभाके बहिर्भाग की ओर जो प्राकार है उसमें जो गोपुर द्वार होते हैं वहा से लेकर सिंहासन प्रातिहार्य तक एक रेखा कल्पित करके उस रेखा को अर्द्धच्छेद शलाका रूप से उतनी वार काटना जितने कि इस मङ्गल प्राभृत में अकाक्षर हैं। मङ्गल प्राभृत मे २०७३६०० इतने अक्षर हैं।१६५।

यद्यपि सिंह का मुख देखने में क्रूर भयावना हुआ करता है किन्तु भगवान के आसन रूप जो सिंह होता है वह लोगो को भय उत्पन्न नही करता प्रत्युत शौर्यप्रदर्शित करता है हिंसा को रोककर वल पूर्वक अहिंसा को अस्पष्ट करने वाला होता है। मनुष्य लोग जब क्रूरता धारण कर लेते हैं तथा समवशरण मे आते हैं तो उस सिंह का दर्शन करते ही उनका हृदय रूपी कमल प्रफुल्लित हो उठता है। और अपनी शक्ति की प्रवलता पर गर्व रखने वाले राजा महाराजा लोग जब इस सिंह के दर्शन करते हैं तो सरल होकर नतमस्तक ही रहते हैं।१६६ से १७० तक।

उपर्युक्त सिंह शरीर की शौर्यवृत्ति के धारक तथा अहिंसादि महाव्रतो के अक्षुण्णपालक श्री दिगम्बर जैन परमर्षि लोग ही इस मङ्गल प्राभृत की नवमाक पद्धति को पूरी तौर से जान सकते हैं। प्राभृत का ही प्राकृत भाषा में पाहुड हो जाता है। दिगम्बर महर्षि लोग जिस आसन से बैठकर इस मङ्गल प्राभृत को लिखते हैं या इसका उपदेश करते हैं उस आसन को ही वीरासन समझना चाहिए। इसी वीरासन का दूसरा नाम श्री पद्धति है। इस आसन के द्वारा ही मङ्गल प्राभृत की झाकी होती है। तथा यह आसन ही भगवान के रूप को स्पष्ट कर दिखलाने वाला है। इस आसन से मुनि लोग जब उपदेश करते हैं तो वह उपदेश दीपक के प्रकाश की भाति अपने आपको फैलाता है। दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में ही यापनीय सघ नाम का एक मुनि सघ था। जो द्राविड देश मे विचरण करता था उस सघ में इस वीरासन की वडी महिमा थी। उन लोगो की मान्यता थी कि इस वीरासन से अशान्ति मिटकर शान्ति होती है। तथा यह आसन भारत वर्ष की कीर्ति को वढाने वाला है। यह भूवलय ग्रन्थ भी श्री पद अर्थात् भगवान के चरण कमल की गणित पद्धति से बना हुआ है। जिस गणित पद्धति को जान लेने पर श्वेत लोह से चान्दी वनाने की विधि भी भारतियो को प्राप्त हो जाती है।१७१ से १८२ तक।

भगवान के दिव्य स्फटिक मय सिंहासन से कुछ दूरी पर हाथ जोडे हुए प्रफुल्लित मुख होकर वलयाकार रूप से देव लोग खडे रहते हैं जोकि गम्भीर दुन्दुभिनाद करते रहते हैं सो सव आम जनता को मानो ऐसा कहते हैं कि दौडकर आओ भगवान के दर्शन करो। भगवान के पीछे मे जो अशोक वृक्ष होता है उसके फूलो की वरसा होती रहती है एक वार मे अठारह हजार फूल वरसते हैं एव वार-वार वरसते रहते हैं। भगवान के परमौदारिक शरीर में से जो कुण्डलाकार दिव्य अखण्ड ज्योति निकलती रहती है उसको भामण्डल कहते हैं। उसके आगे करोड़ों सूर्यों की ज्योति भी मात खा जाती है। अत उस

भामण्डल को भानुमण्डल भी कहा जा सकता है। इस भामण्डल का तेज सूर्य के तेज के समान आँखो को अखरने वाला न होकर चन्द्रमा की ज्योति के समान प्रसन्नता देनेवाला होता है। उपर्युक्त अशोक वृक्ष के फूलो की जो वृष्टि होती है वह इस भामण्डल के दिव्य तेज में होकर आती है। अतएव दर्शको को ऐसा प्रतीत होता है मानो ये फूल देवलोक से ही वरस रहे हो। भगवान के दोनो वगलो मे चमर ढुरते रहते हैं जोकि दोनों वगलो को मिला कर चौंसठ होते हैं और पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति वाले या शख के समान धवल कान्ति वाले होते हैं। भगवान के चमर भी चौंसठ होते हैं तो अक्षरो का रङ्ग भी श्वेत ❖ माना हुआ है। अक्षर चौंसठ इस प्रकार हैं कि अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ ये नौ स्वर हैं। जो कि ह्रस्व दीर्घ और प्लुत के भेद से सत्ताईस हो जाते हैं। कवर्गादि पाच के पच्चीस अक्षर हैं य र ल व श ष स ह ये आठ हैं (अं अ क ⌒ प ⌒ ०, ००, ००० प ००००) ये चार योग वाह अक्षर हैं १८६ से १८६ तक।

इन चौसठ अक्षरो का लिपि रूप कैसा है? यह प्रश्न हुआ ।१६०।

इसका उत्तर ऊपर पहले आ चुका है ।१६१।

अ कार से लेकर योग वार पर्यन्त चौंसठ अक्षरो का एक अक्षर (समूह) वन गया वही चामर का रूप है। इस प्रकार आठ प्रातिहार्यो का वर्णन हुआ। यह सब नवमाक वन्धन से वद्ध हुआ मङ्गल वस्तु रूप है। जिसका कि यहाँ वर्णन है इसलिए इस भूवलय के पहले विभाग का नाम मङ्गल प्राभृत है। मङ्गल काव्य वनाने के लिए कवि लोगो को यहा सब प्रकार की सामग्री प्राप्त हो जायेगीं। १६२ से २०० तक।

शिव पद को प्राप्त किये हुये श्रीचन्द्र प्रभ जिन भगवान का यह अङ्क है ।२०१।

नवमाक से सिद्ध किया हुआ यह सिद्धाक है ।२०२।

यह सिद्ध परमेष्ठी का अङ्ग होने से इच्छित वस्तु को देने वाला है ।२०३।

इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से गणित पद्धति के द्वारा गुणाकार करने से रस सिद्धि होकर सासारिक तृप्ति तथा आत्म योग प्राप्त होकर पारलौकिक सुख सिद्धि प्राप्त होती है ।२०४।

जैनियो के लिए तो भगवान का चौंसठ चामरो का दर्शन होने के साथ-साथ ही चौंसठ अक्षरो का ज्ञान हो जाता है।

विशेष विवेचन—

आचाराङ्गादि द्वादश अङ्ग और उत्पादादि चौदह पूर्व तथा धर सेनाचार्य तक कम होते हुए आया हुआ कर्म प्रकृति प्राभृत शास्त्र एव गुणधरादि द्वारा वनाया हुआ कषाय पाहुड आदि महा ग्रन्थ, कुन्दकुन्दु के द्वारा वनाये हुए समय सारादि चौरासी पाहुड ग्रन्थ और तत्वार्थ सूत्रादि सभी शास्त्रो का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना एक असम्भव-सी वात है परन्तु कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि चौंसठ अक्षरो को जानकर उनके असयोगी द्विसयोगी इत्यादि चतुष्टि सयोगी पर्यन्त करले तो परिपूर्ण द्वादशाँग वाणी को जानकर सहज मे हो सकता है जिसमें कि समस्त विश्वभर के शास्त्र समाविष्ट हो रहे हैं। तथा ससार में अनेक भाषायें प्रचलित हैं उनकी लिपिया भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं एक भाषा के जानकार को दूसरी भाषा तथा उसकी लिपि का वोध भी नही होता है परन्तु इस भूवलय की पद्धति के अनुसार अङ्क लिपि से लिखने पर हर भाषा के जानकार के लिए वह एक ही लेख पर्याप्त हो जाता है भिन्न-भिन्न लिखने की जरूरत नही पडती। मतलब यह है कि दुनिया भर में जितनी पाठशालायें हैं उनमें यदि भूवलय की अङ्क लिपि पढाना शुरू कर दी जावे तो

❖ १ प्रसिद्ध कर्णाटक भापा के व्याकरण के आदि रचियता श्री नागवर्म दिगम्बर जैनाचार्य ने अपने छन्दोऽम्वुधि नामक ग्रन्थ मे ऐसा लिखा हैं कि जव मानव को वोलने की इच्छा होती है तो नाभि मण्डल पर से शव उत्पन्न होकर प्राण वायु के सयोग से तुरई की आवाज के समान प्रवाह रूप होकर निकलता है उमका वर्ण श्वेत होता है। देखो— अनुकूल पवन निम् जीवनिष्टरिम् कहते पागिन ओल नाभि पोगेदु पट्टु गु शब्द अदखण्ण श्वेत।

फिर उनको भिन्न-भिन्न लिपियां पढने की कोई आवश्यकता नही रह जाती ।२०५।

यह भूवलय ग्रन्थ नवकार मन्त्र रूप मङ्गल पर्याय से बनाया हुआ है ।२०६।

इस भूवलय के अध्ययन करने से ससार का नाश होकर सिद्धता प्राप्त हो जाती है ।२०७।

इस भूवलय ग्रन्थ के जो अक हैं वे सब नवमन्मथ यानी आदि कामदेव श्री बाहुबली स्वामी के द्वारा प्रकट किये हुए हैं ।२०८।

तथा उन्हीं अङ्काक्षरो को भरत चक्रवर्ती ने सर्व प्रथम लिपि रूप मे अवतरित किया था वह लिपि ब्राह्मी लिपि थी, जोकि कर्माण्टक भाषा रूप थी ।२०९।

वृद्ध से नौजवान बनने रूप काया कल्प करने वाली महौषधि उपर्युक्त चौवीस तीर्थंकरो के दीक्षा कल्याणक के वृक्षो के रस से बनती है (जिसकी विधि भूवलय के चौथे खण्ड प्राणावाय पूर्व मे बतलाई गई है) परन्तु इस त्रसनाली में होने वाले समस्त ससारी भव्य जीवो का काया कल्प करने वाला एक सम्यक्त्व रूप महौषधि रस है। मङ्गल पर्याय रूप से उस सम्यक्त्व रूप महौषधि रस को प्रदान करने वाला यह भूवलय ग्रन्थ हैं ।२१०।

श्रीचन्द्रप्रभ भगवान ने समाक तथा विषमाक को एक कर दिखलाने कतिथा अङ्क और अक्षर को भी एक कर दिखलाने की पद्धति बतलाई जोकि पद्धति विश्वभरके लिए शुभ श्रेष्ठ और वरप्रद है तथा सर्व कलामय है ऐसा परमोत्तम उपदेश करनेवाले उन चन्द्रप्रभ भगवान को नमस्कार करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि हे भगवान हम सबकी आप रक्षा करें ।२११।

अब कुमुदेन्दु आचार्य उसी चन्द्रप्रभ भगवान की ही जयध्वनि रूप इस भूवलय श्रुतज्ञान को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि जिन वाणी माता हमें नाश न होने वाले अक्षराक को दिया जिसको कि साधन स्वरूप लकर हम यह सिद्ध प्राप्त कर सकेंगे। सिद्धावस्था में जिस प्रकार अनन्त गुण एक साथ रहते हैं उसी प्रकार तुम्हारी कृपा से बने हुए इस भूवलय ग्रन्थ मे भी नवमाक पद्धति के द्वारा तीन काल और तीन लोक के समस्त विषय समाविष्ट हैं इसीलिए यह पाहुड ग्रन्थ है ।२१२।

इस अध्याय मे श्रेणि बद्ध काव्य में ८०१९ आठ हजार उन्नीस अक्षराक हैं। अब इसी माला के अन्तर काव्य के पत्रो मे १३१३१ तेरह हजार एक सौ इकतीस अक्षर हैं। इन सब अक्षरो से निर्मित किया हुआ यह भूवलय काव्य चिरस्थायी हो ।२१३।

उ ८०१९+अन्तर १३१३१=२११५०=९

अथवा

अ—उ १०, ५५, ८८+२११५०=१,२६,७३८

इस अध्याय के प्रथम श्लोक के आद्यक्षर से प्रारम्भ करके क्रमश. ऊपर से नीचे तक पढते आवें तो जो प्राकृत श्लोक निकलता है उसका अर्थ कहते हैं—(उपपाद मारणान्तिक इत्यादि)।

उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात मे परिणित त्रस तथा लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली का आश्रय करके सारा लोक ही त्रसनाली है। विशेपार्थ-विवश्रित भव के प्रथम समय में होनेवाली पर्याय की प्राप्ति को उपपाद कहते हैं। वर्तमान पर्याय सम्बन्धी आयु के अन्तर्मुहूर्त मे जीव के प्रदेशो के आगामी पर्याय के उत्पत्ति स्थान तक फैल जाने को मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं। (ति० द्वि० अ ८) इसी अध्याय के श्लोको के अट्ठाईसवें अक्षर को क्रमश ऊपर से नीचे तक लेकर लिखे तो इसी ग्रन्थ के अध्याय के अन्त तक आकर जो सस्कृत गद्य अधूरा रह गया था वहा से चालू होता है सो—'ग्रन्थ—कर्ता श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थ कर्तारह गणधर देवाह प्रति गणधर देवाह,' अर्थात् इस भूवलय नाम के ग्रन्थ के सर्व प्रथम मूल भूत कर्ता श्री सर्वज्ञ भगवान हैं उसके बाद मे इसको गणधर देव गौतमादि ने फिर उनको शिष्य प्रति गणधरो ने प्राप्त किया था।

इति सप्तमो 'उ' नामक अध्याय समाप्त हुआ।

आठवां अध्याय

ऊ* नविल्लदे सिद्धवाद सिम्हासन । तानदु जिननेरिर्दागल् । ते* नम वेस्बाग मूरने प्रतिहार्य । दानम्म बळकेयन्कगळम् ॥१॥
ण* वबु अष्टम सप्त षष्टम पन्चम । दवनु चतुर्थं श्रये षा* म् ॥ सवण द्वितीयवु एकांक शून्यद । नवकार सिम्हासनद ॥२॥
प* द सिद्धियागलु वरुवष्टु शन्केगे । श्रोदगे उत्तर काव्य स* गळलि ॥ मुदवीव श्रोमदने शन्केय पेळुव । पद पूर्वपक्ष सिद्धांत ॥३॥
मा* टद सिम्हासन शब्द श्रोमद् श्ररोळ् । कूटद सिम्ह श्रासवम् व* कूटव बिद्श्राग श्रोमदने सिम्हद । कूट सिद्धान्तद शन्के ॥४॥
ण* रु बेंच्चुव जीव सहितद सिम्हवो । गुरु वर्धमान वाहन च* श्रा ॥ मरद सिम्हवो जीव रहितद सिम्हवो । श्ररहंत नेरिद सिम्ह ॥५॥
म* नुजरेरुव सिम्हासनदि बन्दिह सिम्ह । घन जाति सिम्हवो ना* ना॥ वनदोळु चलिप सिम्हवो श्रल्लवो एम्बा घनशन्केयागे भूवलय ॥६॥

मुनिगळ शन्के गुत्तरवु ॥७॥ तनगे बन्द श्रारु शन्केगळ ॥८॥ घनवादुत्तर सिद्धाविन्तु ॥९॥ तनि शन्केगे जीव रहित ॥१०॥
एनुव शब्ददे काण्ब दृष्टि ॥११॥ घन प्रातिहार्य मूरन्क ॥१२॥ घन सिम्हवदु शुद्ध स्फटिक ॥१३॥ मणियिन्द रचितवागिहुदु ॥१४॥
चिनुमयनेरिद सिम्ह ॥१५॥ कोनेय कर्माटक सिम्ह ॥१६॥ जिन मुनियन्ते सुशात ॥१७॥ घन मुनिगळ शूर वृत्ति ॥१८॥
श्रनुभवदाटद सिम्ह ॥१९॥ कोनेय भवान्तर सिम्ह ॥२०॥ घनद पुराकृत सिम्ह ॥२१॥ जिन वर्धमानरु सिम्ह ॥२२॥
घनद सिम्हासन वलय ॥२३॥

द* वनिय निज सिम्ह नाल्मोगवागिह । नव सिम्हमुख उवदव नु* श्रवभरिसलु श्रादिनाथ जिनेन्द्रर । नव दोहदष्टिह श्रळते ॥२४॥
नृ* व पादपद्मद केळगिह सिम्हद । विविधदुत्सेधवदनुम् सा* श्रवरवरेने श्रादिनाथरिग् एनूरु । नवधनुवष्टिह श्रळत ॥२५॥
ड्* णडणरेन्नुव जयघंटे नादद । घन शब्ददनुभववस र* जिननन्ग श्रजितनाना रिगेनाल्करे नूरु । एनुव धनुविनष्टु सिम्ह ॥२६॥
श्रा* दश्रामेले शम्भवरिगे नाल्वऊरु । मोदद श्रभिनन्दनर ॥ श्राद मा* टदसिम्ह मूरुनूर य्वत्तु । नाव सुमुतिगे मूनूरु ॥२७॥

ऐदने जिनग्इन्नूररेयु ॥२८॥ मोद सुपार्श्व इन्नूर ॥२९॥ मोददेन्टके न्रय्वत्श्रम् ॥३०॥ श्राद श्रोम्बत्त के नूरु ॥३१॥
मोव शीतलर्गे तोम्बत्तु ॥३२॥ श्रादि श्रनन्त ऐवत्तु ॥३३॥ श्रीद हन्एरडे इप्पत्तु ॥३४॥ मोद विमल श्ररवत्तु ॥३५॥
श्रादि श्रनन्त ऐवत्तु ॥३६॥ श्रादि धर्मवुनलवत् ऐदु ॥३७॥ श्री दिव्य शाति नलवत्तु ॥३८॥ श्राद कुन्थुवु मूवत्ऐदु ॥३९॥
श्रादाग श्ररवु मूवत्तु ॥४०॥ श्रीद मल्लियु इप्पत्ऐदु ॥४१॥ श्रादि इप्पत्तु इप्श्रत्तु ॥४२॥ मोदद नमि हदिनैवु ॥४३॥
श्रादि नेमिय श्रंक हत्तु ॥४४॥ श्रीघव पार्श्वव श्रोन्बत्तु ॥४५॥ श्राद्यन्त वीराक एळु ॥४६॥ श्रादि इप्पत्एरळ् धनुष ॥४७॥
नेद श्रंक इगळेल्ल इनितु ॥४८॥ मोददन्तिमंगळु मोळवु ॥४९॥ साधित सिम्ह भूवलय ॥५०॥

को* ष्टक बन्धाकदोळु कूडिदक्षर । दाशमिक क्रम गणित ॥ सा* ष्टम निर्मल स्फटिकद बण्णद । भीष्टद सिम्ह वर्णगळ ॥५१॥
डि* गदश्र गणितदे तेंगेयालादी एन्दु । भगवन्त पुष्पदन्ता द* य ॥ सोगसिन कुन्दपुष्पद बण्ण एरडके । मिगिलाद सिम्हशरीर ॥५२॥
ति* रेयेल्लि हरितवर्णपार्श्वव सुपार्श्वव । हरवर्ण नील य* सुव्रत । बरुवुदिदे नेमि पद्मप्रभ मत्तु । वरवासु पूज्यगें केम्पु ॥५३॥
य* शवेन्दु सिम्ह बण्ण बिळिदु हळदि । वशनीलकेसपु इन्त् श्रा* गे । ऋषि हदिनारर सिम्हगळ् चिन्नद । रसद स्फटिकद वर्णगळु ॥५४॥
म* हवीर देवन सिम्हासन चिन्न । महद्श्रादि वृषभ जिनम् चा* ॥ मिह सिम्हवदनोडे चिन्नद नाडाद । इहके नन्दियु लोक पूज्य ॥५५॥

महदादि गान्गेय पूज्य ॥५६॥ महावीर नन्दपुदकुलवु ॥५७॥ महति महावीर नन्दि ॥५८॥ इहलोकदादिय गिरिय ॥५९॥
सुहुमांक गणितदबेट्ट ॥६०॥ महसीदु महाव्रत भरत ॥६१॥ वहिसिदणुव्रत नन्दि ॥६२॥ सहनेय गुरुगळ बेट्ट ॥६३॥
सहचर मूरारु सूरु ॥६४॥ महनीय गुरुगण भरत ॥६५॥ महिय गन्गरसरगणित ॥६६॥ गहन विद्ययेगळाळ गिरियु॥६७॥
गहगहिसुव नगु भरित ॥६८॥ अहमीन्द्र स्वर्गवी भरत ॥६९॥ इह कल्पवृक्षद भरत ॥७०॥ महिय कल्वप्पु कोवळला ॥७१॥
महवीर तलेकाच गंग ॥७२॥ महदादि शिवभद्र भरत ॥७३॥ महिमेय मंग भूवलय ॥७४॥

ए॥ ळु कमल मुन्देळु कमल हिन्दे । सालु मूवतएरड् अन्क ॥ पाल र॥ कूडिसल् कालूनूरु । श्री लालित्यद कवल ॥७५॥
क्॥ रुणेय्अ धवलवर्णद्अ पादगळिह । परमात्म पादद्व य॥ दे ॥ सिरविहनालककवेरसिसिम्हद मुख । भरतखंडद शुभ चिन्हे ७६
क॥ विदिह मृगपक्षि मानव वर्गव । अवधरिसुत शान्तद श्॥ री॥ अवतारवो इदु वीरश्री एन्देम्ब। सुविवेकि भरत चक्रांक।॥७७॥
वी॥ र जिनेन्दरन वाहनवी सिम्ह । मूरने पडिहारवदु ॥ सार श् री॥ वीरश्री सारस्वत धीर । रारय्केवदनद सिम्ह ॥७८॥
स॥ मचतुरस्र सम्स्थान सम्हननद । विमल वय्भवविह कु॥ न्द॥ अमहरवरणद धवल मंगल भद्र । गमकदशिव मुद्रे सिम्ह ॥७९॥
क्रमवन्क वेरडन्क सिम्ह ॥८०॥ अमलात्म हर शम्भु सिम्ह ॥८१॥ नमि से सौभाग्यद सिम्ह ॥८२॥ समवसरणदग्र सिम्ह ॥८३॥
क्रम नाल्कुचरण एन्टक ॥८४॥ गमक केसर सिम्ह नाल्कु ॥८५॥ विमल सिम्हद प्रतिहार्यं ॥८६॥ सम विषमान्कदे शून्य ॥८७॥
गमक लक्षणद अहिम्से ॥८८॥ श्रम हर पाहुड ग्रन्थ ॥८९॥ समद नाल्मोगदादि सिम्ह ॥९०॥ क्रमद महाव्रत सिम्ह ॥९१॥
क्रम सिम्हक्रीडित तपन ॥९२॥ अमहर गजदग्र क्रीडे ॥९३॥ नमिसिदरणुव्रत शुद्धि ॥९४॥ श्रमद महाव्रत शुद्धि ॥९५॥
विमलान्क काव्य भूवलय ॥९६॥

ल॥ क्षण जारदे सिम्हगळ् बाळुव । तक्षणवेने आगाग ॥ लक्षा न्॥ क मीरिद वरुषगळेण्टन्क वीक्षितियोळगे बाळुवुवु ॥९७॥
क्॥ डिमेयायुविन श्री महावीर देव । नडिय सिम्हासनदल्लि ॥ ओ द॥ गिद सिम्हदायुपु हत्तु वरुषवु । विडदे समवसरणदलि ॥९८॥
खा॥ ति के यग्र पार्श्व जिनेन्द्र । ख्यातिय सिम्हद अयु ॥ पूत कु॥ शल वर्षगळ् अरवत् ओम्बत्तु । नूतन मासगळ् एन्दु ॥९९॥
ण॥ भदिह नेमि स्वामिय सिम्हदायुवु । शुभवर्ष एळ्नूरक्के न्॥ दे। शुभदऐवत्ओरुदिनगळ् कडिमेयु । विभुविन सिम्ह बाळुवुदु॥१००
मृ॥ रळिश्री नमि देवर सिम्हदायुवु । एरडूवरे साविरके ॥ बर द॥ ओम्बत्तु वर्षगळन्क कडिमेयु । सिरि सुव्रतर सिम्हदायु ॥१०१॥
परिदेळूवरे साविरवु ॥१०२॥ सिरि मल्लि जिन सिम्हदायु ॥१०३॥ वरे ऐदनाल्केन्ट्सोन्ने सोन्ने ॥१०४॥ अरह्विसोन्ने नवेन्टु नाल्कु ॥१०५॥
सिरि कुन्थंरळमूरेळ् मूर्नाल्कु ॥१०६॥ वरशान्तेरळ्नाल्नवेन्ट् नाल्कु ॥१०७॥ धर्म नवन्नाल्कु नाल्केरडु ॥१०८॥ धर्ममरकवु बिडियाद ॥१०९॥
सिरि अनन्तवेन्टोम्वत्तु ॥११०॥ वरुष मुन्दे नव नाल्केळु ॥१११॥ गुरु विमल वेळोम्वत्तुगलु ॥११२॥ बरे नाल्कन् कवु नाल्कु ओम्दु ॥११३॥
वर वासुपूज्यरय्दु नव ॥११४॥ वरे मूरु ऐदन्क वरुष ॥११५॥ सिरि श्रेयान्सेन्दु नवगळ् ॥११६॥ बरे नाल्कन्कवु सोन्ने एरडु ॥११७॥
सिरि शीतल पूर्व अग ॥११८॥ बरलोम्बत्तुगळय्द् मूरेन्डु ॥११९॥ वर वेलु नववु नाल्कुगळु ॥१२०॥ बरे मुन्दे मूरेन्डु वरुष ॥१२१॥
गुरु पुष्पदन्तरु पूर्व ॥१२२॥ वरुष ओम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१२३॥ गुरु ववरन्क पूर्वान्ग ॥१२४॥ अरह् ओम्बेळ्नव मूर् मूरेन्डु ॥१२५॥
...मूरेंडु ॥१२६॥ वर चन्द्रप्रभ ...ओम्बत्तुगळ ॥१२७॥ सिरि ...

बरे मूर् ओम्बत्तु मूरेन्दु ॥१३०॥ वृरुषव् अय्वोम्बत्तुगळ ॥१३१॥ बरेवुदु मूरु मत्तेन्टम् ॥१३२॥ सरि मास मुक्कालु वरुष ॥१३३॥
विरुवुदु श्रा सिम्हदायु ॥१३४॥ वरदु सुपार्शव पूर्वेगळ ॥१३५॥ बरुवुदु नवदन्क ऐदु ॥१३६॥ अरि मुन्दे पूर्वान्ग एळम् ॥१३७॥
बरे नव एळु मूरोम्बत् ॥१३८॥ सरि मूरु एन्दुगळन्क ॥१३९॥ वरि अन्गविन्इतागे गरुव ॥१४०॥ बरे श्रोम्दु नाल्नव मूरेन्दु ॥१४१॥
वरुषगळन्कवष्टिहुदु ॥१४२। गुरु पद्म प्रभर पूर्वेगळ ॥१४३॥ बरे श्रोम्वत्तुगळ नय्दु सल ॥१४४॥ इरे इन्तु पूर्वान्ग दक ॥१४५॥
मुरेन्दु मूरोम्वत् मूरेन्दु ॥१४६॥ बरेवुदेम्भत् नाल्कु लक्ष ॥१४७॥ दिरविनोळोम्दून वरुष ॥१४८॥ वर सुमति नव वय्दपूर्व ॥१४९॥
अरि पूर्वांगदबिडिएळ ॥१५०॥ बरे श्राद्यन्त वेम्ब्वतुमूर ॥१५१॥ सरिम ध्य नव नवम ॥१५२॥ अरि वर्ष विडियन्क एळ ॥१५३॥
गुरु सोन्ने एन्टोम्बत् नवव ॥१५४॥ अरि मत्ते नव मूरु एन्टम् ॥१५५॥ सर अभिनन्दन पूर्वे ॥१५६॥ वरुव पूर्वेगळ् श्रोमबत् ऐदु ॥१५७॥
अरि अग नाल्नव मूरु एंदु ॥१५८॥ वरुषादि एरडेन्ट् श्रोम्वत्तु ॥१५९॥ बरे तोम्बत् श्रोम्बत् मूरेन्दु ॥१६०॥ वर शम्भवरउ नववयुदु ॥१६१॥
वर पूर्वगळ मुन्दे अंक ॥१६२॥ वरलादु देम्भत्नाल्लक्ष ॥१६३॥ दिरविनोळ् ऐदन्क ऊन ॥१६४॥ वरुषवे म्भत्नाल्कु लक्ष ॥१६५॥
दिरविगे हदिनाल्कु ऊन ॥१६६॥ एरडने अजितर पूर्वे ॥१६७॥ सरियाद् श्रोम्बत्तुगळ् ऐदु ॥१६८॥ वर अंगवेम्भत्नाल्लक्ष ॥१६९॥
दरविनोळे रडन्क ऊन ॥१७०॥ वरुषगळेम्भत्नाल् लक्ष ॥१७१॥ दिरविनोळून हन्नेरडु ॥१७२॥ पुरुदेव पूर्व लक्षगळ्गे ॥१७३॥
सिरियोम्दु ऊनवादन्क ॥१७४॥ वरुषवेम्भत्नाल्कु लक्ष ॥१७५॥ दिरविनोळ् साविर खन ॥१७६॥ इरुव सिम्हगळ् आयुविनितु॥१७७॥
भरत खण्डद सिम्हदायु ॥१७८॥ भरतद सिम्हगळायु ॥१७९॥ सिरियु पश्चादानु पूर्वी ॥१८०॥ इरु वष्ट महाप्रातिहार्य ॥१८१॥
दिरविनोळ् पडिहार मूरु ॥१८२॥ बरुवन्क सिम्हलांछनवु ॥१८३॥ गुरु वीरनाथ भूवलय ॥१८४॥ गुरु मुनि सुव्रत नमिय ॥१८५॥
वर सिम्हदुपदेश वेरडु ॥१८६॥ परम्परे सिम्ह भूवलय ॥१८७॥

(पश्चादानु पूर्विय महावीर भगवान वाहन का सिम्ह और सिम्हासन के तीसरे प्रातिहार्यके सिम्हको जिन्दे वरुष (१०) दश,)

(पार्श्व नाथके ३ ने प्रातिहार्य की सिम्हद आयु वरुष ६६ ८, इसी तरह आगे भी गिनती कर लेनी चाहिए)

वा॰ सव निर्मित समवसरण बाळ्व । लेसिन कालदन्कगळम् ॥ आ॰ सरेयष्टिह भरत खण्डद सिम्ह । दाशेय प्रातिहार्यांक ॥१८८॥
स॰ म नाल्कु पादगळादरु एन्टिह । कर्म सिम्हव कायक्व चा॰ विमल ज्ञानदवृषभादितीर्थकयक्ष । रमल यक्षियर रक्षितवु ॥१८९॥
ट्॰ एाटएवाद्य गोवदन चक्रेश्वरि । घन महायक्ष रोहिणी र्॰ श्रा । मणित्रिमुखनुप्रज्ञाप्तियक्षेश्वर । जिनयक्षिवज्रश्रृंखलेयु॥१९०॥
टिं॰ तुम्बुर वज्राकुश राग । मुद मातंग यक्षाक ॥ सद य्॰ अनातन पत्नि अप्रति चक्रेशि । ठिद विजय पुरुषदत्ते ॥१९१॥
न्॰ व अजित मनोवेगे ब्रह्मनु कालि । सवण ब्रह्मेश्वरर् आ॰ द॥ नव ज्वालामालिनि दवियु हत्तक । छविकुमार महाकालि ॥१९२॥
च॰ रितेय षण्मुखम् गउरि हन्नेरडक । नव पातालरवर द्॰ यक्ष॥ अवन गान्धारियु किन्नर वइरोटि। नवकिम्पुरुष सोलसेयु ॥१९३॥
स॰ व गारुड मानसि देवि हदिनारु । नव गन्धर्व यक्षेश ॥ नव या॰ महा मानसि देविहदिनेळु । सवण कुबेर देवि जया ॥१९४॥
ह॰ रुषद वरुणनु विजया देवी । सिरि भृकुटि अपराजितेयु ॥ वर म्॰ हा गोमेध बहुरूपिणि देवि । सिरि पार्शव कुष्माण्डिनियु ॥१९५॥
स॰ रण मातग पद्मावति देवियु । वर गुह्यक सिद्धायिनियु ॥ ना॰ रक तिरियु गतिगे सल्लद इन्न । सार भव्यर जीव देवर ॥१९६॥
सा॰ विरदेन्दु दलगळ तावरेयनु । कावुत तलेयोळु हात्त ॥ तावु ई॰ नाल्मोग सिम्हरूपव काव्य । पावन यक्ष यक्षियरु ॥१९७॥

दवन यक्ष यक्षियरु ॥१९८॥ बेविन हूवनित्तवरु ॥१९९॥ तावरे हूविन रसदे ॥२००॥ ई विश्व रसव काय्दवरु ॥२०१॥
जीवकोटिगळ काय्दवरु॥२०२॥ कावरु अणुव्रत गळनु ॥२०३॥ तावु बेट्टगळ तावरेय ॥२०४॥ ईवरु नेलद तावरेय ॥२०५॥
श्रीवीर जलद तावरेय ॥२०६॥ ई विध मूरु तावरेय ॥२०७॥ काविनोळ् रसमणिसिद्धि॥२०८॥ गोवरु हूविन वरव ॥२०९॥
कावरु हूवेप्पत्तेरडम् ॥२१०॥ तावु सिम्हगळ लेक्कदलि ॥२११॥ कावरु भरतार्य भुविय ॥२१२॥ कावरु महाव्रतिगळनु ॥२१३॥
श्री वीर विक्रम वलरु ॥२१४॥ जीव हिम्सेयनु निल्लिपरु ॥२१५॥ कावरहिम्हिसेय बलदि ॥२१६॥ तावु दर्शनिकरागिरुत ॥२१७॥
कावरु व्रतिकादि नेलेय॥२१८॥ श्री वीरवाणि सेवकरु ॥२१९॥ तावरे दलगळोळिहरु ॥२२०॥ देव वैक्रियर्कधि घररु ॥२२१॥
कावरु औदारिकर ॥२२२॥ देव देवियर तिवुदुवरु ॥२२३॥ पावन धर्म होत्तवरु ॥२२४॥ नोवुगळळलनिल्लिपरु ॥२२५॥
श्री वीर देव पूजकरु ॥२२६॥ तावु सिद्धरनु सेविसलि ॥२२७॥ श्री वीरगणितव काय्द॥२२८॥ दव देवियर भूवलय ॥२२९॥
श्री वीर सिद्ध भूवलय ॥२३०॥

इ* रुव श्री समवसरण नालमोग सिम्ह । अरुहन पाद कमल श्* री॥ सरद नालियहोत्तुतिरुगुत बरुतिर्प । सिरिय देवागम पुष्प॥२३१॥
गि* डवु अशोकवु पोडविय भव्यर । सडगरवनु वर्धिसिरे श् री* जडद देहद रोग आतंक वार्धिक्य । गडिय सावुगळनु केडिसि ॥२३२॥
वा* नगळन्नेल ज्ञानदोळडगि । आनन्दवनेलल तरिसि ॥ ज्ञाने पु* ण्यवनीव पुष्पवृष्टियनीडु । वा नम्र प्रातिहार्यंक ॥२३३॥
ल* क्षणवाद चामर अरवत्नाल्कु । अक्षर अरवत्नाल्कु ॥ ष्* इक्षेयक्षरदक नवम दिव्य ध्वनि । रक्षिपुद् ओम् ओम्बत्तुगळ ॥२३४॥

तक्षण कर्म विनाश ॥२३५॥ सिक्षिप हन्नेरडंग ॥२३६॥ हक्देळु मूवत् एरडम् ॥२३७॥ प्रकटवादेरडु काल्नूरु ॥२३८॥
ईक्षिप भामन्डलाक ॥२३९॥ लक्षद दुन्दुभिनाद ॥२४०॥ रक्षेयद्वादश गणवे ॥२४१॥ अक्षरदंक हन्नेरडु ॥२४२॥
अक्षर वेद हन्नेरडु ॥२४३॥ लक्षिप प्रातिहार्याष्ट ॥२४४॥ अक्षरदष्टु मगलवु ॥२४५॥ शिक्षण काव्याक वलय ॥२४६॥
श्रीक्षण मन्त्र प्राभृतवु ॥२४७॥ अक्षरदन्क सान्गत्य ॥२४८॥ कुक्षि मोक्षद सिद्ध बध ॥२४९॥ अक्षय पद प्रातिहार्य ॥२५०॥
शिक्षण लब्धान्क शून्य ॥२५१॥ अक्करदन्क भूवलय ॥२५२॥ शिक्षण ग्रन्थ भूवलय ॥२५३॥

वु* रितव हरिसुव अष्ट मन्गल द्रव्य । वेरसि प्राभृत प* दवदनु ॥ परमात्म पादद्वयद एन्टक्षर बरेदिह पाहुड ग्रन्थ ॥२५४॥
ति* रेय जमवू द्वीपद एरडु चन्द्रादित्य । रिहवष्ट रूप द* अमल॥ सरसिजाक्षरकाव्यगुरुगळ्ऐवर दिव्य। करयुगदानाक ग्रन्थ॥२५५॥
भा* रत देशदमोघ वर्षषनराज्य । सारस्वतवेम्बन्त ॥ सारा न्* क गणित दोळक्षर सक्कद । नूरु साविर लक्ष कोटि ॥२५६॥
या* हितिराप्नसहाम्सिएन्टु[अष्टम]मुवकाल्। सारविकेरडेऊन॥स् त* र अनुतर हदिनेळु साविरगळ्गे। सार[नेर] नाल्वत्नाल्कुम्ऊनम् ॥२५७॥

८ ने ऊ ८७४८+ अन्तर १६९५६=२५७०४=१८=९ अथवा अ से 'ऊ' तक १,२६,७३८+ऊ २५७०४=१,५२,४४२।

ऊपर से नीचे तक प्रथमाक्षर पढते आने से प्राकृत गाथा बन जाती है वह इस प्रकार है

ऊणपमांणदड कोडितियं एक बोसलक्खाणं । बासट्टं चेसहस्साइगिदालदुति भाया ॥७॥

अगर बीच में से लेकर पढे तो—क्रमशः ऊपर से नीचे तक पढने पर इस प्रकार संस्कृत निकलती है—

यमकी रचनानुसार लेकर, आचार्य श्री कुमुद कुमुद आचार्यादि आम्नाय से श्री पुष्पवत...

आठवाँ अध्याय

अब इस अध्याय मे सिंहासन 'नाम के प्रातिहाय का 'विशेष' व्याख्यात के उपयोग में आनेवाले अङ्को का वर्णन किया जा रहा है। नवम अङ्क जिस प्रकार परिपूर्णाङ्क है उसी प्रकार भगवान का सिंहासन भी परिपूर्ण महिमा वाला होता है। उस पर जबकि भगवान विराजमान हैं। अतएव भव्य जन तेनम कहते हैं जो कि तीसरा प्रातिहार्य है।

श्री जिनभगवानसिंहासन पर विराजमान रहते हैं अतएव वह सिंहासन भी भव्य जीवो का कल्याण करने वाला होता है। जिनेन्द्र भगवान का होना तो बहुत मोटी बात है बल्कि जिन भगवान की प्रतिमा भी जिस सिंहासन पर विराजमान हो जाती है तो उस सिंहासन की महिमा अपूर्व बन जाती है। यदि स्वय श्री जिन भगवान या उनकी प्रतिमा ये दोनो भी न हो तो अपने अन्तरङ्ग मे ही भाव रुपी सिंहासन पर भगवान को विराजमान करके गणित से गुणा करते हुये उस काल की महिमा को प्राप्त कर लेना। १।

नवम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ, पञ्चम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीत, प्रथम और शून्य इस रीति से नवकार सिंहासन❖ है। २।

इस प्रकार नवकार सिंहासन की सिद्धि के विषय में अनेक तरह की शकायें उत्पन्न होती हैं। उन सब मे पहली जो शङ्का है उसको हम यहा पर पूर्व पक्ष रूप में लिखते हैं। और उसका सिद्धान्त मार्ग से उत्तर देते हैं जो कि भव्य जीवो के लिये सन्तोष जनक है। ३।

सिंहासन यह समासान्त 'शब्द है जो कि सिंह और आसन इन दो शब्दो से बना हुआ है। उनमें से अगर आसन शब्द को हटा दिया जाय तो सिर्फ सिंह रह जाता है यही वाद विवाद का विषय है।४।

सिंह जो कि वन में विचरण करता है जिसके कन्धे पर सटा की छटा रहती है जिसे देखते ही मानव भयभीत हो जाता है क्या यहा पर वही सिंह है? अथवा वर्द्धमान जिनेन्द्र का जो लाञ्छन (चिन्ह) रूप है वह सिंह है? या लेप्य कर्मात्मक (चित्र) सिंह है? अथवा अरहन्त भगवान् जिस पर विराजमान थे वह सिंह है? अथवा सर्व साधारण जिस पर बैठते हैं वह सिंह है? अथवा सजातीय विजातीय एक वर्णात्मक अनेक वर्णात्मक विभिन्न वनो में नाना प्रकार से निवास करते हैं वह सिंह हैं क्या? या इन सभी से एक निराले प्रकार का सिंह है? कौन सा सिंह! इन सब शङ्काओ का उत्तर नीचे दिया जाता है। ४-६-७।

ऊपर छह तरह की शका है। ८।

उसके उत्तर मे आचार्य महाराज कहते हैं कि यह निर्जीव सिंह है। फिर भी दर्शक लोगो के अन्तरङ्ग में जिस जिस प्रकार का कषायावेश होता है उसी रूप में उसका दर्शन होता है। ९-१०-११।

वह सिंह शुद्ध स्फटिक 'मणिका' बना हुआ है।

उस पर भगवान विराजमान होते हैं। १३ से १४ तक

जिस सिंहासन पर भगवान विराजमान होते हैं वह सिंह भी कर्माटक है कर्मों का नष्ट करने वाला है और जब भगवान उस सिंहासन पर से उत्तर कर चौदहवें गुण स्थान मे पहुच जाते हैं तब भगवान की कर्माटक (सर्वजीवो के कर्माष्टक को नष्ट कर देने वाली) भाषा रूपी दिव्यध्वनि भी बन्द हो जाती है। यह भगवान के आसन रूप में आया हुआ सिंह मुनि के समान शान्त दीख पड़ता है। १५ से १७।

यहा पर सिंह को आसन रूप में क्यो लिया? इसका उत्तर यह कि दिगम्बर जैन मुनि लोगसिंह के समान शूर वीरता पूर्वक क्षुधातृषादि बाईस परीषहो का सामना करते हैं और उन पर विजय पाते हैं। १८।

योगी लोग अपने आत्मानुभव के समय में इस सिंह के द्वारा क्रीडा किया करते हैं। १९।

ससार का अन्त करनेवाले चरम जन्म में इस सिंह की प्राप्ति होती है। २०।

अनादिकाल से आज तक के भव्यो को यह सिंह अन्तिम भव में ही मिलता आया है और आगे अनन्त काल तक होने वाले भव्य जीवो को भी अन्तिम

❖शून्य सिंहासन, वत्त सिंहासन, रत्न सिंहसन, शारदासिंहासन इत्यादि नामो से गुरू पीठ या राज पीठ आज भी दक्षिण में महिशूर (मैसूर) में क्रमश चित्र वर्ग, दिल्ली, मार्ग-शूद्ध नरसिंह राज पुर, श्रवणबेल गोल और शृंगेरी आदि स्थानों में मौजूद हैं।

जन्म में ही इसकी उपलब्धि होगी । २१ ।

वर्द्धमान जिन भगवान भी एक प्रकार से सिंह हैं । २२ ।

इस सिंहासन प्रातिहार्य से वेष्ठित हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है । २३ ।

अब इस सिंह की ऊंचाई आदि के बारे में बतलाते हैं ।

भगवान समवशरण में एक मुख होकर भी चार मुख वाले दीख पडते हैं उसी प्रकार यह आसन रूप सिंह भी एक होकर भी चार चार मुँह दीखा करता है। इस सिंह की ऊँचाई भगवान के शरीर प्रमाण होती है । २४ ।

आदिनाथ भगवान के चरण कमलों के नीचे रहने वाले सिंह की ऊँचाई पाँच सौ धनुष की थी । २५ ।

घण्टा के बजाने से जो टन टन नाद होता है उसको परस्पर में गुणाकार करते जाने से जो गुणनफल आता है वही श्री अजितनाथ भगवान के साढे चार सौ (४५०) धनुष सिंहे का प्रमाण है । २६ ।

तत्पचात् श्री सभवनाथ भगवान का ४०० धनुष श्री अभिनन्दन का साढे तीन सौ (३५०) धनुप तथा श्री सुमतिनाथ भगवान् का ३०० धनुष सिंह का प्रमाण है । २७ ।

श्री पद्मप्रभ भगवान् का २५० धनुषप्रमाण सिंह की ऊँचाई है । २८ ।

श्री सुपार्श्वनाथ भगवान का दो सौ (२००) धनुप ऊँचा सिंह का प्रमाण है । २९ ।

आठवें श्री चन्द्र प्रभु भगवान के सिंह की ऊँचाई १५० धनुष प्रमाण है ।३०।

नौवें श्री पुष्पदन्त भगवान के सिंह की ऊँचाई १०० धनुप प्रमाण है ।३१।

श्री शीतलनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९० धनुष प्रमाण है । ३२।

श्री श्रेयांस नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ८० धनुष प्रमाण है। ३३।

श्री वासुपूज्य भगवान के सिंह की ऊँचाई ७० धनुप प्रमाण है । ३४।

श्री विमलनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ६० धनुप प्रमाण है ।३५।

श्री अनन्त नाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ५० धनुप प्रमाण है ।३६।

श्री धर्मनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४५ धनुप प्रमाण है । ३७ ।

श्री दिव्य शातिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ४० धनुष प्रमाण है । ३८ ।

श्री कुथुनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३५ धनुप प्रमाण है । ३९ ।

श्री अर्हनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ३० धनुप प्रमाण है । ४० ।

श्री मल्लिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई २५ धनुष प्रमाण है । ४१ ।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर के सिंह की ऊँचाई २० धनुष प्रमाण है । ४२ ।

श्री नमिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई १५ धनुप प्रमाण है । ४३।

श्री नेमिनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई १० धनुप प्रमाण है । ४४।

श्री पार्श्वनाथ भगवान के सिंह की ऊँचाई ९ हाथ प्रमाण है । ४५।

अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान के सिंह की ऊँचाई ७ हाथ प्रमाण है । ४६ ।

उपर्युक्त २४ तीर्थंकरो मे से प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान से लेकर २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान पर्यन्त धनुप की ऊँचाई है । ४७ ।

उपर्युक्त सभी अङ्क गुणाकार से प्राप्त हुये हैं । ४८ ।

श्री पार्श्वनाथ भगवान तथा महावोर भगवान के सिंह की ऊँचाई का प्रमाण धनुप न होकर केवल हाथ ही है । ४९ ।

इस अक को साधन करने वाला भूवलय ग्रन्थ है । ५० ।

आगे भूवलय के कोष्ठक बधाक मे मिलने वाले अक्षर को दाशमिक (दशम) क्रम से यदि गणित द्वारा निकालें तो आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु पर्यन्त जो सिंह का वर्णन किया गया है वह निर्मल शुभ्र स्फटिक मणि के समान है । इस प्रकार इस स्फटिक मणिमय वर्ण के सिंह का ध्यान करने से ध्याता को अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है । ५१ ।

इसी गणित को आगे बढ़ाते जाने से भगवान पुष्पदन्तादि दो तीर्थंकर के सिंह लाछन का वर्ण कुन्द पुष्प के समान है ५२ ।

श्री सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ भगवान के सिंह का वर्ण हरित है श्री

सुव्रत तीर्थंकर के सिंह का वर्ण नील है तथा श्री नेमिनाथ, पद्मप्रभु और वासु-पूज्य इन तीनो तीर्थंकरो के सिंह का वर्ण रक्त है। ५३।

आठ तीर्थंकरो के सिंहो का वर्ण श्वेत, पीत, नील तथा रक्त वर्ण का है किन्तु शेष सोलह तीर्थंकरो के सिंहो का वर्ण स्वर्ण रस तथा स्फटिक मणि के समान है।५४।

महावीर भगवान का सिंहासन स्वर्ण मय तथा आदि तीर्थंकर श्री आदि-नाथ भगवान का नन्दी पर्वत पर स्थित सिंहासन स्वर्ण मय है। क्योकि यह स्वाभाविक ही है, कारण यह स्वर्ण उत्पत्ति का ही देश है। यह नन्दी पर्वत अनादि काल से लोक पूज्य है।५५।

गग वशीय राजा इस अनादि कालीन पर्वत को पूज्य मानते थे।५६।

महावीर भगवान के निकट नाथ वशीय कुछ राजा दक्षिण देश मे आकर नन्दी पर्वत के निकट निवास करते थे। वे 'नन्द पुद" कुलवाले कहलाते थे।५७।

महावीर भगवान के कुल से सेव्य होने के कारण इस नन्दीगिरि को महति महावीर नन्दी कहते हैं।५८।

अनेक जैन मुनियो का निवास स्थान होने से इस पर्वत को इह लोक का आदि गिरि भी कहते हैं। ५९।

अनेक सूक्ष्म गणित शास्त्रज्ञ दिगम्बर जैन मुनि यहा निवास करते थे इसलिये इस गिरि का 'सुहुमाक गणित का गिरि' भी नाम है।६०।

इस पर्वत पर निवास करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय महर्षि लोग उग्र-उग्र तपस्या करने वाले हो गये हैं जिनको घोराति घोर उपसर्ग आये हैं फिर भी क्षत्रियत्व के तेज को रखने वाले उन महर्षियो ने उन उपद्रवो का सहर्ष सामना किया था और उन पर विजय पाई थी। इसलिए इसको महाव्रत भरतगिरि भी कहते हैं यहां पर भरत के माने शिरोमणि के हैं। ६२।

इन महर्षियो की सिंहनि क्रीडितादिसरीखी तपस्या को देखकर आश्चर्य चकित होकर अनेक अव्रती लोग भी अणुव्रतादि स्वीकार करते थे इसलिये इस पर्वत को अणुव्रतनन्दी भी कहते हैं।

इस पर्वत पर रहने वाले मुनि लोग अनुपम क्षमाशील हो गये हैं इसलिये इस पर्वत को 'सहन करने वाले गुरुओ का गिरि' भी कहते हैं।६३।

इस पर्वत पर रहने वाले जैन मुनियो के पास सभी धर्मवाले आकर धर्म के विषय मे पूछताछ करते थे और समाधान से सन्तुष्ट हो जाते थे इसलिए इसको तीन सौ त्रेसठ धर्मों का सहचरगिरि भी कहते हैं।६४।

मुनियो के नाना गण गच्छो की उत्पत्ति भी इसी पर्वत पर हुई थी इस लिये इस गिरि का नाम गुरु गण भरत गिरि भी है।६५।

जिन गङ्ग वशी राजाओ का वर्णन ऋग्वेद मे आता है वे सब राजा जैन धर्म के पालने वाले थे तथा गणित शास्त्र के विशेषज्ञ थे। उन सब राजाओ की राजधानी भी इस पर्वत के प्रदेश में ही परम्परा से होती रही थी इसलिए इस को गग-राजाओ के गणित का गिरि भी कहते हैं।६६।

विद्याधरो की भाति इस पर्वत पर अनेक मान्त्रिको ने विद्यायें सिद्ध की थी इसलिए इसको गहन विद्याओ का गिरि भी कहते हैं।६७।

इस पर्वत के आठ शिखर बहुत ऊचे ऊचे हैं। इसलिए इसको अष्टापद भी कहते हैं। इस पर्वत पर से नदी भी निकल कर बहती है तथा इस पर्वत पर अनेक प्रकार की जडी बूटी भी हैं जिनको देखकर लोगो का मन प्रसन्न हो जाता है और हसी आने लगती है। इसलिए इस पर्वत का नाम 'हँसी पर्वत' भी है।६८।

जिस प्रकार सभी अहमिन्द्र एक सरीखे सुखी होते हैं उसी प्रकार इस पर्वत पर रहने वाले लोग भी सुखी होते हैं। इसलिए इसको भूलोक का अहमिन्द्र स्वर्ग भी कहते हैं।६९।

कल्प वृक्ष कहा हैं ऐसा प्रश्न होने पर लोग कहा करते थे कि इस नन्दी गिरि पर है इसलिए इसका नाम 'कल्पवृक्षाचल' भी है।७०।

कल्वप्पूतीर्थ, कावलाला और तालेकाया यह सब नदी गिरि पर राज्य करने वाले गग राजाओ की राजधानी भी थी।७१-७२।

विशेष विवेचन—जहा पर जगदाश्चर्यकारी श्री बाहुबली की प्रसिद्ध मूर्ति है जिसको आज श्रवण बेलगोल कहा जा रहा है उस क्षेत्र को पहले कल्व-प्पुतीर्थ कहते थे वह प्रदेश भी गग राजाओ की अधीनता में था जो कि नान्दी गिरि से एक सौ तीस मील पर है और नन्दी गिरि से तीस मील की दूरी पर एक कोवलाला नाम तीर्थ था जिस को आज 'कोलार' कहते हैं जिस पर सोने

की खानि है तथा नन्दी गिरि से डेढ सौ मील दूर पर तालेकाडू नाम का गाव है जो कि पूर्व मे इन गग राजाओ की राजधानी था। इसके तालेकाडू के आस-पास मे मलपूर नाम का एक पहाड है जिस पर पूज्यपादाचार्य के आदेश से इन्ही गग राजाओ के द्वारा बनाया हुआ विशाल जिन मन्दिर है तथा पद्मावती की मूर्ति भी है जिस मूर्ति की बडो महिमा है। जैन ही नही अजैन लोग अपना इच्छित पदार्थ पाने की इच्छा से उसकी उपासना किया करते हैं और यथोचित फल पाकर सतुष्ट होते हैं। इसी नन्दी गिरि से पाच मील दूर पर यलव नामक एक गाव है जो कि पूर्व जमाने में एक प्रसिद्ध नगर के रूप मे था। वही पर कुमुदेन्दु आचार्य रहते थे। यलव के आगे भू लगाकर उसे प्रतिलोम रूप पढने से भूवलय हो जाता है।

यह नान्दी गिरि प्राचीन काल से श्री वृषभनाथ के समय से बहुत वडा पुण्य क्षेत्र माना गया है।७३।

महावीर भगवान का सिंहासन सोने का बना हुआ था और महद आदि ऋषभ जिनेन्द्र की प्रतिमा के नीचे रहने वाले सिंहासन का सिंह भी सोने का ही है। क्योकि इस पर्वत के नीचे सोने की खान पाई जाने से मगल रूप बतलाने वाला सोने की वस्तु बनाने मे क्या आश्चर्य है। इस पर्वत मे ही भूवलय ग्रन्थ को आचार्य कुमुदेन्दु ने लिखा है।७४।

भगवान के चरणो के नीचे रहने वाले सिंह के ऊपर के कमलो की बत्तीस लाइनें हैं जिनमें एक-एक लाइन में सात-सात कमल हैं। (३२×७=२२४) कमल हुए। भगवान के नीचे रहने वाले एक कमल को मिलाकर २२५ कमल हो जाते हैं। उन कमलो का आकार स्वर्ण से बनाकर नन्दी पर्वत के अग्रभाग से बनाये हुए विशाल मदिर में गग राजा शिवमार ने रक्खा था।७५।

दया धर्म रूपी धवल वर्ण भगवान का पादद्वय कमल के ऊपर विराजमान था। वहाँ सिंह का मुख एक होते हुए भी चारो तरफ चार मुख दीखते थे, क्योकि यह चतुर्मुखी सिंह के मुख का चिन्ह गग राजा का राज्य चिन्ह अर्थात् भरत खण्ड का शुभ चिन्ह था।७६।

विवेचन—आज के भारत का जो राज्य-चिन्ह चौमुखी सिंह है वह अशोक चक्रवर्ती का राज्य चिन्ह था, ऐसी मान्यता प्रचलित है। अशोक से भी पूर्व गग वश के राज्य काल मे भी यह चतुर्मुखी सिंह भारत का राज्य चिन्ह रहा है। यह सिह ध्वज का लाछन चिन्ह चौबीसों तीर्थंकरो के समवशरण मे रहने वाला होने के कारण अथवा प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे होनेवाले सिंह की आयु, मुख, प्रमाण, देह प्रमाण आदि का विवरण इस भूवलय ग्रन्थ के इसी अध्याय मे आने वाला है। अत प्रमाणित होता है कि यह चतुर्मुखी सिंह का चिन्ह बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है।

इस मन्दिर के ऊपरी भाग में मृग, पक्षी, मानव आदि के सुन्दर चित्र बनाए हुए थे। उन सब मे वीर श्री का द्योतक यह सिंहासन था। यह सब भरत चक्रवर्ती का चलाया हुआ चक्राक क्रम था।७७

यह सिंह वीर जिनेन्द्र का वाहन (पगचिन्ह) था और प्रातिहार्य भी था। जैन धर्म, क्षत्रिय धर्म, शौर्य श्री, सारस्वत श्री इन सब विद्याओ का प्रतीक यह सिंह था।७८।

यह सिंह समचतुरस्र सस्थान और उत्तम सहनन से युक्त रचना से बना हुआ था, एवं मगलरूप था, विमल था, वैभव से युक्त था, भद्रस्वरूप था तथा भगवान के चरणो मे रहने से इस सिंह को शिव मुद्रा भी कहते हैं।७९।

ऋषभ आदि तीर्थंकरो से क्रमागत सिंह की आयु और ऊचाई, चौडाई सब घटती गई है। अन्यत्र ईश्वर इत्यादि का वाहन भी सिंह प्रतीक दीख पडता है।८०-८१।

भगवान के इन सिंहो को नमस्कार करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है।८२।

सब सिंहो में समवशरण के अग्र भाग मे रहने वाले सिंह को ही लेना।८३।

एक सिंह के चार पैर होते हैं। अब यहा चारो तरफ आठ चरण दीख पडते हैं।८४।

प्रत्येक सिंह के मुख पर केश विशालता से दीख पडते हैं।८५।

इस सिंह को इतना प्राधान्य क्यो दिया गया? इसका उत्तर-यह है कि भगवान के ८ प्रातिहार्यो में एक प्रातिहार्य होने से इसका महत्व इतना हुआ।८६।

एक सिंह होते हुए भी चार दीख पडने से गणित शास्त्र के क्रमानुसार

समाक को विषमाक से भाग देने से शून्य आ जाता है ।८७।

नाट्य शास्त्र के अभिनय के लक्षण मे इस सिंह का भाव प्रकट करे तो अहिंसा का भाव पैदा होता है ।८८।

पाहुड ग्रन्थो में इस सिंह प्रातिहार्य को अमहारक लाछन माना गया है ।८९।

चारो ओर रहने वाले सिंह के मुख समान होते हैं ।९०।

सिंह के समीप महाव्रतियो के बैठने के कारण इस सिंह का भी महाव्रती सिंह नाम आया है ।९१।

समवशरण मे सिंहासन के पास महाव्रती बैठकर जो सिंह निष्क्रीडित तप करते हैं उसी के कारण इस को सिंह निष्क्रीडित कहते हैं ।९२।

इसका नाम गज अग्रकीडे अथवा गजेन्द्र-निष्क्रीडत तप भी है ।९३।

इस सिंह प्रातिहार्य को यदि नमस्कार करे तो अणुव्रत की सिद्धि हो जाती है ।९४।

इस गजेन्द्रनिष्क्रीडित❖ महातप को करने वाले महात्माओ के महाव्रतो मे अपूर्व शुद्धि भी प्राप्त हो जाती है ।९५।

ऐसा कहने वाला यह निर्मलाक महाकाव्य भूवलय है ।९६।

मध्य सिंहनिष्क्रीडित एक से आठ अक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये। उसके शिखर पर अन्त मे (मध्य में) नौ का अक आ जाना चाहिये और जघन्य निष्क्रीडित के समान यहा भी दो दो अक्षर की अपेक्षा से एक एक उपवास का अक घटाना बढाना चाहिये। इस रीति से इस मध्य सिंहनिष्क्रीडित में जितनी अको की सख्या हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हो उतनी पारणा जाननी चाहिये अर्थात्

१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ८ ६
१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १
८ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

❖सिंहनिष्क्रीडित व्रत जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट भेद से तीन प्रकार का है। उनमें जघन्य सिंहनिष्क्रीडित इस प्रकार है। एक ऐसा प्रस्तार बनावे कि अन्त मे (मध्य में) उसमें पाच का अक आ जाय और पहिले के अको में दो दो अको की सहायता मे एक एक अक बढता जाय और घटता जाय इस रीति से जितने इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित मे अको के जोडने पर सख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझना चाहिये और जितने स्थान हो उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् इस प्रस्तार का

१ १
१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ५ ५ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

यह आकार है। यहा पर पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये। पश्चात् दो में से एक उपवास का अक घट जाने से एक उपवास एक पारणा, तीन मे से एक उपवास का अक घट जाने से दो उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अङ्क घट जाने से तीन उपवास एक पारणा, चार में से एक उपवास का अक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास पाच का अक आ जाने से पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ। आगे उल्टी सख्या से पहिले अक घटा देने पर चार उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अक बढा देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अक घटा देने पर वास एक पारणा, दो में से एक उपवास का अक घटा देने पर एक उपवास एक चाहिये। इस जघन्य सिंहनिष्क्रीडित में अको की सख्या साठ है। इसलिए साठ अस्सी ८० दिन में जाकर समाप्त होती है।

उपवास एक पारणा, दो मे एक उपवास का अक बढ जाने से तीन उपवास पारणा, तीन में एक उपवास का अक बढ जाने से चार उपवास एक पारणा, मे एक उपवास का अङ्क बढ जाने से पाच उपवास एक पारणा, पांच में से एक का अक बढा देने पर पाच उपवास एक पारणा होती है। यहा पर अन्त में पाच उपवास एक पारणा करनी चाहिए। पश्चात् पाच में से एक उपवास का देने पर पाच उपवास एक पारणा, चार मे से एक उपवास का अक घटा देने दो उपवास एक पारणा, दो मे से एक उपवास का अक बढा देने से तीन उप- पारणा, पश्चात् दो उपवास एक पारणा, एक उपवास एक पारणा करनी उपवास होते हैं और स्थान वीस हैं, इसलिये पारणा वीस होती है। यह विधि

इसके प्रस्तार का आकार इस प्रकार है। यहा पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिए। पश्चात् दो में से एक उपवास का अक घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो मे एक उपवास का अक जोड देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन मे से एक का अक घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन मे से एक उपवास का अंक वढा देने पर चार उपवास एक पारणा होती है। इसी प्रकार जघन्य सिंहनिष्क्रीडित के समान आगे भी समझ लेना चाहिये। इसमे अको की सख्या एक सौ तिरपन है। इसलिए एक सौ तिरपन तो उपवास होते हैं और स्थान तैंतीस हैं। इसलिये तैंतीस पारणा होती है। इसलिये यह मध्य सिनिष्क्रीडित व्रत एक सौ छियासी दिन मे समाप्त होता है।

उत्तम सिंहनिष्क्रीडित—एक से पन्द्रह अक तक का प्रस्तार बनाना चाहिये। उसके शिखर पर अन्त मे (मध्य मे) सोलह का अक आ जाना चाहिये और उपर्युक्त सिंहनिष्क्रीडितो के समान यहा पर भी दो दो अक्षरो की अपेक्षा से एक एक उपवास का अक घटा वढा लेना चाहिये। इस रीति से जोडने पर जितनी इसमे अको की सख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास समझने चाहिये और जितने स्थान हो उतनी पारणा जाननी चाहिये। इसके प्रस्तार का आकार

१ २ १ ३ २ ४ ३ ५ ४ ६ ५ ७ ६ ८ ७ ९ ८ १० ९ ११ १० १२ ११
१३ १२ १४ १३ १५ १४ १५ १६ १५ १४ १५ १३ १४ १२ १३
११ १२ १० ११ ९ १० ८ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ५ ३ ४ २ ३ १ २ १

इस प्रकार है। यहा पर भी पहिले एक उपवास एक पारणा और दो उपवास एक पारणा करनी चाहिये। पश्चात् दो में से एक उपवास का अङ्क घटा देने पर एक उपवास एक पारणा, दो मे एक उपवास का अक बढा देने पर तीन उपवास एक पारणा, तीन में से एक उपवास का अ क घटा देने पर दो उपवास एक पारणा, तीन में एक उपवास का अ क मिला देने से चार उपवास एक पारणा, चार मे से एक उपवाम का अ क घटा देने पर तीन उपवास एक पारणा, चार में एक उपवास का अ क वढा देते से पाच उपवास एक पारणा, पांच में से एक उपवास का अक घटा देने से चार उपवास एक पारणा, पांच में एक उपवास का अंक जोड देने से छै उपवास एक पारणा, छै में से एक उपवास का अक घटा देने पर पाच उपवास एक पारणा, छै मे एक उपवास का अक वढा देने पर सात उपवास एक पारणा, सातमे से एक उपवास का अक घटा देने पर छै उपवास एक पारणा, सात मे एक उपवास का अक मिला देने से आठ उपवास एक पारणा, आठ में से एक उपवास का अक घटा देने पर सात उपवास एक पारणा, आठ मे एक उपवास का अक मिला देने पर नौ उपवास एक पारणा, नौ में से एक उपवास का अक घटा देने पर आठ उपवास एक पारणा, नौ मे एक उपवास का अक जोड देने पर दश उपवास एक पारणा, दश में से एक उपवास का अक घटा देने पर नौ उपवास एक पारणा, दश मे एक उपवास का अक वढा देने पर ग्यारह उपवास एक पारणा, ग्यारह में से एक उपवास का अक घटा देने पर दश उपवास एक पारणा, ग्यारह मे एक उपवास का अक वढा देने पर बारह उपवास एक पारणा, बारह मे एक उपवास का अक मिला देने पर तेरह उपवास एक पारणा, तेरह मे एक उपवास का अक वढा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर तेरह उपवास एक पारणा, चौदह में एक उपवास का अक वढा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, पुन पन्द्रह उपवास एक पारणा और सोलह उपवास एक पारणा, सोलह मे से एक उपवास का अ क घटा देने से पन्द्रह उपवास एक पारणा, पन्द्रह मे से एक उपवास का अक घटा देने पर चौदह उपवास एक पारणा, चौदह मे एक उपवास का अक वढा देने पर पन्द्रह उपवास एक पारणा, चौदह मे से एक उपवास का अ क घटा देने से तेरह उपवास एक पारणा, इत्यादि रीति से आगे भी समझना चाहिये। इस रीति से इस उत्तम सिंहनिष्क्रीडित व्रत मे अ को की मिलकर सख्या चारसौ छियानवे है। इसलिए इतने तो इसमे उपवास होते है और स्थान इकसठ हैं इसलिये इकसठ पारणा होती है। यह व्रत पाच सौ सत्तावन दिन मे समाप्त होता है।

ग्रन्थकार ने तीनो प्रकार के सिंहनिष्क्रीडित व्रतो की सख्या और पारणा गिनकर वतलाने की यह सरल रीति वतलाई है। जघन्यसिंहनिष्क्रीडित व्रत मे साठ उपवास और पारणा वतलाई हैं एव उसका प्रस्तार पांच अ क तक

रखकर उनको आपस में जोड़ दें और जोड़ने पर जो संख्या आये उसका चार से गुणा करदें, इस रीति से गुणा करने पर जो संख्या सिद्ध हो उतने तो उपवास और जितने स्थान हों उतनी पारणा समझनी चाहिए अर्थात् इस जघन्य सिहनिष्क्रीडित व्रत में एक से पांच तक की संख्या जोड़ने पर १५ होते हैं और पन्द्रह का चार से गुणा करने पर साठ होते हैं। इसलिए इतने तो उपवास हैं और स्थान बीस होते हैं इसलिए पारणा बीस है। मध्य सिहनिष्क्रीडित में तिरेपन उपवास और तैंतीस पारणा बतला आये हैं और नौ के अंक को शिखर पर रखकर आठ अंक तक का प्रस्तार बतला आये हैं। वहां पर एक से लेकर आठ तक संख्या रखकर आपस में जोड़ दे और जोड़ने पर जितनी संख्या आवे उसका चार से गुणा कर तत्पश्चात् गुणित संख्या में जो नौ का अंक शिखर पर बतला आये हैं उसे जोड़ दें इस रीति से जितनी संख्या सिद्ध हो उतने इस मध्यसिहनिष्क्रीडित में उपवास हैं और जितने स्थान हैं उतनी पारणा है अर्थात् एक से आठ तक की संख्या का जोड़ देने पर छत्तीस होते हैं। छत्तीस का चार से गुणा करने पर एकसौ चौवालिस होते हैं और उसमें नौ जोड़ देने पर एकसौ तिरपन हो जाते हैं। इसलिए इस व्रत में एकसौ तिरेपन तो उपवास होते हैं और स्थान तैंतीस हैं इसलिए तैंतीस पारणा होती हैं। उत्तम सिहनिष्क्रीडित में चारसौ छियानवे उपवास और पारणा इकसठ कही हैं। इसका प्रस्तार सोलह के अंक को अधिक रखकर पन्द्रह तक बतला आये हैं। वहां पर भी एक से लेकर पंद्रह तक की संख्या का आपस में जोड़ देने पर जितनी संख्या आवे उसका चार से गुणा करे और गुणित संख्या में जो सोलह का अंक अधिक बतला आये हैं उसे जोड़ दें और जोड़ गुणा करने पर जितनी संख्या निकले उतने इस व्रत में उपवास समझने चाहिए और जितने स्थान हो उतनी पारणा जाननी चाहिए अर्थात् एक से पन्द्रह तक जोड़ने पर एकसौबीस होते हैं। एकसौबीस का चार से गुणा करने पर (१२० × ४ = ४८०) चारसौ अस्सी होते हैं और इनमें जो सोलह अधिक बतला आये हैं उन्हे मिला देने से चारसौ छियानवे हो जाते हैं। सो चारसौ छियानवे तो इस व्रत में उपवास होते हैं और स्थान इकसठ हैं इसलिये पारणा इकसठ होती हैं। इस क्रम से जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट सिहनिष्क्रीडित की उपवास और पारणाओं की संख्या जाननी चाहिए। जो मनुष्य इस परम-पावन सिहनिष्क्रीडित व्रत का आचरण करता है उसे वज्रवृषभ नाराचसंहनन की प्राप्ति होती है, अनन्त पराक्रम का धारक हो, सिंह के समान वह निर्भय हो जाता है और शीघ्र ही उसे अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों की भी प्राप्ति हो जाती है।
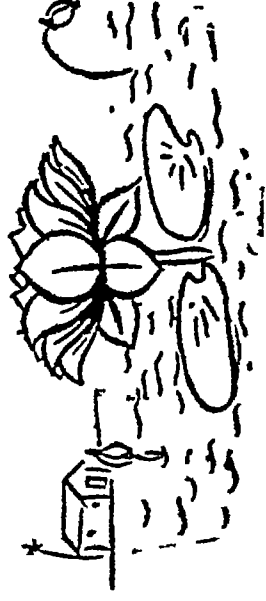
नौ अध्याय

ऊ* काव्यवतिशय ज्ञान साम्राज्य । श्रीकर वय्भव भद्र ॥ भू* करवाद भूवलय सिद्धान्तके । ऊ काव्यदादियोळ् नमिपे ॥१॥
व* शवा लोक अलोक भूवलयद । त्रस नाळियोळहोरगिरुव ॥ यश त* नियाद ज्ञानद घनवदनाळ्व । रसवे मन्गळद प्राभृतवे ॥२॥
सृ* नदि प्रकाशवागुव सूर्यनो एम्ब । जिनदेवनन्तरदन ब* दनुभव तावरेयग्र सिस्हद अग्र । वनुमेट्टदिरुव नाल्वेरळ ॥३॥
व* तियोळु निन्दिह अथवा कुळितिर्प । स्थितिय दूरव्यवरिय लि* क्के॥ अतिशय मूवत्नाल्कर काव्यद। हितदक्षरदन्क ई'ऊ' ॥४॥
र* सिकद बेवरिल्ल निजदेह निर्मल। होसदेहरक्त बिळिया गु* तसमानवज्र वृषभ नाराचद । यशदादि सम्हननान्ग ॥५॥
वश सम चतुरस्रवेनिप ॥६॥ असमान देह सम्स्थान ॥७॥ यशद्अनुपमरूप कान्ति ॥८॥ रसग्रन्थ सम्पगेयन्द ॥९॥
यशद साविरदेन्टु चिन्ह ॥१०॥ यश बल वीर्य अनन्त ॥११॥ हस मित मधुर भाषणवु ॥१२॥ दशभेदवु स्वाभाविकवु ॥१३॥
वशविवु जननातिशयवु ॥१४॥ रसद हत्त् अन्कद चिन्हे ॥१५॥ 'विषहरदमृत शरीर ॥१६॥ कुसुमदग्रद जिन-देह ॥१७॥
ऋषिगळाराधिप देह ॥१८॥ जसवे महोन्नत देह ॥१९॥ रससिद्धि गादिय देह ॥२०॥ विशमसमान् कद देह ॥२१॥
कुशदग्र बुद्धिर्धिदेह ॥२२॥ रसरत्न मूराव्म देह ॥२३॥ उसहादि महावीर देह ॥२४॥ यशविह काव्य भूवलय॥२५॥
भू* वलयवनेल्ल नाल्कु दिशेगळलि । कावुत नूरु योजनद । ठाव ण* मुभिक्षतेयन्उन्टु माडुत । ताउ आकाशदे गमन ॥२६॥
व* रे हिम्सेय् अभाव उण्णद लिरुवन्थ । परिपरियुपसर्ग घ* रिस॥ दिरुवनाल्दिशेमुखनेरळुबीळदलिह। परियन्दरेप्पेयनोट ॥२७॥
ल* क्षण विद्येगळेल्लर ईशत्व । रक्षिप उगुर कोळदिह ॥ र* क्षिसि कूदलु समनागिर्पुदु । रक्षेय हदिनेन्टु भाषे ॥२८॥
य* शद लिपियन्क क्षुद्र एळ्न् अन्क । वश सम्ज्ञरिजीव आ* वाव॥ यशदन्काक्षर अक्ष भाषामय । वशभव्यर्गुपदेशवीव॥२९॥
सृ* नद अस्खलित स्वभावद अनुपम । वनधिघोषद दिव्य त र* आद । जिनरदिव्यध्वनिमूरुसन्जेगेबर्प ।घनदओम्बत्मुहूर्तगळु॥३०॥
जनिसदु तुटियळाटदलि ॥३१॥ जनिसे सल्लुगळाट रहित ॥३२॥ 'घन तालु ओष्ट बेकिल्ल ॥३३॥ जनकेल्ल ओम्दे समयदि ॥३४॥
जिनन्तुपदेशवागुवुदु ॥३५॥ घन ओम्दु योजन हरिदुम् ॥३६॥ गणधर परश्नेगुत्तरदे॥३७॥ जिनवाणि बेकागे बहुदु ॥३८॥
मनुज चक्रियप्रश्नेयन्ते ॥३९॥ जिनवाणि युत्तर बहुदु ॥४०॥ कोनेमोदलन्नु तुळुवुदु ॥४१॥ घनद्रव्य आरम् पेळुवुदु ॥४२॥
घन तत्व एळर कथन ॥४३॥ दनुभव नववस्तु कथन ॥४४॥ तनि ऐद् अस्थिकायगळम् ॥४५॥ घन हेतुगळिम् पेळुवुदु ॥४६॥
जिन दिव्यध्वनि सार ॥४७॥ कोनेय प्रमाण भूवलय ॥४८॥
ति* रेयोळाश्चर्यद हत्ओमद् अतिशय वेरसिद जिन देव य* शद॥ परियुकेवलज्ञानवागलुबरुवुदु । अरुहगे घातिय क्षयदि ॥४९॥
य* वेय काळिन अष्टकर्मवु निलदिरे । सवेयदलिह अनुभव म* । अवतारदनिशयहन्ओम्दर् अन्कके। सवि घातिक्षयजातिशय ॥५०॥
र* सदात्मनेनुवरहन्त पप प्राप्त । यशदिव्यात् मनन त्* त॥ वश गुणसमृद्धनाद तेजोनिधि । रससिद्धिगादिय वस्तु ॥५१॥
ण* वकार मन्तरद सूक्ष्मरलोम्बत्त । रवरलि गुणाकार च क* षु॥ विवरदद्रुष्टिभेदगळनुतिळिदिह । नवकारदतिशय वस्तु ॥५२॥
३×३ = ९ जवननोडिप दिव्य चक्षु ॥५३॥ नवकारकादिय वस्तु ॥५४॥ सुविशाल जगद साम्राज्य ॥५५॥
नवनवोदित दिव्य ज्योति ॥५६॥ कविगे सिक्कद दिव्य रूप ॥५७॥ अवयव सुपवित्र पूतम ॥५८॥

जवमुजव हरएाव रूपु ॥५९॥ सुविशाल विश्वमय भवनु ॥६०॥ गवगगिणेयलिव वेह ॥६१॥
सविवचनाम् रुत शारगि ॥६२॥ नवपद भक्तिय सुबुधि ॥६३॥ नवपद भक्तिय सिद्धि ॥६४॥
नवपद ज्ञानद शक्ति ॥६५॥ नवदमूक सिद्धि चारित्रय ॥६६॥ अवसर्पिणियावि रूपु ॥६७॥
अवसर्पिणिय भव्यानक ॥६८॥ नवबेरजने भागवनुक ॥६९॥ भवहर सिद्ध भूवलय ॥७०॥

सु॰ रक्तहविमूर् अतिशय काव्यदे । सिरि जिन महिमेगळर गु॰ तिरवन्तिमोवलिगेगनुण्यातयोजन । विरुयवनगळ वृक्षपदोळु ॥७१॥
वृ॰ शशिसल्अल्लि एलेयु तुपु हुएगजउ । नरुयममयवोळा ना॰ परियतिशय श्रोमदु मग्ळुमुळ्ळिल्लनव । परेयोळु चनिसुव पवन ॥७२॥
घे॰ नुवुहोकुकनते मुगवायकनु । एनेमने एरउनेय महा ॥ ताना ग॰ तवापु परियुनु मुरने । तानुवयरव विट्टु जीवर् ॥७३॥
ए॰ व नवोदित दिव्य परेमदिन्द्रिरजन नारतन वेत्तिर हु॰ नेय ॥ सुविशाल रूपएावनते होळेयनेन । दवनियु नाल्कनेयनक ॥७४॥
दवनिय समवसरणवु ॥७५॥ रुजिगे नाल्कनेयतिशयनु ॥७६॥ नवरत्नएणनेनेकट्टु ॥७७॥ रचनमोल्नेय चित्रवचचु ॥७८॥
सवि गन्धमायव रूपु ॥७९॥ नवगन्ध माधव वळ्ळि ॥८०॥ सुविशाल चित्रवन्नियनु ॥८१॥ नव मयूरगे पडियच्चु ॥८२॥
नव गन्धराज वळ्ळिगळ ॥८३॥ अवयव कमल जातिगळ् ॥८४॥ गवमणिगेय नितरदनुनु ॥८५॥ नवे कामकतुरि भन्नलि ॥८६॥
विविध चेनुगएाजिल वेना ॥८७॥ नवमानती मुडिगळ ॥८८॥ नव पगडेय यन्धूक ॥८९॥ छवि ताळेयवतार चित्र ॥९०॥
भूविय पावरिय नामर हु ॥९१॥ दवनिय रेगेयनुतिहुनु ॥९२॥ दवनिय काव्य भूवलय ॥९३॥

ए॰ व सुगन्धद पन्नीरिन मळेयनु । गवनिगे सुरिसुत मजन ॥ स॰ विजनयगउदिय देवेन्द्रर नागनेयिम् । भुविगे सुरिव मेघकुवर ॥९४॥
म॰ ळेयु ऐदागे देवरु विक्रियेयिन्द । फल भारअनमरव शान्ति ॥ ति॰ ळियाव पयरनु हरउुद आरअनक । विविधजेनरनित्य सवनुय ॥९५॥
मृ॰ रेयवारद एळु देवर्विक्रियेयिन्द । नर तएगिन् वृशाउ य॰ दाव। आरनिगेयोमुववुएनटअन्तकेरेभावि। सिरिशुद्धजलपूर्णनवम ९६
सि॰ डिलु कार्मोडउल्कापातविल्ल । विडियाद आकानवशन ॥ व॰ ति॰ यागिरे मरव जीवरगे रोगादि । भिडेयिल्लदिहुदु हन्श्रोमदु ॥९७॥
गडिय दाटिहरु हरयवलि ॥९८॥ जडतेयनळिदिहरल्लि ॥९९॥ फडेगळिल्लद निरामयरु ॥१००॥ गडिगळळिदु बाळुवरु ॥१०१॥
मृढ वाघेयळिविहरेल्ल ॥१०२॥ एडरुगळळिवरु एल्ल ॥१०३॥ ओडवेगळळिवरु जनरु ॥१०४॥ कडवनु कळेदु कोळ्ळुवरु ॥१०५॥
जडतेयनळिदु बाळुवरु ॥१०६॥ भडतिय नळियविहरेल्ल ॥१०७॥ तोडरुगळळिदरु जनरु ॥१०८॥ तडेगळिल्लदे सुखविहरु ॥१०९॥
सडगरवेनिल्लवल्लि ॥११०॥ कुडुकेगळळिदिहरळ्लि ॥१११॥ नडे मुडियलिवु बाळुवरु ॥११२॥ पडिगळ बाघेयल्लिळ्ल ॥११३॥
वडतनवेनिळ्ळवळ्लि ॥११४॥ मडिगळिल्लदे बालुवरु ॥११५॥ यउरळिविहरु नोडळ्लि ॥११६॥ पउक्परवलिद भूवलय ॥११७॥

ऊ॰ नवळिद तेजदतिशय रत्न । कागुव नेळकिनुज्वलद ॥ ताए व॰ अमधरिसिद धर्म चक्रवुनाल्कु ॥ आनन्ददिम् यक्षेन्द्ररुगळ् ॥११८॥
ए॰ एाविधदलनकारव वरिसिहि । जानपदद तेरविन्द ॥ आनद रु॰ चियदुहनएरडु अनकनु तानु भूवनएरळ् विशेयोळ् ॥११९॥
ह॰ रडिद एळेळु पन्वतिये हविमूरु । वरे स्वर्ण कमलद प॰ रधि ॥ विरचितपावपोठवुहविनालकडु । सरिपूजेवस्तुहुण्णमेयु ॥१२०॥
मृ॰ न पादपीठ पूजाद्रव्य एरळ् पोगे । जिनर भूवल्नाल्कु शु भ॰ व ॥ घनवावतिशयगळनेल्ल पेळुव । विनयावतारि यावनिह ॥१२१॥
जनरु भूतलदोळगिल्ल ॥१२२॥ जनरु भूतलदोळेल्लिहरु ॥१२३॥ सनुनय वादियारिहनु ॥१२४॥ जिन मार्गलक्षण धर्म ॥१२५॥

जनर कन्टक हरणान्क ॥१२६॥ घन भद्र मन्गल रूप ॥१२७॥ जिन शिव भद्र कय्लास ॥१२८॥ जिन विष्णु भवन वय्कुन्ठ ॥१२९॥
विनय सत्यद ब्रम्हलोक ॥१३०॥ जनतेय सर्वार्थ सिद्धि ॥१३१॥ जनरिगे सर्वान्क सिद्धि ॥१३२॥ इन चन्द्र कोटिय किरण ॥१३३॥
कनक रत्नगळ मेल्कट्टु ॥१३४॥ घन रस सिद्धिय मणियु ॥१३५॥ कुनय विनाशक मणियु ॥१३६॥ केनेवालन्तिह शुद्ध स्वर्ण ॥१३७॥
कोनेगात्म सिद्धिय नेलनु ॥१३८॥ तनय तनुजेयर त्याग ॥१३९॥ दनुज किन्नर शिल्प काव्य ॥१४०॥ घनपुण्यभवन भूवलय॥१४१॥

भ* वनामर व्यन्तरद ज्योतिष्कर। नव नव कल्पद सिरि वी* रवन भक्तरु जयध्वनियिन्द पाडुव सुविशाल कलरवरुतिय ॥१४२॥
व्* रवमन्गलद प्राभृतद महा काव्य। सरणियोळ् सिरि वी र* सेन॥ गुरुगळमतिज्ञानदरिविगे सिलुकिह। अरहतकेवलज्ञान ॥१४३॥
व* शवागे भूवल्लाल्कउगळतिशय । ऋषि मार्ग धर्मव धरि से* असद्रुशवाद त्रय्लोकाग्र सिद्धियु वशवागलेमगेम्ब ज्ञान ॥१४४॥
ज* निसलु सिरि वीरसेनर शिष्यन। घनवादकाव्यद कथेय ॥ जि न* असेन गुरुगळ तनुविन जन्मद । घनपुण्यवर्धन वस्तु ॥१४५॥
ण* णा जनपदवेल्लदरोळु धर्म। तानु वशीगिसि मर्पाग ॥ तान् आ* लिल मान्यखेटद दोरे जिन भक्त। तानु अमोघवर्षांक ॥१४६॥
ण* व पद भक्तियिस् जन पदवेल्लवु। तव निधियागिसिर्दाग मृ* अवर भव्यत्वद आसन्नतेयिन्द । नवदन्क मूर्तियादन्ते ॥१४७॥

सविवर मतिज्ञान धरनु ॥१४८॥ अवनिय ज्ञान सम्प्राप्ति ॥१४९॥ भुवियतिशयद सद्भाग्य ॥१५०॥
नवविध ब्रह्मवनरिव ॥१५१॥ अवर पालिसुव सद्गुरुवु ॥१५२॥ सुविशाल कीर्तिय देह ॥१५३॥
नवनवोदित शुद्ध जयद ॥१५४॥ अवतारदाशा वसविय ॥१५५॥ भुवि कीर्तियह सेनगणदि ॥१५६॥
अवतरिसिदज्ञातवम्शि ॥१५७॥ अवन गोत्रवदु सद्धर्म ॥१५८॥ अवन सूत्रवु श्री वृषभ ॥१५९॥
अवन शाखेयु द्रव्यान्ग ॥१६०॥ अवन वम्शवदु इक्ष्वाकु ॥१६१॥ अवनेल्ल त्यजसिद सेन ॥१६२॥
नव गण गच्छव सारि ॥१६३॥ नव भारतदोळु हरिसि ॥१६४॥ सविय कर्माटक दोरेगे ॥१६५॥
विवरदोळ् कर्मव पेळ्द ॥१६६॥ अवनन्क काव्य भूवलय ॥१६७॥ भुवन विख्यात भूवलय ॥१६८॥

पृ* दविगळ् ऐदु सन्जनिसिद राजगे। सधवलद् आदिस् वृध् या* स्पदवागे एरडने जयधवलान्कद। वदिगे मूरने महा धवल ॥१६९॥
दी* नतववळिसुत जनतेय पालिप। भूनुत वर्धमानान्क॥ आन मृ* अजनतेय जयशील धवलद। शाने पदवियदु नाल्कु ॥१७०॥
व* शवादतिशय धवल भूवलयद। यशवागे ऐदने अक॥ रस वि स्मयवाद विजयधवलविन्तु । यशद भूवलयद भरत ॥१७१॥
सृ* हिय गेल्दन्कव वशगेयद राजनु। वहिसिद दक्षिणद् भ र* त॥ सिहिय खण्डदकर्माटकचक्रिय। महियेमण्डलवेसरान्तु ॥१७२॥

कहिय हिम्सेयनोडि सिद ॥१७३॥ गहनद् अहिम्सेय मेरेसि ॥१७४॥ वहिसिदणुव्रत ख्याति ॥१७५॥
इह सौख्य करवाद ख्याति ॥१७६॥ छह खण्ड वशशास्त्र ख्याति ॥१७७॥ महियतिशय स्वर्गवेसरिस् ॥१७८॥
इहवे स्वर्गवो एम्ब तेरदिस् ॥१७९॥ वहिसि अमोघवर्षन्रूप ॥१८०॥ नहि नहि नृपनेनुवन्ते ॥१८१॥
दहिसुत कर्माष्टकव ॥१८२॥ मह विश्व कर्माटकव ॥१८३॥ विहरिसुतिरुव सद्धर्म ॥१८४॥
सिहिय अहिम् सेय राज ॥१८५॥ इह पर सुखद सर्वस्व ॥१८६॥ सहकार धर्म साम्राज्य ॥१८७॥
इहवेल्ल सौभाग्य रूप ॥१८८॥ महावीर धर्म मान्गल्य ॥१८९॥ गुहेय सपरूर्य सिद्ध ॥१९०॥

कुहक विनाशक राज्य ॥१६१॥ सुह शिव भद्र वरभाळ ॥१६२॥ महा सिद्ध काव्य भूवलय ॥१६३॥
महावीर नडियिट्ट राज्य ॥१६४॥

वो* विनोळन्तरमुहूर्तदि सिद्धान्त । दादि अन्त्यवनेल चि* तृत॥ साधिपराज अमोघवर्षन गुरु। साधितश्रम सिद्ध काव्य ॥१६५॥
च्* रितेय सान्गत्यवेने मुनि नाथर । गुरुपरम्परेय विरचि त* सिरि वीरसेन सम्पादित सद्ग्रन्थ । विरचितवाचक काव्य ॥१६६॥
छा* येयोळ् आचार्यनुसुरिद वाणिय । दायवनरियुत नानु॥ आय मृ* नुगल पाहुडव क्रमान्कद । दायदि कुमुदेन्दु मुनि ॥१६७॥
मि* गिलादतिशयवेळ्तूर हदिनेन्दु । अगणितदक्षर भाषे ॥ श्* गणादि पद्धति सोगसिनिम् रचिसिहे मिगुव भाषेयु होरगिल्ल ॥१६८॥

सोगसाथ कर्माटवादि ॥१६६॥ सुगुण सम्पूर्णान्ग भाषे ॥२००॥ वगेयतिशय शुद्ध काव्य ॥२०१॥
जगदोळिन्निल्लद भाषे ॥२०२॥ अगणित जीवर भाषे ॥२०३॥ विगिदिह सव्दरियन्क ॥२०४॥
सोगवीव श्री चक्रबन्ध ॥२०५॥ बगे वगेयतिशय बन्ध ॥२०६॥ मृग पक्षि भाषेय भन्ग ॥२०७॥
दिगिलळिविह स्वर्ग बन्ध ॥२०८॥ अगणित गणित अनन्त ॥२०६॥ जगवेल्ल विगिदिह भन्ग ॥२१०॥
मिगवु मानवनप्प भग ॥२११॥ खगवु स्वर्गके पोप भंग ॥२१२॥ जगवेल्ल सिद्ध भूवलय ॥२१३॥
युग परिवर्तनदन्ग ॥२१४॥

ति* रेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म । नर पालिसुवुदए न री* वे ॥ गुरु धर्मदाचारवनु भीरविह राज । धरेय पाळिवुवेनरिंदे ॥२१५॥
लो* कद त्रस नालियोळगिह जीवर । साकुव जैन धर्म विद्दु ॥ शो* करवेने सर्व लक्षण परिपूर्ण । नाक मोक्षव नीवुवुदु ॥२१६॥
य* श कर्मदुदयव तन्दीव जिन धर्म । रसेगे सौभाग्यवनित् ता* यशकाय जीवर शोकव हरिसुत । रससिद्धियन्तागिपुदु ॥२१७॥

विषहर गारुड मणिय ॥२१८॥ असदृश ज्ञान साम्राज्य ॥२१६॥ दिशेयन्तवदनु काणिपुवु ॥२२०॥
उसह सेनरनु तोरुवुवु ॥२२१॥ असमान सान्गत्य वहुदु ॥२२२॥ कुसुमायुध तापहरवु ॥२२३॥
कसद कर्मद तोलगिपुवु ॥२२४॥ विसमान्कवनु भागिपुवु ॥२२५॥ सुषम कालवनु तोरुवुवु ॥२२६॥
वशदावुम सिद्धि भूवलय ॥२२७॥

भू* तवल्याचार्य नवन भूवलयद् । अख्यातिय वैभव भद् र* नूतन प्राक्तन वेरडर सन्धिय । ख्यातिय सारुव सूत्र ॥२२८॥
व* र भूतबलि नामवदनतिशेयवेन् । दोरेवाग अतिशयवेनु ॥ ह* रुष वर्धनवाद भारत देशद । गुरु परम्परेयाद राज्य ॥२२६॥
ल* वण वारिधियवु बळसुत वन्दिरे । सविय श्वर्धमान पुर ॥ सा॰ विर पुरद नाडाद सौराष्ट्रव । ई विश्व कर्माट देश ॥२३०॥
अवरोळु मागधदन्ते ॥२३१॥ सवि विसिनीरिन बुग्गे ॥२३२॥ अवितिहुददरोळु रसवु ॥२३३॥ अवरुपयोगवु मुन्दे ॥२३४॥
य* शववु भारत त्रिकळिन्गवेनिसिद । रसेयेल्ल कन्नाडद व* वशगेय्दन्तर हदिनय्दु साविर । दिशेगे नूररवत्तेन्टून ॥२३५॥
मृ* नद 'अ' काव्यदोळेन्दु नाल्कीळिन् । टेनुवाग बन्दन्कव धा* जिनरूपिनाशेय कोनेगे श्रोम्बत्तन्क । एनुवष्टु (जिनर भूवलय) महाप्रातिहार्य ॥२३६॥

ऊ ८, ७४८+अन्तर १४, ८३२=२३, ५८० । अथवा अ—उ ग, ५२, ४४२+२३,५८०=१, ७६, ०२२ ।

नौवां अध्याय

'ऊ' तो नवम् अ क है। इसमे अतिशय ज्ञान भरा होने से ज्ञान साम्राज्य-काव्य भी कहते हैं। अनेक वैभवो को मङ्गलरूप से प्राप्त करने वाला पृथ्वी रूप पर्याय धारण करनेवाला और आत्मा का स्वरूप दिखाने वाले इस भूवलय के सिद्धान्त काव्य को आदि में नमस्कार करता हू ॥१॥

'भूवलय' के दो अर्थ हैं एक समस्त पृथ्वी और दूसरा आत्मा। समस्त पृथ्वी को भूलोक कहते हैं। लोक के बाहर अलोक को भी पृथ्वी ही कहते हैं। यह लोक त्रसनाली के अन्दर और बाहर रहता है। उन सवको जाननेवाला ज्ञान ही है। आत्मा ज्ञान धनस्वरूप है। ज्ञान का रस ही मगल प्राभृत रूपी इस भूवलय का प्रथम खण्ड है ॥२॥

सूर्य तो बाहर प्रकाश करता है और मन के अन्दर जो प्रकाश होता है वह ज्ञान-सूर्य है। उस ज्ञान-सूर्य में जिनेन्द्र देव की स्थापना करनी चाहिए। जैसे जिनेन्द्र देव समवशरण मे सिंहासन के ऊपर रहने वाले १००८ दल वाले कमल के ऊपर चार अँगुल अधर मे स्पर्श नही करते हुए कायोत्सर्ग मे खडा हुआ अथवा पल्यकासन मे बैठा हुआ ऐसे जिनेन्द्र देव की मन मे स्थापना करनी चाहिए। जब जिनेन्द्र देव जी की स्थापना मन मे होती है उस समय उनका पवित्र ज्ञान भी हमारे अज्ञान-तिमिर को नष्ट करता रहता है। उस जिनेन्द्र भगवान मे ३४ अतिशय रहते हैं। अष्टमहाप्रातिहार्य के स्वरूप को पहले कह चुके हैं। अब ३४ अतिशय का वर्णन करने वाला यह "ऊ" अध्याय है।३-४।

कर्मोदय से दुर्गन्धरूपी पसीना शरीर से निकलता है। घातिया कर्मक्षय में यह पसीना आना भगवान का वन्द हो गया। इसलिए भगवान का परमोदारिक दिव्य शरीर निर्मल है। उस परमोदारिक शरीर मे वहने वाला रक्त हमारे शरीर की भाति लाल नही है वल्कि उस रक्त का रङ्ग सफेद है। यह शुक्ल ध्यान की अन्तिम दिशा का द्योतक हैं। हड्डी की रचना में अनेक नमूने हैं। सवसे पहले की उत्तम हड्डी की रचना को वज्रवृषभ नाराचसहनन कहते हैं। जोड, आदि वज्र से वने रहने के कारण इसको वज्रवृषभनाराच सहनन कहते हैं। यह वज्रवृषभ नाराच सहनन उसी भव मे मोक्ष को जाने वाले प्राणी को होता है अन्य को नही। किसी तीक्ष्ण तलवार से आघात करने पर भी यह वज्रवृषभ नाराच सहनन से वना शरीर नष्ट नही होता है। दृष्टात के लिए भगवान वाहुवली देव का शरीर लीजिए। जब भरत चक्रवर्ती ने अद्भुत शक्ति मान चक्र रत्न को रणभूमि मे भगवान वाहुवलि पर छोडा तो वह चक्र कुछ नही कर सका, क्योकि वाहुवलि जी का शरीर वज्रवृषभ नाराच सहनन से वनाया हुआ था। यहा अतिशय जन्म से ही था ॥५॥

सस्थान अर्थात् शरीर की रचना को कहते हैं। सस्थान भी विभिन्न हैं। इनमे प्रथम समचतुरस्र सस्थान है। शिल्प शास्त्रानुसार समस्त लक्षण से परिपूर्ण अङ्ग रचना को समचतुरस्र सस्थान कहते है, अर्थात् प्रत्येक अङ्ग की लम्बाई चौडाई की समानता होने को समचतुरस्र सस्थान कहते हैं। इसके दृष्टान्त के लिएदक्षिण मे श्रवण वेलगोल मे रहने वाली वाहुवलि स्वामी की विशालकाय मूर्ति ही है। ऐसा शिल्पशास्त्र से वना हुआ होने से भगवान का रूप वर्णनातीत है और अतिशय काति वाला है। उनकी नाक चम्पे के पुष्प के समान है। श्रीमद् स्वस्तिका नन्द्यावर्ता आदि १००८ शुभ चिन्ह भगवान के शरीर मे दीख पडते हैं। और भगवान मे अनन्त वल तथा वीर्य रहता है। अनन्त वल अर्थात् चौदह रज्जु परिमित जगत को आगे पीछे हिलाने की शक्ति रहती है। लेकिन हिलाते नही। हिलाते रहे तो भगवान वच्चे के खेल खेलते हैं ऐसा कहने लगें।६ से ११ तक।

भगवान हमारी तरह मुँह खोलकर जीभ हिलाते हुए दातो का सहारा लिए वचन प्रयोग नही करते हैं। अपने सर्वांग से ही ये भाषण करते हैं। वह वचन वहुत सुन्दर होते हैं। जितनी वात करनी चाहिए उतनी ही करते हैं अधिक नही। वह भाषा मधुर होता है। यह दस भेद-(१) पसीना नही रहना [२] रक्त सफेद होना (३) वज्रवृषभ नाराच सहनन [४] समचतुरस्र सस्थान, [५] अनुपम रूप [६] चम्पा पुष्प के समान नासिका [७] १००८ शुभ चिन्ह, (८) अनन्त वल [९] अनन्त वीर्य [१०] मधुर भाषण भगवान में जन्म सिद्ध हैं तथा स्वाभाविक हैं। इसको जननातिशय कहते हैं।

इन दस अतिशयो को ध्यान मे रखते हुए भगवान के दर्शनकरना भगवान के जन्मातिशय का दर्शन करना है। भाव शुद्धि से यदि दर्शन करें तो शरीर मे रहने वाले रोग नष्ट हो जाते हैं। १००८ पंखुडियो के अग्रभाग मे रहने वाले जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से अपने शरीर मे भी वह स्थिति प्राप्त होती है। महर्षि इस प्रकार दस अतिशयों से युक्त जिनेन्द्र भगवान की उपासना करते हैं। शरीर की ऊंचाई की अपेक्षा न रखते हुए महिमा की अपेक्षा से महोन्नत शरीर वाले भगवान की पूजा करते हैं। जब इस रीति से जिनेन्द्र भगवान को अपने मन में धारण करके प्रसन्नता से व्यावहारिक कार्य करें तो कार्य की सिद्धि होती है। इतना ही नही बल्कि पारा [एक धातु] की सिद्धि भी हो जाती है। भगवान के शरीर को इस दस सिद्धि अतिशय को गुणन क्रम से सम और विषमाक को लेकर गिनती करते जाए तो परमोत्कृष्ट (Higher Mathe matics) गणित शास्त्र का ज्ञान भी हो जाता है उपरोक्त रीति से भगवान की आराधना करे तो बुद्धि ऋद्धि की कुशाग्रता भी प्राप्त होती है। । ६ से २२ तक।

अध्यात्म रस परिपूर्ण रत्नत्रयात्मक यह देह है।२३।

यही वृषभादि महावीर पर्यन्त तीर्थंकरो की देह है।२४।

ऐसा विशालकाय यह भूवलय ग्रन्थ है।२५।

एकसो योजन तक सुभिक्ष होकर उतने ही क्षेत्र मे होनेवाले जीवो की रक्षा होती है। भगवान का समवशरण आकाश मे अधर गमन करता है। ।२६।

हिंसा का अभाव, भोजन नही करना, उपसर्ग नही होना, एक मुख होकर भी चार मुख दीखना, आखो की पलक नही लगना।२७।

समस्त विद्या के अधिपति, नाखून नही बढना, बाल जैसा का वैसा ही रहना अर्थात् बढना नही तथा अठारह महाभाषा ये भगवान के होती हैं।२८।

इसके अतिरिक्त सातसो छोटी भाषायें और सइनी जीवो के अक्षरों से मिश्रित अक्ष भाषायें और भव्यजनो सम्पूर्ण जीवो को उन्ही के हितार्थ विविध भाषाओ में एक साथ उपदेश देने की शक्ति भगवान मे विद्यमान रहती है।२९।

संसारी जीवों के मन को आकर्षित करने की शक्ति तथा, समुद्र की लहरों मे उठने वाले शब्द के समान भगवान की निकलने वाली दिव्य ध्वनि है। यह दिव्यध्वनि प्रात, मध्यान, शाम को इस प्रकार तीन सध्या समय में निकलती है। और यह दिव्यध्वनि ६ घड़ी प्रमाण तक रहती है। इसके अतिरिक्त यदि कोई भव्य पुण्यात्मा जीव प्रश्न पूछता है तो उनके प्रश्न के अनुकूल ध्वनि निकलती है।३०।

संसारी जीवों की जब ध्वनि निकलती है तब तो होठ के सहारे निकलती है। परन्तु भगवान की दिव्य ध्वनि इन्द्रियादि होठ से रहित निकलती है।३१।

भगवान की दिव्यध्वनि दांत से रहित होकर निकलती है।३२।

भगवान की दिव्य ध्वनि तालू से रहित होकर निकलती है।३३।

अनेक भव्य जीवों को एक समय में ही जिनेन्द्र देव सभी को एक साथ उपदेशपान कराते हैं।३४-३५।

एक योजन की दूरी पर बैठे हुए समस्त जीवो को भगवान की दिव्य वाणी सुनाई देती है।३६।

शेष समय में गणधर देव के प्रश्न के अनुसार उत्तर रूप दिव्य ध्वनि निकलती है।३७।

इस प्रकार से भगवान की अमृतमय वाणी जब चाहे तब भव्य जीवों को सुनाई देती है।३८।

मानव में जो इन्द्र के समान चक्रवर्ती हैं उन चक्रवर्ती के प्रश्न के अनुसार उत्तर मिल जाता है।३९-४०।

आदि से लेकर अन्त तक समस्त विषयो को कहनेवाली यह दिव्य ध्वनि है।४१।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। ये ६ द्रव्य जिस जगह रहते हैं उसको लोक कहते हैं। दिव्य ध्वनि इन सम्पूर्ण ६ द्रव्यो के स्वरूप का विस्तार पूर्वक वर्णन करती है।४२।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

भगवान की दिव्य वाणी इन सात तत्वो का वर्णन करती है ।४३।

सात तत्त्वो मे पुण्य और पाप को मिलाने से ९ तत्त्व होते हैं। भगवान की दिव्य वाणी उन ९ तत्त्वो का वर्णन करती है ।४४।

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पाच पचास्त काय का भी वर्णन करती है ।४५।

इन सवको प्रमाण रूप से बतलाने के समय सुन्दर २ मार्मिक तत्व का वर्णन करती है ।४६।

जिनेन्द्र भगवान की दिव्य ध्वनि से ही यह दिव्य वाणी निकलती है अन्य के सहारे से नही ।४७।

यह दिव्य वाणी भगवान जिनेन्द्र देव की वाणी द्वारा निकलने के कारण अन्तिम प्रमाण रूप भूवलय शास्त्र है ।४८।

उपर्युक्त समस्त दस अविराम दुनिया को आश्चर्य चकित करने वाली हैं। अरहत भगवान को घाति कर्मके (ज्ञानावर्णीय, दर्शनावर्णीय, मोहनी, अन्तराय) नाश होने से केवल ज्ञान की उत्पत्ति होती है और केवल ज्ञानके साथ ही इन दस अतिशयो के उत्पन्न होने से इसका नाम घाति क्षय और जाति क्षय भी है ।४९।।

जो क्षेत्र में भी कर्म रह गये तो यह अतिशय आत्मा को नही मिलता। ये आठ कर्म निर्मूल करने के मार्ग हैं और इसलिए इसका नाम घाति क्षय, और जाति क्षय पडा ।५०।

जीव को जव अरहत पद प्राप्त होता है तव अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुख इत्यादि अनन्त गुण प्राप्त हो जाते हैं। उन अनन्त गुणो से, आत्मा करोडों चन्द्र सूर्य प्रकाश जैसा तेजोनिधि हो जाता है। ऐसे अरहत भगवान की पूजा करते हुये पारा की सिद्धि करने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है ।५१।

नवकार मत्र के आदिमे तीन अक हैं, तीन को तीन से गुणा कर दिये तो विश्व का समस्त अङ्क नौ आ जाता है। नौ का परिज्ञान ही दिव्य चक्षु है, और नौ अङ्क का विवरण करने से ही विश्व का समस्त दृष्टि भेद अर्थात् तीन सौ त्रेपठ धर्म का और उनमें रहने वाले भेद और अभेद का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् अरहत सिद्धादि नव पद का अतिशय वस्तु रूप यह भूवलय ग्रन्थ है ।५२।

३×३ = ९ यह अतिशय से युक्त दिव्य चक्षु का प्रभा से यम धर्मराज (मृत्यु) भाग जाता है ।५३।

यह वस्तु नामक ज्ञान चक्षु अरहत सिद्धादि नवकार मन्त्र का आदि मन्त्र है ।५४।

ज्ञानियो के अन्तर्गत ज्ञानरूपी विश्व का साम्राज्य यह भूवलय है ।५५

ज्ञानियो के ज्ञान में झलकने वाली नव नवोदित दिव्य ज्योति रूप यह महा काव्य है ।५६।

कवियो की कल्पना मे न आनेवाला दिव्य रूप यह काव्य है ।५७।

इस ग्रन्थ का सर्वावियव अर्थात् सभी भाषाओ का ग्रन्थ परम पवित्र है ।५८।

यह सभी भाषाओ का ग्रन्थ ससारापहरण का मुख्य मार्ग है ।५९।

समवशरणादि महावैभव को दिखलाने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।६०।

यह भूवलय ग्रन्थ दिगम्बर मुनियो के समान निरावरण है ।६१।

यह काव्य मिष्ट वचन रूपी जल विन्दु से भरा हुआ ज्ञान का सागर है ।६२।

यह काव्य नव पद भक्ति को शुद्ध करनेवाला है ।६३।

यह भूवलय ग्रन्थ नव पद भक्ति द्वारा प्राप्त होने वाले फल को देने वाला हैं ।६४

नव पद के ज्ञान से समस्त भूवलय का ज्ञान आ जाता है ।६५।

नव अक की सम्पूर्ण सिद्धि ही चारित्र की सिद्धि है ।६६।

यह भूवलय ग्रन्थ अवसर्पिणी काल के समस्त विषयो को दिखाता है ।६७।

यह काव्य अवसर्पिणी काल का सर्वोत्कृष्ट भव्याक रूपी है ।६८।

इस काव्य के अध्ययन मे गणित शास्त्र का मर्म मालूम होकर ९ अङ्क २ अङ्क से विभाजित हो जाता है ।६९।

इस रीति से समस्त विद्याओ को प्रदान करके अन्त में भव विनाश करके सिद्धि पद को देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।७०।

देव गण भगवान् के १३ अतिशयों को करते हैं। उसमें पहले के अतिशय सख्यात योजन तक रहने वाले सभी जगली वृक्षों में पत्ते, पुष्प, फल आदि एक ही समय मे लग जाते हैं और उतनी दूर तक एक भी कांटा तथा कण मात्र रेत का सचार न हो, ऐसी हवा चलने लगती है।

कामधेनु के द्वारा अपने घर के आगन मे अनेक सामान की प्राप्ति तथा पवन कुमार द्वारा चलने वाली अत्यन्त सुखकारक और आनन्ददायक हवा का चलना दूसरा अतिशय है।

समवसरण में सिंह, हाथी, गाय, पक्षी, सर्प इत्यादि ने अपने परस्पर वैर को छोडकर जैसे एक ही जगह मे रहते हैं वैसे अपने कुटुम्ब इत्यादिक जन वैर-रहित आपस में प्रेम से अपने-अपने स्थान मे रहना तीसरा अतिशय है।

जैसे विवाह मडप के बीच वर वधू को विठाने के लिए नव रत्न मे निर्मित वेदिका तैयार की जाती है उसी तरह स्फटिक मणि के प्रकाश के समान चमकने वाली यह भूमि चौथा अतिशय है। समवशरण मे रहने वाला यह चौथा अतिशय कवि लोगों के द्वारा भी अवर्णनीय है।७१-७६।

उस भूमि के अतिशय को पाच पांच हाथ के नौ पाट के विभाग तक किया गया है।

अन्तर श्लोक का विवेचन—उपर्युक्त ६ भागो का विवेचन शिल्पशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। शिल्प शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि ऊपर के नियम से ही मठ, मन्दिर तथा महल मकान आदि बनाना चाहिये, क्योंकि यदि ऐसा न होकर कदाचित् अग्नि कोड मे मकान एक इच भी शास्त्रोक्त नियम से अधिक हो जाय तो गृह एव गृह स्वामी दोनो के लिए अनिष्ट होता है। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्रानुसार भली भाति शोधकर भवन निर्माण किया जाय तब तो ठीक है किन्तु यदि ऐसा न करके सूर्य चन्द्रादि नवग्रहों के विपरीत स्थान में बनाया जाय तो वह भी महान कष्टदायक होता है।७७।

वन वाटिका में दवन, जुही, मालती (मोल्ले) आदि सुगधित पुष्पो के समूह रहते हैं।७८।

इसी प्रकार गन्ध माधव (गन्ध मादन) पुष्प भी उस पुष्प वाटिका में रहता है।७६।

इसी भांति नव जात गध माधव लता भी वहा रहती है।८०।

यहां पर सुविशाल रूप से फैली हुई चित्रवल्ली नामक बेला भी रहती है।८१।

विवेचन —श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने इस चित्रवल्ली नामक लता का वर्णन श्री भूवलयान्तर्गत चतुर्थ खण्ड में विस्तृत रूप से किया है और उसके संस्कृत विभाग में आया है कि—

नम श्री वर्धमानाय विश्व विद्याऽवभासिने।
चित्रवल्ली कथाख्यानं पूज्यपादेन भासितम ॥

विश्व विद्या के प्रकाशक श्री वर्धमान भगवान् को नमस्कार करके श्री पूज्य पाद स्वामी ने चित्रवल्ली का व्याख्यान किया है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सूचित किया है कि इसी प्रकार मगल प्राभृत के समस्त विषयों को सभी जगह जानना चाहिये।

समवशरण के अन्तर्गत पुष्प वाटिका भित्ती के ऊपर चम्पा पुष्प का भी वर्णन किया गया है।

नोट—इस चम्पक पुष्प के विषय मे श्री समन्तभद्राचार्य ने बडे सुन्दर ढग से वर्णन किया है।८२।

इसी प्रकार गन्धराज [सुगन्ध राज] का मेला भी वहा चित्रित है।८३।

कमल पुष्प के जल कमल, थल कमल आदि अनेक भेद हैं। उन सबका चित्र समवशरण मे चित्रित है।८४।

वहा पर समस्त पुष्पो की कली चित्रित रहती है।८५।

कामकस्तूरी की टोकरी भी वहा बनी रहती है।८६।

उस वाटिका में कर्नेल के श्वेत और रक्त वर्ण के पुष्प बने रहते हैं।८७।

वहा पर नव मालती और मुडिवाल् भी भित्तिका मे चित्रित हैं।८८।

पाशा खेल में प्रयुक्त बन्धूक, ताड वृक्ष के चित्र तथा केतकी पुष्प,

भूपादरी आदि पुष्पों का समूह पृथ्वी के ऊपर अक्ष रेखा के समान प्रतीत होता है। इस समवशरण का वर्णन करने वाला यह भूवलय है।८६-६३।

विवेचन—भूवलय के चतुर्थ खण्ड में श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने श्री समन्त भद्राचार्य के श्लोको द्वारा केवडा पुष्प का विशेष महत्व दिखलाया है। उन श्लोको का वर्णन निम्न प्रकार से है—

"कुप्या तं भरिताग्र केतकिसुमुं कर्षोन्मुखे कुंजरम।
चक्रं हस्तपुटे समन्त विधिना सिंधूर चन्द्रामये।।

इत्यादि रूप से रहने पर विज्ञान सिद्धि के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। अत इन श्लोको का विशेष लक्ष्य से अध्ययन करना चाहिए। नित्य नये-नये सुगधित गुलाब जल की जो वृष्टि श्री जिनेन्द्रदेव के ऊपर अभिषेक रूप से होती है वह सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देवो द्वारा होती है। ६४।

यह जलवृष्टि पाचवा अतिशय है। इसे देव अपनी वैक्रियिक शक्ति द्वारा बनाते हैं, फल भार से नम्रीभूत शाली [जडहन] की पतली तथा हरे रग की जड पृथ्वी पर उगना छठवा अतिशय है। विविध जीवो को सदा सौख्य देना सातवा अतिशय है।६५।

देवगण अपनी विक्रिया शक्ति से चारो ओर ठण्डी वायु फैला देते हैं। यह आठवा अतिशय है। तालाब तथा कुयें में शुद्ध जल पूर्ण होना नौवा अतिशय है।६६।

आकाश प्रदेश मे बिजली [सिडलु], काले बादल उल्कापात आदि न पडना १०वा अतिशय है। सभी जीव रोग रहित रहे, यह ११वा अतिशय है।६७।

समवशरण के चलने के समय मे सभी जीव हर्षित रहते हैं।६८।

समवशरण के विहार के समय में सभी जीव अपनी आलस्य को त्याग कर प्रसन्न चित्त से रहते हैं।६६।

रोगादि बाधाओ से रहित होकर सभी जीव सुखपूर्वक रहते हैं।१००।

समवशरण में आते ही सभी जीव माया मोह इत्यादि सांसारिक ममता से विरक्त हो जाते हैं और उनको समवशरण के प्रति आस्था हो जाती है।१०१

समवशरण में सभी जीव मृत्यु की बाधा से रहित रहते हैं।१०२।

सासारिक जीवो को चलते, फिरते उठते बैठते आदि प्रकार के कारणो से कष्ट मालूम पडता है परन्तु समवशरण के अन्दर आने से सभी कष्टो से जीव रहित हो जाता है।१०३।

बहुत से व्यक्तियो मे समवशरण को देखते ही वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वैराग्य पैदा होते ही वे लोग दीक्षा ले लेते हैं।१०४।

ससार में रहते हुए कई जीव अनादि काल के कर्म रूपी धन को अपना समझ करके उसी मे रत रहते हैं परन्तु वे जीव समवशरण के अन्दर आते ही उस कर्म रूपी धन से विरक्त हो गये।१०५।

समवशरण मे रहनेवाले जीवो को आलस्य नही रहता है।१०६।

समवशरण में रहनेवाले जीव राग द्वेष से रहित रहते है।१०७।

समवशरण मे रहनेवाले जीवो के मार्ग मे किसी भी प्रकार की अडचनें नही पडती हैं।१०८।

वहा रहनेवाले जीवो को सर्वदा सुख ही मालूम पडता है।१०६।

वहा रहनेवाले जीवो को किसी भी कार्य मे आतुरता इत्यादि नही रहती।११०।

वहा रहनेवाले जीवो को सताना दुःख इत्यादि किसी भी प्रकार की बाधायें नही रहती हैं।१११

समवशरण मे रहनेवाले जीवो को धर्मानुराग के अतिरिक्त अन्य आलोचना नही रहती है।११२।

हम बहुत ऊपर आगये हैं नीचे किस प्रकार से उतरे इस प्रकार की आलोचना भी जीवो को नही रहती।११३।

वहा रहने वाले जीवो को दरिद्रता का भय नही रहता है।११४।

हम स्नानादि से पवित्र हैं। और वह स्नानादि से रहित है इस प्रकार की शकायें मन के अन्दर नही पैदा होती हैं।११५।

बहुत वर्णन करने की आवश्यकता नही वहा पर सभी जीव सुख पूर्वक रहते हैं।११६।

६ अक्षर अर्थात् ६ प्रकार के द्रव्यो का वर्णन इस भूवलय मे है।११७।

कामांन - रत्न रचित चार
है।११८।
त्य नामक छन्द जिस
हुवा अतिशय है और ३२
पक्ति रूप रहनेवाला स्वर्ण
- वाद पीठ मे रक्खी हुई पूजन
ला चौदहवा अतिशय है।११९-

मग्री और उपकरण इन दोनो को
शय हो जाता है। इन सब अतिशयो का वर्णन
त् विद्वान् कौन हैं।१२१।
न करनेवाले कवि लोग इस पृथ्वी पर कही भी

इस प्रकार का व्यक्ति पृथ्वी पर कहा है बताओ।१२३।

यदि नये मार्ग का ज्ञाता हो तो उनसे भी पूरा वर्णन नही हो सकता है।१२४।

जिनेन्द्र भगवान का बताया हुआ मार्ग धर्म को लक्षण देनेवाला है।१२५।

यह भूवलय का जो अ क है वह अ क प्राणी के कष्ट को दूर करने वाला है।१२६।

यह अ क भद्र स्वरूप है और मगल रूप है।१२७।

जिनेन्द्र भगवान को शिव शब्द से भी कहने से यह समवशरण कैलाश भी है।१२८।

जिनेन्द्र भगवान को विष्णु कहते हैं इसलिए समवशरण वैकुठ भी है।१२९।

इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान को ब्रह्मा भी कहते हैं-इसलिए यह समवशरण सत्य लोक भी है।१३०।

यह समवशरण जनता का सर्वार्थ सिद्धि साधक होने से सर्वार्थ स्वर्ग भी यही है।१३१।

जनता को सब अ क के दिखलानेवाला होने के कारण यह समवशरण सर्वाङ्क सिद्धि भी है।१३२।

समवशरण में कोटि चन्द्र और कोटि सूर्य का प्रकाश भी रहता है। ।१३३।

स्वर्ण मे रत्न मन्डित होकर तोरण मे विराजमान रहता है।१३४।

उन तोरणो मे पारा को सिद्ध करके बनाया हुआ मणि भी लटका हुआ रहता है।१३५।

जिस प्रकार समस्त दुर्गुणो को विनाश करनेवाला रत्नत्रय है इसी प्रकार रसमणि भी जनता के दरिद्रता को नाश कर देती है।१३६।

स्वर्ण तो हल्दी के रग के समान रहता है उस वर्ण को दूध के समान सफेद बनानेवाला यह पारा का मणि है।१३७।

विवेचन—इसी भूवलय में आने वाले श्री समतभद्र आचार्य के वचनो को देखिये।

स्वर्णश्वेतसुधामृतार्थं लिखिति नानार्थरत्ना कर्मं। अर्थात् सफेद स्वर्ण बनाने की विधि अनादि काल से जैनाचार्य को मालूम थी। आज कल इसको पलाटिनम् कहते हैं और वह पल्टी पलाटिनम् बहुमूल्य हैं।

अन्तिम में आत्मसिद्धि को प्राप्त करनेवाला यह समवशरण भूमि है।।१३८।।

लडके लडकियो को अर्थात् समस्त बन्धु बान्धवो को त्याग कराने वाला यह काव्य है।।१३९।।

राक्षस और किन्नर इत्यादि देव लोगो ने इस समवशरण को बनाने की विद्या को सीखा है। उस विद्या को बतलाने वाला यह भूवलय काव्य है।।१४०।।

इस प्रकार भव्य जीवो के पुण्य से बनाया हुआ महल रूपी यह भूवलय ग्रन्थ है।।१४१।।

भवनवासी, व्यन्तरवासी, भवनामर, व्यन्तरामर, ज्योतिपक और स्वर्ग

लोक के सभी देव अर्थात् श्री महावीर भगवान के भक्त जन कलकलाहट के साथ जै जै शब्द का गाना गाते हैं ॥१४२॥

सम्पत्ति युक्त मंगलप्राभृत महाकाव्य के रास्ते से श्री गुरु वीरसेन आचार्य के मतिज्ञान में मिले हुए अरहत भगवान का केवल-ज्ञान ही यह भूवलय ग्रन्थ है ॥१४३॥

ऊपर कहे हुये ३४ अतिशय यदि अपने वश मे हो जायें तो ऋषियो के मार्ग से धर्म धारण हो जाता है। तत्पश्चात् असदृश ज्ञान विकसित होकर आत्मा को मोक्ष सिद्धि हो जाने के समान भाव बढ जाता है ॥१४४॥

ऐसा ज्ञान बढ जाने के बाद हमे (कुमुदेन्दु मुनि को) अर्थात् श्री वीरसेनाचार्य के शिष्य को भूवलय जैसे महान् अद्भुत काव्य की कथा विरचित्त करने की शक्ति उत्पन्न हो गई और श्री जिन सेनाचार्य का ज्ञान सहायक हुआ। इसीलिए इस भूवलय काव्य की रचना में हमारा अपूर्व पुण्य वर्धन हुआ। इसका नाम वस्तु है ॥१४५॥

इस भारत के कोने २ मे धर्म की अवनति दशा में श्री जिनेन्द्रदेव का भक्त मान्यखेट का राजा श्री जिनदेव का भक्त अमोघवर्ष नामक राजा ने ॥१४६॥

नव पद भक्ति प्रदान करके समस्त जनता को धर्म मे श्रद्धा उत्पन्न कराके धर्म की स्थापना की। उन समस्त धार्मिक प्रजाओं में भव्य जीव और भव्यो में आसन्न भव्य अपने भव्यत्व लक्षण को प्रकट करते हुये नवमाक सिद्धि हमें प्राप्त हो गई; ऐसा जानकर बडे आनन्द के साथ रहने लगे ॥१४७॥

विवेचन—कन्नड भाषा में प्रकट हुये भूवलय ग्रन्थ के उपोद्धात में राष्ट्रकूट राजा नृपतुङ्ग को अमोघवर्ष मानकर उपोद्धात कर्त्ता ने श्री कुमुदेन्दु आचार्य के समय को ८ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग अर्थात् कृस्ताब्द ७८३ माना है। अब उन्ही महाशय ने इस नवम अध्याय की अथवा ४० अध्याय मे ऊपर के विषयो का अध्ययन करते हुए कुमुदेन्दु आचार्य नृपतुङ्ग के गुरु नही, बल्कि गग वश के राजा प्रथम शिवमार गुरु थे। उस शिवमार ने हैदरावाद के मडखेड नही, मैसूर प्रात के बेंगलोर से ३० मील दूरी पर मण्णे नामक ग्राम में राज्य किया। उनका समय कृस्ताब्द लगभग ६८० वर्ष था। इसलिये श्री कुमुदेन्दु आचार्य का समय ७८३ वर्ष नही बल्कि ६८० वर्ष है।

दूसरे शिवमार के पास अमोघ वर्ष नामक पदवी थी। उसे राष्ट्र कूट नृपतुङ्ग ने युद्ध में पराजित करके कारागार मे डाल दिया था। चाहे वे वही पर ही मर गये हो पर ऐसी विकट परिस्थिति मे भूवलय जैसे महान् ग्रन्थ का उपदेश वे कैसे दे सकते थे ? कदापि नही। किन्तु प्रथम शिवमार ने सम्पूर्ण भरत खण्ड को अपने स्वाधीन करके हिमवान पर्वत के ऊपर अपना विजय-ध्वज फहराया था इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रथम शिवमार ही श्री कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य थे।

अभिप्राय यह निकला कि कुमुदेन्दु आचार्य का समय प्रथम शिवमार का था, न कि द्वितीय का। इस विषय में इतिहास वेत्ताओ की मत्रणा से मैसूर विश्व विद्यालय के अन्तर्गत की गई वार्तालाप का विवरण सक्षेप से यहा दिया गया है।

आचार्य कुमुदेन्दु द्वारा विरचित श्री भूवलय—

ऐतिहासज्ञो का कथन है कि १८-७-५७ को एक वातचीत में वाइस चासलर डा० के० वी० पुटप्पा ने उनसे यह भाव प्रकट किया कि यदि कुमुदेन्दु विरचित श्री भूवलय का सक्षिप्त विवरण ३६ देशो के विद्वान और विद्यार्थियो की विश्व विद्यालय सेवा समाज मे, जो कि २५-७-५६ को मैसूर में होने वाली थी, प्रस्तुत किया जाय तो अधिक उचित हो।

जव श्री भूवलय के कुछ हस्तलेख और छपे हुए लेख भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी को दिखाए गए तो उन्होने अचानक इसे विश्व का आठवां आश्चर्य वताया और एक वाद-विवाद के समय डा० पुटप्पा ने कहा कि श्री भूवलय ग्रन्थ को विश्व का प्रथम आश्चर्य भी कह सकते हैं।

लेकिन दुर्भाग्य का विषय है कि इतना आश्चर्य जनक ग्रन्थ मैसूर रियासत तथा इसके बाहर के बहुत कम विद्वान तथा अन्वेषणकारी ही जानते हैं जो कि अभी भी इसके आश्चर्य से पूर्ण परिचित न होते हुए अपना मार्ग खोजने की कोशिश में हैं।

आज विश्व के अनेकों विद्वान महत्वपूर्ण प्रयत्नो द्वारा विभिन्न नवीनताओ की खोज में लगे हुए हैं। अत यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि

भाषाओ के जन्म और विकास पर भी ध्यान दिया जाय। हमारा प्राचीन साहित्य, विज्ञान, आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र, धर्म, इतिहास, गणित आदि यदि पुन प्रकाश में लाए जाएँ तो मानव जाति की अधिक उन्नति और उद्धार हो।

ऐसा कहा जाता है कि श्री कुमुदेन्दु जी बेंगलोर से ३८ मील दूर नन्दी पर्वत के समीप 'येलेवाली' के निवासी थे और भूवलय ग्रन्थ में यह स्पष्ट रूप से वर्णित है कि श्री कुमुदेन्दु आचार्य राष्ट्रकूट के राजा अमोघ वर्ष और शिवमार गंग राजा के धर्म प्रचारको के गुरु थे।

श्री भूवलय ८ — १२६, ६ — १४६
 ८ — ६६, और ७२

और यह भी वर्णित है कि प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ "धवल" के लेखक श्री वीरसेन जी भूवलय के रचयिता श्री कुमुदेन्दु जी के गुरु थे। ध्यानपूर्वक गणना के पश्चात् इस बात की जाच की गई है कि वीरसेन के धवल ग्रन्थ की समाप्ति के ४४ वर्ष पश्चात् उनके शिष्य कुमुदेन्दु जी ने अपना स्मरणीय ग्रन्थ श्री भूवलय को लिखकर समाप्त किया था।

लेकिन विद्वानो में धवल ग्रन्थ की समाप्ति और कुमुदेन्दु जी के जीवन काल तथा भूवलय की समाप्ति के समय के विषय में पर्याप्त अन्तर है। अत समय को ध्यान में रखते हुए उनके विचारो में काफी विवाद है।

प्रो० हीरालाल जैन और डा० एस० श्री कन्था का विचार है कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ८१६ के लगभग समाप्त हो गया होगा, जबकि जे० पी० जैन कहते हैं कि धवल ग्रन्थ ई० सन् ७८० के लगभग समाप्त हुआ था तथा अन्य विद्वानो का कथन है कि धवल ६३६ ई० में समाप्त हुआ था।

समगद (Samangada) शिलालेख से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रकूट राजवश ई० सन् ७५३ मे राज्य कर रहा था।

तृतीय राष्ट्रकूट राजा गोविन्दा जो कि सर्वख्या अमोघवर्ष का पिता था ई० सन् ८१२ के अपने एक शिलालेख मे लिखता है। डेन्टीदुर्गा भी अमोघ नाम से पुकारा जाता था और इस शिलालेख के समय सर्वख्या अमोघवर्ष एक बालक ही था इसलिए विद्वान निश्चित रूप से इस विषय का ज्ञान नही कर सके हैं कि वह कौनसा अमोघवर्ष था जिसे गोविन्दा राजा का पुत्र मानकर 'भूवलय ग्रन्थ' पढाया गया था।

यह एक मान्य ऐतिहासिक सत्य है कि प्रथम शिविमार जोकि सत्यप्रिय भी पुकारा जाता था और नवकामा ने ई० सन् ६७६ से ई० सन् ७२६ तक राज्य किया था।

वीरसेन ने अपने धवल ग्रन्थ को विक्रमी राज्य (अट्टाठीसाम्मी शिष्म विक्रम राय) के ३८ वें साल मे समाप्त किया और यह विक्रम राय वही है जो कि गग राजा विक्रम था। और सभी इतिहासज्ञो ने इसको भी सत्य-रूप ही मान लिया है कि विक्रम राजा ६०८ ई० में गद्दी पर बैठा था।

कनाडी भाषा का शब्द "अट्टावीसाम्मी" कुछ विद्वानो द्वारा "अट्टाटीसाम्मी" भी पढा गया है।

श्री विक्रम राजा ई० सन् ६०८ मे राजगद्दी पर बैठा था और यदि ई० सन् ६०८ में २८ साल जोड दिए तो "धवल ग्रन्थ" की पूर्ति का समय सन् ६३६ पडता है। नक्षत्र स्थिति जो कि "धवल" की पूर्ति के दिन वर्णित की गई थी वह कार्तिक सुदी त्रैयोदशी एक सम्वत् ५५८ को सिद्ध करने से ठीक ई० सन् ६३६ ठहरता है।

कुछ विद्वान सोचते हैं कि "श्री भूवलय" का समय ७ वी शताब्दी के अतिम चौथाई मे होगा जवकि दूसरे विद्वान कहते हैं कि इसका समय दसवी अर्ध शताब्दी होगा, कुछ अन्य विद्वानो का कथन है कि 'श्री भूवलय ग्रन्थ' का समय सगथ्या पीरियड में अर्थात् १२ वी या १३ वी शताब्दी रहा होगा। क्योकि कुमुदेन्दु द्वारा रचित "श्री भूवलय ग्रन्थ" सगत्या छद में ही लिखा हुआ है। और कुछ यहा तक भी कहते हैं कि यह ग्रन्थ अभी थोडे ही समय का पुराना है अधिक नही क्योकि श्री भूवलय की भाषा आधुनिक कन्नड भाषा से मिलती जुलती है।

समय की कमी के कारण अधिक विस्तार में न जाकर में इसी बात पर जोर देना चाहता हू कि सगथ्या छद बारहवी और इसकी बाद की शताब्दी का नही है जैसा कि कुछ व्यक्ति गलती से सोचते हैं।

जिनसेन (Jinasene) अपने महापुराण मे कहते हैं—

यमि समम् तलम् रारॉसु सॉंगत्य एव सगतिहि ॥

वह यह भी कहते हैं कि सगथ्या एक वहुत पुराना छद था जिसका प्रयोग उनसे पहले होने वाले भी बहुत से वडे वडे कवियो ने किया था। स्वीकृत समय जिनसेन के महापुराण का नवी शताब्दी का प्रथम चौथाई भाग है।

और आधुनिक कन्नड भाषा का प्रयोग इस ग्रन्थ को अपनी प्राचीनता से नही हटा सकता क्योकि आधुनिक कन्नड भापा की तरह की ही भापा निम्नलिखित शिलालेखो में मिलती है—

(१) भूविक्रम का बीडारपुर शिलालेख।

(२) नीति मार्ग का नरसापुर ग्रन्थ। अत पाठको को इस ग्रन्थ की पौराणिकता पर विश्वास करना ही पडेगा।

इस ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता के समय के विषय मे जो विवाद है उसका प्रधान कारण चार अमोघवर्पों का होना है। डैन्टीदुर्गा भी अमोघवर्प ही पुकारा जाता था। और शिवमार जोकि कुमुदेन्दु जी से सम्वन्धित था वह पहला शिवमार ही है द्वितीय नही।

अव ग्रन्थ को ही लीजिए। कुमुदेन्दु जी ने कन्नड भापा के ६४ वर्ण बताए हैं जिनमें ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भी मिले हुए हैं और अपना गणित विभाग तथा पूर्ण ग्रन्थ कन्नड, प्राकृत, सस्कृत, मागधी, पैशाची, तामिल, तैलगू आदि भाषाओ मे लिखा।

डा० एस०, श्रीकान्त जी कहते हैं कि यदि भूवलय के प्रकाशित भाग (चैप्टर १-३३) का सतोपजनक अध्ययन किया जाए तो निम्नलिखित वाते इस ग्रन्थ से पता लगती हैं—

(१) कन्नाडो भापा और उसके साहित्य का ज्ञान कराने के लिये यह ग्रन्थ प्राचीन ग्रन्थो में से एक है तथा अन्य अनेको विद्वानो के ग्रन्थो के विपय में भी, जो कि क्रिश्चियन शताब्दी के प्रारम्भ में हीं लिखे गये थे, ज्ञान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिये यदि यह ग्रन्थ पूर्ण प्रकाशित हो जाये तो चूडामणि जैसे प्राचीन विद्वानों के ग्रन्थो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

(२) सस्कृत, प्राकृत, तामिल और तैलगू भापा के इतिहास के लिये यह हमारी आखे खोलने वाला ग्रन्थ है।

(३) हमारे भारतीय दर्शन और धर्म तथा विशेप तौर से जैन धर्म को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए यह अपूर्व ग्रन्थ है, इससे प्राप्त सिद्धान्त आज भी हमारे विचारो को विशुद्ध कर हमे सद्मार्ग पर ला सकते हैं।

(४) कर्नाटक और भारत के राजनैतिक इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ग्रन्थ एक नवीन सामग्री प्रदान करता है। क्योंकि इसमे राष्ट्रकूट के राजा अमोघवर्प और गग राजा सैगोत शिवमार के विपय मे वर्णन है।

(५) भारतीय गणित शास्त्र के इतिहास के लिए यह ग्रन्थ विशेप महत्व रखता है। वीरसेन जी की 'धवल ग्रन्थ' की टीका के आधार पर जो आजकल जैन गणित शास्त्र और ज्योतिप शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया गया है उससे पता लगता है कि अधिक पहले नही तो नवी शताब्दी मे ही भारतीयो ने गणित के अनेको तरीके—स्थानाक मूल्य (Place value) जोड के तरीके, समयोग भग, विभाजन के विशेप तरीके, परिवर्तन के नियम, ज्यामिति और रेखा गणित के नियम (Geometrical and mensuration formulas) अनताक गणित विधि—(Theouries of Infinily) प्रथम समयोग, द्वितीय समयोग आदि (The value of Permutation and combination) को भी जानते थे। कुमुदेन्दु जी का ग्रन्थ 'भूवलय' वीरसेन जी के ग्रन्थ से भी कही अधिक महत्वपूर्ण और आगे है। इस ग्रन्थ के लिए गम्भीर अध्ययन को आवश्यकता है।

(६) हिन्दुओ के स्पष्ट विज्ञान के लिए भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण सहायता देता है क्योकि इसमे अणु विज्ञान (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), जीव-विद्या (Biology), औपध शास्त्र (प्राणव्य और आयुर्वेद), भूगर्भ शास्त्र (Geology), ज्योतिप शास्त्र (Astronomy) इत्यादि का वर्णन है।

(७) भारतीय कला का इतिहास भी यह ग्रन्थ वतलाता है क्योकि यह भारतीय मूर्तिकला, चित्र कला तथा (Ioonography) के लिए एक अपूर्व साधन है।

(८) रामायण, महाभारत और भगवद्गोता के दोहो की ओर भी विशेप ध्यान दिया जाना चाहिए, जोकि इस प्रकार से गुंथे हुए हैं कि यह पहचानना कठिन हो जाता है कि इसमे आधुनिक व्यक्तियो ने कितने नए क्षेपक

(झूठे पद अपनी तरफ से मिलाना) मिलाए हैं। कुमुदेन्दु जी के मतानुसार इस ग्रन्थ में लगभग एक से ८ या १० गीता के पद हैं जिनको पाच भापाओ मे समझ सकते हैं। नेमो तीर्थंकर के गोमट्ट को अनादि गीता, कृष्ण की गीता, व्यास की गीता जोकि अपने मौलिक रूप मे व्याख्यान के नाम मे महाभारत मे पाई जाती है और कन्नड भापा में कुमुदेन्दु जी की गीता है। इस गन्थ मे गीता की पैशाची भाषा मे भी आलोचना मिलती है और वाल्मीकी रामायण के मौलिक पद भी इसमे पाए जाते हैं। आगे ऋगवेद के तीन पद (एक गायत्री मन्त्र से प्रारम्भ, तथा दो अन्य) भी इस ग्रन्थ के अध्यायो में पाये जाते हैं। भारतीय सभ्यता को पढने और पहचाने के लिए ये तीन पद ही ऋगवेद के प्रमुख हैं।

(६) भारतीय सभ्यता के अध्ययन के लिए इस मनोरजक ज्ञान के अतिरिक्त भूवलय में कुछ निम्नलिखित जैन ग्रन्थो के शुद्ध पद मिलते हैं—भूतवाली का सूत्र, उमास्वामी, समन्त भद्र का गदहस्थी महाभाष्य, देवगामा स्तोत्र, रत्नकरड श्रावकाचार, भरत स्वयभू स्तोत्र, चूडामणी, समयसार, कुन्द-कुन्द का प्रवचन सार, सर्वार्थ सिद्धि, पूज्यपाद का हितोपदेश, उगंदित्या का कल्याणकरिका, प्राकेश्वरी स्तोत्र, मत्रवम्भर स्तोत्र, ऋपिमडल, कुछ तांत्रिक अग और अग वाहिरा कानून, कुछ पारिभाषिक ग्रन्थ जैसे सूर्य प्राग्नेपति, त्रिलोक प्राग्नेपति, जम्बू द्वीप प्राग्नेपति आदि।

(१०) यह ग्रन्थ १८ वडी भापाएँ और ७०० छोटी-छोटी भापाओ को निहित किये हुये है। इस ग्रन्थ में जो भाषाएँ हैं उनमे कुछ प्राकृत, सस्कृत, द्रविड, आध्र, महाराष्ट्र, मलाया, गुजराती, हम्मीरा, तिव्वती, यवन, वोलिदी, ब्राह्मी, खरोष्टी, अपभ्रश, पैशाची, अरिस्ता, अर्धमागधी टर्की, सैधव, देवनागरी, पारसी आदि हैं। जितना यह ग्रन्थ छपा है उसमें से सस्कृत, विभिन्न प्राकृत, कन्नड, तामिल, तैलगू को वडी आसानी से पहचाना जा सकता है। यदि इस विषय पर अनेको विद्वान गम्भीर अध्ययन करें तो इससे और भी अनेको भापाएँ और उनके शब्द प्राप्त हो सकते हैं। इसलिए भाषा विज्ञान के विपय में भी यह एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सौभाग्य से इस सम्पूर्ण ग्रन्थ को माइक्रो फिल्म (Micro Filmed) कर लिया है और यह नई दिल्ली के राष्ट्रीय ग्रन्थ रक्षा गृह मे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के अधिकार मे रखा हुआ है। और इसकी कुछ हस्तलिखित प्रतिया भी राष्ट्रकूट राजकुमार मल्लिकाब्बे के नेतृत्व और सहायता से की गई थी अव वे छानबीन द्वारा सिद्ध की जाएगी। वडे-वडे विद्वान और मुनि इस हस्तलिखित प्रतियो की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं।

इस ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार की विद्या भी है जिससे कुछ ऐसे नम्बरो का पता लगता है जिनको कि यदि अक्षरो मे लिखा जाए तो वह प्रश्न हो उस का उत्तर वन जाता है। किसी प्रश्न का उसके उत्तर में वदल जाना गणित शास्त्र का ही नियम है जोकि अभी पूर्ण रूप से विदित नही हुआ है। एक वार ओटी (Ooty) के कोफीप्लेटर के किए गए प्रश्न के उत्तरमे ३०० ब्राह्मी पटपदी कविता वन गई थी।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जोकि अपने भूत और भविष्य के विपय में सोचता ही रहता है। अपने हृदय में यदि वह कोई इच्छा न रखे तो उसका जीवन शून्य ही माना जाता है। लेकिन व्यक्ति जो कुछ भी अच्छा या बुरा सोचता है। वह उन सभी को कार्य रूप में परिणित नही कर सकता। और न ही वह इतना पराधीन भी है कि वह अपने विपय मे सोच भी न सके। जिनका कुछ ऐसे नियम कर्म, ईश्वर के नाम पर वने हैं मनुष्य पालन करता है।

यदि 'श्री भूवलय' को व्यक्ति ठीक समझले और कुछ पाना चाहे तो मनुष्य की कल्पना, ज्ञान वढना जरूरी है। 'भूवलय' ज्ञान का भडार है।

कुछ समय पहले मैंने यह ग्रन्थ शिक्षामत्री श्री ए० जी० रामचन्द्र राव को दिखाया व वताया था। उन्होने कुछ आर्थिक सहायता और सरकारी कार्य की सहायता शीघ्रातिशीघ्र देने का वचन दिया था।

अन्त मे, यदि मैसूर के रायल हाउस की पूर्ण सहायता भी मिलती रहे तो यह कन्नड ग्रन्थ (कुमुदेन्दु जी का भूवलय) राष्ट्र के लाभ के लिए छप सकेगा।

ओम सत संत

इस शिवमार का सैगोट्ट शिवमार नाम भी था। कानडी भाषा में सैगोट्ट शब्द का अर्थ कथा के श्रवण में केवल हाँ हाँ की स्वीकृति देना है। किन्तु कुमुदेन्दु आचार्य अपने शिष्य शिवमार सैगोट्टा को जब भूवलय की कथा सुनाते रहे और शिवमार आदि से लेकर अन्त तक भक्ति भाव से कथा सुनते रहे, तब उन्हें मतिज्ञान की सिद्धि हुई ॥१४८॥

मति ज्ञान प्राप्त हो जाने से पृथ्वी के सम्पूर्ण ज्ञान शिवमार को प्राप्त हो गये ॥१४९॥

ऐसे ज्ञान की प्राप्ति तत्कालीन भारतीयो के सौभाग्य का प्रतीक था ॥१५०॥

नवविध श्रेह अर्थात् पचपरमेष्ठी अक्षर और अङ्क रेखा वर्ण का सपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो गया, ऐसे शिवमार की रक्षा करके सद्गुरु अर्थात् कुमुदेन्दु आचार्य की कीर्ति वढ गई ॥१५१-१५२॥

कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि यह कीर्ति ही हमारा शरीर है ॥१५३॥

इस कीर्ति से शिवमार को जो विशुद्ध प्राप्त हुआ वह नव नवोदित था ॥१५४॥

वह कीर्ति दसो दिशाओ में वस्त्र के समान फैल गई, अर्थात् कु० दिंगम्यराचार्य आशवसनी थे ॥१५५॥

भूवलय विख्यात कीर्ति वाले सेडगण नामक गुरुपीठि के आचार्य थे ॥१५६॥

कुमुदेन्दु आचार्य का जन्म ज्ञातवश में अर्थात् महावीर भगवान का वश था ॥१५७॥

कुमुदेन्दु आचार्य का गोत्र सद्धमप्रकीर्णक था ॥१५८॥

उनका सूत्र श्री वृषभ सूत्र था ।१५९।

आचार्य की शाखा द्रव्यांग वेद की थी ॥१६०॥

उनका वश इक्ष्वाकु वशान्तर्गत ज्ञात वंश था ।१६१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य जब दिगम्बर मुद्रा धारण करके सेनगण के आचार्य बन गये तब उन्होने वश, गोत्रसूत्र, शाखा आदि सभी को त्याग दिया। ।१६२।

अर्हंद्बल्याचार्य के समय मे जैसे गणगच्छ का विभाग हुआ तो इसी रीति से श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भी गणगच्छ की स्थापना की थी ।१६३।

इस गणगच्छ को ९ भाग मे विभाजित हुए भारतवर्ष में सेनगण के ९ गुरु पीठ को स्थापित करके अखिल भारत मे सर्वधर्म समन्वय ने दिगम्बर जैन धर्म को स्थिर रक्खा ।

विवेचन —आचार्य कुमुदेन्दु के समय मे हमारा भारतवर्ष नौ भागो में विभक्त था। जिस प्रकार राज्य नौ भागो मे विभाजित था उसी प्रकार धर्म राज्य अर्थात् गुरुपीठ भी नौ भागो में स्थापित हुआ था। अब इन गुरु पीठो में कोल्हापुर काचीवर पेनावड ये ही तीन गद्दिया चल रही हैं। रत्नगिरि दिल्ली इत्यादि का गुरुपीठ नामवशेष हो गया है।

कुमुदेन्दु आचार्य और उनके शिष्य शिवमार के राज्य काल में सारे भारत खण्ड मे कर्नाटक भाषा राज्य थी। कर्नाटक भाषा में ही भूवलय ग्रन्थ लिखा गया है। उस कर्नाटक राजा का कर्म विस्तार पूर्वक कर्म सिद्धांत का कुमदेन्दु आचार्य ने दिया ।१६५-१६६।

उनको पठाया हुआ यह भूवलय नामक ग्रन्थ है ।१६७।

इस प्रकार से यह भूवलय ग्रन्थ विश्व मे विख्यात हो गया ।१६८।

उस कर्माटक चक्रवर्ती सैगोट्ट शिवमार को पाच पदवी प्राप्त हुई थीं। पहले का पद धवल, दूसरा पद जयधवल, तीसरा महाधवल इसी रीति से वढते हुए ॥१६९॥

जनता की दीनवृत्ति को नाश करके कीर्ति लक्ष्मी और शील को धवल रूप में वढाते हुए आनेवाला अतिशय धवलापर नामधेय भूवलय रूपी चौथा और विविध भाति विस्मय कारक शब्दो से परिपूर्ण पाचवा विजय धवल है।

ये पाचो धवल भी भूवलय रूपी भरतखण्ड सागर को वृद्धिङ्गत करने-वाले पांच पद हैं। अर्थात् सैगोट्ट शिवमार नृप को राज्याभ्युदय काल में १—

धवल, २--जयधवल, ३--महाधवल, ४--ग्रतिशय धवल (भूवलय) ग्रौर पाचवां विजय धवल रूपी पाच पदविया प्राप्त हुई थी ॥१७०-१७१॥

इस प्रकार भरतमही को जीत करके सैगोट्ट शिवमार दक्षिण भरत खण्ड में राज्य करता था । ३ कर्माटक चक्री उनका नाम पडा ग्रर्थात् उस समय सारे भरत खण्ड मे कानडी भाषा ही राज्य भाषा थी । उनके राज्य का दूसरा नाम मण्डल भी था ॥१७२॥

हिंसामयी धर्म सव को दु ख देनेवाला है इसलिए वह ग्रप्रिय है । इस प्रकार का उपदेश देते हुए उस चक्री ने राज्य दण्ड ग्रौर धर्म दण्ड से हिंसा को भगा दिया ।१७३।

ग्रहिंसा धर्म ग्रत्यन्त गहन है । इस प्रकार के गहन धर्म को चक्री ने सबको सिखा दिया था ।१७४।

जव ग्रहिंसा धर्म की ख्याति वढ गई तव ग्रणुव्रत का पालन करनेवाले भी वढ गये ।१७५।

यह ख्याति सवको सुख कर है ।१७६।

भरत खण्ड की ख्याति ही यह ६ खण्ड शास्त्र रूपी भूवलय की ख्याति है ।१७७।

जव इस भूवलय शास्त्र की ख्याति वढ गई तव यह भरत खन्ड इस लोक का स्वर्ग कहलाया । ग्रौर यह प्रथम ग्रमोघवर्ष राजा इस भूलोक स्वर्ग का ग्रधिपति कहलाया । इस प्रकार से राज्य करनेवाला ग्रभी तक नही हुग्रा ग्रौर न ग्रागे ही होगा इस प्रकार से सभी जनता कहने लगी । १७८ से १८१ तक ।

❖नोट:—एक समय में सैगोट्ट शिवमार चक्री ग्रपने राजसी वैभवो के साथ हाथी के ऊपर वैठकर जा रहे थे । उस समय वृष्टि होने के कारण सारी पृथ्वी पकमयी थी । दूर से देखने पर श्री ग्राचार्य कुमुदेन्दु ग्रपने गुरु ग्रौर शिष्यो के साथ ग्रपनी ग्रोर विहार करते हुए देखकर ग्रपनी सारी सेना रोक दिये तथा स्वय हाथी से उतरकर पादमार्ग से श्री गुरु के सन्मुख जाकर गुरुग्रो की वन्दना की । तत्पश्चात् शिवमार सैगोट्ट चक्री ने जो ग्रपने मस्तक में ग्रमूल्य जवाहरात से जडित किरीट वाघ रक्खा था, वह गुरु देव के चरण कमलो मे गिर पडा । किरीट के गिरते ही उसमें से ग्रमूल्य नायक मणि (तत्कालीन विख्यात मणि) गुरु के चरण समीप कीचड में सन गई ग्रौर उसकी देदीप्यमान कान्ति मलिन हो गई । गुरुदेव ने ग्रपने शिष्य को शुभाशीर्वाद देकर प्रस्थान करा दिया । इधर शिवमार परम सन्तुष्ट होकर गजारूढ हो राजसभा में जाकर सिंहासन पर ग्रासीन हो गया । इससे पहले राजसभा मे वैठकर सभासदो के समक्ष वार्तालाप करते समय तथा ग्रपने मस्तक को इधर उधर फेरते समय किरीट में जडित उपर्युक्त ग्रमूल्य रत्न की कान्ति सभी सभासदो को चकाचौंध कर देती थी किन्तु ग्राज उसकी चमक कीचड लगजाने के कारण नही दीख पडी । सभासदो ने मन्त्री से इङ्गित किया कि किरीट में लगे हुए कीचड को वस्त्र से साफ करदो । यह सुनते ही मन्त्री कीचड को वस्त्र से स्वच्छ करने के लिए राजा के निकट खडा हो गया । वार्तालाप करने में मग्न राजा की दृष्टि समीपस्थ मन्त्री के ऊपर सहसा जैसे ही पडी वैसे ही राजा ने विस्मित होकर पूछा कि तुम यहा क्यो खडे हो ? मन्त्री ने उत्तर दिया कि ग्रापके किरीट में लगे हुए कीचड को साफ करने के लिए मैं खडा हु । राजा ने मत्री से कहा कि गुरु की ग्रहैतुकी कृपा से प्राप्त चरण रज को हम कदापि नही पोछने देंगे । क्योंकि इसे हम सदा काल ग्रपने मस्तक पर धारण करना चाहते हैं । राजा की ग्रपूर्व गुरुभक्ति को देखकर सभी सभासद ग्राश्चर्य चकित हो गये ।

जब एक साधारण शिष्य की गुरुभक्ति का माहात्म्य इतना वडा विलक्षण था तव उनके पूज्य गुरुदेव की महिमा कैसी होगी ?

उत्तर—राज्य शासन करते समय शिवमार राजा को 'जो उपर्युक्त धवल जय धवलादि पाच उपाधिया प्राप्त थी उन्ही उपाधियो के नाम से ग्रपने शिष्य शिवमार राजा का नाम ग्रमर रखने के लिए गुरुदेव ने स्वविरचित पांच ग्रन्थो का नामकरण धवल जयधवलादि रूप से ही किया । इन दोनो गुरु शिष्यो की महिमा ग्रपूर्व ग्रौर ग्रलभ्य है ।

ज्ञानवर्ण आदि आठ कर्मो को दहन करते हुए आत्म कल्याण कराने वाला यह भरत खण्ड है।१८२।

कर्माटक अर्थात् आठ कर्म के उदय से जगत के समस्त जीव कर्म मे फसे हुए हैं। इसलिए कानडी भापा ही सभी जीवो की भाषा है। उदाहरण के लिए सर्व भापामय काव्य भूवलय ही साक्षी है।१८३।

इस भारत वर्ष मे सद्धर्म का प्रचार बहुत वढ जाने से सभी जनो मे धार्मिक चर्चा चलती थी।१८४।

राज्य को अहिंसा धर्म से पालन करनेवाला चक्रवर्ती, राजा राज्य करे तो उनके शासनकाल में स्वभाव से ही अहिंसा धर्म का प्रचार रहता है।१८५।

अहिंसा धर्म ही इस लोक और परलोक के सुख का कारण है और सुख का सर्वस्व सार है।१८६।

परस्पर प्रेम से यदि जीवन-निर्वाह करना होतो परस्पर में सहकार ही मुख्य कारण है और वही धर्म का साम्राज्य है।१८७।

इस लोक मे सभी को शौभाग्य देनेंवाला यह अहिंसा धर्म हैं।१८८।

महावीर भगवान ने इस धर्म को मङ्गल स्वरूप से दान दिया है।।१८९।

गुफा में रहते हुए तपस्या द्वारा सिद्ध किया हुआ अहिंसा धर्म है।१९०।

हिंसा को विनाश करके अहिंसा की स्थापना करके सन्मार्ग वतलाने वाला यह राजा का राजभार कर्म है।१९१।

सुख शिवभद्र इत्यादि सभी शब्द मङ्गल वाचक हैं। यह सव इस राज्य में फैला हुमा था।१९२।

महानभावो को पैदा करनेवाला अर्थात् उन सभी का वर्णन करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।१९३।

महावीर जिनेन्द्र जी इस राज्य में विहार किये थे।१९४।

सिद्धान्त को पढते हुए अन्तर्मुहूर्त में सिद्धान्त के आदि अन्त को साध्य करनेवाले राजा अमोघव केर्ष गुरु (आचार्य कुमुदेन्दु) के परिश्रम से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय काव्य है।१९५।

कानडी भाषा मे चरित नामक छन्द को सागत्य कहते हैं। सागत्य अर्थात् दिगम्बर मुनि राजो का समूह ऐसा अर्थ होता है उन गुरु परम्परा से आये हुए अर्थात् श्री बीरसेनाचार्य द्वारा सम्पादन किये हुए सद्ग्रन्थ को लेकर रचना किये हुए इस भूवलय काव्य को वाचक काव्य भी कहा जाता है।१९६।

हमारे (कुमदेन्दु आचार्य के) गुरु श्री बीरसेन स्वामी ने छाया रूप से हमें उपदेश दिया उस गुरु का अमृत रूपी वाणी को गणित शास्त्र के साचे मे ढाल कर प्राचीन काल से आये हुए पद्धति के अनुसार मङ्गल प्राभृत के कर्मानुसार गुणाके साचा मे ढालकर हम (कुमदेन्दु आचार्य) ने अत्यन्त उन्नत दशा को पहुचे हुए सात सौ अट्ठारह असख्यात अक्षरात्मक भापा युक्त रीति से इस ग्रन्थ को वनाया। इस ग्रन्थ की पद्धति वहुत सुन्दर शब्द गगा से लिखा है, अक्षर गगा से नही। इसलिए सभी भाषायें इसके अन्दर आगई हैं। इस ग्रन्थ के बाहर कोई भी भाषा नही है।१९७-१९८।

अत्यन्त सुन्दर रचना से युक्त कर्नाटक भाषा यह आदि काव्य है।१९९।

यह काव्य अग ज्ञान द्वारा निकलने के कारण समस्त भापा से भरा हुआ है। अक लिपि सौंदरी देवी का है। उस अक लिपि द्वारा हम वाधकर इस ग्रन्थ की रचना किये हैं। यह हृदय का अतिशय, आनन्द दायक काव्य है। इस काव्य के बाहर कोई भी भापा नही है। अगणित जीव राशि आदि की सभी भाषा इसके अन्दर विद्यमान है। अक अधि-देवता के गणित द्वारा यह काव्य वाधा हुआ है।२०० से २०४।

यह काव्य अनेक चक्र वन्धो से वधित है।२०५।

अनेक प्रकार का जो भी चक्र बन्ध है वह सव इस भूवलय मे उपलब्ध हो जाता है।२०६।

गणित में अनेक भङ्ग (गणित का नियम) होते हैं उनमे यदि मृग, पक्षी की भाषा निकालनी हो तो इसी गणित भङ्ग से निकालनी चाहिए।२०७।

उस भङ्ग का नाम स्वर्ग वन्ध चक्रवन्ध भी है।२०८।

गणित में [१] अगणित (२) गणित (३) अनन्त इस प्रकार से अनेक भेद होते हैं।२०९।

इन तीनो विधि और विधान द्वारा सारे विश्व को इस ग्रन्थ मे बाध दिया है ।२१०।

मृग अर्थात् तिर्यंच जीव किस प्रकार से मालूम होते हैं उस विधि को बतलाया गया है ।२११।

पक्षी जाति किस प्रकार से स्वर्ग मे जाती है इस विधि को भी इस ग्रन्थ में बतलाया गया है ।२१२।

इस भूवलय मे विश्व का सारा विषय उसके अन्दर भरा हुआ है ।२१३।

इस भूवलय काव्य मे यदि काल के दृष्टिकोण से देखा जाय तो युग परिवर्तन की विधि भी इसके अन्दर विद्यमान है ।२१४।

सम्पूर्ण जीवो की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म क्या मानव की रक्षा नही कर सकता है अर्थात् अवश्य कर सकता है । इसी प्रकार गुरु के कहे हुए धर्म का आचरण करने से राजा शिवमार द्वारा पृथ्वी की रक्षा करने में क्या आश्चर्य है ।२१५।

इस तृष्णादि मे सम्पूर्ण जीव भरे हुए हैं । इन सब जीवो की रक्षा करनेवाला यह जैन धर्म शुभकर है सर्व लक्षणो से परिपूर्ण है और स्वर्ग या मोक्ष की इच्छा करनेवाले की इच्छा पूर्ण करता है ।२१६।

सम्पूर्ण जीवो को यश कर्म उदय को लाकर देनेवाला यह जैन धर्म जीव निर्वाह करनेवाले मनुष्य को सौभाग्य किस तरह देता है इसका समाधान करते हुए आचार्य जी कहते हैं कि यशकायी जीवो के दु ख को दूर करने के लिए पारा सिद्धि के उपाय को बताया है ।२१७।

यह जैन धर्म विष से व्याप्त मानव को गारुणमणि के समान विष से रहित करनेवाला है ।२१८।

जैन धर्म के अन्दर अपरिमित ज्ञान साम्राज्य भरा हुआ है ।२१९।

दश दिशाओ का अत नही दिखाई पडता इस भूवलय रूपी ज्ञान के अध्ययन से अपना ज्ञान दिशा के अत तक पहुचाता है ।२२०।

यह धर्म हुडावसर्पिणीकाल का आदि ऋषभसेन आचार्य के ज्ञान को दिखाता है ।२२१।

ऋषभसेन आचार्य से लेकर वर्तमान काल तक तीन कम नौ करोड मुनियो के सब ज्ञान का सागत्य (अर्थात् भूवलय का छन्द है) से युक्त है ।२२२।

यह धर्म अनादि काल से आये हुए मदनोन्माद का नाश करनेवाला है । ।२२३।

इस काव्य रूपी ज्ञान के हो जाने पर दुर्मल रुपी कर्म को नष्ट कर देता है ।२२४।

तीन, पाच, सात और नौ यह विषय अक हैं । सामान्य से २ अक से अर्थात् समान अङ्क से भाग नही होता है इस भूवलय ग्रन्थ के ज्ञान से विषम अङ्क सम अङ्क से भाग होते हुए अन्त मे शून्य आता है ।२२५।

इस अक के ज्ञान से सूक्ष्म काल अर्थात् भोग भोगी काल की सम्पदा को दिखाता है ।२२६।

इस प्रकार समस्त ज्ञान को दिखाते हुए अन्त मे आत्म सिद्धि को प्रदान करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है ।२२७।

श्री धरसेनाचार्य के शिष्य भूतवल्य आचार्य ने द्रव्य प्रमाण अनुवाम शास्त्र से अक लिपि को लेकर भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी । यह भूवलय ग्रन्थ उस काल मे विशेष विख्यात और वैभव से परिपूर्ण था । नूतन प्राक्तन इन दोनो कालो के समस्त ज्ञान को संक्षेप करके सूत्र रूप से भूवलय ग्रन्थ की रचना की थी । इस भूवलय ग्रन्थ के अन्तर्गत समस्त ज्ञान भण्डार विद्यमान है ।२२८।

श्री भूतवली आचार्य का अतिशय क्या है ? तो हर्षवर्द्धन उत्पन्न करने वाला इस भारत देश का जो गुरु परम्परा से राज्य की स्थापना हुई है यही इसका अतिशय है ।२२९।

यह भारत लवण देश से घिरा हुआ है और इसी भारत देश के अतर्गत एक वर्द्धमान नामक नगर था । उस वर्द्धमान नगर के अन्तर्गत एक हजार नगर थे । उस देश को सौराष्ट्र कहते थे और सौराष्ट्र देश को कर्माटक (कर्नाटक) देश कहते थे ।२३०।

उस देश में मागध देश के समान कई जगह उष्ण जल का झरना निकलता था। उसके समीप कही कही पर रसकूप (पारा कुआ) भी निकलते थे। उसके उपयोग को आगे करेंगे। २३१ से ।२३४।

सौराष्ट्र देश का पहले का नाम निर्कलिंग था। भारत का त्रितलि नाम इसलिए पडा क्योंकि भारत के तीन ओर समुद्र है यह भूमि सकनड देश थी इस अध्याय के अन्तर्काव्य में १५६ हजार में १६८ अक्षर कम थे ।२३५।

इस भूवलय के प्लुत नामक नववें अध्याय के श्रेणी काव्य में आठ हजार सात सौ अडतालिस (८७४८) अकाक्षर हैं। इसका स्वाध्याय करनेवाले भव्य जीव श्री जिनेन्द्र देव के स्वरूप को प्राप्त करने की कामना करते हैं। उस कामना को पूर्ण करने वाला ६ अक है। अर्थात् श्रेणी काव्य के ८७४८ अक आडा जोड देने से ६ आ जाता है। यह ६ वा अक श्री जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित भूवलय की गणित पद्धति है। और यही अष्टम महाप्रातिहार्य वैभव भी है ।२३६।

इति नवमोऽध्याय

ऊ ८७४८+अन्तर १४८३२=२३५८०

अथवा

अ से लेकर ऊ पर्यन्त

१, ५२, ४४२+२३, ५८०=१, ७६, ०२२

इस अध्याय को उपर्युक्त, कथनानुसार यदि ऊपर से नीचे तक पढते जाएँ तो जो प्राकृत काव्य निकलकर आ जाता है उसका अर्थ इस प्रकार है —

इस परम पावन भूवलय ग्रन्थ को हम त्रिकरण शुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हैं। यह भूवलय ग्रन्थ भव्य जीवो के अज्ञानान्धकार को नाश करने के लिए दीपक के समान है। इस दीपक रूपी ज्योति का आश्रय लेकर चलनेवाले भव्य जीवो के कल्याणार्थ हम त्रिलोक सार रूप भूवलय ग्रन्थ को कहते हैं।

इस अध्याय का स्वाध्याय यदि मध्य भाग से किया जाय तो सस्कृत भाषा इस प्रकार निकलकर आ जाती है —

भूतवलि, गुणधर, आर्यमक्षु, नागहस्ती, यतिवृषम, वीरसेनाभ्याम् विरचितम् श्री श्रोतार सावधा। इन आचार्यो द्वारा विरचित ग्रन्थ को आप लोग सावधान पूर्वक श्रवण करें।

दसवां अध्याय

ऋ* दृधि सिद्धिगळनु होन्दिसि कोडुवंक । सिद्धिय सर्वज्ञ न* धन ॥ शुद्ध केवलज्ञानदतिशय धवलदे । सिद्धवागिरुव भूवलय ॥१॥
सि* रि वीरसेन भट्टारकरुपदेश । गुरु वर्धमान श्री मुखदे । त* रतर वागि वन्दिरुवुवनेल्लव । विरचिसि कुमुदेन्दु गुरुवु ॥२॥
ओ* दिसिदेनु कर्माटद जनरिगे। ओ दिव्य वाणिय क्रमदे । श्री द या* धर्म समन्वय गणितद । मोदद कथेयनालिपुदु ॥३॥

आदिय कथेय नालिपुदु ॥४॥ नादिय कथेयनालिपुदु ॥५॥ वेद हन्एरडनालिपुदु ॥६॥ इ दिनदादिय काव्य ॥७॥
सावि अनन्तव ग्रन्थ ॥८॥ वेदागम पूर्व सूत्र ॥९॥ वेदद हदिनाल्कु पूर्व ॥१०॥ श्री दिव्य करण सूत्रांक ॥११॥
आदिगनादि सद्वस्तु ॥१२॥ साधिक वय्भव बंध ॥१३॥ ओदिनध्यात्मद बन्ध ॥१४॥ श्री धन घी धन रिद्धि ॥१५॥
ओदिनोळव्षध सिद्धि ॥१६॥ ओदिनोळव्षध रिद्धि ॥१७॥ कादियिम् वर्णमालान्क ॥१८॥ कादियिम् नवमान्क बंध ॥१९॥
टादियिम् नवमान्कदग ॥२०॥ पादियिम् नवमान्क भग ॥२१॥ याद्यष्टरळ कुल भग ॥२२॥ साद्यन्त अं अः क पः द ॥२३॥
मोददइप्पत्तेळु स्वरद ॥२४॥ ओदिन अरवत्नाल्क् अन्क ॥२५॥ साधित सिद्ध भूवलय ॥२६॥

सु* रनर नागेन्द्र तिरियन्च नारक । ररियुवेळ्तूर् एम्ब श्* ॥ वरभाषे हदिनेन्ट वेरसिनाम् वरेदिहे । गुरु वीर सेन सम्मतदिम् ॥२७॥
ग्* मनिसि अखत्नाल्क् अक्षर सम्योग । विमल भंगाक रु* वृद्धि॥ क्रमविह अपुनरुक्तान्कद अक्षर । विमल गुणाकार मग्गि॥२८॥
गि* डिदु तुम्बिरुवनु लोमाक पद्धति । पोडवियोळतिशुद्धव ण्* ण ॥ गडियोळगदनुम् प्रतिलोमदन्कदिम् । विडिसलु बहुदेल्ल भाषे ॥२९॥
व* र भाषेगळेल्ल समयोग वागलु। सरस शब्दागम हुट्टि॥ सर व* दुमालेयादतिशय हारद । सरस्वति कोरळ आभरण ॥३०॥

परि परि वर्णद कुसुम ॥३१॥ अरहन्त वाणिय महिमा ॥३२॥ सरळवागिह कर्माटकद ॥३३॥ परम वय्विध्याक पूर्ण ॥३४॥
गुरु परम्परेय सूत्रान्क ॥३५॥ परमात्म नोरेद रहस्य ॥३६॥ वर कुसुमाक्षर वनक ॥३७॥ सरळवादरु प्रउड विषय ॥३८॥
गरुडगमन रिद्धि गमन ॥३९॥ शरीर सवन्दर्यद अक्ष ॥४०॥ विरचित कुमुदेन्दु काव्य॥४१॥ अरवत् नाल्क क्षरदन्ग ॥४२॥
गुरुगळ वाक्य भूवलय ॥४३॥

ह* रुष वर्धनवा जीव राशिय काव्य । सरुवान्क सरुवाक्षर न्* अम् ॥ बरेयदे बरुव रेखाक समृद्धिय । परमामृतद रचनेयिम् ॥४४॥
ए* एपाद वुन्दाद लिपिय कर्माटक । वनुपम र ळ कुळवेरसि॥ म्* अनुजर देवर जीवराशिय शब्द । वनुपम प्राकृत द्रविड ॥४५॥
मो* क्ष मार्गोपदेशकवाद् एळोम्देन्दु । साक्षर अक्षरद् तु* हिन ॥ रक्षेय जगद समस्त भाषेगळिह । शिक्षेये भव्यर वस्तु ॥४६॥

रक्षणोगादिय वस्तु ॥४७॥ अक्षयानन्त सुवस्तु ॥४८॥ आक्षरद् एरडने भग ॥४९॥ आक्षर दादि त्रिभग ॥५०॥
शिक्षण अरवत् नाल्क् अग ॥५१॥ सूक्ष्माकदनुपम भग ॥५२॥ अक्षय सुखद सूरूप ॥५३॥ शिक्षेयनादिय वस्तु ॥५४॥
लक्ष कोटिगळ श्लोकांक ॥५५॥ कक्षद पिन्छद गणित ॥५६॥ कुक्षियोळ् हुगिदिरुवक ॥५७॥ कक्ष खगोळ मगलव ॥५८॥
लक्षण पाहुडवन्ग ॥५९॥ दीक्षावसनद त्याग ॥६०॥ तीक्षण वाग्बाणदे मृदुल॥६१॥ कक्षपुटदे चक्र भंध ॥६२॥
अक्षर बन्धद मनेगळ् ॥६३॥ चक्षुरुन् मीलनवन्क ॥६४॥ चक्षु अचक्षु सज्ञान ॥६५॥ यक्ष सम्रक्षण वक्ष ॥६६॥
वक्षस्थल हार पदक ॥६७॥ यक्ष प्रकर्ष भूवलय ॥६८॥

ग* मनि सलिन्तु ई सर्वविषयगळ । क्रम मार्ग गणितदेसर म* विमल निहारदे अ चरिसुव मुनिगळ गमकदतुल कलेयन्क ॥६९॥
व* शवागदेल्लरिग् ई कालदोळगेम्ब । अस्दृश ज्ञानद् साम् ग* र्तय ॥ विषहर 'सर्व भाषाम ई' कर्माट । दसमान दिव्य सूत्रार्थ ॥७०॥
य* वेय काळिन क्षेत्रदळतेयोळ् जोविप । सविवरानन्त जीव ल क् ॥ सुविख्यात कर्माट देशप्रदेश । सविवर कर्माटकवु ॥७१॥
ग* णित शास्त्र वदेल्ल मुगिदरु मिक्कुव । गणितव नणुरूप म* गेयद्दु॥ क्षणवेने समयओम्दरोळसम ख्यातद । गुणितदकेडिसुवक्रमवु॥७२॥
व* र विश्वकाव्यदोळडगिर्प कारण । सरणियनरितवर् शु भ* द ॥ गुरुवर वीरसेनर शिष्य कुमुदेन्दु । गुरु विरचितदादि काव्य ॥७३॥
क्* र्मवक्षयवेन्तो अनुतु बन्दक्षर । निर्वाहदोळनग ग* ळ ॥ सर्वव अनुलोम् प्रतिलोम हारद । मर्वाक मगल विषय ॥७४॥
खो* डिकर्मवगेल्व हाडनुम् हा डद । रूढियम् हळेय कम्नड वा* ॥ गाढ प्रगाढ समरूढियज्ञानद । कूडणेयतिशय बन्ध ॥७५॥

हाडलु सुलभवादनग ॥७६॥ नोडलु मेच्चुव गणित ॥७७॥ जोडियनकद कूटदनग ॥७८॥ कुडुव पुण्यानग भग ॥७९॥
कूडुवागले बद लब्ध ॥८०॥ गूढ रहस्यद अग ॥८१॥ मूढ पूरउदरिग् ओमदे भग ॥८२॥ गाढ रहस्य कर्माग॥८३॥
ओडि बरलु पुण्यदग ॥८४॥ श्रे ढिय कळेव भागाग ॥८५॥ गाढ श्री गुणकार भग ॥८६॥ माडिद पूजानग भंग ॥८७॥
रूढियिम् बद पुण्यानग ॥८८॥ औडिनोल् हाडुव अनग ॥८९॥ काडिन तपदे बन्दनग ॥९०॥ तौडिनोळ् गणिपनतरनग॥९१॥
ताडनवळिव दिव्यानग ॥९२॥ माडिद पुण्यानग गणित ॥९३॥ रूढियागमद सूक्ष्मानग ॥९४॥ याडिल्लदणु महा भंग ॥९५॥
गाढ भक्तिय भव्यरनग ॥९६॥ कूडिद भव्य भूवलय ॥९७॥

य* शकीर्ति नाम कर्मोदयवळिदस । दयशद दिव्यात्म निम्ब न* व ॥ असमान द्रव्यागमद पाहुडदनग । कुसुम वर्णाक्षर माले ॥९८॥
णो* लमहानीलनामद ऋषिगळ। सालिनिम्बनदिहगणित॥ दोलेय वो* र जिनेन्द्रन वाणिय । सालिनिम् बंदिह गणित ॥९९॥
ल* क्ष्मणनर्ध चक्रीश्वर नवनग । लक्मान्कदक्ष रो* चनव॥ लक्षमवभावदिगुणिसुतगणिसिह। लक्षयाक दनुबधकाव्य ॥१००॥
मृ* नुमथनतुपमदेह सम्स्थानद । घन बन्ध समहननव मं* तरनवकारद सिद्धरतिशय सम्पद । देणेकेय सौन्दर काव्य ॥१०१॥
जिन चन्द्रप्रभरनग धवल ॥१०२॥ मुनिसुव्रतरनक कमल ॥१०३॥ जिन मुनिमालेय कमल ॥१०४॥ घनरत्नत्रय दिव्य धवल ॥१०५॥
जिन माले मुनिमालेयनक ॥१०६॥ गणित दोळक्षर ब्रह्म ॥१०७॥ अनुभव गोचर गणित ॥१०८॥ जिनमतवर्धन धवल ॥१०९॥
तनगे आत्मध्यान धवल ॥११०॥ कुनय विधूर साम्राज्य ॥१११॥ कनकव धवलगेयवनक ॥११२॥ तनुमन वचन शुद्ध धन ॥११३॥
विनुतव लौकिक गणित ॥११४॥ जिनर केवल ज्ञान गणित॥११५॥ थणथणवेने श्वेतस्वर्ण ॥११६॥ चणक प्रमाणवे मेरु ॥११७॥
जण जण होळेव दिव्याक ॥११८॥ पण वळिदिह सवगणित ॥११९॥ गुण स्थानदनुभव गणित ॥१२०॥ जिनर अयोगव गणित॥१२१ ।
सनुमत काव्य भूवलय ॥१२२॥

म* रळि मार्गणस्थानदनुभव योगद । मर जीवरसमास दरि ग* ॥ वरुषव समयव कल्पव समयव । वह समयदोळनन्तानक ॥१२३॥
ह* रवुत तनगुत बेरेयुत हरियुत । सरुव पुद्गल होन्दि सर लं* बरुत होगुत निळ्व जीवराशिगळनक । करगदे तोरुवनन्त ॥१२४॥
णो* चातिनीच जीवनद जीवरनेल्ल। आचेगे सागिप दिव्य॥ राच्रम् भ* दूर् सनगलव पाहुड काव्य । ईचेगाचेगे अन्तरदिम् ॥१२५॥
लो* कवोळगे भव्रवागिसि पिडिविर्दु । लोकदगूरके बन्धिसि ग* ॥ श्री करवागिरिसिर्प कल्याणव । शोकापहरणव अनक ॥१२६॥

नाकाग्र श्री सिद्ध काव्य ॥१२७॥ व्याकुल हरि सिद्ध काव्य ॥१२८॥ आकाररहित दिव्यान्ग ॥१२९॥ एकाग्र ध्यान सम्प्राप्त ॥१३०॥
ओकार व ़ित शब्द ॥१३१॥ ओम्कार गोचर वस्तु ॥१३२॥ ह्रोम् कार दाराध्य वस्तु ॥१३३॥ ह्रूम्कार दतिशय वस्तु ॥१३४॥
ह्लूम्कार राराध्य सम्ज्ञा॥१३५॥ हरीम्कार गोचर वस्तु॥१३६॥ ह्रोम्कार पूजित गर्भ ॥१३७॥ ह्रुऔम्कार दतिशय वस्तु॥१३८॥
ह्रम्कार राराध्य सञ्ज्ञ ॥१३९॥ ह्रह्कार गोचर वस्तु ॥१४०॥ शम्का विरहित भूवलय ॥१४१॥
ण॥ वकारमन्त्रवोळादिय अरहन्त । शिव पद कय्लास गिरि वा॥ सवे श्री समवसरण भूमियतिशय । जवम्जव सम्हार भूमी ॥१४२॥
व॥ र भद्र कारणवदनु मंगलवेन्दु । गुरु परम्परेय अ नु॥ गवदु॥'परमात्म सिद्धिय कारणगमन व॥ सिरिवर्धमान वाक्याक॥१४३॥
ण॥ र सुर तिरियन्च नारकि जीवर्गे । परि परि सम्यक्त्वद गौ॥ चरियद चारित्र्य लब्धि कारणवागे । अरहन्त भाषित वाक्य ॥१४४॥
ऊ॥ सह तीर्थन् करवादि इप्पत्नाल्कु । यश धर्ध तीर्थर त त्व ॥ वशवाद भव्यर सम्सारदन्त्यवु । जसदन्ते वन्दोदगेवुदु ॥१४५॥
दी॥ व सागर गिरिगुहे कन्दरवा॥ ठाविनोळिरुव निर्वाण॥ भुवि मो॥ क्षदनेलेवनेयद तोरुव । पावन मगल काव्य ॥१४६॥
श्री वीरवाणि ओम्कार ॥१४७॥ कावन सम्हार नेलवु ॥१४८॥ आ विश्व काव्याग धर्म ॥१४९॥ ई विद्य अरवत् नाल्क् अंक ॥१५०॥
वय्विध्य कर्म निर्जरेय ॥१५१॥ श्री विद्य पुण्य बन्धकर ॥१५२॥ पावन शिव भद्र विश्व ॥१५३॥ ई विश्व वय्भवद् अक ॥१५४॥
काव पुण्यान्कुर वृक्ष ॥१५५॥ देवर देवन क्षेत्र ॥१५६॥ ई विश्वदर्शन ज्ञान ॥१५७॥ एवेळ्वेनतिशय विवरोळ् ॥१५८॥
श्री वीरनुपदेशदनक ॥१५९॥ आ विश्वदनुचिन चित्र ॥१६०॥ कावनेरिद विव्य भूमी ॥१६१॥ श्री विश्व काव्य भूवलय ॥१६२॥
को॥ टा कोटि सागरगळनळेयुवा । पाटिय कर्म सिद्धात ॥ दाटव ग॥ णिसुव विधिय द्रव्यागम भाटानक वय्भववमल ॥१६३॥
ड॥ मरुगदिनद शब्दवु हुट्टे जडवदु । क्रमवल्लवदर ए णी॥ केयु॥ विमलजीवद्रवदिम्बदद्रव्यवे॥ अमलशब्दागमवरियय् ॥१६४॥
ई॥ गणहिन्दण नादिय मुनदण । तागुवनन्त कालवनु ॥ श्री गुरु मं॥ गल पाहुडविम् पेळ्द । रागविराग सद्ग्रन्थम् ॥१६५॥
आ॥ कारवोळु विन्दुवदनु कूडिसलन्त । ताकिवक्षर ओम् अन् गं॥ श्रीकर सुखकर लोक मगल कर । वाकार शब्द साम्राज्य ॥१६६॥

वयाकुल हरदनक भग ॥१६७॥ साकारवतिशयदन्ग ॥१६८॥ आकार रहित दाकार ॥१६९॥
आकारववे निराकार ॥१७०॥ एक द्वि त्रि चतुह् भंग ॥१७१॥ आकडे ऐदारु भग ॥१७२॥
ज्योकेयोळ् एळेन्दु भंग ॥१७३॥ साकु भाषे एळ्नूर् हदिनेन्दु ॥१७४॥ 'ओ' कार'अ'क्षर कळेय ॥१७५॥
लोकद भाषेगळ् ववुदु ॥१७६॥ श्री कारवदु द्वि संयोग ॥१७७॥ नूकलु मूरु अक्षरवम् ॥१७८॥
आकारव् आरु भन्गविदे ॥१७९॥ हाकलु नाल्कु भन्गवोळु ॥१८०॥ जोकेयोळ् हदिनारु भन्ग ॥१८१॥
बेकागे ऐदु अक्षरव्वम् ॥१८२॥ आकार इप्पत्ऐद् अन्ग ॥१८३॥ एक मालेयोलारक्षरद ॥१८४॥
आ कारद एप्पत् एरडु ॥१८५॥ हाकलु एलु अक्षरव ॥१८६॥ साकार नूरिप्पत् अन्ग ॥१८७॥
बेकागे एन्टु अक्षरव ॥१८८॥ साकलु एळ्नूरिप्पत्तु ॥१८९॥ ताकुव भाषे भूवलय ॥१९०॥

तु॥ ळियुवुदावि अन्त्यदेरळ् अक्षरगळ । वळि सार्धु ल॥ भाषे॥ वळिसार्दकुल्लकवएलनूररभाषे॥ वाळेसिरिमहाहदिनेन्टम्१९१
॥ गवनक्वनेरडन्कयन् आगिसे । सवियादि देव मानवर ॥ तवए क॥ दद महाभाषेगळ् पुट्टलु । भुविय समस्त मातुगळ् ॥१९२॥
गि॥ र्यागवाणि सरस्वति रूपिन । सर्वज्ञ वाणियोम्वागि॥ सार् व॥ द्रव्यागम श्री जिनवाणिय । निर्वाहवतिशय पाठ ॥१९३॥

गि॰ रि गुहे कन्दरवोळगे होकगे निन्तु । अरहन्त वाणिय वळि कुं॰ सर मालेयोळगेल्ल भाषेय बलेसुव । गुरु परम्परे यादि भग ॥१९४॥

रि॰ यि वर्धमानर मुखवन्गवेन्देने । होसेवेल्ल मेय्इन्द् दा॰ होरदु॥ रस वस्तु पाहुड मगल रूपद । असद्रुश वय्भवभाषे ॥१९५॥

वशदाव दिव्याक्षरान्क ॥१९६॥ रिषिवरूश दादिय भाषे ॥१९७॥ कसिय द्रव्यागम भाषे ॥१९८॥
विष वाक्य सम्हार भाषे ॥१९९॥ वशवागलात्म सम्सिद्धि ॥२००॥ विषयाशा हरण दिव्यांग॥२०१॥
रसद् अरवत् नाल्कु भक ॥२०२॥ यशवेरळ् अन्गय् बरेह ॥२०३॥ रस वस्तु त्याग धर्व्योग॥२०४॥
यशवक भन्ग भूवलय ॥२०५॥ रस सिद्धियादिय भन्ग ॥२०६॥ यशस्वति पुत्रियरन्गम् ॥२०७॥
रस रेखेयतिशय काव्य ॥२०८॥

रिण॰ ज तत्व एळर भाजितदिम् बन्द । अजनादि देवन वाणि॥ बिज द॰ वय विजय धवलवन्क राशिय। स्रुजसिव अतिशय धवल ॥२०९॥

व्॰ रववाद एळ्नूर हदिनेन्दु भाषेय । सरमालेयागलुम् विद् या॰ सरणियोळ् मूरुन्नूररवत्मूर् अंकवे । परितरलागिदेमतवम् ॥२१०॥

धु॰ ळिद धवलवु महा धवलाकव । बळिसार लेरडे भाषे ॥ कळे जी॰ व धर्मोस्तु मन्गलम् काव्यवु । बळिक श्री जय धवलाग ॥२११॥

वे॰ वागम स्तोत्रवादि महोन्नत । पावन पाहुड ग्रन्थ ॥ तीवे व॰ र्पागम वेल्लवु तुम्बिह । श्री विजयद भूवलय ॥२१२॥

पावन महासिद्ध काव्य ॥२१३॥ देवन वचन सिद्धान्त ॥२१४॥ श्री वीर वचन साम्राज्य ॥२१५॥
श्री वनवासिय काव्य ॥२१६॥ देव जिनेन्द्रर वचन ॥२१७॥ देवरष्टम जिन काव्य ॥२१८॥
देव शान्तीशन मार्ग ॥२१९॥ देव आदीशन चरण ॥२२०॥ काव दोर्वलिय सौन्दर्य ॥२२१॥
श्री विश्व सिद्धांत वचन॥२२२॥ देववाणिय दिव्य भाव॥२२३॥ भाव प्रमाणद काव्य ॥२२४॥
देवन भाव प्रमाण ॥२२५॥ पावन तीर्थद गणित ॥२२६॥ ई वनवासद तीर्थ ॥२२७॥
भावद भल्लातकाद्रि ॥२२८॥ श्री विश्व भ्यषज्य ग्रन्थ ॥२२९॥ पाव कर्मोदय नाश ॥२३०॥
साविर रोग विनाश ॥२३१॥ श्री वर सौभाग्य मग ॥२३२॥ देवन वचन भूवलय ॥२३३॥

व॰ शवहुद् इल्लि श्री स्वसमय सारद । रसिकात्म द्रव्य ध॰ र्मोस्तु ॥ वशवाद ध्यात्मद सारसर्वस्ववे। रसव मंगल पाहुडवु ।२३४।

न्॰ वदन्कदिम्बन्द कर्मांक गणितवे । अवतरिसिरुव ध र्॰ माक्ष ॥ रव अंकद ध्यान स्वसमय काव्यद। सवियिह् भद्र मगलवु।२३५।

दे॰ व जिनेन्द्रन वाणिय प्राभृत। दाविश्व काव्य दर्शन मो॰ क्षावनि गोय्युव नेराव मार्गद । ई विश्व वतिशय धवल ॥२३६॥

प॰ डिहार वतिशय वेन्टन्क वागलु । गुडियतिशय काव्य सव स्॰ त् वडगुडिवागिल्लि बरुवक वय्भव। म्रुडनन्गग धवल शुभ्रांक ॥२३७॥

व्॰ वएसदतिशय महनीय वाणिय । सविय लाञ्छनवुदयव्य तु॰ विवरदजगोसाञ्ग मिदु मधुरतेयिह । सविवर दिव्य मन्गलवु ॥२३८॥

व्॰ रुसिसे 'ऋ' प्रक्षर हत्तन्तर । दिरुवन्कवदरलि बरुव ॥ मं॰ रकतवय्दोम्बत् एळु ऐद्ओम्दु । सरि गूडिसल् 'ऋ' भूवलय ॥२३९॥

ए॰ रिसि बरुवन्कदा मूलदक्षर । वारय्केयतिशय्अद् अन्ञ ग॰ सेरलेन्द् नाल्केळु एन्टाद काव्यवु । दारते यरसुव (दारतेये बर्प)
भञ्ग ॥२४०॥

ऋ+८७४८+अन्तर १५,७९५=२४,५४३ अथवा अ—ऋ ग, १७६,०२२+२४,५४३=२,००,५६५ ।

गि* रि गुहे कन्दरवोळगे होकगे निन्दु । अरहन्त वाणिय बळि कुं* सर मालेयोळगेल्ल भाषेय बलेसुव । गुरु परम्परे यादि भग ॥१९४॥
रि* षि वर्धमानर मुखदन्गवेन्देने । होसेवेंल्ल मेय्इन्द् दा* होरदु॥ रस वस्तु पाहुड मंगल रूपद । असद्रुश वय्भवभाषे ॥१९५॥
वशवाद दिव्याक्षरान्क ॥१९६॥ रिषिवम्श दादिय भाषे ॥१९७॥ कसिय द्रव्यागम भाषे ॥१९८॥
विष वाक्य सम्हार भाषे ॥१९९॥ वशवागलात्म सम्सिद्धि ॥२००॥ विषयाशा हरण दिव्यांग॥२०१॥
रसद् अरवत् नाल्कु भंक ॥२०२॥ यशदेरळ् अन्गय् बरेह् ॥२०३॥ रस वस्तु त्याग धर्व्योग॥२०४॥
यशवक भन्ग भूवलय ॥२०५॥ रस सिद्धियादिय भन्ग ॥२०६॥ यशस्वति पुत्रियरन्गम् ॥२०७॥
रस रेखेयतिशय काव्य ॥२०८॥

णि* ज तत्व एळर भाजितविम् बन्द । अजनादि देवन वाणि॥ बिज व्* वय विजय धवलदन्क राशिय। सुरुजसिव अतिशय धवल ॥२०९॥
व्* रदवाद एळन्नर हदिनेन्दु भाषेय । सरमालेयागलुम् विद् या* सरणियोळ् मूरुन्नररवत्मूर् अंकवे । परितरलागिदेमतवम् ॥२१०॥
वु* ळिद धवलवु महा धवलाकव । बळिसार लेरडे भाषे ॥ कळे जी* व धर्मोस्तु मन्गलम् काव्यवु । बळिक श्री जय धवलांग ॥२११॥
दे* वागम स्तोत्रवादि महोन्नत । पावन पाहुड ग्रन्थ ॥ तीवे व* र्पागम वेल्लवु तुम्बिह । श्री विजयद भूवलय ॥२१२॥
पावन महासिद्ध काव्य ॥२१३॥ देवन वचन सिद्धान्त ॥२१४॥ श्री वीर वचन साम्राज्य ॥२१५॥
श्री वनवासिय काव्य ॥२१६॥ देव जिनेन्द्रर वचन ॥२१७॥ देवरष्टम जिन काव्य ॥२१८॥
देव शान्तोशन मार्ग ॥२१९॥ देव आदीशन चरण ॥२२०॥ काव दोर्वलिय सौन्दर्य ॥२२१॥
श्री विश्व सिद्धांत वचन॥२२२॥ देववाणिय दिव्य भाव॥२२३॥ भाव प्रमाणव काव्य ॥२२४॥
देवन भाव प्रमाण ॥२२५॥ पावन तीर्थद गणित ॥२२६॥ ई वनवासद तीर्थ ॥२२७॥
भावद भल्लातकाद्रि ॥२२८॥ श्री विश्व भ्यषज्य ग्रन्थ ॥२२९॥ पाव कर्मोदय नाश ॥२३०॥
साविर रोग विनाश ॥२३१॥ श्री वर सौभाग्य मग ॥२३२॥ देवन वचन भूवलय ॥२३३॥

व* शवहुद् इल्लि श्री स्वसमय सारद । रसिकात्म द्रव्य ध* र्मोस्तु ॥ वशवाद ध्यात्मद सारसर्वस्ववे। रसद म गल पाहुडवु ।२३४।
न्* ववन्कदिम् बन्द कर्मांक गणितदे । अवतरिसिरुव ध र्* माक्ष ॥ रव अकद ध्यान स्वसमय काव्यद। सवियिह् भद्र म गलवु।२३५।
दे* व जिनेन्द्रन वाणिय प्राभृत। दाविश्व काव्य दर्शन मो* क्षावनि गोय्युव नेराद मार्गद । ई विश्व वतिशय धवल ॥२३६॥
प* डिहार दतिशय वेन्टन्क वागलु । गुडियतिशय काव्य सद स्* व् वडगुडिदागिल्लि बरुवंक वय्भव। म्रुडनन्ग धवल शुभ्रांक ॥२३७॥
व्* वएसदतिशय महनीय वाणिय । सविय लाञ्छनवुदयव्अ तु* विवरदजगोसान्ग मिदु मधुरतेयिह् । सविवर दिव्य मन्गलवु ॥२३८॥
द्* रुशिसे 'ऋ' अक्षर हत्तन्तर । विरुवन्कववरलि बरुव ॥ मं* रकतवय्दोम्वत् एळु ऐव्ओम्दु । सरि गूडिसल् 'ऋ' भूवलय ॥२३९॥
ए* रिसि बरुवन्कदा मूलवक्षर । वारय्केयतिशय्अद् अन्ञ ग* सेरलेन्द् नाल्केळु एन्टाव काव्यवु । वारते यरसुव (दारतेये बर्प) भञ्ग ॥२४०॥

ऋ+८७४८+अन्तर १५,७९५=२४,५४३ अथवा अ—ऋ ग, १७६,०२२+२४,५४३=२,००,५६५ ।

दसवां अध्याय

धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल इन चारो धवलो में रहने वाले अतिशय को अपने अन्दर समावेश करने वाला यह भूवलय सर्वज्ञ देव के शुद्ध केवल ज्ञान रूपी अतिशय के द्वारा निकलकर आया हुआ है। केवल ज्ञान में जगत के सम्पूर्ण ऋद्धि और सिद्धि इन दोनो को अपने अन्दर जैसे वह समावेश कर लिया है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ भी अपने अन्दर विश्व के सम्पूर्ण पदार्थ को अन्दर कर लिया है ।१।

जैसे श्री भगवान महावीर के श्री मुख कमल से अर्थात् सर्वांग से तरह तरह की आई हुई सर्व भाषाओ को श्री वीरसेन आचार्य ने सक्षेप में उपदेश किया था उन सबको मैं श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने सुनकर इन सब विषयो को भूवलय ग्रन्थ के नाम से रचना की ।२।

श्री दिव्य ध्वनि के क्रम से आये हुए विषय को दया धर्म के साथ समन्वय करके समस्त कर्माटक देशीय जनता को एक प्रकार की विचित्र गणित कथा श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने जो वतलाया है उसे हे भव्य जीवात्मन् ! तुम सावधान होकर श्रवण करो ।३।

आदि तीर्थंकर श्री वृषभ देव से लेकर आज तक चलाये गये समस्त कथाओ को हे भव्य जीव ! तुम सुनो ।४।

इतना ही नही वल्कि इससे बहुत पहले यानी अनादि काल से प्रचलित की गई कथा को हे भव्य जीव तुम ! सुनो ।५।

हे भव्य जीव ! तुम आचारागादि द्वादशाँग वाणी को सावधानतया सुनो ।६।

यह भूवलय काव्य अनादि कालीन है, किन्तु ऐसा होने पर भी गणित के द्वारा गुणाकार करके इसकी रचना वर्तमान काल मे भी कर सकते हैं, अत यह आधुनिक भी है ।७।

अनन्त के अनाद्यनन्त, साद्यनन्त, सादिसान्त, साद्यनन्त इत्यादिक भेद हैं। उन भेदो में से यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ साद्यनन्त है ।८।

भगवान् जिनेन्द्र देव की वाणी, वेद, आगम, पूर्व तथा सूत्र इत्यादिक विविध भेदों से युक्त है और वह सब इस भूवलय में गर्भित है ।९।

भगवान् की उपर्युक्त वाणी अग्रेयणीयादि चौदह पूर्व भी है ।१०।

नौ अक को घुमाकर सकलागम निकालने की विधि को श्री दिव्य कर्णाक सूत्र कहते हैं ।११।

चौदह पूर्व मे अनेक वस्तुयें हैं और वे सभी आदि व अनादि दोनो प्रकार की हैं। अत यह भूवलय वस्तु भी है ।१२।

द्वादशाग वाणी का वन्धपाहुड भी एक भेद है। और वन्ध मे सादि-वन्ध, अनादि वन्ध, ध्रुव वन्ध, अध्रुव वन्ध, क्षुल्लक बन्ध, महा बन्ध, इत्यादि विविध भाति के भेद हैं। उपर्युक्त सभी वन्ध इस भूवलय में विद्यमान हैं ।१३।

जो महात्मा योग मे मग्न हो जाते हैं उसे आध्यात्मिक वन्ध कहते है। ।१४।

श्री धन अर्थात् समवशरण रूपी वहिरङ्ग लक्ष्मी और धन अर्थात् केवलज्ञान ये दोनो ऋद्धियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं ।१५।

औपधिऋद्धि के अतर्गत मल्लौपधि जल्लौषधि इत्यादि आठ प्रकार की ऋद्धियाँ होती हैं। वे सभी ऋद्धिया इस भूवलय के अध्ययन से सिद्ध हो जाती हैं। इन सबको पढने के लिये क अक्षर की वर्णमाला से प्रारम्भ करना चाहिये ।१६-१७ १८।

कादिसे नवमाङ्क वन्ध, टादि से नवमाङ्कदग, पादि से नवमाङ्क भग, याद्यष्टरलकुल भग, साद्यन्त से ०, , , और २७ स्वर से भङ्गाङ्क, वर्णमालाङ्क, तथा बन्धाङ्क इत्यादि अनेक गणित कला से सभी वेद को ग्रहण करना चाहिये। अथवा ६४ अक्षराङ्क के गुणाकार से भी वेद को ले सकते हैं। ऐसे गणित से सिद्ध किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है।

।१९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६।

देव, मानव, नागेन्द्र, पशु, पक्षी, इत्यादि तिर्यञ्च समस्त नारकी जीवो की भापा ७०० और महाभाषा १८ हैं। इन दोनो को परस्पर मे मिला कर इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हमने (कुमुदेन्दु मुनि ने) की है। इस रचना की शुभ सम्मति हमें पूज्य पाद श्री वीरसेनाचार्य गुरुदेव से उपलब्ध हुई है ।२७।

हमने ६४ अक्षरो के सयोग से वृद्धि करते हुये अपुनरुक्ताक्षराङ्क रीति से गुणाकार करके इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की है।२८।

जिस प्रकार षड् द्रव्य इस ससार में एक के ऊपर दूसरा कूट कूटकर भरा हुआ है उसी प्रकार ६४ अक्षरो के अन्तर्गत अनुलोम क्रम से समस्त भाषाये भरी हुई हैं। ससार मे यह पद्धति अद्‌भुत तथा परम विशुद्ध है। इस भरे हुए अनुलोम क्रम को प्रति लोम क्रम से विभाजित करने पर ससार की समस्त भापाये स्वयमेव आकार प्रकट हो जाती है।२९।

इसी प्रकार समस्त भाषाओ का परस्पर मे सयोग होने से सरस शब्दागम की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् समस्त भाषाये परस्पर में गु थी हुई सुन्दर माला के समान सुशोभित हो जाती हैं और वह माला सरस्वती देवी का कठाभरण रूप हो जाती है।३०।

उस माला मे विविध भाँति के पुष्प गु थे रहते हैं। उसी प्रकार इस भूवलय ग्रन्थ में भी ६४ अक्षराक रूपी सुन्दर २ कुसुम हैं।३१।

यह भूवलय रूपी माला अर्हंत भगवान् की वाणी की अद्‌भुत् महिमा है।३२।

यह भूवलय समस्त कर्मबद्ध जीवो की भाषा होने पर भी अर्थात् कर्माटक भाषा की रचना सहित होते हुए भी बहुत सरल है।३३।

यह भूवलय परमोत्कृष्ट विविधाक से परिपूर्ण है।३४।

यह वृपभ सेनादि सेन गण की गुरुपरम्पराओ का सूत्राक है।३५।

अर्हन्त भगवान् की अवस्था में जो आभ्यन्तरिक योग था वह रहस्यमय था, किन्तु उसका भी स्पष्टी करण इस भूवलय शास्त्र ने कर दिया।३६।

जिस प्रकार पुष्प गोलाकार व सुन्दर वर्ण का रहता है उसी प्रकार ६४ अक्षराक सहित यह कर्माटक भाषा गोलाकार तथा परम सुन्दर है।३७।

इस भूवलय का सागत्य नामक छन्द अत्यन्त सरल होने पर भी प्रौढ विषय गर्भित है।३८।

आकाश में गरुड पक्षी के समान गमन (उड्डान) करना एक प्रकार की ऋद्धि है किन्तु वह भो इस भूवलय में गर्भित है।३९।

कामदेव के शरीर में जितना अनुपम सौंदर्य रहता है उतना ही सौंदर्य ६४ अक्षराकमय इस भूवलय मे है।४०।

इस प्रकार विविध भाति के सौंदर्य से सुशोभित श्री कुमुदेन्दु आचार्य विरचित यह भूवल काव्य है।४१।

अनादिकाल से दिगम्बर जैन साधुओ ने इन्ही ६४ अक्षरो के द्वारा ही द्वादशाङ्ग वाणी को निकाला था।४२।

इस प्रकार समस्त गुरुओ का वाक्य रूप् यह भूवलय है।४३।

किन्तु उन सबको दु खो से छुडाकर सुखमय बनाने के लिए सर्वांक अर्थात् ९ तथा सर्वाक्षर अर्थात् ६४ अक्षर हैं। क्षर का अर्थ नाशवान् है, किन्तु जो नाश न हो उसे अक्षर कहते हैं। और एक एक अक्षरो की महिमा अनन्त गुण सहित है। इन ६४ अक्षरो का उपदेश देकर कल्याण का मार्ग दिखलाना महत्व पूर्ण विपय है। इतना महत्वपूर्ण अक्षर अक के साथ सम्मिलित होकर जब परम सूक्ष्म ९ बन जाता है तो उसकी महिमा और भी अधिक वढ जाती है। इसके अतिरिक्त ९ अक सूक्ष्म होने पर भी गणित द्वारा गुणाकार करने से जब अत्यन्त विशाल बन जाता है तब उसकी महानता जानने के लिए रेखागम का आश्रय लेना पड़ता है। अको को रेखा द्वारा जब काटा जाता है तब यह भूवलय परमामृत नाम से सम्बोधित किया जाता है।४४।

र ल क्ष ल ये कर्णाटक भापा मे प्रसिद्ध विपय हैं। यह लिपि अत्यन्त गोल व मृदुल है। अत मानव, देव तथा समस्त जीवराशियो का शब्द सग्रह करने मे समर्थ है। वह अनुपम भापा प्राकृत और द्रविड है।४५।

भापात्मक तथा अक्षरात्मक भगवान् की दिव्य वाणी रूपी ७१८ भाषाये ससार के समस्त जीवो को मोक्ष मार्ग का उपदेश देनेवाली हैं। और अखिल विश्व की रक्षा करती हुई भव्य जीवो को शिक्षा देनेवाली हैं।४६।

यह भगवद् वाणी समस्त जीवो की रक्षा के लिए आदि वस्तु है।४७।

यह अक्षयानन्तात्मक वस्तु है।४८।
यह आ अक्षर का द्वितीय भग है।४९।
यह आ २ (प्लुत) अक्षर का तृतीय भग है।५०।

इस रीति से भग करते हुए ६४ अक्षर तक शिक्षरण देनेवाला यह गणित का भग ज्ञान है अर्थात् द्रव्य प्रमाणानुगम द्वार है ।५१।

यह सूक्ष्माकरूपी अनुपम भग है ।५२।

यह अक्षय सुख को प्रदान करनेवाला गणित का रूप है ।५३।

इसी प्रकार यह अनादि काल से शिक्षा देनेवाला गणित शास्त्र है ।५४।

यह लाख लाख तथा करोड करोड सख्या को सूक्ष्म मे दिखानेवाला अक है ।५५।

दिगम्बर जैन मुनि अहिंसा का साधन भूत अपने वगल में जो पीछी रखते हैं उसके अत्यन्त सूक्ष्म रोम की गणना करने से द्वादशाग वाणी मालूम हो जाती है ।५६।

विवेचन—श्री भूवलय के प्रथम अध्याय के ४८ वे श्लोक में नागार्जुन सिद्ध का विषय आया है। उन्होने अपने गुरु देव श्री पूज्यपाद आचार्य जी से कक्षपुट नामक रसायन शास्त्र का अध्ययन करके रसमणि सिद्ध किया था। उस मणि से उन्होने गगनगामिनी, जलगामिनी तथा स्वर्णवाद इत्यादि ८८ महाविद्या का प्रयोग बतलाकर ससार को आश्चर्य चकित कर दिया था। और इसी ८८ महाविद्या के नाम से ८८ कक्षपुट नामक ग्रन्थ की रचना की थी। यह समस्त ग्रन्थ "हूक" पाहुड से सम्बन्धित होने के कारण भूवलय के चतुर्थ-खण्ड प्राणावायपूर्व विभाग में मिल जायगा।

ये समस्त विद्यायें दिगम्बर जैन मुनियो के हृदयङ्गत हैं ।५७।

यह समस्त कक्षपुट मगल प्राभृत से प्रकट होने के कारण खगोल विज्ञान सहित है ।५८।

यह पाहुड ग्रन्थ अङ्ग ज्ञान से सम्वन्ध रखता है ।५९।

जो व्यक्ति दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब अपने समस्त वस्त्रो को त्याग देता है तब उसे इस कक्षपुट का ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।६०।

इस कक्षपुट की यदि व्याख्या करने बैठें तो वाक्य तीक्ष्ण रूप से निकलता है, पर ऐसा होने पर भी वह मृदुल रहता है ६१।

भूवलय को यदि अक्षर रूप में बना लिया जाय तो चतुर्थ खण्ड मे कक्षपुट निकलता है। उसी कक्षपुट को चक्रबन्ध करने से एक दूसरा कक्षपुट तैयार हो जाता है। इसी प्रकार वारम्वार करते जाने से अनेक कक्षपुट निकलते रहते हैं ।६२।

इन्ही कक्षो में जगत् के रक्षक अक्षर वन्धो मे समस्त भापायें निकलकर आ जाती हैं। ६३।

यह कक्ष पुटाङ्क न पढनेवालो के चक्षु को उन्मीलन करके केवल अक मात्र से ही समस्त शास्त्रो का ज्ञान करा देता है ।६४।

शास्त्रो मे दर्शन और ज्ञान दोनो समान माने गये हैं। दर्शन में चक्षु दर्शन व अचक्षु दर्शन दो भेद हैं। इन दोनो दर्शनो का ज्ञान इस कक्षपुट से हो जाता है ।६५।

यह कक्षपुट विविध विद्याओ से पूरित होने के कारण यक्षो द्वारा सरक्षित है ।६६।

यह कक्षपुट भूवलय ग्रन्थ के अध्येता के वक्ष स्थल का हारपदक है अथवा भूवलय रूपी माला के मध्य एक प्रधान मणि है ।६७।

यह भूवलय ग्रन्थ जिस पक्ष में व्याख्यान होता है उसे पराकाष्ठा पर पहुचाने वाला होता है ।६८।

उपर्युक्त समस्त विपयो को ध्यान मे रखते हुए क्रमागत गणित मार्ग से दिगम्बर जैन मुनि अपने विहार काल मे भी शिष्यो को सिखा सकते हैं।६९।

इस समय यह अद्भुत विषय सामान्य जनो के ज्ञान मे नही आ सकता। यह सागत्य नामक छन्द असदृश ज्ञान को अपने अन्दर समा लेने की क्षमता रखता है। और सर्वभाषामयी कर्माटभापात्मक है। इसलिए यह दिव्य सूत्रार्थ भी कहलाता है ।७०।

यव (जौ) के खेत में रहकर अनन्तानन्त सूक्ष्म कायिक जीव अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इस रीति से सुविख्यात कर्माट देश एक प्रदेश होता हुआ भी समस्त कर्माष्टक अर्थात् समस्त विश्व की कर्माष्टक भापा को अपने अन्दर समाविष्ट करता है ।७१।

गणित शास्त्र का अन्त नही है। किन्तु उन सवको अणुरूप मे बनाकर एक समय में असख्यात गुणित क्रम से कर्म को नाश करनेवाली विधि को वह बतलाता है ।७२।

यह गणित शास्त्र इस विश्व व्यापक भूवलय काव्य के अन्तर्गत है। अत गुरु श्रेष्ठ श्री वीरसेनाचार्य का शिष्य मैं (कुमूदेन्दु मुनि) इस गणित शास्त्रमय भूवलय काव्य की रचना करता हू।७३।

जिस प्रकार कर्मा का क्षय होता है उसी प्रकार अक्षरो की वृद्धि होती रहती है। वृद्धिगत उन समस्त अक्षरो को गणित शास्त्र में वद्ध करके अनुलोम प्रतिलोम भागाहार द्वारा मगल प्राभृत नामक एक खण्ड वना दिया।७४।

दुष्कर्मो का कथनाक प्राचीन कन्नडभाषा मे रूढि के अनुसार वर्णन किया गया था। वह गाढ प्रगाढ शब्द समूहो से रचित होने के कारण कठिन था। किन्तु भगवान् जिनेन्द्र देव की दिव्य वाणी समस्त जीवो को समान रूप से कल्याणकारी उपदेश प्रदान करती है। इस उद्देश्य से इसे अतिशय वन्ध रूप में बांधकर अत्यन्त सरल वना दिया।७५।

ऐसा सुगम हो जाने के कारण सर्व साधारण जन इस समय इस भूवलय का स्तुति पाठ सुमधुर शब्दो मे प्रसन्नता पूर्वक गान करते रहते हैं।७६।

भुवलयान्तर्गत इस अद्भुत् गणित शास्त्र को देखकर विद्वज्जन आश्चर्य चकित हो जाते हैं।७७।

यह गणित शास्त्र युगल जोडियो के समूह से वनाया गया है।७८।

इन युगलो को जव परस्पर मे जोडते जाते हैं तव अपने पुण्याङ्क का भग भी निकलकर आ जाता है।७९।

जोडने के समय में ही लब्धाक आ जाता है।८०।

यह गणित शास्त्र द्वादशाग वाणी को निकालने के लिए गूढ रहस्यमय है।८१।

सागत्य नामक सुलभ छन्द होने के कारण यह भूवलय मूढ और प्रौढ दोनो के लिए सुगम है।८२।

यह भूवलय प्रगाढ रहस्यो से समन्वित होने पर भी अत्यन्त सरल है।८३।

सुन्दर शब्दो में गान किये जाते हुए इस भूवलय ग्रन्थ को अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रवण करने के लिए दौडकर आये हुए श्रोतागण पुण्यवन्ध कर लेते हैं।८४।

महाक राशि को श्रेणी कहते हैं। उन श्रेणियो को छोटे अक से घटाकर भाग देने की विधि भी इस भूवलय मे वतलाई गई है।८५।

इसके साथ साथ इसमे महान् अको को महान् अको द्वारा गुणाकार करने का भग भी है।८६।

वहुत दिनो से श्री जिनेन्द्र देव की, की हुई पूजा का फल कितना है? वह सब गणित द्वारा मालूम किया जा सकता है।८७।

ऐसी गणना करते हुए वर्तमान काल मे भी पूजा करने का पुण्यवन्ध हो जाता है।८८।

सगीत शास्त्र के घटावाद्य नामक नाद मे भी इस भूवलय का गान कर सकते हैं।८९।

दिगम्बर जैन मुनि, जगलो मे तपस्या करते समय इन समस्त विद्याओ को सिद्ध किये हैं।९०।

धान के ऊपर का मोटा छिलका निकाल देने के वाद चावल के ऊपर एक हल्का वारीक छिलका रहता है। उस वारीक छिलके को कूटने से जो सूक्ष्म कण तैयार होते हैं उन कणो की गणना करके दिगम्बर जैन मुनि अपने कर्म कणो को भी जान लेते हैं।९१।

यह भूवलयान्तर्गत गणित शास्त्र अन्य गणितो से अकाट्य है।९२।

इस गणित से किये हुए पुण्य कर्मों की गणना भी कर सकते हैं।९३।

यह परम्परागत रूढि के आगम से आया हुआ सूक्ष्माक गणित है।९४।

यह परमाणु भग भी है और वृहद् ब्रह्माण्ड भग भी। इसलिए इसकी समानता अन्य कोई गणित नही कर सकता।९५।

परम प्रगाढ भक्ति से अध्ययन करनेवाले भव्य भक्तो के अतरग मे झलकने वाला यह गणित शास्त्र है।९६।

पुण्योपार्जनार्थ एकत्रित होकर परस्पर मे चर्चा करनेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।९७।

नामकर्म में अनेक उत्तर प्रकृतिया हैं। उनमें एक यश कीर्ति नामक प्रकृति भी है। उस प्रकृति का उदय यदि जीव में हो जाय तो सर्वत्र प्रशसा हो जाती है। सामान्य जीव प्रशसा प्राप्त हो जाने से गर्वित हो जाते हैं, किन्तु

जो महापुरुष समुद्र के समान गम्भीर रहते हैं उन्हीं महात्माओं की कृपा से परमागम द्व्यागम पाहुड ग्रन्थ कुसुम- वर्णाक्षर माला से विरचित है ।९८।

इस गणित शास्त्र से १२ अंग शास्त्र को निकालकर समयानुसार काल से नील और महानील नामक ऋषि ने इस भूवलय नामक ग्रन्थ की रचना की थी। उसी पद्धति के अनुसार श्री महावीर भगवान् की वाणी के प्रभाव से इस भूवलय शास्त्र का गणित उपलब्ध हुआ ।९९।

लक्ष्मण प्रद्युम्न थे। उनके द्वारा छोड़ा गया बाण बड़े वेग से जाता था। उस वेग की तीव्रतर गति को भाग से गुणा करके आये हुए गुणनफल के साथ मिला हुआ यह भूवलय काव्य का गणित है। इसलिए इस... काव्य भी है ।१००।

मन्मथ का शरीर प्रद्युम्न था। सन्यास और ... भी उत्तम था तथा नवकार मन्त्र के समान वह पूर्णता को प्राप्त कर लिया था। इन सबका और सिद्ध परमेष्ठी के आठ मूल गुण रूप ... करते हुए लिखित काव्य होने से इसे सुन्दर काव्य भी कहते हैं ।१०१।

श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र देव का शरीर धवल वर्ण होने से यह भूवलय ग्रन्थ भी धवल है। अथवा इस भूवलय ग्रन्थ से धवल ग्रन्थ भी निकलता है इस अपेक्षा से भी यह धवल है ।१०२।

मुनि सुव्रत जिनेन्द्र के समय में पद्मपुराण प्रचलित हुआ इसलिये यह भूवलय ग्रन्थ पद्मपुराण कहलाता है ।१०३।

तीनों काल में ७२ जिनेन्द्र देव, अनेक केवली भगवान् तथा तीन कम ९ करोड आचार्य होते हैं। उन सबका माला रूप कथन इस प्रथमानुयोग में है और वह प्रथमानुयोग इसी भूवलय में गर्भित है ।१०४।

रत्नत्रयात्मक धर्म शुद्ध धवल है। गणित शास्त्र से ही जिन माला और मुनिमाला दोनों को ग्रहण कर सकते हैं। गणित में ही अक्षर ब्रह्म का स्वरूप निकलता है और यह गणित कठिन न होकर अनुभव गोचर है। यह धवल रूप जिन धर्म वृद्धिगत वस्तु है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से आत्मध्यान की सिद्धि प्राप्त होती है। एकान्त हठको दुर्नय कहते हैं। उस दुर्नयको दूर करके अनेकान्त साम्राज्य को लाने वाला यह ग्रन्थ है ।१०५ से १११ तक।

इस संसार में सारे जीवों को शिक्षा [illegible] शिक्षा के बल से सोना बनाया जा सकता है, पर इस भूवलय में उस [illegible] को सफल बना सकते हैं ।११२।

[illegible] है ।११३।

यह समस्त संसार के द्वारा पूजनीय लौकिक गणित है ।११४।

यह भगवान् जिनेन्द्र के [illegible] से निकला हुआ भूवलय है ।११५।

[illegible] के समान [illegible] है ।११६।

[illegible] है ।११७।

[illegible] में [illegible] दिव्यांक है ।११८।

[illegible] गणित शास्त्र है ।११९।

[illegible] हुआ गणित है ।१२०।

यह भगवान् जिनेन्द्र देव का [illegible] गणित है ।१२१।

यह भूवलय शास्त्र [illegible] जीवों के लिए [illegible] है ।१२२।

गति, जाति आदि २४ [illegible] अनुसार [illegible] के योग में एकेन्द्रियादि २४ [illegible] पैदा होता है और [illegible] के पैदा होने के समय में [illegible] गणना [illegible] आवश्यक है। यह इस प्रकार है कि जैसे एक वर्ष में १२ मास होते हैं, १ मास में ३० दिन होते हैं, १ दिन में २४ घंटे होते हैं, १ घंटे में ६० मिनट होते हैं और १ मिनट में ६० सैकण्ड होते हैं उसी प्रकार नवम देव [illegible] अभिन्न रूप में चले जाने पर [illegible] काल मिल जाता है। ऐसे काल को एक समय कहते हैं। जिस प्रकार १ वर्ष का काल ऊपर बतलाया गया है उसी प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों का [illegible] रूप से बना लेना चाहिये। इतने महान् अंक में सबसे छोटे एक समय को यदि मिला लिया जाय तो उसमें अनन्तांक मिल जाता है ।१२३।

छिपे हुए अंक को प्रकट करते समय, स्थापित करते समय, परस्पर में मिलाते समय तथा प्रवाहित होते समय पुद्गल द्रव्य सहज से आकर काल द्रव्य को पकड़ लेता है। उस प्रदेश से आते जाते और खड़े होते हुये अनन्त जीव राशि का अंक मिल जाता है ।१२४।

एक प्रदेश में काल, जीव और पुद्गल द्रव्य जब आकर मिल जाते हैं तब अनन्ताङ्क मिल जाते हैं। उन नीचातिनीच योनि में जीनेवाले जीवो को वाहर लाकर भव्य जीवो को मगल पाहुड काव्य के अन्दर लाकर, स्थित करके।१२५।

लोक मे भद्र पूर्वक रक्षा करके गुण स्थान मार्ग से बद्ध करके पाचो कल्याणो की महिमा दिलाकर ऊपर चढाते हुये लोकाग्र अर्थात् सिद्ध लोक मे स्थिर करते हुये शोकापहरण करने वाला यह अक है।१२६।

नाकाग्र अर्थात् लोक के अग्रभाग का सिद्ध रूपी काव्य है।१२७।

समस्त व्याकुलता को नाश करनेवाला यह काव्य है।१२८।

यह आकार रहित दिव्याक काव्य है।१२९।

यह एकाग्र ध्यान को प्राप्त कर देने वाला काव्य है।१३०।

यह ओकार वर्जित शब्द है।१३१।

यह ओकार गोचर वस्तु है।१३२।

यह ह्लीकार के द्वारा आराध्य वस्तु है।१३३।

यह ह्लोकार के द्वारा पूजित गर्भ है।१३४।

यह ह्लुकार के द्वारा आराध्य सज्ञा है।१३५।

ह्लेंकार गोचर वस्तु है।१३६।

ह्लोकार पूजित गर्भ है।१३७।

यह ह्लोकार अतिशय वस्तु है।१३८।

यह ह्लकार आराध्य सर्वज्ञ है।१३९।

यह ह्लकार गोचर वस्तु है।१४०।

इस प्रकार मत्राक्षराक युक्त होने से यह भूवलय शका रहित है।१४१।

नवकार मत्र के आदि में अरहन्त शिवपद कैलाश गिरि है, उनका निवास स्थान अतिशय श्री समवशरण भूमि है तथा जन्म और मरण का नाशक सहार भूमि है।१४२।

यह श्रेष्ठ भद्रकारण होने से मगल मय है, गुरु परम्परागत अङ्ग ज्ञान है, परमात्म सिद्धि के गमन में कारण भूत होने से यह भूवलय श्री वर्धमान भगवान का वाक्याङ्क है।१४३।

नर, सुर तिर्यञ्च तथा नारकी जीवो को विविध भाति से सम्यक्त्व प्राप्त होता है। और उस सम्यक्त्व के प्रभाव से गोचरी वृत्ति द्वारा आहार ग्रहण करने वाले दिगम्बर मुनियो को चारित्रलब्धि प्राप्त होने का कारण हो जाता है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित वचन है।१४४।

यह वाक्य श्री ऋषभ तीर्थंकरादि २४ तीर्थंकरो के धर्म तीर्थ मे प्रवाहित होता हुआ आया तत्व है और यह तत्व जिन भव्य जीवो के वश में हो जाता है उनके ससार का शीघ्र ही अन्त हो जाता है।१४५।

द्वीप, सागर, गिरि, गुफा तथा जल गिरने के झरने आदि स्थानो मे जो निर्वाण भुमि है, वह मोक्ष गृह की नीव है, उस नीव को वतलाने वाला यह परम मगल भूवलय काव्य है।१४६।

वीर वाणी ओकार स्वरूप है। उस ओकार से आया हुआ यह भूवलय काव्य है।१४७।

दिगम्बर योगिराजो ने उपर्युक्त तपोभूमियो मे ही काम राज का संहार किया है।१४८।

उपर्युक्त तपोभूमियो तथा दिगम्बर महामुनियो के कथन करने का धर्म ही विश्व काव्याग रचना का धर्म है।१४९।

उस काव्य रचना की विद्या ६४ अक्षरो को घुमाना ही है।१५०।

इस क्रिया के द्वारा कर्मों की निर्जरा भी होती है।१५१।

यह श्री विद्या पुण्यवन्ध की इच्छा करनेवालो को पुण्यबन्ध करा सकती है।१५२।

इस परम पावनी विद्या के साधको को अखिल विश्व मगलमय दृष्टि-गोचर होता है।१५३।

यह मगलमय ६४ अक विश्व का वैभव है।१५४।

जिस प्रकार एक छोटे से बीज का अकुर कालान्तर मे महान् वृक्ष बन जाता है उसी प्रकार यह पुण्याकुर वृद्धिगत होकर वहुत बड़ा वृक्ष बन जाता है।१५५।

यह मगलमय क्षेत्र श्री जिनेन्द्रदेव भगवान का है।१५६।

इस क्षेत्र का ज्ञान अर्थात् विश्व दर्शन से समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है।१५७।

इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ मे रहनेवाले अतिशयों का कथन वर्णनातीत है।१५८।

यह श्री जिनेन्द्रदेव के उपदेश का अंक है।१५९।

यह अंक विश्व के किनारे लिखित चित्र रूप है अर्थात् सिद्ध भगवान का स्वरूप दिखलाने वाला है।१६०।

यह श्री बाहुबली भगवान के द्वारा विहार किया गया अंक क्षेत्र है।१६१।

इसलिए यह भूवलय काव्य दिव्य काव्य है।१६२।

ऊपर द्वितीय अध्याय में जो अंक लिखे गये हैं उन अंकों से समस्त कर्मों की गणना नही हो सकती। उन समस्त कर्मों की यदि गणना करनी हो तो १०००००००००००००० सागरोपम गणित से गिनती करनी होगी या इससे भी बढकर होगी। इन कर्मों की गणना करनेवाले शास्त्र को कर्म सिद्धात कहते हैं। वह सिद्धात भूवलय के द्रव्य प्रमाणानुग में विस्तृत रूप से मिलता है। वहा पर महांक की गणना करनेवाली विधि को देख लेना।१६३।

अन्य ग्रन्थो मे जो डमरू बजाने मात्र से शब्द ब्रह्म की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह गलत है, क्योकि डमरू जड है और जड से उत्पन्न हुआ शब्द ब्रह्म नही हो सकता। इतना ही नही उसमें गणित भी नही है और जब गणित नहीं है तब गिनती प्रामाणिक नही हो सकती यहा पर प्रमाण शब्द का अर्थ प्रकर्ष-माण लिया गया है। शुद्ध जीव द्रव्य मे आया हुआ शब्द ही निर्मल शब्दागम बन जाता है। और वही भूवलय है।१६४।

वर्तमान काल, व्यतीत अनादिकाल तथा आनेवाले अनन्त काल इन तीनो को सद्गुरुओ ने मगल प्राभृत नामक भूवलय में कहा है। इसलिए यह भूवलय काव्य राग और विराग दोनो को बतलानेवाला सद्ग्रन्थ है।१६५।

ओ एक अक्षर है और बिन्दी एक अङ्क है। इन दोनो को परस्पर में मिला देने से समस्त भूवलय 'ओं' के अन्दर आ जाता है। इसका आकार शब्द साम्राज्य है। इसलिए यह ओंकर, सुखकर तथा समस्त ससार के लिए मगल कारी है।१६६।

इस अङ्क को भग करते आने से सारी व्याकुलता नष्ट हो जाती है।१६७।

साकार रूपी अतिशय अङ्क ज्ञान है।१६८।

यह अंक ज्ञान अथवा शब्दागम आकार रहित होने पर भी साकार है।१६९।

जो साकार है वही निराकार है।१७०।

इस अंक को लाने के लिए एक, द्वि, त्रि चतुर भग करना चाहिए।१७१।

इसी प्रकार पाच व छ का भी भग करना चाहिए।१७२।

अगलों द्वारा सात व आठ भङ्ग करना चाहिए।१७३।

इसी प्रकार उपर्युक्त भगों में से यदि अन्तिम का दो निकाल दिया जाय तो ७१८ भाषाए आ जाती है।१७४।

"ओ" और "म" इन दो अक्षरो को निकाल देना चाहिए।१७५।

सगार की समस्त भाषायें आ जाती हैं।१७६।

ओ कार दिव्यध्वनि मे गर्भित है।१७७।

यहा से यदि आगे बढे तो ३ अक्षरों का भग आता है।१७८।

आकार का ६ भग है। उन भगों को ८ भग मे मिलाना चाहिए।

१७९-१८०।

आगे १६ भग लेना।१८१।

और ५ अक्षरो का भग आता है।१८२।

पुन २५ अग आ जाता है।१८३।

उपर्युक्त समस्त अक्षरो को माला रूप में बनाना।१८४।

तत्पश्चात् ७२ आ जाता है।१८५।

और ५ अक्षरो का भङ्ग निकलकर आ जाता है।१८६।

तदनन्तर १२० अग आ जाता है।१८७।

और ८ अक्षरो का भग बन जाता है।१८८।

तब ७२० अङ्क आ जाता है।१८९।

इसमें से यदि २ निकाल दे तो ७१८ भाषाओं का भूवलय ग्रन्थ प्रकट हो जाता है।१९०।

वह इस प्रकार है—

१×२×३×४×५×६ = ७२०—२=७१८।

उपर्युक्त ७२० सख्या मे से यदि आदि और अन्त की २ सख्या निकाल दी जाय तो सर्व भापा निकलकर आ जाती है। उसमे ७०० क्षुद्र भाषा तथा १८ महाभापा है ।१६१।

प्रतिलोम क्रम से आये ६ अक मे अनुलोम क्रम से आये हुये ६ अंक का भाग देने से मृदु तथा मधुर रूपी देव-मानवो की भापा उत्पन्न हो जाती है। इसका नाम महाभापा है। जब महाभापा उत्पन्न हो जाती है तब ससार की समस्त भापाये स्वयमेव बन जाती हैं ।१६२।

ये सभी भापायें सर्वज्ञ वाणी से निकली हुई हैं। सर्वज्ञ वाणी अनादि कालीन होने से गीर्वाग्वाणी कहलाती है। यही साक्षात् सरस्वती का स्वरूप है तथा सभी एक रूप होने से ओंकार रूप है। अपने आत्मा की ज्ञान ज्योति प्रकट होने के कारण जिनवाणी द्वारा पढाया गया यही पाठ है ।१६३।

गिरि, गुफा तथा कन्दराओ मे बाह्याभ्यन्तर कायोत्सर्ग खडे होते हुये योग मे मग्न योगियो को यह अर्हन्त वाणी सुनाई पडती है। और ऐसा हो जाने पर योगी जन अपने दिव्य ज्ञान द्वारा सभी भापाओ को गणित से निकाल लेते हैं। इसलिये इस भूवलय को गुरु परम्परागत काव्य कहते हैं ।१६४।

श्री वर्धमान जिनेन्द्र देव के मुख कमल अर्थात् सर्वांग से प्रकटित मगल-प्राभृत रूप तथा असदृश वैभव भाषा सहित है ।१६५।

इस काव्य को पढने से दिव्य वाणी के अक्षराङ्क का ज्ञान हो जाता है ।१६६।

यह भापा ऋद्धि वश की आदि भाषा है ।१६७।

यह भाप, द्रव्यागम की भापा है ।१६८।

यह भापा विष वाक्य अर्थात् दुर्वाक्य का सहार करने वाली है ।१६६।

इस भापा को वशीभूत करने से आत्म ससिद्धि प्राप्त हो जाती है ।२००।

इस भापा को सीखने से विषयो की आशा विनष्ट हो जाती है ।२०१।

६४ अक्षरो के भग मे ही ये समस्त भापाये आ जाती हैं ।२०२।

यह भापा ब्राह्मी और सौन्दरी देवी की हथेली में लिखित लिपि रूप मे है ।२०३।

यह रस त्यागियो का धर्म स्वरूप है ।२०४।

यह भूवलय ग्रन्थ अक भग से बनाया गया है ।२०५।

पारा सिद्धि के लिए यह आदिभंग है ।२०६।

यह यशस्वती देवी की पुत्री का हस्त स्वरूप है ।२०७।

उस यशस्वती देवी की हथेली कीरेखा से रेखागम शास्त्र की रचना हुई और वह शास्त्र भी इसी भूवलय मे है ।२०८।

सात तत्व के भागा हार से आये हुये आदि ब्रह्म वृषभ देव भगवान् के द्वारा प्राप्त यह भूवलय नाम की वाणी है। समस्त अकाक्षर को अपने अन्दर समावेश कर लेने के कारण इसमे विजय धवल के अन्तर्गत अक राशि ढेर ढेर रूप मे छिपी हुई है। इसलिये इस भूवलय को अतिशय धवल कहा गया है ।२०९।

इसमे ७१८ भापाये माला के रूप मे देखने मे आती हैं। वे सभी अतिशय विद्या के श्रेणी से मिली हुई हैं। ३६३ मतो का अक के रूप से वर्णन किया गया है ।२१०।

इस भूवलय मे आने वाले धवल और महाधवल को यदि इसमे से निकाल दिया जाय तो इसमे दो ही भापा देखने में आयेंगी। तो भी उसमे ७१८ भापाये सम्मिलित हैं। मगल पाहुड ऐसे इस भूवलय मे जीव के समस्त गुण धर्म का विवेचन किया गया है। इसलिये यहा इसमे से जय धवल ग्रन्थ को भी निकाल सकते हैं ।२११।

द्वादशाग वाणी मे अनेक पाहुड ग्रन्थ हैं। और अनेक आगम ग्रन्थ हैं। उन सब को विजय धवल भूवलय ग्रन्थ से निकाल सकते हैं। और उसी विजय धवल ग्रन्थ के विभाग मे अत्यन्त मनोहर देवागम स्तोत्र निकल आता है ।२१२।

इसलिये यह भूवलय काव्य महाप्रसिद्ध काव्य है ।२१३।

भगवान का वचन ही सिद्धान्त रूप होकर यहा आया है ।२१४।

श्री वीर जिनेन्द्र भगवान का वचन ही साम्राज्य रूप है ।२१५।

यह वनवासी देश मे, तप करने वाले दिगम्बर मुनियो का भूवलय नामक काव्य है ।२१६।

विवेचन —आदि पुराण में दडक राजा का वर्णन आया है। उन्हीं के

नाम से दण्डकारण्य प्रचलित हुआ। यह राज्य कर्णाटक के दक्षिण भाग में है। आचार्य कुमुदेन्दु के समय में इसे वनवासी देश कहते थे। उस समय में चत्ताण (चतुः स्थान) तथा वे दण्डे (द्विपाद) इन दो नमूने का काव्य प्रचलित था। वे-दण्डे काव्य का नमूना श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने १२ वें अध्याय के ३१ वें श्लोक में निर्दिष्ट किया है और "चत्ताण" काव्य भी समस्त भूवलय का सांगत्य नामक छन्द है।

यह भूवलय श्री जिनेन्द्र देव का वचन है।२१७।

यदि गणित की पद्धति से देखा जाय तो यह भूवलय अष्टम जिनेन्द्र श्री चन्द्रप्रभ भगवान के द्वारा प्रतिपादित किया गया है।२१८।

इसी प्रकार यह भूवलय श्री शान्तिनाथ भगवान् का मार्ग भी है।२१९।

विवेचन—श्री शान्तिनाथ भगवान् अगणित पुण्यशाली हैं। श्री ऋषभ नाथ तीर्थंकर भगवान भरत जी चक्रवर्ती तथा बाहुबली स्वामी कामदेव पद के धारी थे। किन्तु श्री शान्तिनाथ भगवान् अकेले तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव तीनो प्रकार के वैभवो से संयुक्त थे। अतः वे बहुत बडे पुण्यात्मा कहलाते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित प्रशस्त मार्ग भी इस भूवलय के अन्तर्गत है।

यह "वेदण्डे" काव्य श्री ऋषभनाथ भगवान् के समय मे आया हुआ है।२२०।

श्री बाहुबली स्वामी अत्यन्त सुन्दर थे। उसी प्रकार यह भूवलय काव्य भी परम सुन्दर है।२२१।

इस भूवलय में विश्व का समस्त सिद्धान्त गर्भित है २२२।

यह काव्य श्री जिनेन्द्रदेव की वाणी मे विद्यमान समस्त भावो को प्रदान करने वाला है।२२३।

यह भूवलय भाव प्रमाण रूप काव्य है।२२४।

यह श्री जिनेन्द्र देव का भाव प्रमाण है।२२५।

समस्त विश्व के अन्दर जितने भी तीर्थ हैं उन सबका वर्णन इस काव्य में दिया गया है।२२५।

यह भूवलय काव्य वनवासी देश के तीर्थ नन्दी पर्वत पर लिखा गया।२२७।

इसमें जो प्राणावाय (आयुर्वेद) विभाग है वह भल्लातकाद्रि अर्थात् "गुरु गुण्डे" (शिलाद्रि) पर्वत पर जैन मुनियों द्वारा लिखा गया है।२२८।

इस विभाग मे संसार की कल्याणकारी समस्त औषधियाँ निकल कर आ गई हैं।२२९।

इस ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से पाप कर्मों द्वारा उत्पन्न सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं।२३०।

इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से आगन्तुक सहस्रों व्याधियां विनष्ट हो जाती हैं। इस लिये यह बड़ा सौभाग्यशाली ग्रन्थ है।२३२।

यह भूवलय भगवान् का वचन रूपी महान् ग्रन्थ है।२३३।

भूवलय की व्याख्या मे ३ क्रम हैं १ ला स्वसमय वक्तव्यता, २ रा पर-समय वक्तव्यता तथा ३ रा तदुभय वक्तव्यता है। इन तीनों वक्तव्यो में प्रधान स्व समय है। सद्धर्म सागर मे गोता लगाने वाले रसिक जनों के लिये यह परमानन्द दायक है। इस अध्याय में अध्यात्म सर्वस्व सार ओत-प्रोत भरा हुआ है। इसलिये यह मंगल प्राभृत नामक भूवलय का प्रथम भाग प्रसिद्ध है।२३४।

विवेचन—आत्म-तत्त्व का विवेचन करना स्वसमय वक्तव्यता है, इसके अतिरिक्त बाह्य शरीरादि का विवेचन करना पर-समय वक्तव्यता है तथा दोनो का साथ २ विवेचन करना तदुभय वक्तव्यता है।

नौ अंक मे आया हुआ अर्थात् कर्म सिद्धान्त गणित मे अवतार लिया हुआ वर्णाक्षर रूपी यह अंक ध्यान है। इसलिये यह भूवलय काव्य स्व समय रूप, भद्ररूप तथा मंगल स्वरूप है।२३५।

यह भूवलय ग्रन्थ श्री जिनेन्द्र देव की वाणी मे निष्पन्न होने से प्राभृत तथा विश्व काव्य है। इसका स्वाध्याय करने से मोक्ष पद प्राप्त हो जाता है और मोक्षके लिए सरल मार्ग होने से यह अतिशय धवलरूप है।२३६।

जिस प्रकार श्री जिनेन्द्र देव के ८ प्रातिहार्य होते हैं उसी प्रकार नन्दी पर्वत भी ८ विभागो मे विभक्त होने से अष्टापद पर्वत कहलाता है। अष्टम जिनेन्द्र देव श्री चन्द्रप्रभ का वैभव होने से यह अतिशय-धवल नामक शुभ्राग है।२३७।

श्री जिनेन्द्र देव के आराधक भक्त जन अर्थात् दिगम्बर जैन मुनि अपनी बुद्धि की विशेषता से विविधि भाति की युक्तियो से श्री भूवलय का व्याख्यान बडे सुन्दर ढग से किया है। इसलिये समस्त भाषाओ से समन्वित भूवलय मृदु एव मधुर है और मगलकारी है ।२३८।

यह दशवाँ ऋ अक्षर का अध्याय है। जिस प्रकार मरकत मणि अत्यन्त शुभ्र व दीप्तवान् होती है उसी प्रकार इस अध्याय के अन्तर काव्य में पाँच, नौ, सात, पाच और एक अर्थात् १, ५, ७, ६, ५, अक्षर रहने वाला ऋ भूवलय है ।२३९।

श्रेणीबद्ध काव्य में मूलाक्षर का अक आठ, चार, सात और आठ अक प्रमाण है। यही श्रेणीबद्ध काव्य का भगाक है ।२४०।

ऋ ८, ७,४,८+अन्तर १५७६५=२४, ५४३

अथवा

अ—ऋ १, ७६, ०२२+२४, ५४३ = २,००,५६५ ।

सम्पूर्ण

ऊपर से नीचे तक यदि प्रथमाक्षर पढते जायँ तो प्राकृत भापा निकलती है। उसका अर्थ इस प्रकार है—

ऋपिजनो मे सुग्रीव, हनुमान, गवय, गवाक्ष, नील, महानील, इत्यादि ६९ कोटि जनो ने तु गीगिरि पर्वत पर निर्वाण पद को प्राप्त कर लिया। उन सबको हम नमस्कार करेंगे।

इसी प्रकार ऊपर से यदि नीचे तक २७ वा अक्षर पढते जायँ तो सस्कृत गद्य निकल आता है। वह इस प्रकार है—

नतया श्रृण्वन्तु— मंगल भगवान् वीरो मंगल भगवान् गौतमोगणी ।
मगल कुन्दकुन्दाद्या जीव धर्मोऽस्तु मग ॥

दसवां अध्याय

ऋ* पि अरूपियागिरुव द्रव्यागम । वापद्धतियोळगंक ।। ताप लं* नक्षर दोळगे कूडिसुवन्क । श्री पद द्वयवु भूवलय ।।१।।
आ* दिय अतिशय मगल पर्याय । दादियन्काक्षर कूट ।। नाद म* अदे जीवनरि वेन्नुतिह ज्ञान । साधने यध्यात्म योग ।।२।।
म* नदर्थियिन्द मगल पर्यायवनोदे । जिन धर्म तत्व ज* लेलल ।। तनगे ताने तन्न निजवनु तोरिप । घनविद्यासाधने योग ।।३।।
सु* न्नर किन्नर ज्योतिष्क लोकद । घनव श्री जिन देवालयद् ।। ल* णधव्य श्री जिन बिम्ब कृत्रिमा कृत्रि । मेनेसान्क गणनेयोळदिदु ।।४।।
दो* षविनाशन श्रीश श्री मन्दर । देशन दरुशन माडि ।। राशिय मृ* पुण्यव रूपिनिम् गळिसुव । ईशर भजिसे मन्गलवु ।।५।।

श्री शन पुण्य सद्ग्रन्थ ।।६।। राशिय पाप विनाश ।।७।। ईशनु पेळिद ग्रन्थ ।।८।। राशिय पुण्यद गणित ।।९।।
ईशन भक्तिय गणित ।।१०।। दोष अष्टादश गणित ।।११।। श्री शन सद्धर्म गणित ।।१२।। राशिय पुण्यद गणित।।१३।।
ईशन ज्ञानद गणित ।।१४।। दोष अष्टादश गुणित ।।१५।। श्रीशन सद्धर्म गुणित।।१६।। राशिय पुण्यद ज्ञान ।।१७।।
ईशन चारित्र गणित ।।१८।। दोष अष्टादशदरित ।।१९।। श्रीशन सद्धर्म ज्ञान ।।२०।। कोशद ज्ञान विज्ञान ।।२१।।
ईशन चारित्र सार ।।२२।। दोष अष्टादश रहित ।।२३।। श्रीशन सद्धरम गुणित।।२४।। आशेय भव्यर भक्ति ।।२५।।
ईशरिप्पत् नाल्वरन्क।।२६।। कोषद काव्य भूवलय ।।२७।।

दो* षगळलियबेकेम् वाशेयिहरेल्ल । राशेयम् गुरुतिस्इ हरु स* ।। देश ज्ञानव सम्पूर्ण वागिसि कोन्ड । देसिय भाषाक काव्य ।।२८।।
ण* ववन्क वेन्देने अरहन्त रादियिम् । नव तीर्थगळन द र* शनदि ।। अवनिय पूजेगे विनयोगवेन्नुद । शिव पददन्तवेदरिया ।।२९।।
णि* जवहत् अन्कवे साधित भव्य । विजयाक वेन्दरि अ व* नु ।। भजिसुत बरुवाग नवपद सिद्धियु । विजय मावुवुदेन् अरिदे ।।३०।।
ज* य सिद्धियाद हत्न्क महाव्रत । दयतदे बद सन् मा* र्ग ।। दये दानवेल्लव निरदित्तु भजकर् गे । नय प्रमाणवनु तोरुवुदु।।३१।।
णा* णव सामान्य प्रस्थारदन्कव । ज्ञान साम्राज्य ध्वज न्* व ।। श्री नेमिनाथाक वेन्दरि परमात्म । अनन्द कल्याण करण ।।३२।।

ज्ञान वरुभवकर काव्य ।।३३।। श्रीनिवासद दिव्य काव्य ।।३४।। आनन्ददायक काव्य ।।३५।। ऊनवळिद दिव्य काव्य ।।३६।।
काणिय भद्र मन्गलवु।।३७।। तानल्लि काणिप मन्त्र ।।३८।। ताने शुद्धोपयोगाक ।।३९।। आनन्द साम्राज्य गणित ।।४०।।
काणिप शिव सव्ख्यभद्र ।।४१।। तानल्लि काणिप तन्त्र।।४२।। जोणि पाहुडदानि ग्रन्थ ।।४३।। आनन्द साम्राज्य गुणित।।४४।।
काणिप सूक्ष्म विन्यास ।।४५।। तान्ल्लि काणिप मूर्ति।।४६।। क्षोणियनलेव सत्कीर्ति ।।४७।। आनन्द साम्राज्य ज्ञान ।।४८।।
दान दयामय ग्रनथ ।।४९।। मानवरेल्लर कीर् ति ।।५०।। जैनागमद दर् शनवु ।।५१।। क्षोणि जणान्द रूप ।।५२।।
ताने तानाद भूवलय ।।५३।।

ला* वर्ण लिपियन्द वेन्तेम्व ब्राह्मिगे । देवनु नन्नय म ग ° ळे ।। नाविल्लि अक्षर ब्राह्मियोळ् पेळ्ळवु । देवाधिदेव वाणियणु ।।५४।।
ड* ण ठण वेन्नुत येळलागुव मात। जिनवाणि ओभ्दरिम्परिय ल्* ।। घनवाद अक्षरदादिय 'अ' क्षर । कोनेगे 'पः' अक्षर बरलु ।।५५।।
ण* वदक गणनेय नवपद भक्तियिम् । सवियक्षरद् अव य* ववम्।। सवणर्गेअरवत् नाल्कन्कदिम्पेळुव। नवम बधाक वंदरिया।।५६।।
रि* षिगळ भावदि वरुवात्म योगवोळ् । वशवप्प सिरि सम्पद व सृ* ।।वशगोन्डु भ्राम्हिये अरवत् नाल्क् अकद । यशव होन्दुत सुखियागु।।५७।।

नृ* वर्दक वरुवन्दवेन्येनदु केळुव । युवति सवनुदरिगे स* मस्त।। सवियंक ओमुदेरळुमूरुनाल्कयुदारेलु। नवसुरुष्टिएन्टु ओम्बत्तुगळु।।५८
दा* न माडिद देव तन् एडगयुयिन । अनन्ददमुरुतान्गुलिय र्* ताणवनाकेय एडगय्य अमुरुतद । ताणदनुगुलिय मूलदलि ।।५६।।
ण* मोकार मन्त्रद क्षरगळनाकेयु । गमनिसिरनुग्र च्चोत्तिरु व* विमलाक रेखेय आदिमदनुत्यद । सम विषम स्थानगळनु ।।६०।।

अमलद् अनुतरद रूपवनु ।।६१।। क्रम बंद्धगोळिप योगवनु ।।६२।। सम विषमादि सर्ववनु ।।६३।।
अमलद् अनुतरद रेखेयनु ।।६४।। क्रम बद्धगोळिप भाववनु ।।६५।। सम विषमांक भागवनु ।।६६।।
विमलद् अनुतरद सत्ववनु।।६७।। क्रम बद्धगोळिप भागवनु ।।६८।। सम विषमांक लेक्कवनु ।।६९।।
कमलद् अनुतरद सत्ववनु ।।७०।। क्रम बद्धगोळिप द्रव्यवनु।।७१।। मम विषमांक गणितव ।।७२।।
गमकद् अनुतरद सत्ववनु ।।७३।। क्रम बद्धगोळिप गमकवम् ।।७४।। सम विषमांक कूटवनु ।।७५।।
यमकद् अनुतरद सत्ववनु।।७६।। क्रम बद्धगोळिप शून्यवनुम्।।७७।। रस विषमांक लब्दबनु ।।७८।।
श्रम हरद् अतिशयांकवनु।।७९।। क्रम बद्धगोळिप विद्येयनुम् ।।८०।। सम शून्य काव्य भूवलय ।।८१।।

प* ददक्षरांकद भागव तरुवनक । विधवनु तिळियम्म स क* ल।। विधद द्रव्यागम श्रुतविद्येयनकद । पदवे मगलद पाहुडवु ।।८२।।
नृ* वपद बद्धदक्षर विद्ये बेकेम्ब । निवगोग अतिशय क ल्* या ।। णव पेळ्व आगम कर्म सिद्धातद । अवयव विदरोळ् पेळुवेवु।।८३।।
च* रितेयोळ् बरेदिह सरस्वतियम्मन । परियनरितु साकल् या* अरहन्त विद्यद केवलज्ञानद । परियतिश यव केळम्म ।।८४।।

करुणेयक्षरव केळम्म ।।८५।। अरिय गेल्लुवुद केळम्म ।।८६।। परमन अतिशय वम्म ।।८७।।
धरेय मगल काव्यवम्म ।।८८।। करुणेय क्षरदनकवम्म ।।८९।। अरिय गेल्लुवुदे सिद्धांत ।।९०।।
परमन अतिशय धवल ।।९१।। धरेय मंगलद पाहुडवु ।।९२।। करुणेय साम्राराज्यवम्म।।९३।।
अरिय गेल्लुवुदे मगलवु ।।९४।। परमन भूवलयाक ।।९५।। धरेय जीवर काव्यानुग ।।९६।।
गुरुगळ साम्राज्य वम्म ।।९७।। अरि गेल्दवरंक वम्म ।।९८।। परमन गम्भीरदनुक ।।९९।।
धरेय जीवर सौभाग्य ।।१००।। अरहन्त साम्राज्यवम्म ।।१०१।। अरिय गेल्दवर क्षराक ।।१०२।।
परमन गम्भीर वचन ।।१०३।। धरेय जोवर चारित्र ।।१०४।। सरस्वती सामुराज्य वमुम।।१०५।।
अरिद गेल्दवर सिद्धात ।।१०६।। परमन गम्भीर दान ।।१०७।। परमात्म सिद्ध भूबलय ।।१०८।।
नरसुरबनुद्य भूबलय ।।१०९।। परमापुतुअ सिद्ध भूललय।।११०।। गुरुगळनुगय्य भूबलय ।।१११।।

को* टि कोटाकोटि सागरवळतेय। गूट शलाके सूचिगळ।। मेटियपद ण* वकार मन्त्रदे बह् । पाटियक्षरद लेक्कगळम् ।।११२।।
ङ्* क्कामुरुवनुगादि सर्व शब्दागम । दक्कदक्षरद अन् का* दि।। तक्करेरवागमवरुणदागमकाव्य। सिंक्कदुक्रनवर्यदागमदि।।११३
ङि* न्डोरवोळु बद सर्व शब्दागम । अन्डदक्षरद् वश र* ववु ।। खन्डित वागु वुदरि काल क्षेत्रद । पिण्डवु नित्य बाळुवुदु।।११४।।
ओ* मुकारदिम् बद सर्व शब्दागम । दन्कदक्षरद् अन् क* नित्य।। शम्केगलेळव परिहर माडुव। समुकर दोष विरहित ।।११५।।

ओम्कार भद्र स्वरूप ।।११६।। ओमुवनक ओमुवे अक्षरवु ।।११७।। ओमुदनु बिडिसुव क्षरवु ।।११८।।

ओम्वक स्वर नव पदवु ॥११९॥ ओम्कार भव्र मंगलवु ॥१२०॥ ओम्दक भन्ग अक्षरवु ॥१२१॥
ओम्दनु बिडिसुव अनक ॥१२२॥ ओम्दनक ववुवे वर्णगळु ॥१२३॥ ओम्कार सर्व मंगलवु ॥१२४॥
ओम्दनक वदु शुद्धाक्षरवु ॥१२५॥ ओम्दनु बिडिसलु सर्व ॥१२६॥ ओम्दनक वदयोग वाह ॥१२७॥
ओम्कार दिव्यनिनाद ॥१२८॥ ओम्दनक परमात्म वाणि॥१२९॥ ओम्दनु भजिपनु योगि ॥१३०॥
ओम्दनक अरवत्नाल्कआगि॥१३१॥ ओम्कार ताने तानागि ॥१३२॥ ओम्दनक सिद्ध स्वरूप ॥१३३॥
ओम्दनु सर्ववेन्दरिया ॥१३४॥ ओम्दनकव् इप्पत्तु बिडिय॥१३५॥ ओम्कारदन् एरड्अनग ॥१३६॥
ओम्दनक भन्गव माडे ॥१३७॥ ओम्दवु तोम्बत् एरडनक ॥१३८॥ ओम्दनक भन्ग भूवलय ॥१३९॥

पा॥ पविनाशक पुण्य प्रकाशक। लोपविल्लद शुद्धरूप ॥ ताप म॥ लिसि मोक्षव तोर्प ओम्कार। श्रो पद ओम्वततरनक ॥१४०॥
व॥ शवागलके ओम्कारव कूडलु। यशदादि हत्अनकवदनु ॥ प्र॥ शमादि गुणठाणदतिशयदनकवु । ओसरुत ज्ञानाक्षरांकम् ॥१४१॥
आ॥ शेय अक अइउऋऌएऐ ओ औ। राशियोम् वत्त स्वर धा॥ ॥ आशेयिम ह्रस्व दीरघ प्लुत मूरिम। राशिय गुणव् इप्पत्एळु॥१४२॥
गि॥ रियन्दन्दद आआईअरी। सर ऊऊॠ ॠलू लू ॥ वर एएऐऐ न॥ ओ ओ औ औ। सवरगळे दीर्घ प्लुतगळु ॥१४३॥
रि॥ द्धिय ओम्बत्उ स्वरगलु मूररिम्। शुद्धियिम् गुउएइ स॥ लु वरुव॥ मुद्दिन्इप्पत् एळुक् खगघज् ऐदु। शुद्ध च्छज्झ्न् ऐदु॥१४४॥

होद्दिसि द् ठ् ड् ढ् ण् गळ ॥१४५॥ सिद्धसि त् थ् द् ध् न् वनु ॥१४६॥ शुद्धद प् फ् व् भ् म् ऐदु ॥१४७॥
रिद्धियोळ् गुणिस् इप्पत्ऐदु॥१४८॥ बद्धयर् ल् व् श् ष् स्ह् व ॥१४९॥ सिद्धअअ क फ नाल्कअम॥१५०॥
शुद्धव्यन्जन मूवत्मूरम् ॥१५१॥ इद्द नाल्कअ योगवाहगळ ॥१५२॥ होद्दलु मूवत्एळ अंक ॥१५३॥
बद्धवाद अरवत्नाल्कु ॥१५४॥ शुद्धदक्षरदंक गळनु ॥१५५॥ उद्दव कूडलु हत्तु ॥१५६॥
होद्दिसला हत्ते ओम्दु ॥१५७॥ शुद्ध १ दे ओम्दु अंक ॥१५८॥ शुद्धाक ओम्दे अक्षरवु ॥१५९॥
रिद्धियोळ् आदिम् भग ॥१६०॥ बुद्धिगे सिलुकिहुद् अग ॥१६१॥ सिद्धान्त सागरदंग ॥१६२॥
सिद्धर तोरुव भन्ग ॥१६३॥ शुद्धाक गुणकारद् अग ॥१६४॥ रिद्धिय तोरुव भन्ग ॥१६५॥
सिद्ध सम्सिद्धद भन्ग ॥१६६॥ बुद्धि प्रकर्षाणु भग ॥१६७॥ रिद्धि प्रकाशदणु भंग ॥१६८॥
सिदघत्व दर्वादि भग ॥१६९॥ सद्दलिदरे सिद्धरन्ग ॥१७०॥ शुद्ध साहित्य भूवलय ॥१७१॥

व॥ शवाद कर्माटक देन्दु भागद। रस भंगद् दक्षरद स र॥ व॥ रस भावगळनेल्लव। कूडलु बन्दु। वशव एळ्नूरह दिनेन्दुभाषे॥१७२॥
र॥ मणीयवादादिम भन्ग समयोग। दमलाकद् ओन्दु अक्षर व॥ ॥क्रमदोळगओम्दरिम गुणिस् अरवत्नाल्कु। विमलांक हुद्दवुद्अरिया॥१७३॥
सि॥ रिसिद्धम ई ओम्दम् बरेदुकोन्डदरोलु। अरहन्त शुद् ध॥ रोठ्'अ'वनु॥ सिरिअशरीररसिद्धर'अ'आदि। सिरिआइरियदोळ्'आ'दि१७४
ह॥ रडिद ई मूरु'आआआ' अक्खव।बरेदुकूडलु 'आ'बहुदु॥ वरध र्मा॥ चरणेगादिय 'आ' बरे मुन्दे। बरेवुदु उवज्रूयदादि ॥१७५॥
रे॥ खेयोळ् अनतदे साधुगळ् मउनिगळ। श्रीकरदादिम'म' श्रम णां॥ ॥ साकल्यव कूडे ओमकारवप्पुदु। सौख्य सर्वद मंत्र बहुदु ॥१७६॥

आ कलनकद जीव शब्द ॥१७७॥ साकल्य भंगद मूल ॥१७८॥ साकल्यव कूडे ओमदु ॥१७९॥

पगाकट परब्रह्म दनग ॥१८०॥ आकलन कद जीव तत्व ॥१८१॥ साकल्य भगद अत ॥१८२॥
साकल्यव कूडे सर्व ॥१८३॥ प्राकट परब्रह्म भग ॥१८४॥ आकर द्रव्यागमवु ॥१८५॥
साकल्य भगद मध्य ॥१८६॥ साकल्यव कूडे मध्य ॥१८७॥ प्राकट परब्रह्म भद्र ॥१८८॥
आकरवा द्रव्य भावा ॥१८९॥ साकल्य अरवत्नाल्कु ॥१९०॥ साकल्य शब्दागमद १९१॥
प्राकट परब्रह्म तत्व ॥१९२॥ साकल्यानकद कक्र मोत्त ॥१९३॥ शाफट कर्म समहारि ॥१९४॥
साकलागम द्रव्य रूप ॥१९५॥ एकान्क सिद्ध भूवलय ॥१९६॥

णि॥ ज शब्ददादिय ओम्कार ओम्दनु । विजय धवलवनआगिसि जी॥ ॥विजयव होन्दिद परब्रह्म विन्ताग भजिय योगिगळनद बेरे ॥१९७॥
व॥ शवाद इप्पत् एळु स्वरदोलु 'ओ' बरे । हुसिय ऐदक्षर व॥ शद॥ रसकूटवेतके ओ ओम्दु एननदे। ऋषिगळनकवेओ ओम्दक ॥१९८॥
वा॥ दिगळेल्लर वादवदिन्तागे । श्री दिव्यवाणिय मर्म॥ दादिय म॥ भेदिसि तिळिव सम्यग्ज्ञान साधनेय् अरवत्नाल्क् अनक ॥१९९॥
ण॥ वदनकवदनु ओम्बत्एनदु पेळुव । नव पद भक्तिय वि ज॥ य ॥ दवनिय हत्अलु अरवत्नाल्क्अनक। दव नयल्लवु ओम्दक ॥२००॥
ग॥ मनिसि नोडलनद अक्षर ओम्दु । समदनक विडियागे ज य॥ दे॥ क्रमद् ओम्दु कर्माटकद समन्वय। अमम विस्मयद सामान्य॥२०१॥
या॥ वाग कर्म सामान्यव नोडेवेवो। आवाग एनदु रूपगि॥ तावदु तु॥ ळियलु सम्ख्यात । दा विश्वानन्तानक बहुदु ॥२०२॥

दाविश्व व्यापियागुवुदु ॥२०३॥ जीवर नन्तानक गणित ॥२०४॥ सावु हुट्टुगळ अनन्त ॥२०५॥
देवन अरिकेयनन्त ॥२०६॥ श्री वीरनरिकेय अनक ॥२०७॥ जीवरनलेसुव कर्म ॥२०८॥
जीवराशिय कर्माटकवु॥२०९॥ दा विश्व कर्मदनन्त ॥२१०॥ कावरारिल्लद अनक ॥२११॥
जीवर नलेसुव अनक ॥२१२॥ जीव राशिय गणितांक ॥२१३॥ पावन जीव घातांक ॥२१४॥
भावद कर्माक गणित॥२१५॥ जीवर नलेसुव गणित ॥२१६॥ जीव जीवर गणिताक ॥२१७॥
पावन जीव ज्ञानाक ॥२१८॥ तीवलक्षरव् अरत्नाल्कु ॥२१९॥ तावल्लि ओम्दे आदनक ॥२२०॥
श्री वीरवाणि ओम्बत्तु ॥२२१॥ ई विश्व काव्य भूवलय ॥२२२॥

ण॥ वपद भक्तिये अणुव्रतकादियु । अवरु श्री जिनदीक्षे वहि श॥ ए ॥ नवदक एटरिम् एळरिम् । सव भाग 'सोन्ने काणुवरु ॥२२३॥
मो॥ हदकवदेष्टु रागदनकवदेष्टु । साहसि द्वेषाकद आ॥ ळा ॥ मोहद्वेषवळिदाग आत्मन । रूहिद ज्ञानक्वेष्टु ॥२२४॥
ते॥ रस गुणठाणदेरिद आत्मन । सारांक दर्शनदक ॥ भार स॥ गुरुठाण सार चतुर्दश । वेरिनन्ताक (सनख्यात) वेष्टु ॥२२५॥
सि॥ ववागलात्मनेरिद सिद्धलोकद । अवतारदादिम जीव ॥ अव न॥ ष्ट गुणगळ (अवनष्टु ज्ञानंद) व्याप्ति एष्टेम् बनक दवनु (अतिशय धवल) सिद्ध भूवलय ॥२२६॥
म॥ नसिज हणनवु हविनाल्कु साविर मुननुए। तनि सूत्तर्हत् ओ म॥ वत् अंत ॥ (ए टु साविरद्हत् ओम्) ओन्बत् ओमदु सोन्नेयु ए टु॥ तनुवेल्ल ओमद् 'ऋ' भूवलय ॥२२७॥

ऋ ८,०१९—अन्तर १,४३१९=२२,३३९ अथवा अ-ऋ २,००,५६५+ऋ २२,३३८=२,२२,९०३

ग्यारहवां अध्याय

यह भूवलय सिद्धान्त रूपी द्रव्यागम भो है और अरूपी द्रव्यागम भी। इसलिए इसकी रचना अ क पद्धति रूप से की गई है ऐसा होने से अक्षर मे अ क मिलाने की शक्ति उत्पन्न हुई। अ क और अक्षर दोनो भगवान के दो चरण स्वरूप हैं और वही यह भूवलय है।१।

श्री ऋपभनाथ भगवान के समय में सर्व प्रथम अतिशय मगल पर्याप्ति रूप से अ क और अक्षर का सम्मेलन हुआ। तत्पश्चात् दोनो के सघर्पण मे जो नादव्रह्म (शव्द व्रह्म) प्रकट हुआ वही जीव द्रव्य का ज्ञान है और सभी जोवो को इसी ज्ञान की साधना करनी चाहिए, क्योकि यह अध्यात्म योग है।२।

उस अकाक्षरी विद्या को योगी जन प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं, किन्तु सामान्य जन भूवलय रूप उस ज्ञान निधि का स्वाध्याय करते हैं। तदनन्तर जैन धर्म का समस्त तत्त्व अपने अपने स्वरूप से प्रत्यक्ष हो जाता है। इस प्रकार घन विद्या साधन रूप महायोग है।३।

सुर, नर, किन्नर तथा ज्योतिष्क लोक के घन स्वरूप को, उस लोक मे रहनेवाले कृत्रिम-अकृत्रिम श्री जिनेन्द्र देव के देवालय तथा जिनविम्व इन सवको अङ्क गणना से योगी जन यथावत देखकर ठीक ठीक जान सकते हैं।४।

समस्त दोषो के नाशक विदेह क्षेत्र में रहनेवाले श्री सीमन्धर स्वामी का दर्शन करके, अतिशय पुण्य कर्मराशि का सचय करके तथा निरन्तर श्री जिनेन्द्र देव का भजन करके योगी जन मंगल पर्याय रूप वन जाते है।५।

यह भूवलय ग्रन्थ भगवान के अतिशय पुण्य का गान करने वाला है।६।

इस सिद्धान्त ग्रन्थ के स्वाध्याय से शनै शनै समस्त पापो का नाश हो जाता है।७।

इस सद्ग्रन्थ का उपदेश श्री जिनेन्द्र भगवान ने स्वय अपने मुख कमल से किया है।८।

भगवद्भक्ति से उपार्जित हुई पुण्य राशि की गणना विधि को सिखलाने वाला यह गणित शास्त्र है।९।

भगवान की भक्ति का जितना अ क है वह भी सिखानेवाला यह गणित है।१०।

समस्त ससारी जोवो में क्षुधा-तृपा आदि अठारह दोप हैं। इन सवकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।११।

श्री जिनेन्द्र देव ने धर्म के साथ सद्धर्म को जोडकर उपदेश दिया है। उस सद्धर्म के स्वरूप की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१२।

अगणित पुण्यराशि की भी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१३।

भगवान का केवल ज्ञान अनन्तानन्त है अर्थात् भगवान में अनन्तानन्त जीवादि पदार्थों को देखने तथा जानने की अद्भुत शक्ति होती है। उन सवको अलौकिक गणित से गिनने वाला यह गणित शास्त्र है।१४।

अठारह प्रकार के दोपो की गणना को गुणा करके सिखानेवाला यह गणित शास्त्र है।१५।

इसी प्रकार श्री जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये सद्धर्म को भी गुणा करके सिखलानेवाला यह गणित है।१६।

यह गणित शास्त्र स्वयमेव उपार्जन किये हुए पुण्य की गणना सिखाने वाला है।१७।

भगवान जिनेन्द्र देव द्वारा प्रतिपादित चारित्र की गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१८।

अठारह प्रकार के दोपो के विनाश होने से जो गुण उत्पन्न होता है उन सवकी गणना करनेवाला यह गणित शास्त्र है।१९।

सद्धर्म पालने से जितने आत्मिक गुणो की वृद्धि होती है उन सवका ज्ञान करानेवाला यह गणित शास्त्र है।२०।

यह गणित शास्त्र समस्त ज्ञान-विज्ञान-मय शब्द कोष से परिपूर्ण है।२१।

यह गणित शास्त्र अंतरग चारित्र को वतलानेवाला है।२२।

यह चारित्र में आनेवाले दोषों को हटा देने वाला है।२३।

यह भगवान के द्वारा प्रतिपादित सद्धर्म मार्ग में सभी को लगानेवाला है।२४।

भक्ति की आशा रखकर भव्य जन गणित शास्त्र के ज्ञान को बढा लेते हैं। २५।

चौवीस तीर्थंकरो के गुणगान करने से ही समस्त गणित शास्त्रो का ज्ञान हो जाता है।२६।

समस्त भाषाओ के समस्त शब्द कोष इस भूवलय ग्रन्थ मे उपलब्ध हो जाते हैं।२७।

समस्त दोषो को नाश करने की आशा रखनेवाले भव्य जनो की वाछा को योगी जन इस गणित शास्त्र द्वारा जान लेते हैं। और एक देश ज्ञान को सम्पूर्ण वनाने का जो उपदेश देते हैं वह देशी भापा में रहता है तथा वही यह भूवलय ग्रन्थ है।२८।

अर्हन्त भगवान से लेकर ६ अक पर्यन्त का अक ६ तीर्थ स्वरूप है। उनके दर्शन करने से भव्य जीवों को गणित शास्त्र का विनियोग करने की विधि मालूम हो जाती है। उसके मालूम हो जाने पर मोक्ष पद प्राप्त करने का सरल मार्ग भी मिल जाता है।१६।

उत्तम क्षमादि दस धर्म को भव्य जनो का साधन करने का सत्य धर्म है, वही आत्मा का विजयाकुर है। उन्ही दस धर्मों को ध्यान करते समय स्वय अर्हंतादि नौ पदो की सिद्धि प्राप्त करने मे क्या आश्चर्य है।३०।

ऐसी विजय को प्राप्त करादेने वाला दस क्षमादि धर्म महाव्रत से प्राप्त होता है। दया, दान इत्यादि सव आत्मिक गुणो को प्राप्त कराकर नय और प्रमाण इन दोनो मार्ग को वतलाता है।३१।

सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो ज्ञान एक है, विशेप रूप से देखा जाये तो पाच प्रकार का है, सख्यात स्वरूप तथा असख्यात स्वरूप भी है। इस रीति से ज्ञान को गणित विधि से प्रसारित कर अ क रूप से वना लें तो ज्ञान साम्राज्य रूपी ध्वज हो जाता है। इस ध्वज को नेमिनाथ जिनेन्द्र देव ने फहराया। इसलिए कल्याणकारी हुआ। इसका नाम आनन्ददायक करण सूत्र है। इस करण सूत्र को जिनेन्द्र भगवान ने सिखाया।३२।

यह भूवलय के ज्ञान के वैभव को वतानेवाला है।३३।

समवशरण मे भगवान की दिव्य ध्वनि से निकला हुआ यह भूवलय काव्य श्री निवास काव्य है।३४।

यह काव्य सम्पूर्ण जगत् के लिए आनन्ददायक है।३५।

इस दिव्य काव्य मे किस विपय की कमी है ? अर्थात् किसी की नही।३६।

समस्त मङ्गलरूप भद्रस्वरूप को, यह काव्य दिखाता है।३७।

इस मगल रूप काव्य णमो अरहताण इत्यादि रूप समस्त मन्त्रो को दिखाता है।३८।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से योगियो को शुद्धोपयोग मिल जाता है।३९।

यह भूवलय शास्त्र गणित विद्या का आनन्द साम्राज्य है।४०।

मोक्ष लक्ष्मी से उत्पन्न मगलमय सौख्य को प्रदान करनेवाला यह भूवलय काव्य है।४१।

अनेक युक्ति से मुक्ति लक्ष्मी से प्राप्त होनेवाले सुख का दिखानेवाला यह काव्य है।४२।

सव शास्त्रो का आदि ग्रन्थ योनिपाहुड है अर्थात् उत्पत्ति स्थान है। उन सव उत्पत्ति स्थानो को दिखानेवाला यह ग्रन्थ है।४३।

गणित की विधि मे सवको क्लेश होता है, यह भूवलय का गणित शास्त्र ऐसा न होकर आनन्ददायक है।४४।

नाट्य शास्त्र में पटविन्यास एक सूक्ष्म कला है, उस कलामय भाव को गणित शास्त्र मे वताने वाला अर्थात् परमात्मा मे वतलानेवाला यह भूवलय ग्रन्थ है।४५।

गणित शास्त्र और अक शास्त्र ये दोनो अलग अलग हैं, इन सवका स्वरूप दिखानेवाला यह ग्रन्थ है।४६।

समस्त पृथ्वी अर्थात् केवली समुद्घात गत भगवान के शरीर रूपी विश्व को नापने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।४७।

इस भूवलय ग्रन्थ के अध्ययन करने से ज्ञान रूपो आनन्द साम्राज्य की प्राप्ति हो जाती है।४८।

सम विषमाक गणित के द्वारा निकालकर देने वाला है ।७२।
गम्भीरता के साथ अन्तर सत्य को निकालकर देनेवाला है ।७३।
कर्म नाश करने की युक्ति या तरीका बतलानेवाला है ।७४।
सम विषमाक कूट को बतलाने वाला है ।७५।
यमक के अन्तर सत्य को बतलाने वाला है ।७६।
कर्म वध को नाश करनेवाली बिन्दी को निकालकर देनेवाला है ।७७।
सम विषमाक लब्ध को निकालने वाला है ।७८।
श्रम को नाश करनेवाला अतिशय अकवाला है ।७९।
यह सम्पूर्ण कर्म को नाश करने वाली विद्या है ।८०।
सम शून्य काव्य नामक यह भूवलय है ।८१।

पदाक्षर अक के भाव को लाने वाले अंको की विधि को समझानेवाले समस्त प्रकार के द्रव्यागम श्रुति विद्या अक का यह अक नामक ही मगल पाहुड है ।८२।

नौ पद बद्ध अक्षर विद्या की इच्छा करनेवाले भव्य जीव को शीघ्र ही तशय कल्याण मार्ग को कहनेवाले आगम सिद्धान्त के अवयव में रहनेवाले य को कहते हैं ।८३।

चरित्र, में लिखा हुआ सरस्वती देवी के द्वारा वाणी को भगवान ने समझकर अर्हंतदेव पर्याय उसी अक्षर को जो भगवान की केवल ध्वनि के द्वारा निकला है उसी अतिशय अक्षर को हे बेटी ! तुझे मैं समझाऊ गा' तू ! सुन ।८४।

हे बेटी ! ये करुणामय को उत्पन्न करनेवाले अक्षर हैं ।८५।
हे बेटी ! यह अक्षर शत्रु को नाश करने वाले हैं ।८६।
हे बेटी ! यह अर्हंत भगवान का अतिशय है ।८७।
हे बेटी ! यह पृथ्वी का मगल रूप काव्य है ।८८।
हे बेटी ! यह करुणामय अक्षर अक है ।८९।
हे बेटी ! यह शत्रु को जीतनेवाला सिद्धान्त है ।९०।
हे बेटी ! यह परमात्मा का अतिशय धवलयश है ।९१।
हे बेटी ! यह पृथ्वी का मंगलमय पाहुड है ।९२।
हे बेटी ! यह करुणामय साम्राज्य है ।९३।
हे बेटी ! यह सम्पूर्ण शत्रु को नाश करनेवाला मगल है ।९४।
हे बेटी ! यह परमात्मा का भूवलय अक है ।९५।
हे बेटी ! सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवो का काव्य है ।९६।
हे बेटी ! यह गुरु का साम्राज्य है ।९७।
हे बेटी ! यह कर्म रूप शत्रु को जीते हुए महापुरुषों का अक है ।९८।
हे बेटी ! यह परमात्मा का महान गम्भीर अक है ।९९।

हे बेटी ! यह सम्पूर्णपृथ्वी के ऊपर रहने वाले जीवों का सौभाग्य है ।१००।

हे बेटी ! यह अर्हंत भगवान का साम्राज्य है ।१०१।
हे बेटी ! यह शत्रु को जीतकर वश किया हुआ अक है ।१०२।
हे बेटी ! यह भगवान के गम्भीर वचन हैं ।१०३।

हे बेटी ! यह सम्पूर्ण पृथ्वी के जीवो के चारित्र की उत्पत्ति का कारण है ।१०४।

हे बेटी ! यह सरस्वती देवी का साम्राज्य है ।१०५।

हे बेटी ! यह कर्म रूपी शत्रु को जीतेनेवाले महान पुरुषो का सिद्धान्त है ।१०६।

हे बेटी ! यह भगवान के द्वारा सम्पूर्ण जीवो को दिया हुआ गम्भीर दान है ।१०७।

हे बेटी ! यह परमात्म नामक सिद्ध भूवलय है ।१०८।
हे बेटी ! यह देव और मनुष्य के द्वारा वन्दनीय भूवलय है ।१०९।
हे बेटी ! यह परमात्म सिद्ध भूवलय है ।११०।
हे बेटी ! यह पंच गुरुओ का भूवलय है ।१११।

हे बेटी ! यह करोडो कोडा कोडी सागर के प्रमाण शलाका, शुक्ति, उसकी लम्बाई, चौडाई, पद इत्यादि इस नवकार मत्र से आनेवाले और अनेक तरह के अक्षरो के गणित को तथा ढक्का, मृदग आदि के झंकार शब्दादि अक्षरो के अंक आदि तथा योग्य रेखागम, वर्णागम काव्य इत्यादि इस द्रव्यागम से प्राप्त होते हैं ।११२-११३।

यह बुद्धि के द्वारा उपलब्ध अंक है ।१६१।

यह सिद्धात सागर का अग है ।१६२।

यह सिद्ध भगवान को दिखानेवाला भग है ।१६३।

यह शुद्ध गुणाकार का अग है ।१६४।

यह ऋद्धि को दिखानेवाला भग है ।१६५।

यह सिद्ध ससिद्ध भग है ।१६६।

यह बुद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभग है ।१६७।

यह ऋद्धि को प्रकट करनेवाला अनुभग है ।१६८।

यह सिद्धत्व प्राप्त करने के लिए आदि भग है ।१६९।

इसको सपूर्ण मिटाने से सिद्ध भगवान का अग रूप है ।१७०।

यह शुद्ध साहित्य नामक भूवलय है ।१७१।

वश किये हुए कर्माटक के आठ रसभगो के सम्पूर्ण अक्षर रस भाव को मिलाने से प्राप्त यह ७१८ (सात सौ अठारह) भाषा है ।१७२।

अत्यन्त सुन्दर रमणीय आदि के भग सयोग अमल के १ अक्षर को क्रमश यदि ७ से गुणा करते जायँ तो ६४ विमलाको को उत्पत्ति होती है, ऐसा समझना चाहिए ।१७३।

श्री सिद्ध-को लिखकर उसमें अरहन्त अ को श्री अशरीर सिद्ध भगवान अ और आइरिया के पहले का अ इन तीनो के आ अ, आ को पृथक् पृथक् लिखकर एक मे मिलाने से आ होता है। यह श्रेष्ठ धर्माचरण के आदि मे आ आता है। पुन आगे उवज्झाया के आदि मे उ आता है। और अन्तिम साधु मुनि के श्रीकार के आदि मे मु और मू से म् आता है। इन सभी को परस्पर में मिलाने से ओम् वन जाता है। यही ओंकार समस्त प्राणी मात्र को सुख देनेवाला मन्त्र है। १७४-१७५-१७६।

यह कलक रहित जीव शब्द है ।१७७।

यह साकल्य भग का मूल है ।१७८।

यह साकल्य का सयोग होते ही एक है ।१७९।

यह पराकाष्ठ परब्रह्म का अक है ।१८०।

यह उस अकलक जीव का तत्त्व है ।१८१।

यह साकल्य भग का अन्त है ।१८२।

साकल्य मिलाने से सब है ।१८३।

यह पराकष्ट का भग है ।१८४।

अन्त में सभी मिलकर यह द्रव्यागम है ।१८५।

यह साकल्य भग का मध्य है ।१८६।

यह साकल्य मिलने पर भी भव्य है ।१८७।

यह पराकष्ट परब्रह्म भद्र है ।१८८।

यह आकार से द्रव्य भाव है ।१८९।

यह साकल्य ही ६४ है ।१९०।

यह साकल्य ही शब्दागम का ।१९१।

पराकष्ठ परब्रह्म तत्त्व है ।१९२।

यह साकल्याक चक्र का आदि ह ।१९३।

यह साकल्य कर्म से हारी है ।१९४।

यह सकलागम द्रव्य रूप है ।१९५।

यह एकाक सिद्ध भूवलय है ।१९६।

आदि निज शब्द एक ओ३म्कार की विजय रूप है इस त्रिजय को प्राप्त किया परब्रह्म के समान अपने को मानकर अपने अन्दर ही आराधन करनेवाले योगीअन्य अपने को वसूआ २७ स्वरो में 'ओ' अनि से अन्य शेप पाच अक्षर के उ अन्य रसकूट की आवश्यकता क्या है क्योकि वह जो एक अक्षर है वही एक है और उसी का अक अर्थात् जो पच परमेष्ठी है वह भी उसी का रूप है और उसी का नाम ओम है जोकि एक अक्षर है। और ओम अक्षर ही इस विश्व मे सम्पूर्ण प्राणियो को इष्ट को प्राप्त कराने वाला है ।१९७-१९८।

समस्तवादियो को पराजित करके भगवान की दिव्यवाणी के तथा मर्म जाननेवाले सम्यग्ज्ञान के साधन यह ६४ चौसठ अक हैं ।१९९।

बव अक नौ रूप को कहनेवाला नवपद भक्ति की विजय पृथ्वी तलमें प्राप्त होने से ६४ अक इस सम्पूर्ण पृथ्वी में एक है ।२००।

अभेद दृष्टि से देखा जाय तो अक का अक्षर एक है सम अंक को अलग

बारहवां अध्याय

ऋ* षिगळ् अध्यात्म योग साम्राज्यदे । वशवाद श्री भद्ररा शि* ॥ रसवस्तुत्यागद सम् यमदिम् बन्द । यशसिद्ध काव्य भूवलय ॥१॥
ए* रिद ध्यानाग्नियारय्केयोळु बन्द । शूर दिगम्बरर् नव व* ॥ मूरु कुन्दिद कोटियक्षरदन्कद । सारात्म सिद्ध भूवलय ॥२॥
व्* रद सम्हननवु व्यवहार नयवाद । परिय निश्चय नय म* दुवे ॥ सर मागेर्दाग शुद्धत्व सिद्धिय । परमात्मनन्ग भूवलय ॥३॥
आ* दिय सम्हननवु व्यवहारदासाधने निश्चय नयव ॥ साधिप स्* वसमययद्दि मंगल काव्य । दोदिनिम् बन्द भूवलय ॥४॥
रा* र जन्मदाद्यन्तवादिय शुभ कर्म । विरुवष्टु सुखवनु तु* मृवि ॥ सरुव पुण्योदय हदिनेन्दु ररेणियु ॥ बरवेंकेन्देनुव भूवलय ॥५॥

उरदवरन्ग रक्षणेयु ॥६॥ न्रज न्मदन्त्य शरीर ॥७॥ एरडने चरम शरीर ॥८॥
व्रगळ सम्बळ काव्य ॥९॥ उरद सन्मौन्जिय बंध ॥१०॥ गुरुव श्री गुरुवर काव्य ॥११॥
अरसराळिद गन्ग वम्श ॥१२॥ र्रसोत्तिगेय वर मन्त्र ॥१३॥ एरडूवरेय द्वीपवन्द ॥१४॥
गुरुव गोट्टिगरेल्लरन्द ॥१५॥ अरमनेयोळु पूर्ण गुरुहुवु ॥१६॥ न्र कुरिगळ अन्दवळिद ॥१७॥
इरुवेगळन्दद सिहियु ॥१८॥ ज्रेयोदगलु यव्वनान्ग ॥१९॥ अरसुगळाळ्द कळ्वप्पु ॥२०॥
म्रेतिह अध्यात्म राज्य ॥२१॥ अरवट्टिगेय तवरूरु ॥२२॥ द्रदन्गवनुभव काव्य ॥२३॥
ष्रबाणगळ तीक्ष्ण मृदुल ॥२४॥ अरमने गुरुमनेयोमृदु ॥२५॥

इ* वु 'रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरु' पेळ्द । धव 'अजितर' गद्दुगे' स* वि॥ नव वाहनगळु'एत्तु आनेगळु 'मु'।नवकारस'द्दिनिम् स्याद्वा'॥२६॥
ए* वेळ्वुदवन 'द लान्छनदन्तिह' । पावन 'सुद्दिय पेळ्' दव र्* उ॥ सावय सर्'व्उदिम्तहहा'[१]'सर्वार्थसा'।रावयवद'धनवाद ॥२७॥
व्* रतर 'माञ्ग गलिकद' सर्वकार्यद' । सरद 'आदियलि' सर्वे' व* रु॥ अरुह्'रु कुदुरेय तन्दु सेविसुवरु । 'अरहन्त सर्व मञ्गलद' ॥२८॥
ई* तेरनाद्अ 'मङगळमम्[२] हाराडुव' ख्यातिय 'मनव्अनु' न्ते ज* य॥ नूतान् 'कट्टिट्टन्तेनेरदिकपिय'।ख्यात 'लांछनवु' हारुव'द ॥२९॥
रे* णुकादेविय' 'स्यादवादमुद्रेयिम्' ताणदि'कट्टिदर् सार'॥ दाण ग* 'सर्व स्ववागिरिसि' [३] द अक । क्षोणिय अतिशय धवल ॥३०॥

अणुवनु 'स्वस्ति श्रीम' न्तृअ ॥३१॥ त्नय 'द्राय राजगुरु' ॥३२॥ त्नगे 'भूमण्डला' धिपरु ॥३३॥
इनवम्शद्अ 'चार्यरु' ए ॥३४॥ न्अनगे 'एकत्वभाव' नेय ॥३५॥ इणुकुव अणु'नाभावितरुम्' ॥३६॥
द्अन् 'उभयनम्' समग्ररुम श्री ॥३७॥ अनुदिन 'त्रिगुप्ति गुप्तरुम्च'॥३८॥ य्अनुवन् 'तुष्करिया रहित्' ॥३९॥
आनन्द 'रुम् पञ्च व्र'त ॥४०॥ य्अनुव 'समेतरुम् सप्त' ॥४१॥ र्ण 'तत्व सरोजिनी रा' ज ॥४२॥
अनु 'जहम् सरुम् अष्टमद' द ॥४३॥ प्निय 'भअनरुम् नवविं' ॥४४॥ ळनवि 'धवाल ब्रह्म चर्या' ॥४५॥
अनुव 'लन्क्रुतरुम् देश' वद ॥४६॥ ग्नवु 'धर्म समेतरुम द्वा' ॥४७॥ न्नेव दशान्ग श्रुत' धरर् ॥४८॥
अनुवु 'पारावाररुम' श्रो ॥४९॥ म्न 'चतुर्दश पूर्वादिगळुम्' ॥५०॥

प* द 'दीप्ति तेजव नात्म चक्रदोळ्' तानु । मिदु 'बेळगुव गुप्ति' ता* वम्॥ अदर 'त्रयव पालिसुतसुप्तवादात्म'।नुदित'तत्ववसुत्तुतलिह'॥५१॥
ऋ* रिते 'गुप्तिय चक्र कोकवहि'[४]सिर्दाग। वर'णवराशिलेक्क' म* द॥ लिरुवु'दकगळ तन्नोळगिद्दु'नव नमो'विरियिरि'वयमृखुगंध'॥५२॥

छि॰ ळिलेम्ब 'सुविशालवह तावरेय मे । ट्टे' ळियुत बरुत लिर्द प॰ अद॥ वलिय्'उतवन्दवरंक दावियकमलग्र'[५]ळेवाग'मणिस्वर्णरजत'।५३।
म॰ रमद 'पारद गधकादिय क्षण' निर्मल 'दोळु भस्म' वेद अ॰ ळ ॥ धर्म 'वागिसुव' नक 'गणनेय हूविना' धर्मा'युर्वेद विद्येगे,म' ॥५४॥
अ॰ 'रिणव जलजद पख' [६] म 'चित्तदोळेसे' दन'व सम्पूर्णा'द र॰ सद॥ गुणद'क्षराकद ओत्तुगळोडने कू । डि'नचन्दर'सुव'चित्र विद्ये'॥५५॥

एनलु 'परम जिन समय' ॥५६॥ गण 'वार्धिवर्धनरवरु' ॥५७॥ इन 'तणपिनसुधाकररुम्' ॥५८॥
ट्ण 'प्रतिक्रमण शास्त्राढ्यर्' ॥५९॥ पूणसदिरुव 'परीक्षितरु' ॥६०॥ उणवण्ण' मतिज्ञान धररुम् ॥६१॥
र्णि से आर्मूरु मूर्उगळम् ॥६२॥ सुइनलि इष्टार्थवरिदर् ॥६३॥ सुनद पर्याय अक्षररुम् ॥६४॥
अणु 'पद सम्घात धररुम्' ॥६५॥ दणु 'प्रतिपत्यनाग धररुम्' ॥६६॥ सुनद् 'अनुयोग श्रुताढ्यर्' ॥६७॥
ओणि 'प्राभृतक प्राभृतकर्' ॥६८॥ ळणरलु 'प्राबृतकागर्' ॥६९॥ ओणिज 'वस्तु हत्तन्क पूर्वर्' ॥७०॥
ळ्ण 'दश चोद्दश पूर्वर्' ॥७१॥ अनुयोग 'जीव समासर्' ॥७२॥ गुण 'समासवु हत्तिप्पत्तु' ॥७३॥
नुणद 'आचार सूत्रकृतर्' ॥७४॥ अणि 'स्थान समवायधररु'॥७५॥ गुणद 'व्याख्याप्रज्ञप्तर्' ॥७६॥
उनद 'ज्ञात्रुकथा रूपर्' ॥७७॥ गन 'उपासकाध्ययनांगर्' ॥७८॥ अणु अन्तकृद्दशधररुम्' ॥७९॥
द्न 'अनुत्तरोपपाद दशर्' ॥८०॥ षुण 'प्रश्न व्याकरणाकगर्'॥८१॥ अणु महा 'विपाक सूत्रांगर्'॥८२॥

भा॰ ग्यदसद 'य स्वस्तिक वाहनवेरि' । नीग 'दुत्तम पोरेयुवु' ह॰ अ॥ सागलदेसुग्रसु[७]णव पदवकवु वृद्धि' । नाग'यसुहोदुव' सुविशा' ॥८३॥
य॰ शदे 'लवहतसुबेळग चउतियचम्' । देसेविन् 'द्रनकिरणद् इ॰ होस 'बेलळदु' प्रवहिपकाव्यवेन्न' य । जस [८] हरुषदोळेरडु' गळ ॥८४॥
सु॰ नुग्र 'प्राणिगळोम् दागिर्प तेरदोळु' । घन करिमकरियदु' त् तु॰ अ ॥ जनर् 'ओरेय द्विधारेय स्याद्वादद'। घनवाद'सुतरद परिय' ॥८५॥
ह॰ अरिसि 'भाविसलद् भुतवल[९]मणिरत्नावर'मालेआहारादि'यु अ॰ ल ॥ सर 'गळनी व र'गणितद हत्तु'सिरि'पूक्षगळु कषणदोळु'गे ॥८६॥
इ॰ वु 'कल्पविन्दय् तन्' द'दोम्दादन्ते'।सवि 'जिन रासन' वद नु॰ अ॥ अवु'वृक्षकल्प'(१०)गळगळु'गोचरि'।सवि'बृत्तियोळा हाहारवनुम्' ॥८७॥

अवरु 'हन्नोम्दनुग् धररु' ॥८८॥ द्व 'परिकर्म सूत्ररवरु' ॥८९॥ न्व 'प्रथमानुयोग धररु' ॥९०॥
इवु 'पूर्वगत चूळिकेगळु' ॥९१॥ द्वु 'दृष्टिवाददयुदुगळु' ॥९२॥ अवरोळु 'पूर्वगतदलि' ॥९३॥
व्वु 'उत्पाद ग्रेणियव' ॥९४॥ अवर 'वीर्यानुवाद दलि' ॥९५॥ भ्व'अस्तिनास्ति(प्रवादे)पूर्ववरु' ॥९६॥
य्वेयसु 'ज्ञानप्रवादर' ॥९७॥ ववरु 'सत्य प्रवादववु' ॥९८॥ अविरल 'आत्म प्रवादर्' ॥९९॥
य्वरु 'कर्म प्रवाद धरर्' ॥१००॥ र्नव 'प्रत्याख्यान पूरम्' ॥१०१॥ आव 'विद्यानुवाद पूर्वर्' ॥१०२॥
ह्यवु'कल्याण वाददवर्'॥१०३॥ तिविये 'प्राणावाय पूर्वं' ॥१०४॥ राव 'क्रिया विशालवरु' ॥१०५॥
प्व 'लोकविन्द्रुसार घवर्' ॥१०६॥ आवेल्ल'हदिनाल्कु पूर्वर्' ॥१०७॥ हवु 'हत्तु हदिनाल्कु एन्दु' ॥१०८॥
अवु 'हदिनेन्दु हन्नेरडु' ॥१०९॥ सुवु'हन्नेरड् हदिनार् इप्पत्तु' ॥११०॥ अवु 'मूवत् हदिनयदु हत्तु' ॥१११॥
द्वु 'हत्तु हत्तु हत्तुगळु' ॥११२॥ ष्वि 'अन्ग विरुव वस्तुगळ' ॥११३॥ अवरडग 'वस्तु भूवलयर' ॥११४॥

सु॰ अवणनुन् 'डु श्री चर्येयोळात्मन' । विवरद ननु आचुइन्' इ॰ नुदु'॥ सविदु'ण्व मुनिगंडभेरुन्ड'ई'। नव 'चिह्न स्याद्वादवप्प'(११)आ।११५।

इ* वु 'वशवल्लद मन कोणनन्तिर्दा । ग'वनु'वशगोळिसिद' ब र्* डुका। सवणनु'जिनमुद्रे।होसभूवलयदि'नृद । सवि'लाछनवागलु'श्री ॥११६॥
वृ* रुशन'वशवायतेम्मय सोम्मु'(१२)लुएन्दु ।बरे'दिवदिन्दवत् अ* रिसु॥ व'र'जिननाथनु, अवितु हन्दियवेष। धरिसि अर्वानिगे काव्यगळ' ॥११७॥
ध* 'र्भवनित्त सूकर'नव वाहन' सर्भव पोरेगेम्मम्'[१३]य् अ त्* न ॥ गर्भद 'गणनेयिल्लद द्रव्य श्रुतदक्ष' । गर्भ'राकद मणिगळ'नु ॥११८॥
व* शवद'रोमरोमदलि'हेणेदु कोन्डिर् प्'सम श्री करडिय् अ' आ* तुम॥ यशवदु'लाछनक्षणदअमहिमेयम्।यश'तोर्क[११]यक्षदेवरुगळ' ॥११९॥
र* सव 'आयुध वज्र जिन धर्म' दवषुण्ण' दिशेयलि 'सेवेगागि' भ्* उवि॥ गिसि'हुदु' शिक्ष'योळ्रक्षणेयिरुव' । त्र'श लांछन वज्र'यशदे ॥१२०॥

'आशेयादिय एरडरलि' ॥१२१॥ मुआशे 'अग्रेयणीय वरुम्' ॥१२२॥ 'इसेव पूर्वंय हदिनाल्कम्' ॥१२३॥
ह्सनवरलि 'पूर्वान्त' ॥१२४॥ असमान 'अपरांतध्रुवरुम्' ॥१२५॥ म्सवए' अध्रुव चवनलब्धि'॥१२६॥
असद्ध्रुश 'अध्रुव सम्प्रणधि'॥१२७॥ वृइशे 'अर्थ भौमावमाद्य' ॥१२८॥ ळ्एसेये 'सर्वार्थ कल्पनिया' ॥१२९॥
एशे 'अतीत ज्ञानधरर्' ॥१३०॥ प्सरिसिद् 'अनागत सिद्ध' ॥१३१॥ 'उसह सिद्धम् उपाध्याय' ॥१३२॥
ल्सरिसि 'इनितेल्लवुगळम्' ॥१३३॥ ओसेयिसिदरु 'सेनगणरु' ॥१३४॥ 'दशधर्मद् अचार ग्रन्थ' ॥१३५॥
असिहर 'जिन समुहितरु' ॥१३६॥ यृशद 'भूवलय धवलरु' ॥१३७॥ अस् 'महाधवळ प्ररूपर्' ॥१३८॥
लसहश 'जय धवलवरु' ॥१३९॥ असम 'विजय धवलवरु' ॥१४०॥ व्शद 'सिद्धांत पञ्चधरर्'॥१४१॥
'उसह सेनर वम्श धवलर्' ॥१४२॥ भूसव पूजितर भूवलय ॥१४३॥

क्* वचद 'रक्षणे ईउदु सहसा'(१५)कवि'तुष मष बोधदिन्द'॥ नव् अ* 'असि आ उ सावनु वशगोळिसिद'।अवर'वेगवनु'यशदोळु' ॥१४४॥
ऊ* रुत'तोरुव हरिण लाछन वदु' । 'सारि हेसरिसे बह पुण्य 'अ' व्*। 'सार सकल(१६)रसयुतवा'गिरुव'देल्ल'।दारियलि'ह'सोप्पुगळनु'॥१४५॥
ड्* ळिसुत 'तिन्दु हसनल्लदाडुमुदु' द । 'यश'वनु' बिसुड्उव् अ* टगरम्'।हसदन्'तेपापहरणमाळ्प होसटगर्'।एसेयलु'हदिनेळरंक'(१७)॥१४६॥
ए* रिसि 'गगनवेल्लव सुत्ति वगेयोळ' । गारा' गडगिद् अगणित' न्* ।'सारद 'शब्दराशियदुम् सोगसाद' । नेरद 'गमल भूवलय' ॥१४७॥
हो* दिव्य 'नन्द्यावर्त हुगलिनन्ति' । रीदिनवि 'रलेन्न' अन् तु* वेदित 'हृदय'(१८)वे वारणाशियोळेळ'। साध'ने बल वास्देव' ॥१४८॥

उदित 'णाणद राद्धांतर्' ॥१४९॥ द्धवश 'सकल शास्त्रगळम्' ॥१५०॥ नुवद 'सम्पन्नरम् सकल' ॥१५१॥
वेदगे 'विमल केवल णाणा'॥१५२॥ अदरअ 'धीश्वररुम्' श्री ॥१५३॥ णधर 'त्रिलोक स्वामि दया' ॥१५४॥
अवु 'मूल धर्मदोळु' वित ॥१५५॥ र्'दरु पदिष्ट त्रिलोक' ॥१५६॥ आदर 'सार लब्धि' गळु ॥१५७॥
क्विर 'सार चारित्र सार' ॥१५८॥ एदु''रु चतुष्टयन्गाळोळ' ॥१५९॥ ग्दरोळ 'गाद श्रावक र्' ॥१६०॥
इवर 'आचार मोदलाद' ॥१६१॥ ध्दरे 'सन्धानि लोकानि' ॥१६२॥ स्दवधि 'सूर्य प्रज्ञप्ति' ॥१६३॥
इवु 'युक्ति युक्ति आगमरु' ॥१६४॥ दृद 'परमागमवाद' ॥१६५॥ अदरलि 'तीर्थंकरान्त' ॥१६६॥
र्द 'सन्तति मूल प्रकृति' ॥१६७॥ वृविगे 'उत्तरोत्तर प्रकृति' ॥१६८॥ नूद 'वरनुतप्प सज्जनरु' ॥१६९॥
अदुवे 'मय् आरत सम्ज्ञ एन'॥१७०॥ मृदश 'ग्रन्थ भूवलयर्' ॥१७१॥

व* रव 'सारात्म' नु 'नवमाक चक्रि'यु । बरे 'सार मंगल पऊ' भ्* अ॥वरव'र्एण कुम्भवाहननु नेरदि'। अरिदु'तुतिसे वाहन मा'[१९]॥१७२॥
द्* रि'एव पदवेल्लर्गे भद्रकवच' । वर 'वस्तु सवेयद ध्वि'र ऊ* ॥बरेद क 'प्पहमेय्य' सुविशालवावअा । मे'रेव 'य लाछन'कविगे' ॥१७३॥

वृ॰ नद'ली वृक्षवडियलि'ह'रसश्'ई कन'तल जिननज्जा'३३ व ट॰ द ।। जिन'तपगेय्दु मुत्तुगवेने तुम्बुर'। वन'गिड'दपवर्ग दडियिम्' ।।२२९।।
वु॰ वुरि 'पोद'म्'तपसिगळ ग्रगण्यरु' । सदय 'श्रेयाम्सरु' ग्र तु॰ ष्ठल।। मुददि'तपसिदशोकवदज्ज्'३४ग्र'तपिसिद'।षिदु'देहव तेन्दु वृक्ष'।२३०।
दृ॰ रिय'दि बिट्टु'द'ग्रपवर्गवम् वासु' । सिरि'पूज्यर्'सुपवित्र' जि॰ नरु।।सिरिय'पाटलि जम्बूवृक्ष दितपिसिद'।वरदे'विमलनाथ नव'३५रु।२३१।
ए॰ ळिरि'मनसिजनम् गेद्दनन्त'रु । शील 'धर्म स्वामि' युक्त त॰ र।। पाळिय'कोनेगे ग्रश्वत्थवु दधिय'ग्र' । साल'नुवाद पर्ण दगि' ।।२३२।।

लुळिगि'डदडियिन्दय्दि' ।।२३३।। कोलु तात'जिनराद'सुप' ।।२३४।। यल'वित्रद मही३६ ग्ररहम' ।।२३५।।
एलेयु'तराद शान्तियु' क।।२३६।। णलु'कुन्थु देवरु सुरुचि' ।।२३७।। वलवी 'रनन्दियु तिलक' ।।२३८।।
ट्ल 'सरदियवृक्ष मूल' ।।२३९।। यल'दलि तपवगेय् दरहन्' ।।२४०।। ललि'तरागिरुव जसा ३७ दर्' ।।२४१।।
वलवर्'शनवोळगनरि' ।।२४२।। ऊलि'त श्री ग्रर मल्लि' ।।२४३।। भ्ललात काद्रि भूवलय ।।२४४।।

व॰ श'दर्शिसिदात्म वृक्षगळु स्पर्श'। हस'मणियतेर मावु शा॰ लि ।। वश'कम्केलिय हर्षद वृक्षग ।ळ'श'हहो ३८ धरणियोळ मुनिसु' ।।२४५।।
ग्र॰ निसु 'व्रत नमि देवरु'ग्ररहन्त । गुण 'राद वृक्षगळम्' स॰ बोण'वरेये चम्पक वकुलगळ'म्बेर । ड' णव 'म् परमात्मर व रु' ।।२४६।।
नृ॰ 'क्षवहह् ३९ समवसरणवनु नेमि'। ग्रक्षर'तीर्थंकरर्' न॰ सक्ष'विमल मेषभृङ्ग (गिडद) विमलरमे' रक्षे'योळूर जन्तदि कय्' ।।२४७।।
दे॰ 'वल्य'होन्दिदरमग्रश्रीमन् नेमि'। तावु'जिनरा४०सीमेय'म॰ नु ।। नोव 'ळिद श्री पार्श्व तीर्थेशनु' । पावेय 'रामणीयकवा' ।।२४८।।

दवन्'द दारु'ग्रा मरद' ।।२४९।। लवर'डिय सुवर्ण भद्रा' ।।२५०।। गवरा'चल' शोभेगे सम' ।।२५१।।
नव'मेदवरव ४१ महवीरदेवनु'।।२५२।। मवतारे'शालोर्वीरुहद' ।।२५३।। ववएसद'ढि बहळ कर्म ।।२५४।।
न'वनेल्ल केडिसि' वहिसिद' ।।२५५।। वावे'पावा पुखेद' र ।।२५६।। द्व'शोकेयु सिहियागि' ।।२५७।।
ग्रवि'हुवल्लि जस ४२ यक्षराक्ष'।।२५८।। रव 'स व्यन्तरर शोकवने'।।२५९।। ववने'ल्ल'साक्षात् ग्रागि' ।।२६०।।
गेवे'निल्लिस व'रक्षेय म' ।।२६१।। शवेय रगळेल्लवनु ग्रशो'।।२६२।। 'क् ग्रवेन्दी कृषिसलिललि रुव' ।।२६३।।
तिविध'महि'४३ यु'रसयुतवा' ।।२६४।। कवि'देल्ल वृक्षदि माले' ।२६५।। कवन'गळ'होस घन्टेगळ' ।।२६६।।
तविद'लन्कार'रसवुक्कि' ।।२६७।। ववु'बरुव फलावळि बग्गि' ।।२६८।। रिवि'ह'रसमान विभव नो'।।२६९।।
गेवु'डमम ४४ सोरुव गन्ध'।।२७०।। रव'द भारद हूवनु'भूरि' ।।२७१।। ववु 'वय्भवद शाखेगळ' ।।२७२।।
ग्रवु'दारियोळेल्ल भव्य' ।।२७३।। वुवु ग्रा'त्मरशोकवु हारे' ।।२७४।। तव'नीरोगिगळ'म् माडे ।।२७५।।
रव'हरम ४५ तरगळु इप्पत्'।२७६।। ववु'नाल्कर हूवम् परमा' ।।३७७।।

ण॰ म ग्रा'त्म वय्द्य शास्त्रदलि'बरेदिह हृदि'। गम'नेन्दु सा' सु॰ विरजाति'।।सम'गेपरममंगलकन्डुन्द'४६ह'तीक्षण।सम''वागिह स्याद्वाद'।।२७८।।
स॰ न'द बुद्धि य'तीक्ष्णतेयेष्टेम् बुदनु'।।घन'तीक्ष्णवाग' चि॰ रितोडे' ।। घन 'पुष्पायुर्वेदद'रक्षणे' । तन'योवगुवुदेनन्[४७]चाव।।२७९।।
ग्र॰ नु'लेक्कवनु नोडिदरु बरु वोम्बत्तु'। जिन'श्रीवीर जिनन' र॰ 'भूव'।। तनु'लय' साविर एरडु इन्नूरय्वत्' एने 'ग्रक्षर' ईवाग सरि' ।।२८०।।
ह॰ रि'यह्नुर्दरिग'४८ ग्रन्तर सूरोम्बत् ग्रोमृवत्। बरे ऐदग्रोन्द म॰ काव्य।। बरेऐदुसूरोम्बत् सोन्ने योमृदे ग्रंक । सिरि'गुरु' वीरसेन भूवलय।२८१।

समस्त ऋ ग्रक्षरांक १०९३५+ समस्त ग्रन्तराक्षरांक १५,९९३=२६,९२८+समस्त ग्रन्तरान्तर २२५०=२९,१७८
ग्रथवा ग्र—ऋ २,२२,९०३+ऋ २९,१७८=२५२,०८१ ।

बारहवां अध्याय

बारहवा अक्षर तीसरा 'ऋ' है, इस अध्याय का नाम 'ऋ' अध्याय है। इसमे पच्चीसवें श्लोक तक विशेष विवेचन करेंगे। २६ वें श्लोक से अन्तर काव्य निकल कर आता है, उस काव्य को अलग निकाल कर लिख लिया जाय तो भी उसमें पुन दूसरा काव्य देखने में आता है। इस गद्य में सबसे पहले वह दिया जाता है। इस गद्य में इस तरह का विषय है कि गुजरात प्रान्त म श्री नेमिनाथ तीर्थंकर और कृष्ण जी एक जगह रहते थे। गुजरात प्रान्त मे एक समय नेमिनाथ और कृष्ण दोनो गुजराती में बातचीत करते थे। उस समय गुजराती और सस्कृत प्राकृत दोनो मिश्र भाषा मोजूद थी, ऐसा मालूम पडता है। उसमें से कुछ विषय यहा नीचे उद्धृत किया जाता है –

१ रिपहादिणम् चिण्हम्, गोवदि, गय, तुरग, वाणरा कोकम्, पउपयम्, णनदवत्तम् अद्धसत्ती, मयर, सो ततीया।

गडम्, महिस, वरहह्‌हो, साहो वज्जणहिरिण भगलाय, तगर कुमुमाय, कलसा, कुम्मुप्पल, मख अहिसिमूहा ॥

अर्थ—वृषभादि २४ चौबीस तीर्थंकरों के चिन्ह वृषभ हाथी, घोडा, वन्दर, कोकिल, पक्षी, पद्म, नद्यावर्त, अर्द्धचन्द्र, मगर, सो ततीय (वृक्ष) मेडा पक्षी, भैंस, सुवर, हस, वज्र, हरिण, मेढा, कमल पुष्प, कलश, मछली, शख सर्प और सिंह। इन चिन्हो के विषय में जैन ग्रन्थो में भिन्न-भिन्न मत मालूम पडते हैं। इसके विषय में आगे चलकर लिखेंगे और १३ वें अध्याय से बहुत प्राचीन काल के दिगम्बर जैनचार्यो की परम्परा से पट्टावली के विषय में यहा एक गद्य अन्तर पद्यो से वहते हुए १४ वें अध्याय के १३० वें पद्य तक चला जाता है। कानडी मे कर्णाटक पप कवि के पहले चत्ताना अर्थात् चतुर्थ स्थान (यह भूवलय के काव्य के सागत्य नाम का छन्द है) और विजडे अर्थात् दो स्थान नामक काव्य लोक-प्रसिद्ध थे। उस वेजड नामक काव्य को यहा उद्धृत करते है।

इस अध्याय में मुनियो के सयम का वर्णन किया गया है। ऋषियो के अध्यात्म योग साम्राज्य के वशीभूत जो अनशन अवमोदर्य, व्रतपरिसख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश ये छह बहिरग तप और प्रायश्चित्त विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, उत्सर्ग और ध्यान ये छह प्रकार के अंतरग तप है इन दोनों को मिलाकर बारह तप होते हैं। इन तपों की सामर्थ्य से प्राप्त हुआ यह यश-सिद्ध भूवलय काव्य है।१।

इस अढाई द्वीप में तीन कम नो करोड शूरवीर दिगम्बर महा मुनियों के अन्तरग की ध्यानाग्नि के द्वारा उत्पन्न यह सारात्म नामक भूवलय ग्रन्थ है। इन तीन कम ९ करोड मुनियो की सख्या इस ग्रन्थ में [सत्तादी अहुता छाम्मव गज्जा] अर्थात् प्रारम्भ में सात, अत में आठ और बीच में छैः बार नौ हों, अर्थात् आठ करोड ८९९९९९९७ इस प्रकार बताई गई है।२।

उत्तम सहनन वालों की जो व्यवहार धर्म को परिपाटी है वह व्यवहार नय है और तद्भव मोक्षगामी के चरम-शरीरी व्यक्तियो ने जो अपनी वज्र-मय हड्डियो के बल से शत्रु का नाश करके प्राप्त की हुई जो शुद्धात्म सिद्धि परमात्म अग है उस अग का नाम ही भूवलय है।३।

पुन. इसमें यह बताया है कि आदि का सहनन व्यवहार नय तथा निश्चय नय का साधन है। निश्चय साधन से साध्य किया हुआ जो मगल काव्य पढने में आया है वह भूवलय ग्रन्थ है।४।

इस उत्तम नर जन्म के आदि और अन्त के जितने, शुभकर्म हैं यानी जब तक वह पुण्य कर्म मनुष्य के साथ रहने वाला है उतने में ही उनके परिपूर्ण सुख को एकत्र कर देने वाली तथा उस सुखके साथ साथ मोक्ष पद को प्राप्त करा देने वाली ये अठारह श्रेणिया हैं। उस श्रेणी के अनुसार आत्म सिद्धि को प्राप्त करा देने वाला यह भूवलय ग्रन्थ है।

इन अठारह श्रेणियो को अर्थात् ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर तक पढते जाना और नीचे से ऊपर पढते आने मे अठारह-श्रेणियो के स्थान मिलते हैं। जिस तरह भूवलय में अठारह श्रेणी पढने में प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है इसी तरह भूवलय ग्रन्थ पढने वालो का राजाधिराज, मडलीक इत्यादि चक्र-वर्ती और तीर्थंकर की अठारह श्रेणियां अखण्ड रूप से मिल जाती हैं।५।

इस मार्ग से चलने वाले भव्य जीवो की रक्षा करने वाला यह भूवलय सिद्धान्त है।६।

इस ससार का अन्त करने के लिए अन्तिम मनुष्य जन्म को देने वाला भूवलय है ।७।

दूसरा जन्म ही अतिम शरीर है ।८।

जैसे नौकर को अपने स्वामी द्वारा महीने में वेतन मिलता है उसी प्रकार यह भूवलय ग्रन्थ समय समय पर मनुष्य को पुण्य बंध प्राप्त कराने वाला है ।९।

गर्भाधान तथा जन्म से मरण तक सोलह सस्कार होते हैं, उसमें मौंजी-बधन अर्थात् व्रत सस्कार विधि इत्यादि उत्तम सस्कार हैं। इन विधियो का उपदेश करने वाले गुरुओ के द्वारा चलाया हुआ यह भूवलय है ।११।

इन अठारह श्रेणियो को साधन किये हुए गग वश के राजाओ के काव्य हैं। इस गग वश के साथी राजा लोग प्रतिदिन भूवलय का अध्ययन करते थे। यह काव्य उनके लिये मत्र के समान था ।१३।

भूवलय का चक्र बध ढाई द्वीप के समान है ।१४।

यहा पराक्रमशाली 'गोट्टिग' दूसरा नाम शिवमार चक्रवर्ती थे। यह शिवमार सम्यक्त्व शिरोमणि 'जक्की लक्की अव्वे' के साथ इस भूवलय को आचार्य कुमुदेन्दु से हमेशा सुना करते थे ।१५।

कर्णाटिक भाषा में राज महल को 'अरयने असे' कहते हैं। अरयने अथवा अथाधर ऐसा अर्थ होता है, जब इस राज महलमें गुरु का मठ बन जाता है, तब पूर्ण गृह बन जाता है ।१६।

इस शब्दार्थ को अज्ञानी लोग नही जानते ।१७।

भूवलय में जो ज्ञान है, वह बहुत मधुर तथा मनोहर है। मधुर अर्थात् मीठे रस के लिये अनेक चीटिया उसके चारो ओर चाटने के लिये जुट जाती हैं। परन्तु इस ज्ञान रूपी मीठे को कोई भी खाने के लिए [समाप्त करने के लिए] नहीं जुटता।

भूवलय के अध्ययन करने वाले को वृद्धावस्था आने पर भी तरुण अवस्था ही दिखाई देती है। गग वश के राजा के साथ आचार्य कुमुदेन्दु का सघ कल्वप्पु तीर्थ अर्थात् श्रवण वेलगुल क्षेत्र में दर्शन के लिए गया था। पुरातन समय में लक्ष्मण ने गदा दड के द्वारा अपनेभाई श्री रामचन्द्र जी के दर्शन के लिये एक बडे पहाड की शिला पर एक भगवान के आकार की रेखाएं खीची। वे रेखायें बाहुबली की मूर्ति के समान दिखने लगी। तब रामचन्द्र जी ने उसी मूर्ति की आकार रेखा को मूर्ति मान कर दर्शन कर भोजन किया। उस पत्थर पर रेखा से मूर्ति बनने के कारण उसका नाम 'कल्लु वप्पु' रक्खा था ।२०।

इस अध्यात्म-राज्य के नाम को कुमुदेन्दु आचार्य की उपस्थिति में अर्थात् उन्ही के समय मे लोग भूल गये थे ।२१।

जिस समय प्रतिवर्ष यात्रा को जाते थे, उस समय सम्पूर्ण राज्य में सम्पूर्ण जनता को रास्ते में शर्बत, पानी को पिलाने के लिए मार्ग में प्याऊ का प्रबन्ध कर दिया था ।२२।

बाण का अग्र भाग बहुत तीक्ष्ण होता है। उसी प्रकार लक्ष्मण के बाण की तीक्ष्ण अग्र नोक से अब अत्यन्त सुन्दर रूपसे दर्शन होने वाले भव्य तथा अत्यन्त सुन्दर और मनोज्ञ बाहुबली की मूर्ति बन गई ।२४।

ऐसा महत्वशाली कार्य राज महल तथा गुरु का मठ ये दोनों एक रूप होकर कार्य करे तो महत्वशाली कार्य होता है, अन्यथा नही। कुमुदेन्दु आचार्य के अन्यत्र भी कहा है कि—

तिरेय जीवरनेल्ल पालिप जिन धर्म नरर पालिसुव देनरिदे।
गुरु धर्म दाचार बनुमरिदिह राज्य नरर पालिसु वुदनरिदे॥

अर्थ —समस्त पृथ्वी मडल के सब जीवो की रक्षा करने वाला जैन धर्म मनुष्यो की रक्षा करे उसमें क्या आश्चर्य है? इसी तरह गुरु की जो आज्ञा को पालन करने वाले राजा अपने राज्य का पालन करने मे समर्थ हो तो क्या आश्चर्य है?

इस बात को अपने ध्यान में रखते हुए राजमहल और गुरु का आश्रम एक ही था ऐसा कहा।

ईहा अर्थात् ऊपर कहे हुए जो विषय हैं उनकी ऋद्धि सिद्धि के लिए भगवान ऋषभदेव द्वारा कहा हुआ मुख्य सिंहासन अथवा वाहन बैल व हाथी यह नवकार शब्द के स्यात चिन्हित है अर्थात् ।२६।

लाछन के समान रहनेवाली पवित्र शुद्धता को इस वर्तमान का कहा हुआ अर्थात् इस लाछन का कहा हुआ इस भगवान की महिमा को कहां तक

वर्णन करें। सर्वार्थ सारमय पदार्थ का साध्य कर देनेवाले अर्थात् अनेक प्रकार के वैभव को प्राप्त कर देनेवाले, तथा श्रावको को यह सारी वस्तु अत्यन्त उपयोगी तथा प्रदान कर देने वाले हैं।२७।

इस प्रकार इन दोनो श्लोको का अर्थ कहा गया। इन्हीं दोनो श्लोको को पहचानने के लिए अर्ध विराम डालकर कोष्ठक में बन्द किया है। श्लोक में जहा अ ग्रे जी.का अ क डाला है वहा एक श्लोक का अर्थ निकलता है। वहा से आगे दूसरा अर्थ निकलता है। इसी प्रकार प्रत्येक श्लोक का अर्थ निकालना चाहिए और आगे भी इसी प्रकार से प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक श्लोक में मिलेगा।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उस कार्य के गौरव के अनुसार भिन्न-भिन्न मगल वस्तु को लाने की परिपाटी है। अर्हंत देव ने समस्त मगल कार्यों को दो भागो में विभाजित किया है—१ लौकिक मगल २ अलौकिक मगल।

अलौकिक मगल की विवेचना आगे चलकर करेंगे लौकिक मगल में श्वेत घोडे को लाकर देखना चाहिए।२८।

श्वेत घोडे से भी अधिक वेग से भागनेवाले उस मन को अमगल जैसा माना जाता है। उस अमगल रूप मन को मगल रूप में परिवर्तन करने के लिए अत्यन्त वेग से दौडनेवाले को, अत्यन्त मत्त होकर कूदने वाले चंचल बन्दर को खडा कर देखने से अपने चचल मन को एकाग्र चित्त बनाने के निमित्त इन दोनो के मगल में लाने का यही प्रयोजन है।२९।

रेणुकादेवी अर्थात् श्री परशुराम की माता स्या द्वाद मुद्रा से अपने मम को बाघती थी। जिस समय उनके पति उनके ऊपर क्रुद्ध हुए थे उस समय रेणुका देवी ने अपने मन को एकानु करके यह चिन्तन किया कि मेरा आत्मा ही मेरा सर्वस्व है यही मेरा सहायक है, उसी समय उनके पुत्र परशुराम के परशु के आघात से उनका प्राणान्त हुआ और उन्होंने उत्तम शुभ गति को प्राप्त किया। अर्थात् देवगति प्राप्त की।

(यह प्रसग अन्य वैदिक ग्रन्थ में नही है)

इस प्रकार अनेक विशेष विषयो को प्रतिपादन करने वाला यह अति-शय भूवलय ग्रन्थ है।३०।

(श्लोक न० ३१ से ५० तक में सेनगण गुरु-परम्परा का वर्णन आया है। इस विपय का प्रतिपादन व विवेचन ऊपर किया जा चुका है)।

अपने को जव उत्तम पद की प्राप्ति होती है। उस समय मानव के हृदय रूपी चक्र मे चमकने वाले उज्ज्वल ज्योति को कोमल करके त्रिगुप्ति से अपने अन्दर ही अपने आत्मा (हृदय चक्र) को बाधना उस समय आत्मा अपने अन्तरग के समस्त गुणो में घूमता रहता है। उस समय अनेक तत्व अपने भीतर ही दीखते हैं। उस समय वह आत्मा एक तत्व को देखकर आनन्दित होते हुए दूसरे तत्व में और इसी तरह अनेक तत्व मे घूमता रहता है। इसी को स्वजेय में परजेय को देखना कहते हैं। [यह अत्यन्त सुन्दर अध्यात्म–विषय है]।

इस अध्यात्म का अत्यन्त मादक सुगन्ध नवनवोदित, अर्थात् "नयी-नयी उत्पन्न हुई गध" जैसे नव अक अपने अन्दर समावेश कर लिए हैं उसी प्रकार इसके भीतर नये नयेवर्ण रूपी चौंसठ अक्षर निकलते हुए तथा न्यूनाधिक होते हुए राशि में सभी अंको में घूमने का चरित्र अर्थात् वघन रूप है।५२।

कमल के ऊपर के सूक्ष्म भाग को स्पर्श करते हुए नीचे उतर कर आने वाले, भ्रमर के समान उसी में घूमते समय रत्न, सोना, चादी का रग दीखने लगता है।५३।

इस मर्म को समझकर पारा और गधक के गणित क्रमानुसार भस्म करके धर्मार्थ रूप में इसका उपयोग करना यही पुष्पायुर्वेद का मर्म है।५४।

जलज अर्थात् जल कमल की एक-एक पखुडी को को स्पर्श करके कमल रूप वन गया, उसी प्रकार द्रव्य मन भी है। द्रव्य मन अनेक विषयो से भिन्न-भिन्न होने पर भी एक ही है। उसको एकत्रित करके, जैसे अक्षर को मात्रा और अक मिलाकर जैसे काव्य रूप बना देते हैं उसी प्रकार द्रव्य मन को भी बाध दे तो चन्द्रमा के समान वह भीतर का मास पिण्ड धवल-रूप दीखता है। इसका नाम चित्र विद्या है।५५।

(श्लोक न० ५६ से श्लोक न० ८२ तक सेनगण का वर्णन आता है)

जैसे नव अ क अपने अन्दर ही वृद्धि को प्राप्त करता है उसी पर सर्राक्षत भी होता है। इसी तरह होने के कारण ही नव पद भाग्य-शाली कहलाता है,

और यह स्वस्तिक रूप भी है। यदि यह सिद्ध हो जाय तो सदैव अपनी रक्षा कर लेता है।८३।

व्यवहार और निश्चय यह दोनो नय मिश्रित होकर एक ही काव्य मे प्रवाह रूप होकर वृद्धि को प्राप्त होनेवाले चतुर्थी के चन्द्रमा की किरणो के समान, साथ साथ प्रवाह रूप में आगे वढता जाता है।८४।

मन और प्राण दोनो एक समान रहनेवाले को करिमकर स्वरूप कहते हैं। अर्थात् हाथी और मगर के समान रहनेवाले को कहते हैं। मन और प्राण दोनो एक रूप में होकर रहनेवाले द्विधारा शस्त्र के समान स्याद्वाद रूप मे दीख पडता है। इस प्रकार यह जिनेन्द्र भगवान की वाणी में दीख पडता है।

"करो कथचित् मकरी कथचित्, प्रख्यापयज्जैन कथचिदुक्तिम्" अर्थात् एक तरफ हाथी का मुह और दूसरी तरफ देखा जाय तो मगर का मुह, इसी का नाम 'कथचित्' है। यह "कथचित्" वाक्य जिनेन्द्र भगवान् का वाक्य है।८५।

कल्प वृक्ष एक क्षण मे जैसे दस प्रकार की वस्तु को एक साथ ही देते हैं उसी प्रकार पारा और गधक से वनी हुई रस रूपी वनोपधि अनेक फल एक ही साथ देती है। वैसे ही द्रव्य मन को वद्ध रूप कर दिया जाय तो एक क्षण मे अनेक विद्याओ को साध्य कर देने योग्य वन जाता है। इसी अक्षर से सभी विद्याओ को निकालकर ले सकते हैं। गोचर वृत्ति से आहार को लेकर अन्त में मुनि देह च्युत होकर स्वर्ग में अपने कठ से निकले हुए अमृतमय से प्राप्त होकर आयु के अवसान मे वहा से च्युत होकर इस भरत खड में आर्यकुल में जन्म लिया,। उन लोगो (महात्माओ) न इन कल्प विद्याओ को २४ भगवान के वाहन (चिन्हो) का गुण करते हुए आये हुये लब्धाक से अक्षर वनाकर इस विद्या को प्राप्त कर स्वपर हित का साधन कर लेता है।

यहा ऊपर भूवलय के चतुर्थ खड में आये प्राण वायु पूर्व के प्रसग को उद्धत करते हैं।

"सूत केसरगधक मृगनवा सारद्रुम मर्दितम्"

अर्थात् पारा २४, तोला, गधक १६ तोला, नवसार १० तोला इस प्रकार इसका अर्थ होता है। इसका अर्थ कोई वैद्य ठीक नही कर सकता भूवलय से ही इसका अर्थ ठीक होता है। २४ भगवान के चिन्ह को लिया जाय तो भगवान महावीर का चिन्ह 'सिंह' है इसलिए चौवीस लेना, इस श्लोक को वता दिया। शातिनाथ भगवान का चिन्ह हरिण होने से गधक १६ है। शीतल भगवान का चिन्ह 'वृक्ष' होने से नवसार दस तोला है। इस गणित का नाम 'हरशकर गणित' है। ऐसा कुमुदेन्दु आचार्य ने कहा है।८७।

[श्लोक न० ८८ से श्लोक न० ११४ तक ऊपर कहे अनुसार वर्णन किया जा चुका है।]

दिगम्बर जैनाचार्यों ने बहिरंग में गोचरी वृत्ति पुद्गलमय अन्न ग्रहण करते हैं। और अतरग मे अपनी श्रीचर्या अर्थात् अपनी ज्ञानचर्या मे ज्ञान रूपी अन्न को ग्रहण करते हैं। इसी तरह 'गडवेरुक' अर्थात् दो सिखाला पक्षी भी ग्रहण करता है। [इस पक्षी का चिन्ह मैसूर राज्य का प्रचलित राज्य चिन्ह है) ।११५।

गोचरी और श्री चर्य ये जिनके वंश नही है उनका मन भैंस के समान सुस्त रहता है। उस सुस्त भाव को बतलाने के लिये भैंस के चित्र को लाछन रूप मे बताया गया है।११६।

हमारे अतरग मे प्रगट हुई दर्शन शक्ति को लेकर और शास्त्र रूप में वनाकर लिखने का जो कार्य है, यह कार्य जिनके अन्दर जिनेन्द्र भगवान होने की शक्ति प्रगट हुई है केवल वे ही इस शास्त्र की रचना कर सकते हैं, अन्य कोई नही। इस बात को वतलाने के लिये सूअर के चिन्ह को यहा दिखाया है।११७।

जिस जिनेन्द्र देव ने शूकर चिन्ह को प्राप्त किया है, यदि उस चिन्ह की महिमा को यत्नाचार पूर्वक समझ लें तो वह हमारी रक्षा करके अनेक प्रकार की विद्याओ को प्राप्त करा देता है। द्रव्य सूत्र के अक्षर किसी कल्प-सूत्र से आये हुए नही हैं, ये तो अनन्त राशियो से निकले हैं। प्रत्येक आकाश प्रदेश में अमूर्त और रत्नराशि के समान रहने वाले काल द्रव्य असख्यात हैं। उस असख्यात राशि के प्रत्येक कालाणु में अनादि कालीन कथन है और अनन्त काल तक ऐसा ही चलता रहेगा। जव एक कालाणु में इतनी शक्ति है तो उन सव शक्तियो को दर्शन करने की शक्ति श्री जिनेन्द्र देव हमें प्रदान करें।११८।

रीछ ने अपने शरीर में जिस प्रकार अपने शरीर मे सम्पूर्ण बालो को गूथ लिया है उसी प्रकार सम्पूर्ण द्रव्य सूत्र के अक्षरो को कालाणु ने अपने मे समावेश कर लिया है। इस बात को सूचित करने के लिए रीछ के लाछन (चिन्ह) को योगी जनो ने शास्त्र में अकित किया है। उस अकित चिन्ह की देवगण पूजा करते हैं।११९।

जगत में वज्र अत्यन्त बलशाली है। इसमें पारा मिला कर भस्म किए हुए भस्म को शस्त्र के ऊपर लेप किया जाय तो वह शस्त्र सम्पूर्ण आयुधो को जीत लेता है। उसी प्रकार जैन धर्म इन सम्पूर्ण सूक्ष्म विचारो का शिक्षण देते हुए भव्य जीवों की रक्षा करने वाला है। इस विषय को बताने के लिए वज्र लाछन अकित किया है।१२०।

नोट—श्लोक न० १२१ से श्लोक न० १४३ तक अर्थ लिखा जा चुका है। मूर्ख से मूर्ख अर्थात् अक्षर शून्य को भी जिसको "अ सि आ उ सा" का उच्चारण करना नही आता है ऐसे मनुष्यो को भी तुष्माष इस मत्र को देकर अति वेग से उनकी ज्ञान शक्ति बढाने वाला एक मात्र जैन धर्म ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण जीवो को इनकी शक्ति के अनुसार उपदेश देकर उनके ज्ञान को बढा देता है।

तुष्माष, कहने का अभिप्राय यह है कि 'तुषा' ऊपर का छिलका है और 'माष' भीतर की उडद की दाल है। छिलका अलग है और उसके भीतर की दाल अलग है। उसी प्रकार शरीर अलग है और आत्मा अलग है। यह उपदेश अज्ञानियो के लिए एक महत्व पूर्ण उपदेश है।१४४।

ससारी जीवो के लिए अत्यन्त शीघ्र गति से पुण्य बन्ध होना अनिवार्य है। इस हेतु को बतलाने के लिए 'हरिण' लाछन (चिन्ह) अकित किया गया है। जगल के रास्ते में पेड से गिरे हुए कच्चे पत्ते के रस के द्वारा अत्यन्त वेग से दौडने वाले चचल पारे को बाँध दिया जाता है। उसी तीव्र वेग से शरीर के रोग नाश के निमित्त को बतलाने के लिए आरोग्य को शीघ्रातिशीघ्र बढाने के लिए यहाँ 'पादरस' का प्रयोग बतलाया गया है।१४५।

सत्रहवें भग के गणित में मेंढा का दृष्टान्त दिया गया है। वह मेंढा सभी प्रकार के पत्ते को खाकर केवल बकरी के न खाने वाली वस्तु को छोड देता है। उसी प्रकार इस जीव को पाप को छोडकर पुण्य को ग्रहण करना चाहिए।१४६।

यह भूवलय रूपी समस्त अक्षर द्रव्यगमन की राशि लोकाकाश के सपूर्ण प्रदेश मे व्याप्त है। जिस प्रकार वह व्याप्त हुआ है उसी प्रकार यह जीवात्मा को भी ज्ञान से जो-जो अक्षर जहाँ-जहाँ है वहा वहा ज्ञान के द्वारा पहुंच कर समझ लेना चाहिए। उसी प्रकार भूवलय चक्र के प्रत्येक प्रकोष्ठ में रहने वाले प्रत्येक अ क ७१८ भाषाओ में रहने वाले समस्त विषयो को स्पर्श करते हुये भिन्न-भिन्न रस का आस्वादन कराता है।१४७।

वाराणसी अर्थात् बनारस मे वासुदेव ने नन्द्यावर्त गणित से उपरोक्त शब्द राशि को समझ लिया था और अन्य दिव्य साधन को भी साध लिया था।१४८।

नोट—श्लोक न० १४९ से १७१ तक की व्याख्या की जा चुकी है।

नवमाक चक्र में समस्त मगल प्राभत चौदह पूर्व बडा है। उपमा से देखा जाए तो विचित्र चौंसठ वर्ण रूपी कु भ मे समस्त द्वादशाग रूपी अमृत भरा है। ससारी जीवो का सम्पूर्ण दशा उस कु भ के द्वारा जानी जा सकती है। इस प्रकार करने की शक्ति जिनमे नही है वे इस कु भ की पूजा करें।१७२।

कु भ भरे हुए समस्त अक्षर नव पदो के अन्तर्गत हैं। अर्हंत सिद्ध आदि नव पद ही रक्षक रूप भद्र कवच है। वह भद्र कवच कभी नाश नही होने वाला है। इस बात को सूचित करने के लिये ही कछुए का लाछन [चिन्ह] है। यह कविजनो की काव्य रचना के लिए महत्व पूर्ण वस्तु है।१७३।

राज्य मे पहले फैली हुए कीर्ति ही राज्य की भद्रता को सूचित करती है। उसी तरह जब जीवो को व्रत प्राप्त होता है तो उस समय ११ प्रतिमा अर्थात् श्रावको के ११ दर्जे अर्थात् श्रावक धर्म रूपी राज प्राप्त होता है। जब श्रावक लोग अपने व्रत में भद्र रूप रहते हैं, वही मोक्ष महल में चढने की प्रथम सोपान है। यहा से जीव का स्थानादि षट्खड आगम रूपी सिद्धान्त राज अर्थात् महाव्रत में समावेश हो जाता है।१७४।

कुमुदेन्दु आचार्य के शिष्य, समस्त भारतवर्ष के चक्रवर्ती ने इस भूवलय के अतर्गत षटखड आगम को लेकर करोडो की गिनती से गिनते हुए निकाला

था। उसका आदि अन्त का रूप काव्यमय था। अर्थात् पहले श्लोक का अंताक्षर ही श्लोक का प्रथम बन जाता था।१७५।

सरस्वती देवी अपनी उंगलियो से वीणा पर जो टकार का मधुर नाद करती है उस नाद से निकले हुए शब्द रूपी भूवलयो से श्रुतज्ञान को लेकर शिवमार चक्रवर्ती ने पढाया था।१७६।

नोंट—१७६ श्लोक से १६५ श्लोक का विवेचन हो चुका।

एक मदारी एक स्थान पर बैठा हुआ था। उसने भग पीकर अग्नि को नीचे फेंक दिया। वह अपनी पोटली में नाग नागिन दो सर्प लिये बैठा था। भग पीकर फेंकी हुई अग्नि उस पोटली में जाकर गिर पडी और अन्दर ही अन्दर सुलग गई। तब उस पोटली मे रखे हुए नाग नागिन प्राण को न छोडते हुए दोनो आपस मे लिपटे हुए ऊपर उठकर खडे होते हुए अग्नि की जलन के कारण तडप रहे थे। उस समय उसी मार्ग मे आने वाले पहले भव के पार्श्वनाथ भगवान अपने पूर्व भव में यतिरूप मे जब आ रहे थे तब इन दोनो नाग-नागिनियो के मरण समय को देखकर तुरन्त ही वहा पहुच गए और इनको पच परमेष्ठियो के नवकार मत्र को सुना दिया। कभी किसी भव में न सुने हुये परम पवित्र इस मन्त्र के शब्द को सुनकर वे दोनो नाग नागिन एकाग्र चित्त से स्थिरता के साथ ऊपर देखते हुएखडे हुए। तब आकाश मार्ग से धरणेन्द्र और पद्मावती का विमान जा रहा था। वह विमान अत्यन्त वैभव के साथ जा रहा था। उस महिमा की इच्छा रखते हुए निदान बन्धकर उत्तम सुख की प्राप्ति करलेने के मार्ग को छोडकर भुवन लोक मे जाकर धरणेन्द्र पद्मावती हुए। यहा कई लोग शका करते हैं कि—इस मन्त्र के मन्त्रण से आम टूटकर गिर जाता है क्या? और बहुत से लोग वाद-विवाद करते हैं। किन्तु यह बात ठीक नही है कि—तत्वार्थ सूत्र में उमा स्वामी आचार्य ने "ध्यानमन्त्रर्मुहूर्तात् एकाग्र चिन्तानिरोध ध्यान" अर्थात् एक वस्तु पर अतर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट तक ध्यान रह सकता है। अगर मनुष्य अपने ध्यान को अतर्मुहूर्त काल तक स्थिर होकर करता है तो वह उतने समय मे केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अब विचार करो कि शरीर को मैं कैसे छोडू ऐसा मन में आर्त रौद्र कर मरे हुए जीव को दुख में प्राप्त होना तथा नीच गति मे जाकर उत्पन्न होना स्वभाविक है। इसी तरह पच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र को सुनकर शरीर की वेदना को भूलकर समाधिस्थ हुआ उन दोनो जीवो को सद्गति होने में कौनसा आश्चर्य है? अर्थात् आश्चर्य नही हैं।

कुमुदेन्दु आचार्य ने अज्ञानी जीवो के कल्याण के लिए केवल अ सि आ उ सा मन्त्र का ही प्रयोग करके अत्यन्त मूर्ख तथा निरक्षर भट्ट जैसे जीवो को भी आयु के अवसान काल में इन तुष माष या पच परमेष्ठी महा मन्त्र को उन जीवो को देकर अतिम समय समाधि स्थिरता कराके मूर्ख को ज्ञानी बनाकर देव गति प्राप्त करा दिया, यह कितने उपकार की बात है! क्या जैनागम का महत्व कम है? अर्थात् नही।

पार्श्वनाथ भगवान को कमठ के द्वारा जब उपसर्ग हुआ तब मातग सिद्धदायिनी इत्यादि देव, देवियाँ उस उपसग को दूर करने के लिये क्यो नही आए और धरणेन्द्र पद्मावती क्यो आए? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर के विषयो से हल हो चुका है।१६६।

महावीर भगवान के हमारे हृदय में रहने के कारण हमारा मन सिंह के समान पराक्रमी हो गया है इसीलिये हम वीर भगवान के अनुयायी या भक्त हैं, ऐसा लोग कहते हैं। अपने हृदय रूपी सिंह को महावीर भगवान को सिंह-वाहन कर समर्पण करने के बाद शूर वीर लोग अन्य देवो को क्यो नमस्कार करेंगे? कभी नही इसीलिये भगवान के सिंहासन का चिन्ह वीरो का चिन्ह है।१६७।

राज चिन्ह को वीर रस प्रधान होने के कारण आज कल भी अपने महल के ऊपर वीर तथा सिंह के ध्वजा लगाते हैं। इसी कारण से मन रूपी सिंहासन से २२५ कमलो को चक्र रूप बना कर वर्णन किया है।१६८।

चार मुख रूप में रहनेवाले सिंह के सिर पर आये हुये ६०० कमलो के ऊपर सचरण करने वाले भगवन्त के चरण कमल राग विजय के कारण उत्पल पुष्प अर्थात कमल पुष्प के समान दिखता है।१६८।

तीर्थंकर के रहने का समय ही मगलमय होता है। क्यो कि उनके जन्म होने की लोग प्रतीक्षा करते रहते हैं। जन्म होने के पश्चात उनके होने वाले अन्य तीन कल्याणक अर्थात तप, ज्ञान तथा मोक्ष मिलकर, पच कल्याणक होते

हैं। इसी प्रकार नेमिनाथ भगवान के समय का कथन यहां आया है। इस वर्णन को सुनकर हम अपनी शक्ति के अनुसार उनकी भक्ति करें।१९९-२००।

ऋषभदेव भगवान ने जिस वृक्ष के नीचे खड़े होकर तप किया था उस वृक्ष का नाम जिन वृक्ष है।२०१।

जिस प्रकार वट वृक्ष अपनी शरण में आनेवाले सम्पूर्ण जीवों को अपनी छाया से शीतल कर आश्रय प्रदान करता है उसी प्रकार उसी वृक्ष के नीचे जिनेन्द्र भगवान ने अपनी कामाग्नि को शान्त कर कर्म की निर्जरा करके आत्म रूपी शान्त छाया को प्राप्त किया, इसलिये इसको जिन वृक्ष एवं अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२०२।

यह शरीर रेहल के समान आधार भूत है। उसको तपश्चर्या में उपयोग कर जैसे नई आत्मा को प्राप्त कर शोक रहित होता है, उसी प्रकार अत्यन्त कोमल लाल पत्ते वाले केले के वृक्ष के नीचे तप करके सिद्धि प्राप्त करने के कारण उसका नाम अशोक वृक्ष पड़ा। तब उनका तपभव फलीभूत हुआ।२०३।

शालमली वृक्ष के नीचे सम्भव नाथ तीर्थंकर ने तपस्या की थी इसलिये इसको भी अशोक वृक्ष कहते हैं। यह अशोक वृक्ष देवताओं के द्वारा भी वंदनीय है।२०४।

नोट—श्लोक नं० २०५ से लेकर श्लोक नं० २२३ श्लोकों तक विवेचन हो चुका है।

सूखा हुआ सरल [देवदारु] इन करोड़ों वृक्षों के गणित और उनके गुणों को जिन्होंने बताया है उन अभिनन्दन और सुमतिनाथ भगवान को नमस्कार करते हैं।२२४।

जिस वृक्ष के पोल अर्थात् तने में सर्प रहता है उस वृक्ष को नागवृक्ष कहते हैं। उस झाड को काटते समय नीचे के हिस्से मात्र को काटकर जब उसमें सर्प दिखाई पड जाय तब उस वृक्ष को काटना बंद कर देना चाहिए। अगले दिन जब वह सर्प निकलकर दूसरी झाडी में चला जाए तब उस वृक्ष को काट देना चाहिए। जहां पेड के पोल में सर्प रहता है उसके सिर के भाग की मिट्टी बहुत नरम होती है। वह मिट्टी अनेक दवाइयों के काम में आती है। यदि सर्प को इस प्रकार न हटाया जाय तो वह सर्प वहीं चोट करके मर जाता है और वहां की मिट्टी विषमय बन जाती है।२२५।

दोनों नौ-नौ को मिलाने से १८ होता है। कुटकी और शिरीश अर्थात् शीसम इन दोनों वृक्षों की मिट्टी से लेप करने से मनुष्य निरंकुश हो जाते हैं। पद्म प्रभु और सुपार्श्व नाथ भगवान ने जिस नाग वृक्ष के नीचे आत्मसिद्धि को प्राप्त की थी उस वृक्ष के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को कुष्ठ रोग की निवृत्ति के लिए सजीवनी औषध रूप में उपयोग किया जाता है।

।२२६। और ।२२७।

बेलपत्र और नागफण इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी को भिन्न-भिन्न रोगों के लिए दिव्य औषध रूप में परिवर्तित करते हैं। उसको चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त जिनेन्द्र भगवान के शिक्षण से अर्थात् गणित के द्वारा समझना चाहिए।२२८।

तुम्बूर वृक्ष अर्थात् बीडी बांधने के पत्ता का वृक्ष और पलाश का वृक्ष इन दोनों की मिट्टी भी उपरोक्त विधि के अनुसार निकाल लेनी चाहिए। इसकी विधि शीतलनाथ भगवान के कहे के अनुसार समझनी चाहिए।२२९।

इसी प्रकार तेन्दु वृक्ष और इस वृक्ष के नीचे गिरे हुए पत्तों को मिलाने से महाऔषधि बनती है। इसकी विधि श्री श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३०।

इसी प्रकार पाटली वृक्ष और जम्बू वृक्ष इन दोनों की मिट्टी से औषधि बनाने की रीति को वासुपूज्य और विमलनाथ तीर्थंकर के गणित से जाननी चाहिए।२३१।

अश्वत्थ और दधिपर्ण इन दोनों वृक्षों के गर्भ में मिट्टी को प्राप्त करने की विधि को अनन्तनाथ और धर्मनाथ तीर्थंकर भगवान के गणित से जाननी चाहिये।२३२।

नन्दी और तिलक इन दोनों वृक्ष की मिट्टी को निकालने की विधि शांतिनाथ और कुंथनाथ भगवान के गणितों से समझनी चाहिए।

आम, ककेली इन दोनों वृक्षों के गर्भ में रहने वाली मिट्टी की विधि को मुनिसुव्रत और नमिनाथ तीर्थंकर के गणित से समझनी चाहिए।

मेप शृङ्ग वृक्ष के गर्भ से प्राप्त मिट्टी से आकाश गमन की सिद्धि होती है। इस विधि को नमिनाथ और नेमिनाथ तीर्थंकरो के गणितो से समझ लेनी चाहिए। २३३ ।२३४।२३५।२३६।२३७।२३८।२३९।२४०।२४१।२४२। ।२४३।२४४।२४५।२४६।२४७।२४८।

सम्मेद पर्वत पर रहने वाले अनेक प्रकार के अशोक वृक्षो को पार्श्वनाथ तीर्थंकर के गणितो से समझना चाहिए।

दारु वृक्ष की जड से सुवर्ण अर्थात् सोना बन जाता है। इस विधि को पार्श्वनाथ भगवान् के गणितो से समझनी चाहिए।

इस विधि को न जानने वाले भील और गडरिये लोग अपने मेडिये के पांवो में लोहे की नाल बाधकर सुवर्ण भद्र कूट के पास भेज देते थे। उस जड के ऊपर मेडिये के पाव पडने से लोहे को नाल के स्पर्श से पाव मे बघी हुई नाल सोने की बन जाती थी।

रात में जब मेडिये घर आते थे तब उनके पावो में जडी हुई नाल को निकाल लेते थे और उसको बेचकर अपने जीवन का निर्वाह कर लेते थे। इसी स्वर्णभद्र कूट से पार्श्वनाथ भगवान मोक्ष गए थे इससे इसका नाम सुवर्ण भद्र कूट पडा है। इसलिए इसका नाम सार्थक है।

शालोर्बी वृक्ष से महाऔषधि बन जाती है। इस विधि को श्री महावीर भगवान के गणितो से समझनी चाहिए।

यक्ष-राक्षस और व्यन्तरो के समस्त शोक को निवारण करने के कारण इन सबको अशोक वृक्ष के नाम से पुकारते हैं। यक्ष-राक्षसो के पास विद्या आदि का बल होता था परन्तु आजकल के मनुष्यो को ऋद्धि-सिद्धि विद्यादि प्राप्त होनी असाध्य है। इस कारण कुमुदेन्दु आचार्य ने चौबीस तीर्थंकरो के अथवा ७२ तीर्थंकरो के लाछनो से और तपस्या किये हुए वृक्षो से आरोग्यता आकाश-गमन, लोहादिक को परिवर्तन करने वाले और सुवर्णमय रूप यत्र (मशीनरी) इत्यादि को पारे के रससे साधन करनेवाले अनेक रसो की विधि को यहा बताया है।

परमात्म जिनेन्द्र भगवान ने वैद्यक शास्त्र में अठारह हजार मगल तथा उतने ही पुष्पो को तीक्ष्ण स्याद्वाद बुद्धि से अपने गणित के द्वारा निकालने की विधि बतलाई है।२७८।

मन तथा बुद्धि की तीक्ष्णता के कितने अग हैं? इस बात को तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा ही गणितो से गुणा करने से पुष्पायुर्वेद का गणिताक देखने मे आ सकता है।२७९।

यदि अनुलोम क्रम को देखा जाए तो इस गुणाकार का पता लग जायगा। उसको यदि आडे से जोड दिया जाय तो नौ-नौ आ जायगा। यह वीर भगवान के कथनानुसार २२५० वर्ग मे आता है। इसी विधि के अनुसार यदि कोई गणित देखा जाय तो नौ ही आता है किन्तु उन सभी को यहा नही लेना चाहिए केवल २९५० (दो हजार नौ सौ पचास) के गणित मे ही इसे मानना चाहिए।२८०।

इस अध्याय के २८१ श्लोकों मे १५९९३ अक्षराक १०९३५ कुल २६९२८ इस प्रकार अकाक्षर आते हैं। श्री वीरसेन आचार्य द्वारा पहले उपदेश किया हुआ यह भूवलय ग्रन्थ है। आगे अतरग में आने वाले ४८ "ऋद्धि-सिद्धगे आदि नाथरू" नाम के श्लोक के प्राकृत और सस्कृत मात्र अर्थ यहा दिया जाता है।

आगे चलकर समयानुसार प्राकृत भगवद्गीता लिखी जायगी। इसके आगे हम पुन बारहवे अध्याय के अतरग चौबीसवें श्लोक से लेकर २८१ श्लोक तक श्रेणीबद्ध वाक्य से पढते जाएँ तो अन्दर ही अन्दर जसे कुए के अन्दर से पानी निरन्तर निकालते रहने पर भी पानी कम न होकर बढता रहता है उसी प्रकार भूवलय रूपी कूप मे अक्षर रूपी जल न रहने पर भी अक रूपी जल (२७ × २७=७२९) निकालकर यदि बाहर रख दिया जाय तो उससे २४ वा श्लोक रूपी जलकण उपलब्ध हो जाता है। वह इस प्रकार है—

इवु रिद्धि सिद्धिगे 'आदिनाथरू' पेलद। धर्म अजितर गद्दुगे सार्वं॥
नववाहनगलु एत्तु आनेगलुम। नवकार सद्दिनिस्याद्वा॥

इस श्लोक में "इवु" "पेलदधव" "सविनववाहनगलु" "नवकारस" इन अक्षरो को छोडकर शेष अक्षरो के अतिरिक्त श्लोक बनते जाते हैं। वह इस प्रकार हैं:—

रिद्धि सिद्धिगे आदिनाथरू अजितर।
गद्दुगे एतु आनेगलु॥

मुचिनिस्याद्वा· ·· ·''॥

इसी रीति से २७वें श्लोक से लेने पर भी यह श्लोक पूर्ण हो जाता है।

दत्ताघनदन्तिह ।

सुधिय पेलवुदिन्तहहा ॥

छोडे हुए "इ" यह अक्षर प्राकृत भाषा और "स" अक्षर—भाषा को जाएगा। इस गिनता से चार काव्य वन गये।

रिद्धि सिद्धि में रहनेवाला आयक्षर "रि" के अतिरिक्त यदि पढ़े तो 'रिसहादीए विएहम" इत्यादि रूप एक अलग भाषा का काव्य निकल आता है जो ऊपर लिखा जा चुका है। यह श्लोक मूल भूवलय से नही पढा जा सकता, किन्तु यदि वहा से निकालकर पढा जाय तो पढ सकते हैं, यह चमत्कारिक बात है अर्थात् अद्भुत लीलामयी भगवद्वाणी है।

अब ऋद्धि सिद्धिगे श्लोक से लेकर ४८ श्लोक पर्यन्त अर्थ लिखेंगे—

भूवलय में वुद्धिरिद्धि, वलरिद्धि, औषधिरिद्धि इत्यादि अनेक ऋद्धियो का कथन है। उन सब ऋद्धि की प्राप्ति के लिए अर्थात् सिद्धि के लिए भी आदिनाथ भगवान और श्री अजितनाथ भगवान को आदि में नमस्कार करना चाहिए, उनके वाहन बैल और हाथी से स्याद्वाद का चिन्ह अकित होता है। ऐसा ग्रन्थकार ने कहा है।१।

अपना अभीष्ट स्वा' साधन करना है अर्थात् भूवलय के ६४ अक्षरो का ज्ञान प्राप्त करना है। उन ६४ अक्षरों का यदि साधन करना हो तो सर्व प्रथम मगलाचरण होना अनिवार्य है। मगलाचरण में लौकिक और अलौकिक दो भेद हैं। लौकिक मगल में श्वेतछत्र, वालकन्या, श्वेत अश्व, श्वेत सर्प, पूर्ण कुम्भ इत्यादि दोष रहित वस्तुए हैं। अब सर्वमगल के आदि में श्वेत अश्व को खडा करना अभीष्ट है।२।

मनुष्य का मन चचल मर्कट के समान एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष, शाखा से शाखा तथा डाली से डाली पर निरन्तर दौडता रहता है। उसको वाँधकर रखना तथा मर्कट को वाधना दोनो समान हैं। चचल मन स्याद्वाद रूपी धागे से ही वाँधा जा सकता है। उसके चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य ने मर्कट का उदाहरण दिया है।३।

जब मन की चचलता रुक जाती है तब आत्म ज्योति का ज्ञान विकसित होने लगता है। और उस विकसित ज्ञान ज्योति को पुन २ आत्मचक्र घुमाने से काय गुप्ति, वचन गुप्ति तथा मन गुप्ति की प्राप्ति होती है। तब आत्मा के अन्दर सकोच-विस्तार करने की शक्ति वन्द हो जाती है। उसे गुप्त कहते हैं। उस अवस्था को शब्द द्वारा वतलाने के लिए श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने चक्रवाक पक्षी का लाछन लिया है। यह उपर्युक्त उदाहरण ठीक ही है, क्योकि भूवलय चक्रवन्ध से ही वन्धा हुआ है।४।

इस भूवलय ग्रन्थ को, महान अक राशि से परिपूर्ण होने पर भी यदि सभी सख्याओं को जोड में मिला दिया जाय तो, केवल नौ (९) के अन्दर ही गणना कर सकते हैं। इसी रीति से प्रत्येक जीव अनन्त ज्ञान से सयुक्त होने पर ९ के अन्दर ही गर्भित हो जाता है। वह ९ का अक एक स्थान में ही रहनेवाला है। इसी प्रकार अनन्त गुण भी एक ही जीव में समाविष्ट हो सकते हैं। जिस तरह सूर्योदय होने पर प्रसार किया हुआ कमल अपनी सुगन्धि को फैलाता है पर रात्रि में सभी को समेट कर अपने अंदर गर्भित कर लेता है, उसी प्रकार प्राप्त की हुई आत्म ज्योति को अपने अतर्गत करके और भी अधिक शक्ति बढाकर वाहर फैलाने का जो आध्यात्मिक तेज वृद्धिगत हो जाता है उसे शब्द और चिद्रूप से वतलाने के लिए आचार्य श्री ने जल कमल और ९ अक का चिन्ह लिया है।५।

रत्न, स्वर्ण, चाँदी, पारा और गन्ध इत्यादि क्रूर लोह तथा पाषाण को क्षण मात्र में भस्म करने की विधि इस भूवलय में—पुष्पायुर्वेद रूपी चौथे खड में वतलायी गई है। वहा इसी जलकमल और नवमाक गणित को उपयोगी वतलाया गया है।६।

गुप्तित्रय में रहनेवाली आत्मा का चित्त में सम्पूर्ण अक्षरात्मक ६४ ध्वनि को एकमात्र में समावेश करने को विज्ञानमयी विद्या की सिद्धि को देने वाले श्री सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर हैं। उनका वाहन स्वस्तिक है। इस महान विद्या को शब्द रूप से दिखलाने के लिए आचार्य ने स्वस्तिक का चिन्ह उपयुक्त वताया है।७।

९ का अक अर्हंत सिद्धादि ९ पद से अकित है। वह वृद्धि के होने पर

भी केवल ९ ही रहता है। जैसे ९×२=१८ तथा ९×३=२७ होने पर भी इन दो सख्याओ को पृथक पृथक (८+१=९ २+७=९) जोडने पर केवल ९ ही होगा। इसका उदाहरण ऊपर भी दिया जा चुका है। ९ संख्या में से पहले का १ निकालकर यदि दो को १ मानकर गिनती करें तो आठवी सख्या बन जाती है इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने गणना करने के समय मे आठवें चन्द्रप्रभ भगवान को आदि में लिया है। चन्द्रमा शीतल प्रकाश को प्रकाशित करता है और वह शुक्ल पक्ष की चतुर्थी से बढता जाता है। इसी प्रकार योगी की ज्ञान-किरण भी ८ और ९ इन दोनों अंकों से अर्थात् सम—विषमांक से प्रवाहित होती रहती ह। इस शीतल ज्ञान-गगा प्रवाह को शब्द रूप मे दिखाने के लिए श्री आचार्य जी ने चन्द्रमा का चिन्ह उदाहरण रूप मे लिया है।८।

इस ज्ञान-गगा के प्रवाह में डूबकर यदि आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्त करना हो तो स्याद्वाद का अवलम्बन लेना चाहिए। स्याद्वाद रूपी शास्त्र द्विधार से युक्त है। अर्थात् उस तलवार की १ फल के ऊपर यदि प्रहार करें तो वह स्वपक्ष और परपक्ष दोनो को काटता है। इस तथ्य को शब्द रूप में बतलाने के लिए आचार्य ने करी मकरी का उदाहरण लिया है। कहा भी है कि—

"करी कथचिन्मकरी कथचित्प्रख्यापयज्जैन कथचिदुक्तिम्" इसका अर्थ ऊपर आ चुका है।९।

स्वर्ग लोकस्थ कल्पवृक्ष से आकर भूवलय शास्त्र का १० वाँ अक १ बनकर मणि रत्न माला आहार आदि ईप्सित पदार्थो को प्रदान करता है। इस बात को शब्द रूप देने के लिए आचार्य ने १० कल्प वृक्षो को चिन्ह रूप में लिया है। अर्थात् वृक्ष का चिन्ह १०वें तीर्थंकर का है।१०।

दिगम्बर जैन मुनि गोचरी वृत्ति से आहार ग्रहण करते हैं। आहार लेने के गोचरी, अश्वचरी, गर्दभचरी (गधाचरी) ऐसे तीन भेद हैं। जिस प्रकार गाय फसल को नष्ट न करके केवल किनारे से खाकर अपनी क्षुधा शान्त करने के बाद भी अन्य जीव जन्तुओ के खाने के लिए रख छोडती है उसी प्रकार ३६ और २८ मूल गुणधारी महाव्रती आचार्य तथा मुनिजन गोचरी वृत्ति से अल्प आहार ग्रहण करके आहार देनेवालो के लिए भी रख छोडते हैं।

जिस तरह अश्व फसल के अर्धभाग को खा लेता है, किन्तु उसके खालेने के अनन्तर गाय के खाने के लिए भाग न रहकर केवल गधे के खाने के योग्य ही रहता है उसी प्रकार अणुव्रती के आहार ग्रहण करलेने के पश्चात् शेषान्न मुनिजनो के उपयुक्त न रहकर केवल अव्रतियो के लिए ही रहता है।

जिस प्रकार गधा फसल को उखाडकर समूल खा जाता है और उसके खाने के बाद किसी भी जानवर के खाने लायक नही रह जाता उसी प्रकार अव्रती के भोजन कर लेने के पश्चात् शेषान्न किसी त्यागी के योग्य नही रह जाता। इन तीन लक्षणो को क्रमश गोचरी, अश्वचरी तथा गधाचरी कहते हैं

मुनिजन आहार ग्रहण करते समय अपना लक्ष्य दो प्रकार से रखते हैं। एक तो शरीर के लिए चावल-रोटी आदि जडान्न ग्रहण करना और दूसरा स्वात्मा के लिए ज्ञानान्न।

यद्यपि उपर्युक्त दो प्रकार के आहारो को मुनिजन ग्रहण करते हैं तथापि शरीर के लिए जडान्न की अपेक्षा नहीं रखते। क्योकि मुनिजनो की भावना सदा इस प्रकार बनी रहती है कि जब वमन किया हुआ भोजन कुत्ता भी नहीं खाता तब कल के त्याग किए गए आहार को हम रुचि के साथ कैसे ग्रहण करें? अत वे आहार ग्रहण करने पर भी अरुचि क साथ करते हैं। इसे गोचरी और श्रीचरी दोनों वृत्ति कहते हैं।

इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य ने गण्डभेरुण्ड पक्षी का चिन्ह लिया है।११।

यह मन द्रव्य मन और भाव-मन दो प्रकार का है।—एक प्रकार का मन लगातार विषय से विषयान्तर तक चचल मर्कट के समान दौड लगाता रहता है और दूसरा सुसुप्त होकर काहिल भैंसे के समान स्थिर होकर पडा रहता है। इस विषय को बतलाने के लिए आचार्य श्री ने भैंसे का चिन्ह लिया है। इन दोनों क्रियाओ से, अर्थात विषय से विषयान्तर तक जाना या सुप्त रह जाना, आत्मा का कल्याण नहीं हो सकता क्योकि ये दोनो आत्मा के लक्षण नही हैं। आत्मा का लक्षण सदा ज्ञानदर्शन में लीन रहना ही है।१२।

जिनेन्द्रदेव जब स्वर्ग से च्युत होकर मातृगर्भ में अवतरित होते हैं तब हाथी के आकार से मातृमुख द्वारा प्रवेश करके गर्भ में तिष्ठते हैं।

जिनेन्द्रदेव ही सर्व ससार के काव्य हैं। वैदिक धर्म के अतर्गत भी मुद्रित वेद में ऐसा प्रतिपादन किया गया है कि पाताल में छिपे हुए भूवलय रूपी वेद को विष्णु रूपी शूकर ने निकाला था। इस दृष्टि से वैदिक धर्म में शूकर का महत्वपूर्ण स्थान है। ।१३।

भूवलय में ६४ अक्षर रूपी असख्यात अक्षर हैं और उतने ही अक हैं। उसको बढाने से सख्यात, असख्यात तथा अनन्त ऐसे तीन रूप बन जाते हैं। किन्तु यदि उसे घटाया जाय तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होजाता है अर्थात विन्दीरूप हो जाता है। लोक मे यदि एकीकरण न हो तो यह सुविधा नहीं मिल सकती अर्थात् न तो अनन्त ही हो सकता और न विन्दी ही। रीछ (भालू) के शरीर में अनेक रोम रहते हैं। किन्तु उन सभी रोमो का सम्बन्ध प्रत्येक रोम से रहता है अर्थात् एक रोमका दूसरे रोम से अभेद सम्बन्ध है। इसीलिए कुमुदेन्दु आचार्य ने उपर्युक्त विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए भालू का लाछन दिया है।१४।

यक्ष देवो का आयुध वज्र है और वह जैन धर्म की रक्षा करनेवाला सुदृढ शस्त्र है। ऐसा होने से शिक्षण के साथ-साथ रक्षण करता है। इस विषय को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने वज्र का लांछन दिया है।१५।

तुष-माष कहने मे अ सि आ उ सा मत्र का वेग से उच्चारण हो जाता है। इस चिन्ह को दिखाने के लिए आचार्य श्री ने हरिण का लांछन दिया है।१६।

सभी पुण्य को अपनाकर केवल १ पाप को त्याग करने की शिक्षा को वतलाने के लिए आचार्य श्री ने यहा वकरी का दृष्टान्त दिया है। क्योकि वकरी समस्त हरे पत्तो को खाकर १ पत्ते को त्याग देती है।१७।

शब्दराशि समस्त लोकाकाश मे फैली रहती है। इतना महत्व होने पर भी १ जीव के हृदयान्तराल में ज्ञान रूप से स्थित रहता है। इस महत्व को वतलाने के लिए नन्द्यावर्त का लाछन दिया गया है।१८।

सातवें वलवासुदेव वनारसी में आत्म तत्व का चिन्तवन करते समय नवमाक चक्रवर्ती के साथ अपनी दिग्विजय के समय में मगल निमित्त पूर्ण कुम्भ की स्थापना की थी। पवित्र गगाजल से भरा हुआ उस पवित्र कुम्भ से मगल होने मे आश्चर्य क्या ? अर्थात् आश्चर्य नही है। इस विषय को सूचित करने के लिए कुमुदेन्दु आचार्य ने कुम्भ वाहन को लिया है।१९।

अर्हंत सिद्धादि नौ पद को हमेशा जपने वालो को वह भद्र कवचरूप होकर रक्षा करता है। उस विषय को वतलाने के लिए कछुआ का चिन्ह दिया है इस कछुवे का वर्णन कवि के लिए महत्व का विषय है।२०।

समवशरण में सिंहासन के ऊपर जल-कमल रहता है। तीर्थंकर चक्रवर्ती राज्य करते समय नील कमल वाहन के ऊपर स्थित थे। इसलिए यहा नीलोत्पल चिन्ह को दिया गया है।२१।

भूवलय मे आनेवाले अन्तादि (अन्ताक्षरी अर्थात् जिसका अन्तिम अक्षर ही अगले पद्य का प्रारंभिक अक्षर होता है) काव्य हैं। ऐसे श्लोक भूवलय में एक करोड से अधिक आते हैं। गायन कला में परम प्रवीण गायक वीणा की केवल चार तन्त्रियो से जिस प्रकार सुमधुर विविध भाति की करोडों राग-रागनियो को उत्पन्न करके सर्वजन को मुग्ध करता है उसी प्रकार भूवलय केवल ९ अको मे से ही विविध भाषाओ के करोडो श्लोको की रचना करता है। इसलिए यह ६४ ध्वनिशास्त्र है। इसको वतलाने के लिए आचार्य ने शख का चिन्ह दिया है।२२।

भूवलय काव्य में अनेक वन्ध हैं। इसके अनेक वन्धो में एक नागवन्ध भी है। एक लाइन में खण्ड किये हुये तीन २ खण्ड श्लोको को अन्तर कहते हैं। उन खण्ड श्लोको का आद्यअक्षर लेकर यदि लिखते चले जायें तो उससे जो काव्य प्रस्तुत होता है उसे नागवन्ध कहते हैं। इस वन्ध द्वारा गत कालीन नष्ट हुये जैन वैदिक तथा इतर अनेको ग्रन्थ निकल आते हैं। इसे दिखलाने के लिये सर्पलाछन दिया है।२३।

वीर रस प्रदर्शन के लिये सिंह का चिन्ह सर्वोत्कृष्ट माना गया है। शूर वीर दो प्रकार के होते हैं। १ राजा और दूसरा दिगम्बर मुनि। इन दोनो के वहुत वडे पराक्रमी शत्रु हुआ करते हैं। राजा को किसी अन्य राजा के चढाई करने वाले वाह्य शत्रु तथा दिगम्बर मुनि के ज्ञानावरण आदि आठ अन्तरग कर्म शत्रु लगे रहते हैं। अन्तरग और वहिरग दोनो शत्रुओ को सदा पराजित करने की जरूरत है। इन्ही आवश्यकताओ को दिखाने के लिए आचार्य ने सिंह लाछन दिया है।२४।

प्रथम अध्याय मे भगवान् के चरण कमल की गणना में जो २२५ (दो सौ पच्चीस) सख्या का एक कमल चक्र वताया गया था उसे यदि चार से

गुणा करें तो कुल ६०० कमल चक्र हो जाते हैं। इस ६०० को कमल चक्ररूपी बनावें और उन्ही चक्रो से भगवान् के चरण कमलो की गिनती करें तो लब्धाक से यह अध्याय निकल कर आ जायगा। इसे पद्म-विष्टर विजय काव्य कहते हैं।२५।

श्री नमि जिनेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर अपनी माता के गर्भ मे आने के समय में उत्पल पुष्प के रूप में रहे थे। ऐसी भावना भाते हुये यदि उम पुष्प की पूजा करें तो स्वर्गादि सुखो की प्राप्ति हो जाती है।२६।

आदि मन्मथ के पिता श्री ऋषभ तीर्थंकर ने वट वृक्ष के नीचे तपस्या की। इस कारण उसे जिन वृक्ष और शोक निवारक अर्थात् अशोक वृक्ष भी कहते हैं।२७।

सप्तच्छद अर्थात् ७ ७ पत्तो वाला सुन्दर वृक्ष भी कल्प वृक्ष है। इस वृक्ष के नीचे श्री अजित तीर्थंकर ने तप किया था। इसलिये यह भी अशोक वृक्ष है।२८।

शाल्मलि (सेमर) वृक्ष के नीचे श्री सभवनाथ ने तप धारण किया।२९।

सरल-देवदारु और प्रियगु इन दोनो वृक्षो के नीचे अभिनन्दन व सुमति तीर्थंकर ने तपस्या की थी, इस कारण यह भी अशोक वृक्ष कहलाता है।३०।

सम्यग्दर्शन शास्त्र से आत्मा की पहचान कराने वाला सम्यग्ज्ञान उन दोनो का स्वरूप दिखलाने के लिये कुटकी और मिरीश का चिन्ह वतलाया गया है। इसे भी अशोक वृक्ष कहते हैं।३१।

नागवृक्ष भी अशोक वृक्ष है। चन्द्र प्रभु जिनेन्द्रदेव ने इसी नाग वृक्ष के नीचे तपस्या करके आत्म-कल्याण किया है।३२।

इसी रीति से नागफणि और कपित्य (कैथ) ये दोनो भी कल्प वृक्ष हैं।३३।

पलाश अर्थात् तुम्बुर वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।३४।

तेन्दु वृक्ष पाटलि, जम्बू (जामुन) भी अशोक वृक्ष है।३५।

अश्वत्थ और दधिपर्ण भी अशोक वृक्ष है।३६।

नन्दी और तिलक भी अशोक वृक्ष है।३७।

आम और ककेलि ये दोनो वृक्ष भी अशोक वृक्ष हैं।३८।

चपक (चपा) और वकुल भी अशोक वृक्ष हैं।३९।

समवशरण की रचना मे मेप शृङ्ग वृक्ष का उपयोग वतलाया है। यह भी अशोक वृक्ष है।४०।

दास वृक्ष को भी अशोक वृक्ष के नाम मे पुकारा जाता है।४१।

शालोवीरु अर्थात् शाल्मली वृक्ष भी अशोक वृक्ष है।४२।

देव मनुष्य इत्यादि जीव राशि के मम्पूर्ण रोग को नाश करने वाले ये मभी वृक्ष चौवीस तीर्थंकरो के तपोभूमि के वृक्ष थे।४३।

इन वृक्षो को ध्वजा घटादि मे अलकृत करते हुए यक्ष देवगण चौवीस तीर्थंकरो के स्मरण में पूजा करते हैं।४४।

इन वृक्ष के पुष्प जब खिल जाते हैं तब उसमें मे निकलने वाली सुगध की वायुका शरीर से स्पर्श होते ही शरीर के सभी बाह्य रोग नष्ट होते हैं। सुगध के सू घने मे मनके रोग का नाश होता है। ऐसे होने से इस फूलों को पीस कर निकले हुए, पारे के रस मे वनाये हुआ रस मणि के उपभोग से आकाश गमन अर्थात् खेचर नामक ऋद्धि प्राप्त होने में क्या आश्चर्य है? अर्थात् कुछ भी आश्चर्य नहीं है।४५।

इन चौवीस को परमात्म रूप वैद्यक शास्त्र में और भी अनेक प्रकार के अर्थात् अठारहहजार प्रकारके वृक्षो की जाति वतायी गयी है। इस मगलप्राभृत अध्ययन से गणित शास्त्र के मर्म को जानने वाले हो निकाल सकते हैं।४६।

स्याद्वाद रूपी तलवार की धार तीक्ष्ण है। इसी तरह के तीव्र बुद्धिमान जन बहुत सूक्ष्म विवेचन करके इस भूवलय से पुष्पायुर्वेद गणित निकाल सकते हैं।४७।

जिस संख्या को देखें उससे ९ ही ९ आता है, यह महावीर भगवान् का वाक्य है।

इस अध्याय मे २२५० अक्षर हैं।

संस्कृत के अर्थ को लिखते हैं—

समस्त भूत गण परहित में रत हो। सम्पूर्ण दोष नाश हो। समस्त शासन को जीतने वाला जैन शासन जयवत हो।

श्रीमत्परम गभीरस्याद्वादामोघ लाञ्छनम्।
जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासन जैन शासनं ॥

बारहवा अध्याय पूर्ण हुआ।

तेरहवां अध्याय

ळ्* अडदेशद्य 'साधुगळिहरेरइ' । पाडिन 'वरे द्वीषदि' सा ॥ कूडि घ्* वयु 'साधिसुतिहरुम् मोक्ष' । रूडिय 'वनु'ळ्'अ काव्यदलि ॥१॥
ड* गमग 'आदियनादिय कालदिस्' । दोगे 'दिह सर्वं साधुगळि ॥ गे'ग व्* असरणिगेयागे'नमवेम्व् ओम्[१]धरिसल'। अगणिता'नन्त ज्ञानादि।२
व* शद 'सुवरूपव परिशुद्धात्म रू' । वशरू 'पवनु वरसर्व् अ*' हसद 'साधुगळ् साधिसुतिरुव' तिशय । वेस 'रु परमन तम्मात्म॥३॥
म्* 'नोळमि [२]यमिगळिवरु महाव्रतगळय् । दनु होन्दि करम् अ' ला* स'दोळु'॥मिनुगुतमुनि'गुप्तित्रयवसमनागिन'।मुनि'उप'क्रम'वासकाव्य
स* रस 'दि पेळिद गमकदोळिरु साधु' । वर गळ्व' [३]अ 'नवगळेरड' म्* तु॥ स'र साविर जाति शीलव'द'नवर'तर'भेदगळ'ल्ल वरितु'॥५॥
आ* वेनु 'सुविशुद्धवादेस् भल्ला।ल्कु' । काविन् अ 'लक्षगळ्वेस् भा'* पावक'अवनु अत्तर गुणगळन् यो'[४]रि।त।वु'तिळिदु पालिसुवर्॥६॥

आवाग 'दर्शनवरिदर् ।७॥ 'ह् आविन भववरिदवरु' ॥८॥ 'अवरभिप्रायवे शब्द' ॥९॥
'म् आविनोळ् कल्पवनरिवर्' ॥१०॥ एवेळ्वे 'नव विद्यागामरु' ॥११॥ व्आगलु 'सिद्धान्तिगळु' ॥१२॥
अवु 'गञच मिथ्यात्व ध्वस्तर्'॥१३॥ 'द् आवानलकर्म अ वनरु' ॥१४॥ अवरु 'भेदाभेद नयरु' ॥१५॥
'व्वरेलुनयदे प्रवीणर्' ॥१६॥ 'अवरष्टाङ्गनिमित्त' कुशलर् ॥१७॥ व्आवाद 'स्तम् भनवरितर् ॥१८॥
अवरु 'मोहन वशिकरणर् ॥१९॥ य्वरु 'आकर्षण निपुणर्' ॥२०॥ अवर् 'उच्छाटन बलरु' ॥२१॥
व्वल 'सकल मन्त्र साध्यर् ॥२२॥ ईवरु 'सिद्ध सिद्धार्थर् ॥२३॥ 'प्वनदन्तिह चक्र बन्धर्' ॥२४॥
'ईव गुणदे अति प्राज्ञर् ॥२५॥ स्वि 'वन चक्रवर्तिगळु' ॥२६॥ आवाग'तपोवन वाळ्दर्' ॥२७॥
'थ्आवर जीव रक्षकरु' ॥२८॥ 'स्आविर सेन भूवलयर्' ॥२९॥

प* रिद'अयवनेपरमेष्टिगळिळेयोळ।गि' रिसि'र्दु समाधियोळ् अ' र* गा ॥नर'गात्मसिरियेम्बाहारवकोम्बब।ल'र'शालिगलुसाधुगलका'५ ।३०।
ज्* आन साधने योळात्मध्यान यिडदिह । ज्ञानवन्तरु सिम्ह' ती* र्थ॥ आणतिया'दन्ते शाने पराक्रम' । ज्ञानस 'बुळ्ळ सम्यमिगळ ॥३१॥
जु* ळि'उज्ञानादिशक्तियोळ्'वि'रतरक्'[६]उस।वळि'नानाविधवाव' स* गुळिगे॥यलि'आहारविट्टरु त।ु गम्भीर।दोळिद्दु'र'ज्ञानेगव्रविसल॥३२॥
ण* रनु'अन्नवतिस् बानेयन्तानन्द । 'सिरि स्वाभिमानिग्रळ्ष [७] प* र ॥ सर'दिनवेल्लतिन्दन्नवरात्रिका।ल'रिय'दिमन विद्दुमेलव्'आ॥३३॥
णो* वागम 'रत्रिनन्ते,'आ 'दिनवेल्ल' । रूवा 'गळिसिद शुरुव् अद न्* का'वा'क्षरगळ मनसिद्दु रात्रियोळ्'। श्री वाणि'मेलुवर(८शक्ति ॥३४

ववरु 'तपोराज्यदवरु' ॥३५॥ अवरतिशय राजराजर् ॥३६॥ क्विदवर् तपचक्रधररु ॥३७॥
न्वमात्रक पद यतिनिलयर् ॥३८॥ दवरल्लि गुरुकुल चन्द्रर् ॥३९॥ क्वि गुरुकुल समुद्धरणर्॥४०॥
षव मध्यान्ह कळ् पव्रुकुषर् ॥४१॥ रवर् इन्द्र प्रस्थ गद्गेयर् ॥४२॥ ळवळद सिम्हासनवर्गे ॥४३॥
योवनाळि भाषा भाषितरु ॥४४॥ णेववोळु कविय मन्निपरु ॥४५॥ ववरु चातुर्वर्ण प्रियरु ॥४६॥
टवणेयोळ् हितव पेळ्वरु ॥४७॥ यवेयष्टु कर्मविळ्ळवसु ॥४८॥ भूवलयके ज्ञानि धरर् ॥४९॥
ववरु श्री व्रुषभसेनार्यर् ॥५०॥ ळवरादि चतुराशीतियरु ॥५१॥ यवररजिके सव्तदरि ब्रामहि ॥५२॥

ववृरुषभ चक्रेशवरियर् ॥५३॥ कावर् तोमवत् ओबत् सहस्र ॥५४॥

स॰ रि 'योळोमदे दारियोळ्' बह 'वेगदि' वर 'वयक्यवागोड्उवअ' च॰ रर'मृरुगव'दर' वयक्तित्वके तनदनते । सरलवादवयक्तिगळिवर्॥५५॥
मृ॰ नवर् 'उसाधुगळ् अ[६]सद्रुश 'करुणेय' । घन'वरपो एनवे' र ख॰ ॥ तनदे 'ननुव हसुवदु गरियने मेयु' । वेनु 'वतेरदि परमानन' ॥५६॥
भु॰ कतिय अनन 'वगोचरिव्रुवतियिन' । वयकतदिन 'दुनडि' ह न॰ गु 'खु' ॥ शक्तर् 'निरेह व्रुत्तिगळम [१०] तिरेयोळु' । वयक्तित्व 'तडेयि ळळदे' ह ॥५७
कु॰ नयव'हरिदाडुववरणाळियन। ते निस्सनग वेरसुत चरि ट॰ अ ॥ युविअ'सुवेकानग विहारिगळ् गुरु'।मुनि'गळयदनेयसादुगळ अव[११]'॥५८॥
मा॰ नव'भिक्षुगळिवरु सकळ तत्व' । द्य यान'गळनुसाक्षात् ध् अ॰ रिसि । तान्'आगिवेळगुव अक्षरज्ञानिगळ्'।तानुआदित्यननददिर्'॥५९॥
रो॰ पविळ्ळदेर'कृषिप तेजोमूरति' । आमे'यवर्'[१२]उ'रमेयअ'नतु मृ॰ ॥ ई'सुत्तिह सागरननते गमभोर'द् । ईसुव'र्समरदोळ् करम'॥६०॥

धमभनग 'ऐवर अञग ॥६१॥	वइसेरादि 'केसरिसेनर्' ॥६२॥	सिसिदधरु 'चारुसेन गुरु' ॥६३॥
हसमन 'वज्र चामरु ॥६४॥	नुसुळद 'वज्रसेनगुरु' ॥६५॥	वशगुपत 'आदत्त सेनर्' ॥६६॥
मसकद 'जळज सेनगुरु' ॥६७॥	नसेयळिविह 'दत्तसेनर्' ॥६८॥	वेसेव 'विदरभ सेनवरु' ॥६९॥
तस रक्ष 'नागसेनगुरु' ॥७०॥	रातिगे 'कुन्थुसुनगुरु' ॥७१॥	मसहर 'धर्म सेनवरु' ॥७२॥
रुषिमद्दर सेनगुरु' ॥७३॥	पसरिप 'जयसेनगुरु' ॥७४॥	ळसदव्र 'सद्धर्म सेन' ॥७५॥
गसद्रुश चक्र बनध गुरु ॥७६॥	यशद 'स्वयभूसेनर् ॥७७॥	मसकविजइ 'कुमभसेनर' ॥७८॥
नसहर 'विशासेनवरु' ॥७९॥	मेसेवरु 'भळलि सेनगुरु' ॥८०॥	हिसिहिगगदिह 'सोमसेनर् ॥८१॥
मस 'वरदत्त मुनीनद्रर्' ॥८२॥	एसेव 'स्वेयम् परभारतिषु' ॥८३॥	नुसिरं 'इनद्रभूति विप्रवर ॥८४॥
वशदनादिय 'गुरुवमृश' ॥८५॥	दृशधर्मंधर 'सेनवमृश' ॥८६॥	नसहरर् 'ओमदारय् दोमद्रु ॥८७॥
		एसेयुव 'सेन भूवलयर्' ॥८८॥

त॰ नुविन कर्म 'व गेळुवर् समतेयोळ्' । 'धन 'मनदराचळदम' च॰ ॥जनुम'ते उपसर्ग वमरळ कमपरागि'न चनवि'हरुम[१३]माहं'॥८९॥
हे॰ 'घ 'ननाद चनद्रमननते शानतिय' । गाध् 'रूहनु सार्व' वर तु॰ ॥द्घाधन'चनद्रम'ख'रु साहस व्रत'। धोधन'गळमणियगुण्य' ॥९०॥
व॰ रिसुत रूहिन मणिगळनतिहर ह'[१४]अ ।'कषरवेने नाशवदळि' चि॰ दरि'दक्षरवेमव परिशुद्ध केवल'। वर'ज्ञान दिरवमु सहने'॥९१॥
अ॰ वनि'योळिरुव भूमियतेर अखि'द । नव'समतेयोळोरेवर् अ'[२५] नि॰ अव'मिवुत्राडि'ह 'मणणिनिम गेददळु'।अवु'मनेकटटेअदरोळवा'॥९२॥
णि॰ जवि वा'सिप हाविननतेसदनवनिता।र' ज'रुकट्ट्रिळळलि' र॰ वा।निजद'येमुदविल्लदे वासिपरुव'(१६)र।भजिसुत'तिरेयोळगिद्द॥९३॥
रु॰ तिरेय मुट्टदलिह सुरुचिरदाका।श' त'दनते पोरेववरारि'॥ म॰ ति हति'ल्लद निरालमवरु सरुवरु' । सततवु 'निरलेपकरया'(१७)॥९४॥
द्॰ व'सार्व कालदोळु मोक्षवनवेषण'।नव'दोर्वियोळिरुव सा ला॰ ॥सवणसा 'धुगळु निर्वाणपदव साधि । मु'वग'त बाळुवरवर्स'॥९५॥
घो॰ रणर्रहितर्'सर्व साधुनळिगे' । वारियोळ्'नमि' स'ह(१फ)धर्मं म्रा मृ॰ 'व॥साश्तकर्मभूसियोळिह शर्मरु।मूरुकालदोळु निर्मल'रु॥९६॥

णिरयह्नोगवृम 'वायुभूति' ॥९७॥ दारिजपदद् 'अग्नि भूति' ॥९८॥ ररसे 'सुधर्मसेनगुरु' ॥९९॥
वीरन् 'आर्यसेवगुरु' ॥१००॥ हर 'मुन्डिपुत्रारव्यगुरु' ॥१०१॥ नूर श्रेष्ट 'मयूरेइ सेनर्' ॥१०२॥
नर 'अकम्पनसेनगुरु' ॥१०३॥ मरवेवळिद 'अन्धरगुरु' ॥१०४॥ निरयके होगद 'अचलरु' ॥१०५॥
हरुष 'प्रभाव सेनगुरु' ॥१०६॥ 'विरचिसिदरु पाहुडवम्' ॥१०७॥ तिरेय 'केवलव रक्षिसलु' ॥१०८॥
शरदोळक्षरव कट्टुवरु ॥१०९॥ यरडने गणधररवरु ॥११०॥ दरदन्क भव्यगान्क वेदर् ॥१११॥
इरद महाभाषेयरिर्द ॥११२॥ कार्य कार द सम्बन्धर् ॥११३॥ णिरयद ज्ञान वेळ्दवरु ॥११४॥
ओरण वेद अन्ग धरर् ॥११५॥ मरणदोळ् हितव माधिपरु ॥११६॥ वारणाशियलि वादिपरु ॥११७॥
हर शिव शन्कर गणितर् ॥११८॥ विरचित कव्य भूवलयर् ॥११९॥

वा॥ ळुव'पद्धतियाद भूवलयवृम' । पालिन्अ'कर्म भूमिय् अ' र् घ॥ ॥'पालिसिर(१९)वर'ई'शुद्ध चयुतन्य' द ।विलसित लक्षण परम्' ॥१२०॥
हु॥ रुष'निजात्म तत्वरुचि' य 'परम'रु । वरद' सम्यग्दर्शान' व॥ ॥सर'द वर्तनेयिर्प परमात्म दर्शना' । दरदा'चारन्(२०) 'हवणि'॥१२१।
तु॥ णि'सि कोळळुतलिन्द्रियवर्गवेललव' । गुण'अवरु तम्मा' ली॥ ढदलि॥विनुता'त्मनोळ तन्नु समतेयोळविकार'।जन'दानन्द मयरागि'॥१२२॥
त॥ मगल्लि'सुविशालवह तन्नन्दव'।कर्'मा[२१]सर्व साधुउवु' क॥ आलिसिर् । दमल'भेद ज्ञानदिन्दलि सर्वं'रा।समल'रागादिगळेमृव'॥१२३॥
त॥ मगल्लि'सुविशालवह तन्नन्दव'।कर्'मा[२१]सर्व साधुउवु' क॥ आलिसिर् । दमल'भेद ज्ञानदिन्दलि सर्वं'रा।समल'रागादिगळेमृव'॥१२३॥
र्॥ वर 'गर्वद परभाव सम्भन्ध'वे। सवि'वळिसुवसर्'व'व रु॥ ॥ अवर'क्रियेयु सम्यग्ज्ञानम्[२२] मनसिज । सवन'मर्दनरी निश्च'॥१२४॥
अ॥ वनि'यज्ञान वनुभवदोळगार्चार। प'व'चिन्तुमयतत्वदम तत॥ निय॥ नवद्'भ्यास ज्ञानाचारकोनेयादि'।सवि'यरिवाचार आ[२३]'तान्तु'॥१२५॥

अवनरिदिह'सेनगणरु' ॥१२६॥ गवनिये 'तानेम्व गुरुगळ्' ॥१२७॥ नुवदन्क'भुवलयवेळ्वर् ॥१२८॥
'भवदत्त्यभवव तोरुववरु ॥१२९॥ ळुववन्क 'नाल्कुमन्गलरु' ॥१३०॥ गवियुकयलासदोळ् वृषभम् ॥१३१॥
मवरोळ् अजितरु सम्मेद ॥१३२॥ एवेळवे शम्भव अललि ॥१३३॥ लावभिननादनरल्ले ॥१३४॥
कवि वन्द्यसुमतियर् अल्ले ॥१३५॥ सवण पद्मप्रभरल्ले ॥१३६॥ टेवु सिरिसुपार्श्वरु अललि ॥१३७॥
नव चन्द्रप्रभ पुष्पदन्तर् ॥१३८॥ वुवदे शीतलरु श्रेयाम्सर् ॥१३९॥ नव चम्पेयोळ् वासुपूज्यर् ॥१४०॥
एवेयगर नदिय मध्यदलि ॥१४१॥ यवेयमुच्चद विमलरल्ले ॥१४२॥ सोवुल्य अनन्त धर्म जिनर् ॥१४३॥
नव शान्ति कुन्थु अररल्ले ॥१४४॥ नेव मल्लि मुनिसुव्रतरलि ॥१४५॥ टव नमि सम्मेद नेमि ॥१४६॥
ट्वरूरलय पावान्तवीरर् ॥१४७॥ निव स्वर्ण भद्रदोळ् पार्श्वर् ॥१४८॥

क॥ विवन्द्ययरिवरु 'शुद्धात्म भावनेयिन्द । अवनिय तोरेयु नि॥ रुव्हतिय॥सवियागि'हृद्टिसिदा द स्वाभावि।'क'व'दर्शनिकेतनवति'यम्॥१४९॥
ओ॥ विद सुखवनुभूतियु ताने' स।तीवि'सम्यक्त्वचारित्रर हृ॥ पावन व'न्(२४)सुमद सम्यक चारित्र' । तीदिर 'दोळगे निरमलव' ॥१५०॥
डु॥ गव'रत्नयिरु'तिरु'व कर्मव हरिप' । नगदे'निश्चय चारित्र श॥ रुवा॥ओगेद'राकार धर्मवपरिपालिसुवउ'[२५]अगणित'वारिज'दूआरम्॥१५१॥

ई॥ सुत'पत्रदोळिरुव नीरिनकण' । आशा'वारिजदोळु वर्यि'सुइ षे॥ ॥ राशिइर'पन्ते सारात्मदरूयदोळिरुवु' ।लेसिनिम'परदरव्य दारय॥१५२॥
ओ॥ रणि'केय निरोधिस्उत्स्(२६)सर्वस'राराजि''मस्त इच्छेग' ष॥ ॥ सागर 'ळनिरोधदि निर्वहिसुत' । सेर 'लात्मननु सर्वंव निजा'॥१५३॥

उरद 'उत्तम भावनेयनुष्ठा ॥१५४॥ ळर'नव निर्वहिसुवुदे' ॥१५५॥ ओरयप'म(२७)रसयुतयह ॥१५६॥
न्र 'उत्तम तपदललि' ॥१५७॥ कर 'वशर्वति गोळिसुत' ॥१५८॥ करुणेय 'मनव असद्रुश' ॥१५९॥
लारप 'वागिरिसिरपु' ॥१६०॥ न्र 'देनिश्चय दसमान' ॥१६१॥ सर 'तपदाचार(२८)वरदर' ॥१६२॥
डेर 'शनचारवाद नाल्कु' ॥१६३॥ कूर 'गळोळु मरसदेशक्ति' ॥१६४॥ तरिर 'योळु भजियपरमात्म' ॥१६५॥
तरदे 'परियनाराधिसुवु' ॥१६६॥ मरे'दु ताने परिशुद्ध' ॥१६७॥ वर'वीर्याचारन्(२९)भूरि' ॥१६८॥
रर 'वय्भवयुतवागि' ॥१६९॥ ळ 'रुवी अयदु चारित्रा' ॥१७०॥ कर 'राधनेगळनु सार ॥१७१॥
टर 'पञ्चाचार वेनुव ॥१७२॥ दोरेव 'सिद्धानंद भूरि ॥१७३॥ रर 'वय्भवद भूवलयद ॥१७४॥
त्रदवे 'तेरिन कलश ॥१७५॥ दुर 'विद्दनते तम्मात्म' ॥१७६॥ टर 'नसार रत्नतरयात्म' ॥१७७॥
एर 'कद कारण तमय ॥१७८॥ न्रर 'सारद वलदिनद' ॥१७९॥ पर 'लिसेरिसुवुदु निश्च' ॥१८०॥
दरि 'यप्र(३१) पुट्टु भव्दसिव' ॥१८१॥ इरुवुदे 'सोक्खमन्गलव' ॥१८२॥

उ॥ सिरु'हुट्टिप निश्चयवदनु हुट्टिसे । वश'कार्यवु समय, भु॥ वि ॥ रस'दसारवु हुट्टि बहुदु समाधिवया(३२)यश,धर्म साम्राज्यदश्री॥१८३॥
ज॥ य'वीतरागद निर्मलात्मन समा,। पयो'धियोळु कर्म सम्ह, व॥ ॥ नय 'आख माडुते निर्दियं शर्म 'राग' । स्वयम्'सर्वसाधुगति' 'यात॥१८४॥
ज॥ यू' के सम्सारदाशेयु बिडुभव्यपू । त'यव'र पूण्य पादग' ना॥ ॥ सय' ळ' र 'नीतिमार्गदनिर्भरभक्ति' । 'यिम्ननीन मातु मनसु का'॥१८५॥
न॥ वि'यवत्य(३४)नमिसु स्मरिसु कोन्डाडुस्तो।त्रव'दोळ एम्ब' न॥ ते'क्रमन'॥नव'भूवलय पेळवुदु श्रमविल्लदे'।सवि'सिद्धान्त मार्गवहोन्॥१८६॥
त॥ न'दे निमगे तप्पदु मुक्तिपद ज[३५]तीर्थम् क'नन 'ररन्ते' ता॥ म'दन्ना ॥ रमनिहनु स्वार्थवागलु शुद्धज्ञानवे । ने'व्यर्थदज्ञानवकेडिसे'॥१८७॥
ए॥ रि रत्नत्रय तीर्थ नन्य अनन्त सा रनगन्[३६]तिळिपादन म॥ त ॥ सार चतुष्टय रूपनु बलित पम् । नारा 'चम' भावयुतनु' ॥१८८॥

एर 'कलि सप्त भय विप्र' ॥१८९॥ गर 'मुक्त सवरपनु चलुव ॥१९०॥ ळरव 'अखण्डस्वरूपवे [३७]' ॥१९१॥
योर 'नित्यनिजानन्दयक' ॥१९२॥ गरुव 'चिद्रूपम सत्य' ॥१९३॥ दोरेव 'परात्पर सुखरु' ॥१९४॥
म्रळि 'स्तुत्यरु सर्व साधु' ॥१९५॥ सरुव 'गलेनदरियुत अ' ॥१९६॥ विरल 'त्वनत भक्ति नमि' ॥१९७॥
द्र 'पे हम्(३८)रुषिगळनवर' ॥१९८॥ वुरवर 'पदप्राप्तियाग' ॥१९९॥ कर 'विर लेनदसमान' ॥२००॥
लरयद 'भक्तियिम् भजसे' ॥२०१॥ यरडु 'वशवहुदेलूलरगे' ॥२०२॥ हरु 'सविकल्परूपद सु' ॥२०३॥
वरद 'समाधि य सिद्धि' ॥२०४॥ भूरि 'साधनस (३९)करुणेय' ॥२०५॥ धनरसे 'गुरुगळयवर प' ॥२०६॥
दर 'द भक्तियिम् बरुवकष' ॥२०७॥ गरि 'रानक कावयवनु विर' ॥२०८॥ नकचिसि 'पराकरुतसमसवुर' ॥२०९॥
लर 'त कनड वोळु वेरसि' ॥२१०॥ मरे 'पद्धत्तिगर्नथदया(४०)' ॥२११॥ करपात्रदनन भूवलय ॥२१२॥

तेरहवां अध्याय

भारतवर्ष अढाई द्वीप में है। इस प्रदेश में जितने भी साधु गए हैं वे सभी मोक्षमार्ग के साधन मे सलग्न रहते हैं। भारत के मध्य प्रदेश मे "लाड" नामक एक देश है। उस देश मे साधु परमेष्ठी आगमानुसार अतिशय तपस्या करके ऋद्धि के द्वारा अपने आत्मिक बल की वृद्धि करते रहते है। उन समस्त साधुओ का कथन इस तेरहवें अध्याय में करेंगे, ऐसा श्री कुमुदेन्दु आचार्य प्रतिज्ञा करते है ।१।

प्रकाशमान आत्मज्योति के प्रभाव से आदिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से अथवा अनादिकाल अर्थात् ऋषभनाथ भगवान् से भी बहुत पहले से इन समस्त साधुओ ने (तीन कम नौ करोड मुनियो ने) इस शरीर रूपी कारागृह से आत्म-ज्योति को प्रगट करके मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अत उन सभी को हमारा नमस्कार है। क्योकि इस प्रकार नमस्कार करने मात्र से गणित मे न आनेवाले अनन्तज्ञानादि गुणो की प्राप्ति होती है ।२।

विवेचन —मूल भूवलय के उपर्युक्त दो कानडी श्लोको मे से साधुगलि-हरेरडुवरेद्वीपदि' इत्यादि रूप और एक कानडी पद्य निकलता है। उन ४८ कानडी पद्यो के मिल जाने से एक दूसरा और अध्याय बन जाता है। वह अध्याय अन्य स्थान मे दिया गया है। उस अध्याय मे अनेक भाषायें निकलती हैं। किन्तु उन भाषाओ को यहा नही दिया है। यही क्रम अगले अध्यायो में भी चालू रहेगा।

वे साधु जन अपने आत्मस्वरूप मे रत रहकर परिशुद्धात्म-स्वरूप को साधन करते हुए सर्व साधु अर्थात् पाचवे परमेष्ठी होकर परम अतिशय रूप से परमात्मा के सदृश होने की सद्भावना सदा करते रहते हैं ।३।

वे साधु पंचमहाव्रतो को निर्दोष रूप से पालन करते हुए क्रमानुगत आत्मिकोन्नति मार्ग में सदा अग्रसर रहते हैं। मन, वचन और काय गुप्तियो के धारक होते हुए उपवास अर्थात् आत्मा के समीप मे वास करते रहते हैं। साधुओ के गुणो के कथन करनेवाली विधि को उपक्रम काव्य कहते हैं। यही श्री भूवलय का उपक्रमाधिकार है ।४।

उनके तपश्चरण को देखकर सब आश्चर्य-चकित हो जाते हैं, किन्तु वे उस कठोर तपस्या को सरलता से सिद्ध कर लेते हैं। ९+९=१८००० [अठारह हजार] प्रकार के शील को धारण करके तथा उसके आभ्यन्तर भेद को भी जानकर परिशुद्ध रूप से निरतिचार पूर्वक पालन करनेवाले अपने शिष्यो को भी इसी प्रकार शील की रक्षा करने के लिए सदा उपदेश देते हैं ।५।

अठारह हजार शीलो के अन्तर्गत चौरासी लाख भेद हो जाते हैं। उनको उत्तरगुण कहते हैं। इनमे एक गुण भी कम न हो, इस प्रकार पालन करनेवाले को साधुपरमेष्ठी कहते हैं ।६।

ये साधु समस्त दर्शन शास्त्रो के प्रकाण्ड वेत्ता होते हैं ।७।

ये साधु सर्प के भव भवान्तरो को अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा जान लेते हैं (सर्प-शब्द से समस्त तिर्यंच प्राणियो को ग्रहण किया गया है) ।८।

उनके मन मे जो अनायास ही शब्द उत्पन्न होते हैं वही शब्द शास्त्रो का मूल हो जाता है ।९।

आम के वृक्ष मे जो फूल (बौर) द्वारा रासायनिक क्रिया से गगनगा-मिनी विद्या सिद्ध होती है उस विद्या के ये साधुजन पूर्णरूप से ज्ञाता हैं। उस विद्या का नाम अनल्पकल्प है ।१०।

ये साधु नौ (९) अकरूपी भूवलय विद्या के पूर्ण-ज्ञाता हैं, अत इनकी अगाध महिमा का वर्णन किस प्रकार किया जाय ।११।

इन साधुओ का प्रत्येक शब्द सिद्धान्त से परिपूर्ण रहता है। अर्थात् इनके प्रत्येक वचन सिद्धान्त के कथानक ही होते है ।१२।

इनके एक ही शब्द के केवल श्रवण मात्र से मिथ्यात्वकर्मों का नाश हो जाता है, तो उनका पूर्ण उपदेश सुनने से क्या होगा ? ।१३।

उनके दर्शन मात्र करने से कर्मरूपी समस्त वनो का नाश हो जाता है ।१४।

भेद और अभेदरूपी दो प्रकार के नय होते हैं। उन दोनों नयो मे ये साधुपरमेष्ठी निष्णात हैं ।१५।

ये साधु नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवभूत इन सात नयो में परम प्रवीण हैं।१६।

ये साधु ज्योतिष विद्या के अष्टागनिमित्तज्ञान मे अत्यन्त कुशल होते हैं।१७।

ये साधु वादी-प्रतिवादी की विद्या को स्तम्भन करने में बहुत चतुर हैं अथवा भूत प्रेतादि ग्रहगणो को भी स्तम्भन करने वाले हैं।१८।

इन साधुओ ने मोहन, वशीकरण आदि विद्याओ मे अत्यन्त प्रवीणता प्राप्त की है अथवा बन्ध करनेवाले को मोहन करके अपनी ओर आकर्षित करके उन्हें अपना शिष्य बनाने में भो ये निपुण हैं।१६।

ग्रहादि को आकर्षण करने में भी ये अत्यन्त निपुण हैं।२०।

और ग्रहादि का उच्चाटन करने मे भी ये अत्यन्त समर्थ हैं।२१।

और समस्त मन्त्रो को साध्य करने में ये अत्यन्त निपुण हैं।२२।

समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले इस साधु परमेष्ठी को सिद्ध भगवान भी कहते हैं।२३।

भूवलय में जैसा चक्रबन्ध है उसी रीति से आत्मिकगुणो के चक्ररूपी बन्ध में पवन के समान घूमने वाला है।२४।

ये साधु दान देने मे अत्यन्त प्राज्ञ हैं और ससार में सभी लोगो के द्वारा दान दिलाने में बडे विलक्षण हैं।२५।

जगलो मे समस्त जीवो के बीच चक्रवर्ती सिंह है और उसमें रहने वाले तपस्वी जन उस सिंह से भी पूज्य हैं, किन्तु सिंह और उन समस्त साधुओ से भी सेव्य ये पचपरमेष्ठी हैं।२६।

ये साधु गण सर्वदा तपोवन रूपी साम्राज्य का पालन करने वाले हैं अर्थात् स्थावर आदि समस्त जीवो की रक्षा करने वाले हैं।२७-२८।

हजारो वर्षों से हजारो मुनि इस भूवलय ग्रन्थ का उपदेश देते हुये इसे लिखते आये हैं।२६।

उसी जगल मे ये साधु जन मनुष्य तिर्यञ्च और देवो को उपदेश देते हुये अपने आत्मावलोकन मे लीन रहते थे और ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुणो का उपयोग रूपी आहार आत्मा को देते हुये जगलो में विचरण किया करते थे। अत वे आत्मिक वलशाली थे। इन मुनियों को जगल में आनेवाले राजाधिराज बडी भक्ति भाव मे आहार देते थे। अतः ये आत्मिक वल के साथ २ शारीरिकादि से भी वलशाली थे।३०।

अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग ज्ञान मे विभूषित होते हुये ये महात्मा आत्मध्यान से कदापि नही विचलित होते थे। ऐसे ज्ञानी साधु परमेष्ठी उस जगल में सिंहतीर्थ नामक पवित्र स्थान में तपस्या करते थे। इन पचपरमेष्ठियों की आज्ञा पाते ही जगल मे रहने वाले सभी साधु घनघोर तप करने के लिये तैयार हो जाते थे और उस तप को करके प्रखर ज्ञान को प्राप्त कर लेते थे। इस प्रकार समस्त तपस्वी उस सिंहतीर्थ तपोभूमि में अत्यन्त घन घोर तप करके अपने आत्मवल को वढाने वाले थे।३१।

ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानादि शक्तियो के धारी होने पर भी वे साधु ज्ञान मद से सर्वथा रहित रहते थे। ऐसे परमेष्ठियो के कर-पात्र में दिए हुए आहार को देखकर वे इस प्रकार विचार करके ग्रहण करते थे कि यह सात्विक आहार निर्मल ज्ञान की उन्नति करने वाला नही है, यह केवल जड शरीर को ही पुष्टि करने वाला है और आत्मा के द्वारा उत्पन्न हुआ ज्ञानामृत ग्राह्यण अन्न मे आत्मा को पुष्टि करने वाला है। जड शरीर और आत्मा को भिन्न रूप समझकर पुद्गल अन्न पुद्गल को आत्म स्वरूप से उत्पन्न अन्न आत्मा को अर्पण करने वाले महापुरुषो को आहार देने का शुभ-समागम अत्यन्त पुण्योदय से ही प्राप्त होता है, अन्यथा नही।३२।

जिस प्रकार गजराज वडे गौरव के साथ दिए हुए भोजन को गभीरता पूर्वक ग्रहण करता है उसी प्रकार ये साधु गभीर मुद्रा से खडे होकर आत्मोन्नति के लिए आहार ग्रहण करते हैं, आहार के लोभसे नही। इसीलिए रात्रि में ध्यान करने पर इनकी आध्यात्मिकता अद्भुत रूप से चमकने लगती है।३३।

नो आगम निक्षेप दृष्टि से ये साधु परमेष्ठी ऋषभ के समान भद्रतापूर्वक मन से द्वादशाङ्ग श्रुत का चिंतन करने लगते हैं। तव अक्षर ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। अक्षर के अर्थ का वर्णन पहले किया जा चुका है। अत वही अक्षर ज्ञान रात्रि के समय उन साधुओ के हृदय कमल में अनक्षर रूप वन जाता है।३४।

इस तपस्या में निश्चल भाव से ये साधु परमेष्ठी रत रहने के कारण तपो राज्य के स्वामी कहलाते हैं।३५।

धु परमेष्ठी अतिशय गुणो के राजराजेश्वर हैं ।३६।

जिस प्रकार षट्खण्ड पृथ्वी को जीत लेने पर चक्रवर्ती पद चक्री को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जीव स्थानादि पट्खण्ड अपने मस्तिष्क में धारण करने के कारण और तपोराज्य में परमोत्कृष्ट होने से तप चक्रवर्ती कहलाते हैं ।३७।

इन साधु परमेष्ठियो ने नवमाक पद से सिद्ध की हुई द्वादशाग वाणी अर्थात् भूवलय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।३८।

ये साधु परमेष्ठी समस्त गुरुकुल के अज्ञानान्धकार को नाश करने वाले चन्द्रमा के समान हैं ।३९।

इस गुरुकुल में जो कवि गण रहते हैं उनका उद्धार करने वाले साधु परमेष्ठी हैं ।४०।

इन गुरुकुलो में सिंहासन पर विराजमान होकर राजाधिराजो से सेव्य अनेक गुरु विद्यमान थे। वह इन्द्रप्रस्थ से लेकर महाराष्ट्र तामिल और कर्णाटक देश मे प्रख्यात अनेक गुरुपीठो को स्थापित किया था। इस गुरुकुल के मुनि सघ मे समस्त भव्य जीव समावेश होकर अपने जीवन को फलीभूत बनाने के लिए आत्म-साधन का ज्ञान प्राप्त कर लेते थे।

इसलिए इन्हे देश-देशो से आये हुए श्रीमान् तथा धीमान् सभी व्यक्तियो ने मध्यान्ह कल्प वृक्ष अर्थात् अन्न दान देनेवाले कल्प वृक्ष से नामाभिधान किया था ।४१।

देहली राजधानी को पहले इन्द्र प्रस्थ कहते थे। आकाश गमन ऋद्धि से आकर इस सेन गण वाले मुनियो द्वारा जैन धर्म की प्रभावना होती थी ।४२।

प्राचीन कालीन चक्रवर्तियो का राजसिंहासन नवरत्नो से निर्मित था और उन चक्रवर्तियो ने इन परम पूज्य मुनीश्वरों को प्रवाल मणि का सिंहासन बनवा कर प्रदान किया था और वे सदा उस सिंहासन को नमस्कार किया करते थे ।४३।

इन मुनिराजो की ख्याति सुनकर ग्रीक देशीय जनता आकर इनके धर्मोपदेश का श्रवण, पूजन आदि करते थे अत ये यवनी भाषा में वार्तालाप करते हुए अनेक यावनी ग्रन्थो की रचना भी करते थे ।४४।

इन आचार्यो के साथ वार्तालाप करते समय इनके पास बैठे हुए अन्य कविगण भी वीतराग से प्रभावित हो जाते थे और उस प्रभाव को देखकर ये आचार्य इसे विशेष रूप से गौरव प्रदान करते थे ।४५।

इन महात्माओ ने ब्रह्मक्षत्रियादि चारो वर्णों के हितार्थ अपनी अनुपम क्रियाओ से सस्कार किया था ।४६।

ये मुनिराज एक ही समय मे उपदेश भी देते थे और शास्त्र लेखन कार्य भी करते थे ।४७।

यव मात्र भी कर्म का बध ये नही करते थे ।४८।

ये साधु समस्त विश्व को शान्ति प्रदान करने वाले थे। अर्थात् समस्त भूमडल को सुख-शान्ति देने वाले थे ।४९।

इन मुनिराजो के आदि पुरुष श्री वृषभदेव तीर्थंकर के प्रथम गणधर श्री वृषभसेनाचार्य थे ।५०।

वृषभसेनाचार्य से लेकर चौराशी गणधर इन साधु परमेष्ठियों के आदि पुरुष थे ।५१।

चतु सघ में ऋषि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका ये चार प्रकार के भेद होते हैं। उन वृषभसेनाचार्य के समय में सौन्दरी देवी और ब्राह्मी देवी ये दोनो आर्यिकायें थी। इन्ही दोनो त्यागी देवियो का सर्व प्रथम स्थान त्यागी महिलाओ मे था ।५२।

इन दोनो आदि देवियो ने सर्व प्रथम श्री भूवलय का आख्यान आदि तीर्थंकर श्री आदि प्रभू से भरत चक्रवर्ती तथा गोम्मट देव के साथ सुना था। यद्यपि यह बात हम ऊपर कह चुके हैं, तथापि प्रसगवश यहा हमने इगित कर दिया ।५३।

इन्ही ब्राह्मी और सुन्दरो देवी से लेकर आचार्य श्री कुमुदेन्दु पर्यन्त ९९९९९ गणनीय आर्यिकायें थी ।५४।

यह सब चतु सघ सरल रेखा अर्थात् महाव्रत के मार्ग से हो विचरण करता हुआ सयम पूर्वक अनियत विहार करता था। इनके साथ चलने वाले बहुत बडे-बडे शक्तिशाली व्यक्ति भी पीछे पड जाते थे। उन साधुओ की गति इतने वेग से होती थी कि मृग और हरिण को चाल भी इनके सामने फीकी

प्रतीत होती थी। इतने वेग से गमन करने पर भी वे जरा भी थकित न होकर श्रावकों को मार्ग मे चलते २ उपदेशामृत भी पिलाते जाते थे।५५।

इन साधु परमेष्ठियो के असदृश करुणा होती है। इनका दयाभाव मानवो तक ही सीमित नही बल्कि समस्त जीव मात्र से रहता है। ये पूर्वो-पार्जित तप के प्रभाव से दया घन बन गये। घन का अर्थ समस्त आत्म प्रदेशो में दया भाव अखड रूप से व्याप्त हो जाना है। जिस प्रकार गाय फसल को समूल नष्ट न करके केवल छाल को खाकर सन्तुष्ट हो जाती है तथा उसके बदले में अत्यन्त मधुर, पौष्टिक एव समस्त जन कल्याणकारी पय प्रदान करती है उसी प्रकार नवधा भक्ति पूर्वक श्रावको के द्वारा दिये गये नीरस आहार को साधु जन ग्रहण करके सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा उसके बदले उन्हे ज्ञानामृत प्राप्त हो जाता है जो कि स्व-पर कल्याणकारी होता है।५६।

इस ससार में प्राय सभी लोग एकान्त मे भोजन ग्रहण करते हैं किन्तु साधुओ के लिये अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई एकान्त स्थान कही भी नही है। अत वे गोचरी वृत्ति से सर्व समक्ष आहार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार का ग्रहण किया हुआ आहार निरीह वृत्ति कहलाता है। इन साधुजनो को आभ्यन्तरिक ज्ञानामृत आहार परम प्रिय होने के कारण पौद्गलिक जडात्र आहार ग्रहण करते समय यह पता ही नही चलता कि "हम आहार ग्रहण कर रहे हैं।" क्योकि इनका लक्ष्य केवल आत्मा की ओर ही प्रतिक्षण रहा करता है। ध्यानाध्ययन मे किसी प्रकार की कोई बाधा न हो, इस कारण ये मुनिराज प्रमाण से कम अर्थात् अर्द्ध पेट अवमौदर्य वृत्ति से आहार ग्रहण करके तपोवन को गमन कर जाते हैं।५७।

ये साधु जन कुनय (दुर्नय) का छेदन-भेदन (नाश) करके अनेकान्तवाद धर्म का प्रचार करते हुये किसी का आश्रय न लेकर पवन के समान स्वच्छन्द होकर अकेले विहार करते रहते हैं। अनेकान्त धर्म का अर्थ अखिल विश्व कल्याणकारी धर्म है। ऐसा सदुपदेश देने वाले इन साधु परमेष्ठियो को पाचवां परमेष्ठी कहते हैं।५८।

ये साधु परमेष्ठी मानव रूपी भिक्षु हैं। भिक्षु शब्द के दो भेद है—

१ ला आहार, वस्त्र तथा वसतिका आदि के याचक और दूसरा ज्ञान पिपासु। ज्ञान पिपासु भिक्षु समस्त तत्त्वो की कामना करते हुये गुरु के उपदेश से अथवा अपने शुभ व शुद्ध ध्यान से अभीष्ट पद प्राप्त कर लेते हैं।

इन तत्त्वान्वेषी साधुओ के आत्मिक ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान अत्यन्त प्रतिभा शाली होता है। और जब ये महात्मा ध्यान में मग्न हो जाते हैं तब इनकी आत्मा के अन्दर ज्ञान की किरणें धवल रूप से झलकने लगती हैं।५६।

ये साधु शिष्यो की रक्षा करते समय किसी प्रकार का रचमात्र भी रोष नही करते। इनका स्वरूप सदा तेज पु ज से पूरित रहा करता है। जिस प्रकार सागर समस्त पृथ्वी को चारो ओर से घेरकर रक्षा करता रहता है उसी प्रकार ये साधु परमेष्ठी समस्त शिष्य वर्गो को अपने ज्ञान रूपी दुर्ग के द्वारा सुरक्षित रखकर आत्मोन्नति के मार्ग की प्रतीक्षा करते रहते है। और ऐसा करते हुये भी अनादि कालीन अपनी आत्म। के साथ बधे हुए कर्मों के साथ सामना करके विजय प्राप्त करते रहते हैं।६०।

पाचो परमेष्ठियो में ये साधु परमेष्ठी पाँचवें हैं। आचार्य कुमुदेन्दु ने वृषभ सेनादि ८४ के बाद गौतम गणधर तक और उनके समय से अपने समय तक सभी आचार्यों ने भूवलय के अग ज्ञान की पद्धति किन २ आचार्यो में थी इत्यादि का निरूपण करते हुये दूसरा नाम केशरीसेन तीसरा नाम चारुसेन आदि क्रम से बज्रचामर, वज्रसेन, वज्रचामर, वा अदत्तसेन, जलसेन, दत्तसेन, विदर्भ सेन नागसेन, कुन्थुसेन धर्मसेन, मन्दर सेन, जै सेन सद्धर्म सेन, चक्रबध, स्वयभू सेन, कु भसेन, विशाल सेन, मल्लि सेन, सोमसेन, वरदत्त मुनीन्द्र, स्वय प्रभारती, इन्द्रभूति, विप्रवर, गुरुवश, सेनवश इत्यादि १५६१ मुनीश्वर सेनगण में भूवलय के ज्ञाता साधु-परमेष्ठी थे। ६१ से लेकर ८८ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

विवेचन —यह आचार्य परम्परा मूलसघ के आचार्यों की होती हुई इति-हास से पूर्व काल से लेकर आई हुई मालूम पडती हैं। इस सम्बन्ध मे हम अन्वेषण करते हुये महान् महान् इतिहासज्ञो से वार्तालाप किये। तो उस वार्ता-

लाप का भाव यह निकला कि ये १५६१ मुनि आचार्य कुमुदेन्दु के ही समकालीन महा मेधावी, आचार्य के ही शिष्य थे। इन सब के साथ आचार्य कुमुदेन्दु विहार करके मार्ग मे समस्त आचार्यो को गणित पद्धति सिखलाते हुये समस्त भूवलय ग्रन्थ की रचना चक्रबंध क्रमानुसार सभी आचार्यो से करवाये। १६२×६४=१०३६८ अर्थात् श्रीमद् भगवद् गीता के १६२ श्लोक को भूवलय के ६४ अक्षरो से गुणा कर दिया जाय तो एक भाषा अर्थात् गीर्वाण भाषा में ऋग्वेद बन जाता है। इस प्रकार की विधि से आचार्य श्री कुमुदेन्दु ने अपने एक शिष्य को उपदेश दिया। तो उस मेधावी शिष्य ने एक ही रात्रि में उपर्युक्त अंको की रचना चक्रबंध रूप मे करके दिखा दिया। इसी रीति से दूसरे शिष्य को १६२×५४=वही १०३६८ अंको का उपदेश देकर कहा कि अच्छा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार बनाओ। गुरु देव की आज्ञा पाते ही दूसरे शिष्य ने भी फल स्वरूप श्री वेद व्यास महर्षि विरचित महाभारत अर्थात् वयाख्यान तथा उसके अन्तर्गत पाँच भाषाओ में श्री मद्भगवद् गीता के अंको को चक्रबंध रूप में शीघ्र ही बनाकर श्री गुरु के सम्मुख लाकर प्रस्तुत किया। इसी रीति से १५६१ महामेधावी मुनि शिष्यो को रचना के लिये दे देने से सभी ऋषियों ने एक ही दिन मे महान् अद्भुत भूवलय ग्रन्थ को विरचित करके गुरु को प्रदान कर दिया। तब कुमुदेन्दु मुनि ने समस्त मेधावी महर्षियो की वाक्शक्ति को एकत्रित करके अपने दिव्य ज्ञान से अन्तर्मुहूर्त में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना की। वह चक्रबन्ध १६००० सख्या परिमित है।

अपने अपने कर्मानुसार मानव पर्याय प्राप्त होती है ऐसा सोचकर तपोवन में तपस्या करते समय मुनिराज मेरु पर्वत के समान अकम्प (निश्चल) रहते हैं। तथा अपने आत्मिक गुणो को विकसित करते हुये मोहकर्म को जीत लेते हैं।८६।

जिस प्रकार रात्रि मे चन्द्रमा अपनी शीतल चाँदनी के द्वारा स्वय प्रशान्त रहकर समस्त जीवो के सताप को हर लेता है उसी प्रकार साधु जन सिंह विक्रीडितादि महान महान व्रतो द्वारा स्वय प्रशान्त रहकर अन्य जीवो को भी शान्ति प्रदान करते हैं। अत उनकी बुद्धि रूपी सपत्ति सदा चमकती रहती है।९०।

दीप्तिमान नव रत्नो को एक ही आभरण में यदि जड दिया जाय तो उनकी पृथक पृथक प्रभा एकत्रित होकर अनुपम प्रकाश देती है इसी प्रकार ज्ञान की विभिन्न किरणो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य के १५६१ शिष्यो ने ग्रहण किया और कुमुदेन्दु आचार्य ने उन ज्ञान किरणो कोएकत्रित करके इस भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ का रूप दिया जिसमें कि विश्व का समस्त ज्ञान निहित है।

क्षर नाम नश्वर का है और अक्षर नाम अविनश्वर का है। जिस प्रकार केवल ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है सी प्रकार भूवलय का अकात्मक ज्ञान अक्षर (अविनश्वर) है।९१।

जिस प्रकार भूमि के अन्तरग वहिरग रूप मे पदार्थों को धारण करने रूप सहन शक्ति विद्यमान है उसी प्रकार मुनियो के अन्तरग-बहिरग समता भावो में अनुपम सहनशक्ति विद्यमान रहती है। उस परम समतामय मुनिराजो के द्वारा इस भूवलय की रचना हुई है।९२।

जिस प्रकार अनियत घूमने फिरने वाला सर्प यदि किसी के घर मे आ जावे तो उसके विषमय दन्त उखाड देने पर वह किसी को कुछ भी बाधा नही दे पाता उसी प्रकार अनियत स्थान और बसितका मे विहार करने वाले योगी जन विषय-वासनाओ के विष को दूर कर देने के कारण किसी भी प्राणी के लिए अहित कारक नही होते।९३।

जिस प्रकार भूमि को छिन्न-भिन्न करने पर भी भूमिगत आकाश छिन्न-भिन्न नही हुआ करता उसी प्रकार साधु गण शरीर के छिन्न-भिन्न होने पर भी अपने अनुपम समता मय भावो मे स्वावलम्बन रूप से अपने गुणों द्वारा आत्मा को पूर्ण रूप से सुरक्षित रखते हैं। ऐसे मुनिराजो के द्वारा इस भूवलय का निर्माण हुआ।९४।

वे मुनिराज सदा सर्वदा केवल मोक्ष मार्ग के अन्वेषण में ही तत्पर रहते हैं। तपस्या में शालवृक्ष के समान कायोत्सर्ग में खडे होकर वे मुनिराज निश्चल भाव से तप करते हैं।९५।

ऐसे साधु परमेष्ठी इस कर्म भूमि में रहने पर भी सपूर्ण कर्मों से रहित होते हैं। और मार्ग मे विहार करते समय राजा–रक के द्वारा नमस्कार किये

जाने पर समदर्शी होने के कारण किसी के साथ लेश मात्र भी राग द्वेष नहीं करते।

उत्कृष्ट कुल में उत्पन्न हुये साधु जन वर्णनातीत हैं। अत उन्हें ऊँच नीच कुल के चाहे जो भी नमस्कार करें उन सबको वे समान समझते थे। इस प्रकार तीनों कालो में इन साधुओ का चरित्र परम निर्मल रहता है।६६।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधु श्री कुमुदेन्दु मुनि के सघ मे थे। वे भी सेनगण के अन्तर्गत ही थे। ये सभी मुनि नरकादि दुर्गतियो का नाश करनेवाले थे। इनका वर्णन निम्न प्रकार है—

वायुभूति कमल पुष्प के समान सुशोभित चरण हैं जिसके ऐसे अग्नि भूति, भूमि को छोडकर अघर मार्ग गामी सुधर्म सेन, वीरता के साथ तप करने वाले आर्य सेन, गणनायक मुडी पुत्र, मानव कुल के उद्धारक मैत्रेय सेन नरो में श्रेष्ठ अकम्पन सेन, स्मरण शक्ति के धारक अन्ध्र सेन गुरु, नरकादि दुखो से मुक्त अचल-सेन, शिष्यो को सदा हर्षित करने वाले प्रभाव सेन मुनि इन समस्त मुनियो ने पाहुड ग्रन्थ की रचना की है।

प्रश्न—पाहुड ग्रन्थ की रचना क्यो की गई?

उत्तर—केवल ज्ञान तथा मोक्ष मार्ग को सुरक्षित रखने के लिये इस पाहुड ग्रन्थ की रचना की गई। इन मुनियो के वाग्बाण से ही शब्दो की रचना हो जाती थी। अत जनता इन्हें दूसरे गणधर के नाम से सबोधित करती थी।

उस उस काल के धारणा शक्ति के अनुसार गणित पद्धति के द्वारा अङ्गज्ञान से वेद को लेकर वे साधु ग्रन्थो की रचना करते थे। अर्थात् मन्त्र का द्रष्टार्थ तत्तत्कालीन महाभाषाओ के वे साधु जन ज्ञाता थे और कार्य कारण का सम्बन्ध भलीभांति जानते थे। नरक गति से आये हुए समस्त जीवो को ज्ञान प्रदान करते हुए वे मुनिराज पुन नरक बन्ध करने से बचा लेते थे। वे समस्त मुनिराज चारो वेद तथा द्वादशाग वाणी के पूर्ण ज्ञाता थे तथा आयु के अवसान काल मे स्व-पर हित करनेवाले थे। उस प्राचीन समय से बनारस नगर में वाद-विवाद करके यथार्थ तत्व निर्णय करने के लिए एक सभा की स्थापना की गई थी। उस सभा में इन्ही मुनीश्वरो ने जाकर शास्त्रार्थ करके आत्मसिद्धि द्वारा प्रकाश डालकर मानवो को कल्याण का मार्ग निर्दिष्ट किया था इस रीति से बनारस में वाद-विवाद करते रहने से जैनियो के आठव तीर्थंकर चन्द्रप्रभु तथा शैवो के चन्द्रशेखर भगवान् एक ही होने से "हरशिवशकर गणित" ऐसी उपाधि इन मुनीश्वरो को उपलब्ध हुई थी। इसी गणित-शास्त्र के द्वारा भूवलय ग्रन्थ की रचना तथा स्वाध्याय करने के कारण इन्हें "भूवलयर" नाम से भी पुकारते थे।६७ से ११६ तक श्लोक पूर्ण हुआ।

भूवलय की रचना मे "पाहुड" वस्तु 'पद्धति" इत्यादि अनेक उदाहरण हैं। ये कर्मभूमि के अर्द्ध प्रदेश मे रहनेवाले जीवो को उपदेश देने के लिए सागत्य नामक छन्द मे पद्धति ग्रन्थ की रचना करते थे। उस ग्रन्थ में विविध भाषाओ मे शुद्ध चैतन्य विलसित लक्षण स्वरूप परमात्मा का ही वर्णन अर्थात् अध्यात्म विषय ही प्रधान था।१२०।

वे महात्मा सदा परमात्मा के समान सन्तोष धारण करके आत्मतत्त्व रुचि से परिपूर्ण रहते हैं और सम्यग्दर्शन का प्रचार करते हुए दर्शनाचार से सुशोभित रहते हैं।१२१।

उन महर्षियो के मन मे कदाचित् किसी प्रकार की यदि कामना उत्पन्न हो जाती थी तो वे तत्काल ही उसे शमन करके उस कामना के विषय को जन्म पर्यन्त के लिए त्याग देते थे और अपने चित्त को एकाग्र करके समताभाव पूर्वक आत्मतत्त्व में मग्न होकर आनन्दमय हो जाया करते थे।१२२।

तब उन महात्माओ का विश्व व्यापक ज्ञान आत्मोन्नति के साथ साथ अलोकाकाश पर्यन्त फैलता जाता था। और प्रकाश के फैल जाने पर भेद विज्ञान स्वयमेव झलकने लगता था। तथा शुभाशुभ रागादि समस्त विकल्प परभावो से मुक्त हो जाता था।१२३।

जब आत्मा के साथ परभाव का सम्बन्ध उत्पन्न होता है तब ससार बन्ध का कारण बन जाता है। किन्तु अपने निज स्वभाव मे रहनेवाले उपर्युक्त साधुओ के ऊपर लेशमात्र भी परभाव नही पडता था। सघ मे रहनेवाले समस्त साधु सरल, समदर्शी एव वीतरागता पूर्ण थे। अत परस्पर में आध्यात्मिक रस का ही लेन-देन था व्यावहारिक नही। सभी साधु निश्चय नय के आराधक थे,१२४।

कदाचित् इस पृथ्वी सम्बन्धी वार्तालाप करने का अवसर यदि आके-

स्मिक रूप से आ जाता था तो वे साधुजन तेरहवें गुणस्थान के अन्त मे आनेवाले चार केवली समुद्घातो का पृथ्वी सम्बन्धी आत्म प्रदेश को ही विचारते हुए इस पृथ्वी मे रहनेवाली पौद्गलिक शक्ति का चिन्तवन करते हुए आत्मा का अवलोकन करते रहते थे। अत सदाकाल संघ सुरक्षित रूप से विहार करता था। इसका नाम ज्ञानाचार था।१२५।

समवशरण में लक्ष्मी मण्डप (गन्ध कुटी) होती है। उसमें भगवान विराजमान होते हैं। उसके समीप चारो ओर बारह कोष्ठक (कोठे) होते हैं, जिनमे से पहले कोष्ठक में मुनिराज विराजमान रहते हैं। इसी के अनुसार परम्परा से लक्ष्मी सेन गण नाम प्रचलित हुआ। अत उपर्युक्त समस्त आचार्य लक्ष्मीसेन गणवाले मुनिराज कहलाते हैं।१२६।

गौतमादि गणधरो से लेकर उपर्युक्त सभी आचार्य दिव्य ध्वनि से सुने हुए समस्त द्वादशाग रचना के क्रम को नौ (९) अको के अन्दर गर्भित करनेवाली विद्या मे परम प्रवीण थे अर्थात् भूवलय सिद्धान्त शास्त्र के ज्ञानी थे।१२७-१२८।

अनादिकाल से लेकर उन आचार्यो तक समस्त जीवो के समस्त भवो को जानकर आगामी काल मे कौन-कौन से जीव मोक्ष पद को प्राप्त करेंगे यह भी बतलाकर वे आचार्य सभी का उद्धार करते थे।१२९।

ये साधु परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारो के मगलस्वरूप हैं। इसका प्राकृत रूप इस प्रकार है—"अरहन्त मगल, सिद्धमगल, साहुमगल, केवलीपण्णत्तो धम्मोमगलम्" ।१३०।

विवेचन—अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य जो उपर्युक्त साधु परमेष्ठियो को चौबीस तीर्थंकरो का स्वरूप मानकर २४ तीर्थंकरो का निरूपण करते हुए उनके निर्वाण पद प्राप्त स्थानो का वर्णन करते हैं।

कैलासगिरि से श्री ऋषभनाथ तीर्थंकर मुक्ति पद प्राप्त किए भगवान् से श्री ऋषभदेव सर्व प्रथम तीर्थंकर तथा भूवलय ग्रन्थ के आदि सृष्टि कर्त्ता थे।१३१।

इसके बाद दूसरे तीर्थंकर के अन्तराल काल में धर्म धीरे घटता चला गया। और एक बार पूर्ण रूप से नष्ट सा हो गया था। तब दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ भगवान् ने इस भरतखड मे अवतार लेकर धर्म का उत्थान किया तथा सम्मेद शिखर से मुक्ति पद प्राप्त कर लिया।१३२।

एक तीर्थंकर से लेकर दूसरे तीर्थंकर तक अर्थात् श्री सम्भव, श्री अभिनन्दन, श्री सुमिति, श्री पद्मप्रभ श्री सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ श्री पुष्पदन्त, श्री शीतल, श्री श्रेयास, इन सभी तीर्थंकरो ने श्री सम्मेदशिखर पर्वत से मुक्ति प्राप्त की थी। इनमे से आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभु भगवान श्री कुमुदेन्दु आचार्य के इष्ट देव थे, क्योकि यह आठवा अक ६४ अक्षरो का मूल है।१३३ से लेकर १३९ तक।

चम्पापुर नगर में श्री वासुपूज्य तीर्थंकर नदी के ऊपर अधर [यवाग्र भाग] से मुक्ति पधारे।१४०-१४१।

तत्पश्चात् श्री सम्मेदशिखर पर्वत के ऊपर श्री विमलनाथ, श्री अनन्त नाथ, श्री धर्मनाथ, श्री शान्तिनाथ, श्री कुन्थुनाथ, श्री अर्हनाथ, श्री मल्लिनाथ मुनि सुव्रतनाथ, श्री नमिनाथ इन सभी तीर्थंकरो ने श्री सम्मेदशिखर गिरि से मुक्तिपद प्राप्त की थी। और श्री नेमिनाथ भगवान् ने।१४२-१४६।

ऊर्जयन्त गिरि [गिरिनार—जूनागढ], पावापुर सरोवर के मध्य भाग से श्री महावीर भगवान् तथा श्री सम्मेद शिखर जी के स्वर्ण भद्र टोक से श्री पार्श्वनाथ भगवान् मुक्त हुए थे।१४७-१४८।

विवेचन—श्री पार्श्वनाथ का नाम पहले आकर श्री महावीर भगवान् का नाम बाद मे आना चाहिए था, पर ऊपर विपरीत क्रम क्यो दिया गया ?

इस प्रश्न का अगले खड में स्पष्टीकरण करते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य लिखते हैं कि श्री सम्मेदशिखरजी का स्वर्णभद्र कूट [भगवान् पार्श्वनाथ का मुक्त स्थान] सबसे अधिक उन्नत है अतएव वहा पहुचकर दर्शन करना बहुत कठिन है। [इस समय तो चढने के लिए सीढिया बन जाने के कारण मार्ग कुछ सुगम बन गया है, किन्तु प्राचीन काल मे सीढियो के अभाव से वहा पहुचना अत्यन्त कठिन था] उस कूट के ऊपर पहले लोहे को सुवर्ण रूप में परिणत कर देनेवाली जडी-बूटिया होती थी, अत सुवर्ण के अभिलाषी बकरी पालनेवाले गणेरिये बकरियो के खुरो मे लोहे की खुर चढाकर इसी कूट के ऊपर उन्हें चरने के लिए भेज दिया करते थे जिससे कि वे घास-पत्ती चरती

करता उन जड़ी बूटियों पर जब अपनी गुर रखती थी तब उनके लोहे के गुर सोने के बन जाया करते थे। इस कारण इस कूट का नाम स्वर्ण भद्र प्रख्यात हुआ और इसी कारण भगवान पार्श्वनाथ का नाम ग्रन्थकार ने अन्त में दिया है।

इन सभी तीर्थंकरों ने शुद्धात्म भावना से इस पृथ्वी और शरीर के मोह को छोड़कर निवृत्ति मार्ग को अंगीकार करके उस प्रभाव से उत्पन्न हुए स्वाभाविक आत्मिक ऐश्वर्य के समान रहनेवाले मोक्ष पद को प्राप्त किया है। अतः इन तीर्थंकरों को जगत के सभी कवि नमस्कार करते हैं।१४९।

वे जिस सुख के अनुभव में रहते हैं वही सुख सम्यक्त्व चारित्र कहलाता है। उस पवित्र चारित्र के मर्म का अपने अन्दर पूर्णतया भरे रहने के कारण उनको परम शुद्ध निर्मल जीव द्रव्य कहते हैं। इस तरह निमग्न वर्तना में रहनेवाले तीर्थंकर भगवान के निश्चय चारित्र में लीन होने के कारण शेष बचे हुए अघाति कर्म स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। हमारे समान उन लोगों को शारीरिक तप करने की जरूरत नहीं पड़ती और न उन्हें हमारे समान किसी-व्यवहार धर्म को पालन करने की आवश्यकता रहती। इसलिए वे समवशरण में सिंहासन पर रहनेवाले कमल पुष्प को स्पर्श न करते हुए चार अंगुल अधर रहते हैं।१५०-१५१।

जैसे कमल पत्र के ऊपर रहनेवाली पानी की बूंद कमल पत्र को स्पर्श नहीं करती तथा पानी में तैरती हुई मछली के समान कमल पत्र के ऊपर पड़ी हुई पानी की बूंदें तैरती रहती हैं उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान भी समव-सरणादि पर द्रव्य में मोहित न होते हुए अपने स्वाभूत आत्म द्रव्य में ही लीन रहते हैं। समवसरण में देव मानवादि समस्त भव्य जीव राशि विद्यमान होने पर भी वे परस्पर में अभिमान तथा रागद्वेष न करते हुए स्वपर कल्याण की साधना में मग्न रहते हैं।१५२।

क्रमवर्ती ज्ञान को निरोध करते हुए अक्रम अर्थात् अनक्षरात्मक सभी की इच्छाओं को एकीकरण करके सम्पूर्ण ज्ञान को एक साथ निर्वाह करते हुए तीर्थंकर परमदेव समस्त संसारी भव्य जीवों को अपने अमृतमय वाणी के द्वारा उद्धार करते हैं। इस क्रम से समस्तजीव एक साथ अपने अपने अनात्मगत स्वरूप को जानकर छोड़ देते हैं।१५३।

इस तरह आत्म भावना में ही लीन होते हुए तीर्थंकर परमदेव नवमांक महिमा के साथ जगत के तीनों लोकों का पूर्णरूप से निर्वाह करते हुए तथा आत्मा के शुद्ध चैतन्य स्वरूप को भीतर से उमड़कर बाहर आने के समान तपश्चरण को करते हुए और उसी तरह भव्य जनों को भी आचरण करने का उपदेश तथा आदेश करते हुए उत्तम तप से सभी भव्य जीवों को तृप्त करते हुए जगत को आश्चर्य चकित करते हुए उनके मन को विशाल करते हुए सम्पूर्ण जीव समान हैं, ऐसी प्रेरणा करते हुए आचार सार में रहते हुए तपश्चर्या के मर्म का अनुग्रह करते हुए ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, और तपाचारादि इन पांच आचार को जनता में स्थापना कराते हुए सामायिक प्रति क्रमणादि क्रियाओं को करते समय शक्ति को न छिपाते हुए आचरण करना चाहिए। इस प्रकार उपदेश करते हुए तीनों सन्ध्याकाल में दैवसिक रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिकसंव-त्सरादिक केसमय में अर्हंत सिद्ध चौबीस तीर्थंकरादि गुणों के समान अपने आत्मा के अन्दर अनुकरण करते हुए, गुणस्तव, वस्तु स्तव, रूपस्तव इत्यादि गुणों की भावना करने का उपदेश देते हैं। १५४ से १६६ तक।

पर वस्तु को भूलकर समस्त शुद्ध जीव के समान मेरी आत्मा इसी तरह परिशुद्ध है ऐसी भावना करते हुए निश्चय चारित्र में अपनी शक्ति को वैभवशाली समझकर महान वैभव सपन्न पांच चारित्र आराधना अर्थात् सिद्धांत मार्ग के अद्भुत और अनुपम ज्ञानाराधना दर्शनाराधना चारित्राराधना, तपा-राधना, और वीर्याराधनादि का अत्यन्त वर्णन के साथ उपदेश करते हुए रत्न के कलश के समान रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप के निश्चय स्थान अर्थात् सिद्धात्म स्वरूप नाम के एक ही सांचे में ढले हुए शुद्ध सोने की प्रतिमा के समान स्वसमय सार के बल से निश्चय नयावलंबन रूप शुद्ध जीव बन जाता है। तब उनको चिरजीवि, भद्र, शिव, सौम्य, शिव, मंग और मंगल स्वरूप कहते हैं। १७२ से १८२ तक।

नवजात बच्चे के श्वास चलते रहे तो वह जिन्दा रहेगा ऐसा कहने के अनुसार सम्यक्त्व के अभिमुख जीव को मोक्ष में जाकर जन्म लिया, ऐसा समझना चाहिए। तब यह जीवात्मा स्वयं स्वयंभू अर्थात् स्वतन्त्र होता है, ऐसा समझना चाहिए। तब करनेवाले जितने भी कार्य हैं वे सभी विज्ञान मय होते हैं और समस्त पृथ्वी के सार को समझकर ग्रहण कर लेता है। वह संसार

के सुख को अनुभव करने पर भी आत्म समाधि मे लीन होकर धर्म साम्राज्य का अधिपति होता है।१८३।

वीतरागत्व का निश्चय भाव में परिणाम करनेवाले वे साधु परमेष्ठी आत्मसमाधि रूपी समुद्र में तैरते हुए समस्त कर्मो को नाश करते हुए, सम्पूर्ण नयोके विषयो को जानते हुए अपने आत्मा मे लीन रहनेवाले आत्मा मे तीनो काल में ससार में महोन्नत स्थान को प्राप्त होते हैं। ऐसे योगिराज हमेशा जयवत रहें।१८४।

आसन्न भव्य को उत्पन्न शुद्धात्म प्राप्ति की होनेवाली आशा उनके जय के कारण होती है हमारे विजय को देखकर भी तू ससार की विपयवासनाओ को नही छोडता ? परम पवित्र सर्वसाधु परमेष्ठियो के पवित्र पुण्य चरणो मे अपने उपयोग को लगाकर अगर तू पूजा करते तो तुम्हे उन समस्त आचरणो का मार्ग तथा निर्भर भक्ति आ जाती। इसलिए आप मन वचन और काय से पच परमेष्ठियो के पवित्र चरणो की निर्भर भक्ति से आराधना करो।१८५।

समस्त द्वादशाग वाणी के मर्म को जानकर उस मार्ग से तू श्रम रहित चलते हुए आने से पचपरमेष्ठियो को नमस्कार करना, स्तुति करना, स्मरण करना, इत्यादि क्रम को कहे जाने वाले नवमाक गणित से वद्ध होकर रहने वाले को श्री भूवलय से आप समझकर उस मार्ग की प्राप्ति कर लो।१८६।

मोक्ष दूसरे के वास्ते नही है इसलिए वह ग्रन्य किसी दूसरे के द्वारा प्राप्त नही हो सकती। तीर्थंकर भगवान भी अपने हाथ से पकडकर अपने साथ मोक्ष को ले जानेवाले नही हैं।

वे भी हमारे समान कठिन तपश्चर्या करके अपने कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिए हैं। इसी तरह हम लोगो को भी अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लेना चाहिये। स्वार्थ का अर्थ अन्य जनो के द्वारा अनुभव करने वाली वस्तु की अपेक्षा करके अनुभव करना है। यह स्वार्थ वैसा नही है। क्योकि इससे किसी को किंचिद् मात्र भी हानि नही पहुचती। मोक्ष सुख का स्वार्थ सिद्ध करने का हक सभो को है। समस्त अज्ञानताओ को नष्ट करके हितरूप में तल्लीन होना शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति है।१८७।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूपी निर्मल जल ही तीर्थ है और उस तीर्थ मे यदि एक वार जीव गोते लगा ले तो वह शीघ्रातिशीघ्र ससार सागर से पार हो जाता है। वह तीर्थ अन्यान्य क्रोधादिरूप तरङ्गो से वचाकर अनन्त चतुष्टयरूप आत्मिक सपत्ति को प्राप्त करने वाला वज्र वृषभनाराच-सहनन शरीर की प्राप्ति कराके उस जन्म में मुक्ति स्थान मे पहुचा देता है, ऐसा श्री साधु परमेष्ठी उपदेश देते हैं।१८८।

ये साधु परमेष्ठी इहलोक, परलोक, अत्राण, अगुप्ति, आगन्तुक आदि सात भयो से मुक्त होने के कारण परम पराक्रमी होते हैं। इस प्रकार सात भयो से रहित रहने के कारण उन साधु परमेष्ठियो का मुख-कमल प्रसन्नता से परिपूर्ण रहता है। मोक्ष स्थान मे सदा प्रसन्नता-पूर्वक रहना ही जीव का नैसर्गिक स्वभाव है। ससारावस्था मे रहने वाले सभी जीवो के शरीर मे खड २ रुप से शरीर के अन्दर छिद्र रहते हैं, पर मुक्तावस्था मे ऐसा नही रहता। क्योकि वहा पर जीव अखड घनस्वरूप मे रहता है। किसी के सम्पर्क मे न रहने से अखड स्वरूप रहना शुद्ध वस्तु का स्वभाव ही है। मुक्ति मे सदा काल जीव आत्मा से उत्पन्न हुये आनन्द मे तल्लीन रहता है। वे महापराक्रमी सिद्ध जीव चैतन्यस्वरूप से रहते हैं और सत्य स्वरूप हैं। उस दुर्लभ सुख मे रहने वाले सिद्ध परमेष्ठियो को सर्वसाधु परमेष्ठी अपना सर्वस्व मानकर सदा काल यानी अविरल रूप से भक्ति पूर्वक मनन करते हैं। ये ऋषिगण उन सिद्ध परमेष्ठियो के पद प्राप्ति के निमित्त त्रिकाल असाधारण भक्ति करते रहने से वह पद प्राप्त कर लेते हैं।

इस ससार मे वे साधुगण सविकल्प रूप से दीख पडने पर भी अपनी आत्मसमाधि सिद्धि का महान् साधन सचय करते हैं। वह सामग्री परम दया, सत्य आदि वास्तविक सामग्री है। उन सामग्रियो से जव ग्रन्थ रचना करने के लिये वैठ जाते हैं तव आत्मस्वरूप तथा अखिल विश्व के समस्त पदार्थ स्फटिक के समान झलकने लगते है। इस काल मे श्री धरसेन आचार्य ने पाच परमेष्ठियो की भक्ति से निकल कर आने वाले अक्षरो और अको से जिस काव्य की रचना की है वह प्राकृत, सस्कृत तथा कन्नड इन तीनो भाषाओ से मिश्रित अर्द्धभाषा कहलाती है। इस रीति से उन्होने जो साढे तीन (३½) भाषा की रचना की है वह "पद्धति" नामक छन्द कहलाता है। इस प्रकार रचा हुआ ग्रन्थ भी इस

५ अक से जोडने पर (४+५=९) ९ अक आ जाता है जोकि नवपद (पच परमेष्ठी जिन वाणी आदि ९ देवता) का सूचक है।

आचार्य कुमुदेन्दु सूचित करते है कि उनके समय मे 'पच परमेष्ठी बोल्लि' ग्रन्थ लुप्त था, वह अब गणित पद्धति से प्राप्त हो गया है हमने उसको 'पद्धति' नाम दिया है। 'पद्धति' चौदह पूर्वो के अन्तर्भूत है अत हम उस पद्धति नामक ग्रन्थ को नमस्कार करते हैं। यह कविजनो के लिए महान अद्भुत विषय है अत प्रत्येक विद्वान को इसका अध्ययन करना चाहिए।२२७ से २४७ तक।

अब श्री कुमुदेन्दु आचार्य इस तेरहवें अध्याय को सक्षिप्त करते हुए कहते हैं—इस भूवलय के इसअध्याय का अध्ययन करनेवाले भव्यजन सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्रो के साथ ३३ सागरोपम दीर्घ सुखमय जोवन व्यतीत करते हैं।२४८।

सर्वार्थसिद्धि में इन्द्र सेवक, आदि का भेदभाव नही है, वहा के देव अपनी आयु पर्यन्त निरन्तर सुख अनुभव करते हैं। उस सर्वार्थसिद्धि के समान कर्माट [कर्नाटक] भाषा तथा जनपदवासी जनता सुखी है। इस देश में हजारों दिगम्बर मुनियो का विहार तथा सिद्धान्त प्रचार होने से इस देशवासी यशकीर्ति नाम कर्म का वन्ध किया करते हैं, अयश कीर्ति प्रकृति का वन्ध किसी के नही होता। प्राचीन समय में श्री बाहुवली ने यहा राज्य शासन किया था।
।२४९-२५०।

अपने मस्तक मे कोहेनूर के समान अमूल्य रत्न जडित किरीट को धारण किये हुए अमोघवर्ष चक्रवर्ती ने गुरु श्री कुमुदेन्दु आचार्य के चरणरज को अपने मस्तक पर धारण किया था। इनके शासनकाल में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी।२५१।

विवेचन—क्रिश्चन शक ६८० के लगभग समस्त भरतखण्ड को जीतकर हिमवान् पर्वत मे कर्णाटक राज्य चिन्ह की ध्वजा को राजा अमोघवर्ष ने फहराया था। उसी, समय में इस भूवलय ग्रन्थ की रचना हुई थी इस प्रसग में उनको धवल, जयधवल, विजय धवल, महाधवल और अतिशयधवल की बिरुदावली प्रदान की गई थी। गग वश के प्रथम शिवमार नामक यह धर्मात्मा सदा सर्वदा इस सिद्धान्त शास्त्र का उपदेश सुनते समय वह सम्यक्त्व शिरोमणि हुकार साथ सुनते हुए अत्यत मुग्ध होते थे इसी कारण से उन्हें 'शंगोट्ट' अर्थात् सुननेवाला विशेषण दिया गया था। उपर्युक्त शंगोट्ट शब्द कर्णाटक भाषा में है इसका दूसरा नाम 'गोट्टिका' भी था इसका अर्थ श्री जिनेन्द्र भगवान को वाणी को सुननेवाला है। कर्नाटक भाषा में श्री जिनेन्द्र देव को "गोरव, गरुव," इत्यादि अनेक नामो से पुकारते थे। आजकल भी ईश्वर को वैदिक सम्प्रदाय में "गोरव" कहने की प्रथा प्रचलित है। इनकी राजधानी नन्दीदुर्ग, के निकट "मण्णे" नामक एक ग्राम है जोकि पहले राजधानी थी। आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान "मण्णे" नामक ग्राम को "मान्य खेट" नाम से मानकर हैदराबाद के अन्तर्गत समझते हैं। इसी के निकट "शीतकल्लु" नामक एक बहुत प्राचीन ग्राम है। जिसमे गग राजा के द्वारा अनेक शिल्प कलाओ से निर्मित एक जिन मन्दिर है। प्राचीन काल में जो "मण्णे" नाम था वह छोटा-सा देहात बन गया है।

एक बार महान् वैभवशाली "प्रथम गोट्टिग शिवमार" जब हाथी के ऊपर बैठकर आ रहा था तब उसने एक हजार पाच सौ (१५००) शिष्यो के साथ अर्थात् सघ सहित दूर से आते हुए श्री कुमुदेन्दु आचार्य को देखा। उस समय वर्षा होने के कारण पृथ्वी पर कीचड हो गई थो। अत "गोट्टिग शिवमार" हाथी से शीघ्र उतर कर नगे पैरो से आचार्य श्री के दर्शनार्थ उनके चरण समीप जाकर।

उसने मुनिराज के चरणो मे मस्तक झुकाकर नमस्कार किया वैसे ही उसके मस्तक मे धारण किये हुए रत्न जडित किरीट में मुनिराज के पैरो की धूलि लग गई जिससे कि रत्न का प्रकाश फीका पड गया। कुमुदेन्दु आचार्य श्री तो अपने सघ सहित विहार कर गये और राजा लौटकर अपनी राज सभा मे जाकर सिंहासन पर विराजमान हो गया। नित्य प्रति राजसभा मे बैठते समय मस्तक मे लगी हुई रत्न की प्रभा चमकती थी, किन्तु आज, धूलि लगने के कारण उसकी चमक न दीख पडी। तब सभसदो ने मन्त्री को, इशारा किया कि राजा के मस्तक मे लगे हुए मुकुट के रत्न पर धूलि लगी है अत उसे कपडे से साफ करदो। तब मन्त्री राजा के पीछे खड़ा होकर उसे

साफ करने का मोका देखने लगा। अकस्मात् राजा की दृष्टि मन्त्री के ऊपर पडी तब उन्होने पूछा कि तुम यहां क्यों खडे हो ? मन्त्री ने उत्तर दिया कि आपके किरीट मे लगी हुई धूलि को साफ करने के लिए खडा हू जिससे कि रत्न की चमक-दीख पडे। राजा ने उत्तर में कहा कि हम अपने श्री गुरु के चरण रज को कदापि नही हटाने देंगे, क्योकि यह रत्न से भी अधिक मूल्यवान है। इसलिए मैंने अपने गुरु की धूल को जान बूझकर रखलिया है। इस प्रकार कहते हुए उस किरीट पर लगी हुई धूलि को हाथ लगाकर अपनी आखो मे लगा लिया। गुरु देव के प्रति राजा की भक्ति तथा उसकी महिमा अनुपम अद्भुत थी। उस गुरु की दृष्टि भी तो देखिये कि वे अपने शिष्य "शैगोट्ट शिवमार" की कीर्ति ससार मे फैलाने तथा चिरस्थायी रखने के उद्देश्य से आई हुई पाचो विरुदावलियो के नाम से धवल, जयधवल, महाधवल, विजय-धवल, तथा अतिशय धवल रूप श्री भूवलय का नाम रख दिया। यह गुरु की अत्यन्त कृपा है, ऐसे गुरु शिष्य का शुभ समागम महान पुण्य से प्राप्त होता है।

इस तेरहवें अध्याय के अन्तर काव्य मे १५६६४ अक्षर हैं और श्रेणी-बद्ध काव्य में ६४७७ अक्षर हैं। ये सब कर्नाटक देशीय जनता के महान् पुण्योदय से प्राप्त हुए हैं।२५२।

इस तेरहवें अध्याय के अन्तरान्तर काव्य मे इसके अतिरिक्त ४८ श्लोक और निकल आते हैं। शूरवीर वृत्ति से तप करनेवाले दिगम्बर जैन मुनि "अक्षम्रक्ष" प्रकार से जिस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं और उस समय अक्षय रूप पचाश्चर्य वृष्टि होती है उसी प्रकार इसके अन्तरान्तर काव्य में इसके अलावा एक और अध्याय निकल आ जाता है, जिसमे कि २१६६ अक्षरांक हैं। इस रीति से कवल एक ही अध्याय में ३ अध्याय बन जाते हैं।२५२।

विवेचन—दिगम्बर जैन मुनि 'गोचरीवृत्ति, भ्रामरी वृत्ति तथा अक्षम्रक्ष इन तीन वृत्तियो से आहार ग्रहण करते हैं। इनमें से गोचरी-वृत्ति का विवेचन पहले कर चुके हैं। पर शेष दो वृत्तियों का विवरण नीचे दिया जाता है।

भ्रामरी वृत्ति:—जिस प्रकार भ्रमर कमल पुष्प के ऊपर बैठ कर उसमें किसी प्रकार की हानि न करके रस को चूसता है और कमल ज्यो का त्यों सुरक्षित रहता है उसी प्रकार दिगम्बर जैन साधु श्रावको को किसी प्रकार का भी कष्ट न हो, इस अभिप्राय से शान्त भाव-पूर्वक आहार ग्रहण किया करते हैं। इसे भ्रामरी वृत्ति कहते हैं।

अक्षम्रक्ष वृत्ति—तेलरहित धुरेवाली बैलगाडी की गति सुचारु रूपसे नहीं चलती तथा कभी २ उसके टूट जाने का भी प्रसग आ जाता है, अत उसको ठीक तरह से चलाने के लिये जिस प्रकार तेल दिया जाता है उसी प्रकार साधु जन शरीर का पालन-पोषण करने के लिये नही, बल्कि ध्यान, अध्ययन, तथा तप के साधन-भूत शरीर की केवल रक्षा मात्र के उद्देश्य से अल्पाहार ग्रहण करते हैं। इस वृत्ति से आहार ग्रहण करना अक्षम्रक्ष वृत्ति कहलाती है।

इस काव्य के अन्तर्गत २४७ २४६, २४५ और २४४, २४३, २४२ इस क्रमानुसार तीन २ श्लोको को प्रत्येक में यदि पढते जायें तो इसी भूवलय के प्रथम अध्याय के ६ वें श्लोकके दूसरे चरणसे प्रथमाक्षर को लेकर क्रमानुसार "क्रमदोलगेरडु काल्नूर" इत्यादि रूप काव्य दुबारा उपलब्ध हो जाता है। यह विषय पुनरुक्त तथा अक्षय काव्य है। यदि इस ग्रन्थ का कोई पत्र नष्ट हो जाय तो नागबद्ध प्रणाली से पढ़ने पर पूर्ण हो जाता है। लु ६४७७+अन्तर १५६६४+अन्तरान्तर २१६६=२७६३० अथवा अ से ऋ तक २५२०८१+ल २७६३०=२७६७११ अक्षरांक होते हैं।

इस अध्याय के आद्यअक्षरसे प्राकृत भाषा निकल आती है। जिसका अर्थ इस प्रकार है—

भारत देश में लाड नामक देश है, लाड शब्द भाषा-वाचक भी है और देशवाचक भी है। लाड भाषा अनेक जातीया है, उस लाड देश में श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न शम्भुकुमार, अनिरुद्ध इत्यादि ७२ करोड मुनि लोग दीक्षा लेकर ऊर्जयन्तके शिखर अर्थात् पर्वत पर तप करते हुए एक-एक समयमें सात सौ-सात सौ मुनि गण ने कर्म को क्षय करके सिद्ध पद प्राप्त किया इस तेरहवें अध्याय के २७ वें श्लोक से लेकर ऊपर से नीचे तक पढते जांय तो सस्कृत श्लोक निकलता है उस श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार है—

अर्थ—इस सिद्धांत ग्रन्थ को धवल, जय धवल, विजय धवल, महा-

धवल और अतिशय धवल, इन पाच खण्डो के रूप में विभाग किया गया है। यह भारती भारत माता की शुचि और निर्मल कीर्ति रूप है। इन पाच खण्डो से आने वालो ज्ञान रूपी किरण विश्व के समस्त पदार्थो को अर्थात् षट् द्रव्य को नि षेश रूप से जैसे सूय की किरणो मे अर्थात् प्रकाश में रक्खे हुए पदार्थ स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं, उसी तरह समस्त भूवलय से पदार्थ स्पष्ट-रूप से देखने में आते हैं। इसलिये इन पाच धवल रूप भूवलयग्रन्थ को मैं नमस्कार करता हूँ।

अतरधिकार—नीचे दिये जाने वाले 'साधुगलिहरेरडु वदे द्वोपदि साधि सुतिहरु मोक्ष वनु" इत्यादि रूप श्लोक के अध्याय में 'साधयन्ति ज्ञानादिशक्ति-भिर्मोक्षमिति' इत्यादि रूप श्लोक और अन्तिम अक्षर से ओमित्येक्षर ब्रह्म इत्यादि रूप भगवद् गीता के श्लोक निकलते हैं। इस अध्याय को यहा क्रम से दिया गया है।

साधुगळिहरेरडूवरेद्वीपदि । माधिसुतिहरुमोक्षवनु ॥
आदियनादिय कालदिंदिहसर्व । साधुगळिगे नमवेंब्असो ॥१॥
धरिसलमंत ज्ञानादि स्वरूपव । परिशुद्धात्मरूपवनु ॥
वरसर्व साधुगळ् साधिसुतिरुवरु । परमन तम्मात्मनोळमि ॥२॥
यमिगळिववन्दु महाव्रतगळय्दनुर्होदि । क्रमदोळि सर्वसाधु गळ्त॥
समनागिउपवासदिपेळ्द । गमकदोळिहरुसाधु गळ्व् ॥३॥
नवगळेरडर साविर जातिशीलव । नवर भेदगळेल्लवरितु
सुविशुद्धवादंभत्नाल्कुलक्षगळेम्ब अवनुउत्तर गुणगळन् यो ॥४॥
तिळिदु पालिसुव रॆटनेपरमेष्ठिग । ळिळेयोळ गिदुं समाधि ॥
योळगात्म सिरियेंबआहारवकोब । बलशालिगळु साधुगळ्का ॥५॥
ज्ञान साधनेयोळात्मध्यानविडदिह । ज्ञानवन्तरु सिंहवन्ते ॥
शाने पराक्रम वुळ्ळ संयमिगळु । ज्ञानादि शक्तियोळ् रतरक् ॥६॥
नानाविधवाद आहार विट्टरु । तानुगंभीरवोळिद्द ॥
शाने गौरविसल् अन्नर्वातबानेयन् । तानन्ववाभिमानिगळ्ष ॥७॥

लांगूलचालन मधश्चरणावघात, भूमोनिपत्य वदनोदरदर्शन च ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु, धीरंविलोकयति चाटुशनेश्च भुंक्त. ॥
दिवेल्लतिंदन्नवरात्रिकालदि । मनविट्टु मेल्व यत्तिनन्ते ॥
दिनवेल्लगळिसिव श्रुतदंकाक्षरगळ । मनसिद्दु रात्रियोळ्मेलुवर् ॥८॥
शक्तियोळोदे दारियोळ् वेगदि । व्यक्तवागोडुव मृगव ।
व्यक्तित्वकेपदन्ते सरलवाद । व्यक्तिवागळिवर साधुगळ्अ ॥९॥
करुणेय वरवो ए देन्नुव हसुवदु । गरियनेमेयुवतेरदि ॥
परमान्नव गोचरि वृत्तियिदु । डिरुव नीरिहयवृत्तिगळम् ॥१०॥
तिरियोळ् तडेयिल्लदे हरिवाडुव । वरगाळियन्ते निस्सग ।
वेरसुतचेरिसुवेकांगविहारिगळ् । गुरुगळेंदने यसाधुगळअव् ॥११॥
विभिक्षुगळिवरुसकल तत्वगळनु । साक्षात्तागि बेळगु ॥
अक्षर ज्ञानिगळावित्यु नंदादि । रक्षिप ततो मूर्तियवर् ।१२।
रमेय सुत्तिह सागरवन्ते गंभीर । समरदोळ् कर्मवगेल्वर् ॥
सरतेयोळ् मदराचलदन्ते उपसर्ग । वररलकंपरगिहरुम् ।१३।
मोहननाद चद्रमनन्ते शान्तिय । रुहनु सर्वं चन्द्रमरु ॥
साहसव्रतगळ मणियनु धरसुत । रुहिन मणिगळंतिहरह् ।१४।
क्षरवेनेनाशवदळिवक्षरवेंव । परिशुद्ध केवल ज्ञान ॥
दिरुवनुसहनेयोळिरुव भूमियतेर । अरिवसमतेयोळोरेवर्अ ।१५।
मिदुमाडिमर्न्निनि गेद्दुमनेकट्टे । अदरोळ्वासिपहाविनन्ते ॥
सदनवनितरू कहिरलल्लिये । मुदविल्लदे वासिपरुव् ।१६।
तिरियोळगिद्दरु तिरुहमुह वळिह । सुरचिरवाकाशदन्ते ॥
पोरेववरारिल्लद । निरालवरु सरवरुनिर्लेप करया ॥१७॥
सर्वकालदोळ् मोक्षदन्वेषण । दूर्वियोळिरुव साधुगळु ॥
निर्वाणपववसाधिसुत बाळुवर्व । सर्वसाधु गळ्गेनमिह ।१८।

धर्म व सारुत कर्म भूमियोळिह् । शर्म रु भूरुकालदोळु ॥
निर्मलपद्धति याद भूवलयद । कर्म भूमियद्ध पालिसिर ।१९।
वर शुद्ध चैतन्य विलसितलक्षण । परम निजात्म तत्वरुचि ॥
परम सम्यग्दर्शन दवर्तनेयिपं । परमात्म दर्शन चारन् ।२०।
हुबनिसि कोळ्ळुतलिंद्रिय वर्गवेळ्ळवा । अवरु तम्मोळ् तंदु ॥
समतेयोळ् अविकार दानद मयणगं। सुविशाल वाहतन्नदवमा।२१।
सर्व साधुवु भेद ज्ञान विंदलि । सर्व रागादि गळेंव ॥
गवर्द परभाव संबधगोळिसुव । सवरे क्रिये सम्यग्ज्ञान ।२२।
मनसिज मर्दनरी निश्चय ज्ञान । दनुभवदोळगाचप ॥
चिन्मय तत्वदभ्यास ज्ञानाचार । कोनेयादियारेवाचार ।२३।
तानु शुद्धात्म भावनेयिद हुट्टिसि । दानन्द स्वभाविकद ॥
श्रीनिकेतनदति सुखदनुभूतियु । ताने सम्यक् नुवचारित्रन् ।।२४।।
मर्मद समयक् चारित्र दोळगे । निर्मलववर्तनविरुव ॥
कर्म व हरिपनिश्चय चारित्राचार । धर्म वपरिपालिसुवु ।२५।
वारिज पत्र दोळिरुव नीरिन करण । वारिज वोळु वर्तिपन्ते ॥
सारात्म द्रव्य दोळिर्दु पर द्रव्य । दारैकेयनिरोधि सुतुस ।।२६।।
सर्व समस्त इच्चेगळ निरोधवि । निर्वहिसुतलात्ममनु ॥
सर्वनिजात्म भावनेयनुष्ठानव । निर्वहिसुवदे तपम ।।२७
रसयुत दह उत्तम तदल्लि । वशवर्ति गोळिसुत मनव ॥
असदृश वागिरिसिपुदे निश्चय । दसमान तपदाचार ।।२८।।
वरदर्शनाचार वादनाल्कुगळोळु । मरसदे शक्तियोळ् भजिप ॥
परमात्म परियनाराधिसुवुदु ताने । परिशुद्धवीर्याचारन् ।।२९।।
भूरि वैभवयुतवागिरु वी ऐदु । चारित्राराधनेगळनु ॥
सार पंचाचार वेनुवसिद्धांतद । भूरि वैभवद भूवलयद ।।३०।।

तैरिन कलशविदन्ते तम्मात्मन । सारत्नत्रयात्मकव ॥
कारण समयसारद बलदिंदलि । सेरिसुवुदु निश्चयप्र ।।३१।
सुदृदु भद्रशिव सौख्य मंगलववु । हुट्टिपनिश्चययवदनु ॥
हुट्टिसे कार्यवु समयद सारवु । हुट्टि वहुदुसमाधियया ।।३२।।
धर्म साम्राज्यद श्री वीतरागद । निर्मलात्मन समाधियोळु ।
कर्म संहारव माडुतेनिंदिपं शर्मरु सर्वसाधुगळु ।।३३।।
यातके संसारदाशेय विडुभव्य । पूतर पुण्य पादगळ ॥
नीति मार्गद निर्भर भक्ति यिनीनु । मातुमनसुकायदत्य ।।३४।।
नमिसु स्मरिसु कोडाडु स्तोत्र दोलेंव । क्रमव भूवलय पेळ्वडु ।
श्रमविल्लदे सिद्धांतव मार्गवहोदे । निनगे तप्पदु मुक्ति पदज ।३५।
तीर्थंकररते नन्नात्मनिहनु । स्वार्थवागलु शद्ध ज्ञान ॥
व्यर्थद ज्ञानव केडिसि रत्नत्रय । तीर्थनन्य अंतरंगन् ।।३६।।
लिळियादनन्त चतुष्टय रूपनु । वनित पंचम भाव युतनु ।।
कलिसप्त भयविर्पमुक्त स्वरूपनु । चलुव अखंड स्वरूपदे ।।३७।।
नित्य निजानंदैक चिद्रूपनु । सत्य परात्पर सुखरु ॥
सत्यरु सर्व साधुगळे दरियुत । अत्यंत भक्तियि नमिपे ।३८।।
रुषिगळ नवर पद प्राप्तीयागले । ससमान भक्तियि भजिसे ॥
वशवहुदेल्लरगे सविकल्परूपद । सुसाधि सिद्ध साधनस ।।३९।।
करुणेय गुरुगळ वर पद भक्तियि । बरुव् अक्षरांक काव्यवनु ॥
विरचिसि प्राकृत सस्कृत कन्नड । वेरसि पद्धति ग्रन्थदया ।।४०।।
तिरियोळगिरुव समस्त वस्तुव पेळ्व, । अरहन्तरादियादेदु ॥
परमेष्ठिगळवोल्लिय पद्धतियोळु । विरचिसिहरु वोल्लिदति ।४१।
न्यायादि लक्षण ग्रन्थवनोळगोन्डु । आयहन्नेरडु साविरद ॥
श्रेयोमार्ग श्लोक गळिन्द कट्टिद । श्रेय ऐवर काव्यवप ।।४२।।

यारेष्दु जपसिदरष्दु सत्फलवोव । सारसर्वस्व वि ऐदु ॥
सेरिदर्हत्सिद्धाचार्य पाठक । सारु सर्वसाधु गळर ॥४३॥
तप्पदे भूवलय वोकादि मगल । इप्पत्नाल्वर मन्त्र ॥
वप्पुरपचाक्षर अ सि आ इ सा । विप्पसालक्षर काव्यवमा ॥४४॥
साविरदॆदु नामगळनु कूडलु । पावन वाद गोम्वत्तु ॥
सावाग जीवर कावुवेन्नुत्र काव्य । श्री वीर पेळ्द भूवलयम् ॥४५॥
घरियो ळोम्वत्तुगळ विस्तरिसलु । वरु गकनु रुहन्नेरडु ॥
परिशुद्ध वदमत्ते कूडळु नाल्कु । वरधर्म शास्त्र विम्ब ग्रहगळ् ॥४६॥
वशवाद पचाक्षर दोळगी नाल्कु । होसेयलु नव देवतेया ॥
होसशास्त्र विदतदु कोट्ट भूवलयद । होस पद्धितिगेरगुवेति ॥४७॥
हर्ष वर्द्धनमप्प काव्य ओम्वत्तारु । स्पर्श नोळोन्देरडेम्ब ॥
स्पर्शमणि गळ दादोम्वत्तकके । हर्षदोळ रगुवेनिन्दुस ॥४८॥

अर्थ—मध्य लोक के अन्तर्गत ढाई द्वीप मे मुक्ति मार्ग की साधना करने वाले आत्मकल्याण मे निरत जो तीन कम नौ करोड मुनिगण अनादि (परम्परा) काल से विहार करते हैं उनको मैं मन वचन काय की शुद्धि के साथ नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अर्थ—अपने ज्ञानादिक अनन्त गुणो को भूलकर तथा शरीर आदि पर-द्रव्य को अपना मानकर यह आत्मा अनादि काल से ससार में भ्रमण कर रहा है। जब इस आत्माके आसन्न भव्यता-प्रगट होती है तब यह अपने हृदयमें प्रथम श्री जिनेन्द्र देव को स्थापित कर लेता है ॥२॥

अर्थ—सयमी साधु पाच महाव्रत तथा तीन गुप्तियों को समान रूप स पालन करते हैं, उपवास यानी आत्मा के समीप रहने के उपक्रम के मार्ग से (उपेत्य वसति, इति उपवास) कहे हुए विधान के क्रम से साधु १८ हजार प्रकार के शीलो तथा ८४ लाख उत्तर गुणो को समझकर पालन करते हैं। वे पाचवें परमेष्ठी साधु हमारे (साधारण जनता के) देखने में तो पृथ्वी पर चलते हैं, वैठते हैं, भोजन करते हैं, परन्तु यथार्थ में वे चलते हुए वैठते हुए तथा भोजन करते हुए भी आत्मसमाधि में लीन रहते हैं। वे अन्न का भोजन करते हुये भी ज्ञान-अमृत-अन्नका ही भोजन करते हैं ऐसा समझना चाहिए। आत्मसमाधिमें लीन रहने वाले उन साधु परमेष्ठियो पर चाहे जैसे भयानक कष्टदायक उपसर्ग आवें किन्तु वे आत्म-ध्यान से च्युत (स्खलित) नही होते, आत्म-ध्यान में लगे रहते हैं। जिस तरह सिंह भयानक बाधाए आने पर भी पीछे नही हटता, आगे ही बढता जाता है, इसी तरह वे सिंह-वृत्ति वाले साधु विघ्न-बाधाओ के द्वारा आत्म-ध्यान से पीछे न हटकर आगे बढते जाते हैं ॥३-४-५-६॥

अर्थ—जिस तरह गौरवशाली स्वाभिमानी गजराज (हाथी) के सामने यदि चावलों का ढेर, गुड की भेली तथा नारियल की कच्ची गिरी खाने के लिये रख दी जावे तो वह लोलुपी होकर उसे खाता नहीं, गम्भीर मुद्रा में खडा रहता है, जब उसका स्वामी उसके दाँत, सू ड तथा मस्तक पर प्रेम का हाथ फेरकर थपथपी देता है, भोजन करने की प्रेरणा करता है तब वह बडी गभीरता के साथ भोजन करता है। उसी प्रकार गौरवशाली स्वाभिमानी साधु लोलुपता से भोजन नही करते, वे बडी नि स्पृहता के साथ भक्ति सहित ठीक विधि मिलने पर शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं ॥७॥

यानी—कुत्ता अपने भोजनदाता के सामन आकर पूंछ हिलाता है, अपने पैरो को पटकता है, जमीन पर लेट कर अपना पेट और मुख दिखलाता है, ऐसी चाटुकारी (चापलूसी) करने पर उसको भोजन मिलता है किन्तु हाथी ऐसी चापलूसी करके भोजन नही करता वह तो धीर होकर देखता है और अपने स्वामी द्वारा चाटुकारी किये जाने पर भोजन करता है।

महाव्रती साधु भी भोजन के लिये लोलुपता प्रगट नहीं करते, न किसी से भोजन मांगते हैं, न खाने के लिये कुछ सकेत करते हैं, उन्हें तो जव कोई व्यक्ति भक्ति तथा श्रद्धा के साथ भोजन करने की प्रार्थना करता है तब वे बडी नि स्पृहता और गम्भीरता के साथ अपनी विधि के अनुसार भोजन करते हैं।

अर्थ—जिस तरह गाय दिन में वन में जाकर घास चरती है, और रात को घर आकर बैठकर जुगाली (चरी हुई घास का रोंथ) करती है, इसी प्रकार साधु दिन में जो शास्त्र पढ़कर ज्ञान प्राप्त करते हैं, रात्रि के समय उस ज्ञान का खूब मनन करते हैं, उस ज्ञान अमृत का आत्म-ध्यान द्वारा पान करते हैं॥८॥

अर्थ—जिस तरह भोला हिरण अपने पराक्रम और वेग से दौडता है। उसी तरह साधु भी मन वचन काय की सरलता के साथ विचरण करते हैं। जिस तरह हरे भरे खेत जिस में कि गेहू, आदि अन्न अपने बालि [भुट्टे] से बाहर नही आ पाये; है कोई गाय छोड दी जावे तो वह उस धान्य की बालि (भुट्टे) का हानि न पहुंचाती हुई, केवल उस खेत की घास को खाती है, इसी प्रकार साधु गोचरी वृत्ति से, भोजन कराने वाले दाता को रंच मात्र भी कष्ट या हानि न पहुचाते हुए सादा नीरस शुद्ध भोजन करके अपना उदर पूर्ण करते हैं ॥१०॥

अर्थ—इस अनन्त आकाश में जिस प्रकार वायु अपने साथ अन्य किसी भी पदार्थ को न लेकर सर्वत्र घूमती है, उसी प्रकार साधु नि सग होकर सर्वत्र विहार करते है ॥११॥

अर्थ—आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठी अपने दिव्य ज्ञान से त्रिलोकवर्ती त्रिकालीन पदार्थो को जानकर समस्त जीवो को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए विचरण किया करते है ॥१२॥

अर्थ—जिस तरह समुद्र पृथ्वी को घेर कर सुरक्षित रखता है इसी तरह अपने हितमय उपदेश से ससारी जीवो को घेर कर साधु उनकी रक्षा करते हुए स्वय कर्म शत्रुओ के साथ युद्ध करके कर्मो पर विजय प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार सुमेरु पर्वत वज्रपात तथा झझावात (भयानक आँधी) से चलायमान न होकर निश्चल रहता है उसी तरह साधु महान भयानक उपद्रवो के आ जाने पर भी अपने आत्मध्यान से चलायमान न होकर अचल बने रहते हैं ॥१३॥

अर्थ—जिस तरह ग्रीष्म ऋतु में भयानक तीक्ष्ण गर्मी से सन्तप्त मनुष्य को रात्रि का पूर्ण चन्द्रमा शान्ति प्रदान करता है, इसी प्रकार ससार दुख मे सन्तप्त ससारी जीवो को साधु परमेष्ठी अपने हितमित प्रिय उपदेश से शान्ति प्रदान करते हैं। वे साधु अपने हृदय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूपी रत्नत्रय की माला धारण करते हैं और वे रत्नत्रय को ही अपना शरीर समझते हैं यानी शरीर आदि पर-पदार्थो पर ममता नही करते ॥१४॥

अर्थ—'क्षर' का अर्थ 'विनाश' है, अत "अक्षर" का अर्थ "अविनाशी" है। केवल ज्ञान अविनाशी है अत उसे 'अक्षर' भी कहते हैं। बहिरग में जो 'अ इ' आदि ६४ अक्षर हैं वे भी जगतवर्ती समस्त जीवो को कर्मभार से हलका करके अविनाशी बनाने वाले हैं। इन ६४ अक्षरो से भूवलय का निर्माण हुआ है। इस भूवलय से ज्ञान प्राप्त करके साधु परमेष्ठी अपने उपदेश द्वारा समस्त जीवो का कर्मभार हलका करते हैं ॥१५॥

विवेचन—भूवलय के इस तीसरे अध्याय के प्रथम श्लोक से १५ वें श्लोक तक के अन्तिम अक्षरो को मिलाकर प्रचलित भगवद्गीता के ८ वें अध्याय के १३वें श्लोक का 'ओमित्येकाक्षर ब्रह्म' यह चरण निकल आता है। तथा इसके आगे १६वें श्लोक से २९ वें श्लोको के अन्तिम अक्षरो को मिलाकर गीता के उक्त चरण से आगे का द्वितीय चरण "व्याहरन्मामनुस्मरन्" निकल आता है। इसी प्रकार आगे भी भगवद्गीता के श्लोक निकलते हैं। उस गीता के अन्तर्गत 'ऋषि मडल' स्तोत्र निकलता है। उस गीता के श्लोको के अन्तिम अक्षरो को एकत्र किया जावे तो 'तत्वार्थसूत्र' के सूत्र बन जाते हैं।

अर्थ—जिस तरह दीमक अपने मुख मे मिट्टी के कण ले लेकर बावो तैयार करती है, पर उस बावी में आकर सर्प रहने लगता है फिर कुछ समय के बाद वह सर्प उस बांवी से मोह छोड कर वहा से निकल अन्यत्र रहने लगता है। इसी प्रकार साधु गृहस्थो द्वारा बनवाई गई अनियत वसतिका (मठ-धर्मशाला) में आकर कुछ समय के लिए ठहर जाते हैं और कुछ समय पीछे उस वसतिका से निकलकर निर्मोह रूप से अन्यत्र विहार कर जाते हैं ।१६।

अर्थ—जिस प्रकार पृथ्वी के ऊपर का आकाश दूर से (क्षितिज पर) पृथ्वी को छूता हुआ-सा दिखाई देता है किन्तु वास्तव में आकाश पृथ्वी आदि किसी पदार्थ को छूता नही है, निर्लेप निराधार रहता है। इसी प्रकार साधु अपनी आत्मा में निमग्न रहते हैं, ससार के किसी पदार्थ का स्पर्श नही करते, आकाश के समान निर्लेप, निरावलम्ब रहते हैं ।१७।

अर्थ—साधु परमेष्ठी को सदा मोक्ष प्राप्त करने की अभिलाषा रहती है और वे सदा मोक्ष की साधना में लगे रहते हैं। उन साधु परमेष्ठी को हमारा नमस्कार है ।१८।

अर्थ—वे साधु द्विज वर्ण के होते हैं, कर्मभूमि में विहार करते हैं, दुर्गुणो से अछूते यानी निर्मल रहते हैं तथा कर्मभूमि की जनता को पद्धति ग्रन्थ भूवलय का उपदेश देते रहते हैं ।१९।

अर्थ—वे साधु श्रेष्ठ होने से 'परमेष्ठी' कहलाते हैं, विशुद्ध चैतन्य ज्योति

को प्रज्वलित करते हैं, अपने आत्मतत्व में ही रुचि करते हैं, इस आत्मतत्व रुचि को ही सम्यग्दर्शन कहा जाता है। सम्यग्दर्शन को निर्मल रीति से आचरण करना दर्शनाचार है। साधु परमेष्ठी सदा दर्शनाचार में रत रहते हैं।२०।

अर्थ—पाचो इन्द्रियो के इष्ट अनिष्ट विषयो में राग द्वेष भावना को त्यागकर साधु परमेष्ठी इन्द्रियो को आत्म-मुख करलेते हैं तथा समस्त पदार्थों मे समता भाव रखते हैं। वे किसी भी प्रकार का विकार नही आने देते। आनन्द से सदा आत्म-आराधना में लगे रहते हैं।२१।

अर्थ—वे साधु अपने भेद विज्ञान द्वारा आत्मा को शरीर से भिन्न अनुभव करते है। तथा ऐसा समझते हैं कि राग द्वेष से उत्पन्न कर्म द्वारा शरीर बना है और यह पर भाव का सम्बन्ध कराने वाला है। ऐसा समझकर वे शरीर से ममता छोडकर आत्मा मे ही रुचि करते हैं।२२।

अर्थ—मन्मथ (कामदेव) का मथन करनेवाले साधु परमेष्ठी अतरग तथा वहिरंग का मर्म समझते है और वहिरग पदार्थो को हेय (त्यागने योग्य) समझकर अपने चित्स्वरूप आत्मा को ही अपना समझते हैं। इस प्रकार ज्ञाना-चार के परिपालक साधु परमेष्ठी हैं।२३।

अर्थ—अपने आत्म-अनुभव से प्राप्त हुए अनुपम सुख को प्राप्त करने वाले साधु पृथ्वी आदि पदार्थो से मोह ममता नही करते। इस निवृत्ति से उत्पन्न हुआ आनन्द अनुभव के साथ 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा अनुभव करते है। उस साधु की शुद्ध प्रवृत्ति ही समयक्चारित्र है, ऐसा समझना चाहिए।२४।

अर्थ—इसी निर्मल सम्यक् चारित्र का आचरण करनेवाले, तथा कर्मो का नाश करने की शक्ति रखनेवाले, निश्चय चारित्र को ही धर्म समझने वाले साधु परमेष्ठी क्या इस जगत मे धन्य नही हैं ? अर्थात् वे धन्य है।२५।

अर्थ—जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पडी हुई जल की बून्दे कमल के पत्ते को न छूकर इधर-उधर होती रहती हैं। इसी तरह साधु ससार में विचरण करते हुए भी समस्त वाह्य पदार्थो से निर्लेप रहकर स्व-आत्मा में निमग्न रहते है।२६।

अर्थ—समस्त इच्छाओ को रोककर आत्माधीन करनेवाले, और अपने आत्मा को परमात्मा स्वरूप भावना करनेवाले तथा उसी के अनुष्ठान को ही परम तप समझनेवाले साधु-परमेष्ठी है।२७।

अर्थ—आत्मा के उत्तम गुण उत्तम तप से प्रगट होते है। आध्यात्मिक गुण जैसे-जैसे प्रगट होते जाते हैं, तैसे-तैसे चित्त आनन्द से भरता जाता है। उस आनन्द को वढाते जाना ही श्रेष्ठ तपाचार है।२८।

अर्थ—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार तथा तपाचार इन चारो आराधनाओ मे रत रहनेवाले, आत्म-आराधक साधु की आत्म दृढता को 'परिशुद्ध वीर्याचार' कहते हैं।२९।

अर्थ—परम वैभवशाली चारित्राचार को ही विद्वान लोग 'पचाचार' कहते हैं। उस पचाचार का प्रतिपादन करनेवाला यह भूवलय है।३०।

अर्थ—जिस प्रकार मदिर के शिखर पर तीन कलश होते है उसी प्रकार आत्मा के शिखर पर रत्नत्रय रूप तीन कलश हैं इसी को कारण समयसार कहा गया है। इसी कारण समयसार से निश्चय समयसार प्राप्त होता है। निश्चय समयसार का ही दूसरा शुद्ध आत्मा है, ऐसा समझना चाहिए।३१।

अर्थ—सुष्ठु, भद्र, शिव, सौख्य ये मगल के पर्यायवाची नाम हैं। उस मगल को उत्तम करने का निश्चय आत्मा मे उत्पन्न होना ही कार्य समय सार है और वही कार्य समय सार साधु परमेष्ठी की परम समाधि को देने वाला है।३२।

अर्थ—धर्म साम्राज्य, वीतरगता तथा निर्मल समाधि मे एव कर्मों का विनाश करने के लिए तत्पर हुए श्रमण को ही साधु 'परमेष्ठी' कहते हैं।३३।

अर्थ—हे भव्य जीव ! ससार से तुझे क्या प्रयोजन है; इसे छोड। तू पवित्र साधु परमेष्ठी के चरणो का मन वचन काय से सेवन कर। इसी से तुझे अविनाशी सुख अनन्त काल के लिए प्राप्त होगा।३४।

अर्थ—हे भव्य जीव ! तू साधु परमेष्ठी को नमस्कार कर उनको हृदय में रखकर स्मरण कर, उनकी स्तुति कर, तथा उनकी प्रशसा कर। इस प्रकार क्रम को वतलानेवाले भूवलय सिद्धान्त के प्रतिपादित मार्ग को यदि तू ग्रहण करेगा तो तुझसे मुक्ति पद दूर नहीं है।३५।

अर्थ—हे भव्य जीव ! जिस तरह अर्हंत तीर्थङ्कर का परिशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वरूप आत्मा है वैसा ही आत्मा मेरा भी है। वह परिशुद्ध ज्ञान व्यर्थ

अज्ञान को दूर करनेवाला है। अत सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मेरा आत्मा ही तीर्थ है और वही अतरग सार है।३६।

अर्थ—जिस तरह कीचड मिट्टी आदि से रहित जल निर्मल होता है उसी तरह मेरा आत्मा अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य स्वरूप निर्मल (कर्म मल रहित) है। वही पचम गति रूप है और वही आत्म स्वरूप सप्त भयो का विनाश करके अखण्ड अक्षय मोक्ष सुख को देने वाला है।३७।

अर्थ—नित्य, निजानन्द, चित्स्वरूप मोक्ष सुख की प्राप्ति में जो सदा रत रहते हैं 'तुम इसी सुख को आराधना करो' इस प्रकार भव्य जीवो को जो सदा प्रेरणा करते रहते हैं, ऐसे साधु परमेष्ठी का ही तुम सदा ध्यान करो, आराधना करो और पूजा करो।३८।

अर्थ—'वेही महर्षि हैं, उनके पद हमको प्राप्त हो।' ऐसी भक्ति भावना से आराधना करनेवाले आराधक को सविकल्प समाधि की सिद्धि होती है।३९।

अर्थ—दया धर्म के उपदेशक तथा सस्थापक पच परमेष्ठी की भक्ति से आनेवाले अक्षर-अक काव्य को प्राकृत सस्कृत कानडी मे गर्भित यह भूवलय ग्रन्थ है। यही भूवलय दयामय रूप है।४०।

अर्थ—इस ससार में रहनेवाले समस्त वस्तुओ को कहनेवाले अर्हंतादि पच परमेष्ठियो के वोल्लि नामक ग्रन्थ की रचना श्री भूवलय पद्धति के क्रमानुसार अतिशय रूप से पूर्वाचार्य ने की है। उस ग्रन्थ मे न्याय लक्षणादि ग्रन्थो को गर्भित करके उसे सातिशय बनाया गया है। उस ग्रन्थ में १२००० श्लोक हैं। वे श्लोक परम्परा से अभ्युदयकारक तथा नि श्रेयस मोक्ष मार्ग की चरम सीमा तक पहुंचाने वाले हैं। उसमे केवल पच परमेष्ठियो के ही विषय हैं।४२।

अर्थ—इस काव्य की आराधना या इसका स्वाध्याय जितने भी भव्य जीव करेंगे उन सबको यह उत्तमोत्तम फल प्रदान करनेवाला है। इसलिए सार गर्भित उपर्युक्त पच परमेष्ठियो के अको में पुन अर्हंत सिद्धाचार्य उपाध्याय तथा सर्वसाधु के मिलाने से उभयानुपूर्वी कथन प्रकट हो जाता है।४३।

अर्थ—इसे नियम पूर्वक यदि गुणा करके देखा जाय तो भूवलय क आदि मे मगल रूप २४ तीर्थङ्करो के मन्त्र अ सि आ उ सा इस पचाक्षर मे गर्भित हैं। इस प्रकार पक्तियो द्वारा अक्षरो से परिपूर्ण काव्य ही पच परमेष्ठो का "वोल्लि" है।४४।

अर्थ—भगवान के १००८ नामो को यदि आडा करके परस्पर में मिला दिया जाय तो ९ अक आता है और वही ९ अक ससार में जन्म-मरण करनेवाले जीवो को ससार सागर से पार लगाकर अभीष्ट स्थान में पहुंचा देने वाला है, यह भूवलय का कथन है।४५।

अर्थ—इस प्रपच में ९ अक रूपी विस्तृत काव्य को श्री भगवान महावीर स्वामी के कथनानुसार यदि गणित की दृष्टि से देखा जाय अर्थात् १००८÷९=११२ हो जाता है और इसी ११२ को सीधा करके यदि जोडे तो इस योग से प्राप्त ४ अको मे से ३ ही जाता है। इन्ही चारो के आधार पर क्रमग १ धर्म, २ रा शास्त्र ३ रा अर्हद्बिम्ब और ४ था देवालय है। इस दृष्टि से अक को विभक्त किया गया है।४६।

उपर्युक्त पचाक्षर का अर्थ पच परमेष्ठी वाचक है। और उस पच परमेष्ठी में ऊपर के ४ को मिला देने से ९ देवता हो जाते हैं। इस तरह क्रम से ९ अक के साथ ९ देवताओ के स्वरूप को वतलाने वाले इस भूवलय अर्थात् पच परमेष्ठी के नूतन "वोल्लि" पद्धति को मैं नमस्कार करता हूं।४७।

अर्थ—हर्ष वर्द्धन नामक काव्य मे ९६१२ अक हैं। स्पर्श मणि के समान इन्ही अको को यदि आडा मिला दिया जाय तो सब ९ अक को मैं सहर्ष मन, वचन काय पूर्वक नमस्कार करता हू और पच परमेष्ठी आदि सर्व साधुओ को मैं नमस्कार करता हूँ।

वे सर्व सा ु किस प्रकार हैं? तो "साधयन्ति ज्ञानादि शक्तिभिर्मोक्ष" इति साधव। समता वा सर्वभूतेष, ध्यायन्तीति निरुक्ति न्यायादिति साधव।४८।

चौदहवां अध्याय

ळु* स्वर काव्यदनन्त तीर्थन्कर । हरस् वल्लद् श्र 'ळु' स* वरवु । सुस्वरविदनन्त गणनेय श्रतिशय । द स् वरदश्र्ग भूवलय ।१॥
वि* 'नमि नेमियुपार्श्वजिनरत्नत्रयर्'इगे । धनभक्तिय् 'उ' इ* ति 'विमल' ॥ तनि'वकुलशरुन्गदारुक्रमदव्रुक्प' । घन 'भूलदोळ्'
स* 'तपगेयुदिद्द'स'क्रमदभूवलयके' । हितदि'नमिप्श्रो[१]मन द* श्रोष' ॥ युत'केसिद्धान्तदशास्त्रवुतनुविगे' । हित'पुराणावाय'वनारु ॥३॥ सिभमुवामि ॥२॥
न्* 'दनुपम वचनद दोषके शब्दव । 'तद 'रधन सिद्धान्त् श्र' धा* रि ॥ श्रदन 'वनरुहिम(२)श्रीवर्धमानजि'।वद'नेन्द्रन'वासुन्गाज्रुष ॥४॥
तु* स'वाणियसेविसिगवतमन्ऋपियु' । यशव'भूवलयादिसिद्धान्' ना* ॥ सूस'तगळयुवकेकावेसुवहनएरड् । ससमा'नुग्श्र[३] वनु' तिरहयसूव ॥५॥

वाशर 'वृषभसेन' वर्ये ॥६॥ गुश्रशवणि 'व्रामुहि सवनदरियुता ॥७॥ श्रसुवनु 'मोक्पदोळ्तोर्वान्' ॥८॥
र्सवसतु ग्रन्थदोळ्' दयेय ॥९॥ तिसहस्र 'सूत्रान्कम् श्ररु, पि ॥१०॥ गुसुगुट्टु 'वन्गवन् श्ररितु' ॥११॥
दशधर्मवादियवरन्क ॥१२॥ केसरिल्लदतिशय पन्नीर् ॥१३॥ पोसदउपवासद कर्मा ॥१४॥
नशवळिविहृ 'यश' दुश्राणि ॥१५॥ मुसल 'व मुट्टदयश' स ॥१६॥ कुमुळदे 'पाळ्डग्रन्थन्' ॥१७॥
लस 'दूरव्यवनेल्ल वरिग ॥१८॥ गसवणि 'श्रणियोगद्दार' म् ॥१९॥ ळेसरूदारु 'दूरव्यान्क' ॥२०॥
मसव्रुश 'गणितवनध' दय ॥२१॥ कसवळिसुत वाळव' श्रनक' क् ॥२२॥ यशवेल्ल 'वळ सिरुव' तत् ॥२३॥
'भूपुरराधिप' यशवा ॥२४॥ 'वश वर 'तियागदन्का फ ॥२५॥ लशवन्कदोळु 'वनद' फला ॥२६॥
'यशदन्क वेरडागुव' नि ॥२७॥ व्रशवद 'तिशयद विद्या' श्रव ॥२८॥ काशाव्यापिय 'वलयानक' ॥२९॥

जि* तवनु 'पेळेमुन्दकेश्रुतकेवलि । शत 'गाळुजिनत्राणियश्रनु' मृ* तुतवा 'हदिनाल्कु घन पूर्वेगळलि' हितदि 'कट्टिरिसिरवा' रतेय ॥३०॥
ण* व'पूर् वेयोळ जनर'वर'जीवनकोमुडु । सवि'पूर् वेफ[४]र म'द को* ळु ॥ रव'णीयवादोमृदुपराणावायद' ।सवि'क्रमवोळु'धोविनुनो ॥३१॥
व* नु'वनु'हदिभूरुकोटि'य'क्रमवादसि' । घनरा'द्घानतलेककद'लि र्* जिन'पवद'लिश्रमहारियायुर्वेद । वन् श्र(५)धर्मसाम्राज्यमनयम् ॥३२॥
रि* द्र धीय 'वादोवेवदनकवु कर्मं' । सद्यय 'जाड्यगळ कोल्लु, त* 'वु ॥ दु' द्वद 'निर्मलवइ मध्यमृमद' । सद् 'दिनवलि' तारचहि ॥३३॥
न्* ररोळु'शर्मरुगुणिसिदक्परवश्'[६] श्र । वर'मालेय सोन्नेग' ना* ॥ सर'ळारन्कदहिन्वेसालिनोळ्नाल्नाल्कय् । वेरडमुमेलेसोन्नेगुसो'
वा र 'न्ने एन्टेरडयुवु तलन्ते वन्' । वार'वरडोमृदेरड् श्रा' [७] व* श्र ॥ शारदे'नालगुणेलोपहवचुवश्रक्प' । त्रा 'र' णायारिवनइ ॥३४॥
(२१२५२८००२५४०००००००-प्रा वश्रन्क) कर पात्र वान श्रेयामस् श्रर ॥३६॥ यन्रवनव्य श्री बरमहववत ॥३५॥
विरेदान सुरीन्द्र सेनव् ॥३८॥ मरळलु इन्वर नक्प् त्या ॥३९॥ लारन्क पद्म सेनवनी ॥३७॥
॥४०॥

यरस सोमसेनणुवूरती ॥४१॥ नरश्रेष्ट महेन्द्र सुरमे ॥४२॥ सोरमेयय सोमसेननरुपा ॥४३॥
नेरेयोपुष्य मित्र भूपर् ॥४४॥ गिरियगरद पुनर्नसुय ॥४५॥ सेरेयळिव सवन्दर करुनि, ॥४६॥
भारतजयदत्तसवर्णश् ॥४७॥ ळुरद् विशाखदत्त सुरुचि ॥४८॥ दोरे धन्य सेन सुरनुत ॥४९॥
नुरद सुमित्र धर्ममितरम् ॥५०॥ वेरे महाजित नन्दि सम ॥५१॥ सर वृषभर्ध वतत ॥५२॥
वरसेन धन्य सेन गणमु ॥५३॥ मरेय सुकूळर सरनुत् ॥५४॥ सरुवरिप्पत्नाल्कु दात ॥५५॥

अ॰ दु'वयद्‌यसालनकसरदपादरसपो' । फद'लागदनतदअ' अ॰ रळद ॥ विध'हूविनिन्दरेदागलीलेयिनदिपदु' । विध'छदरगळुन(८)मतवशशा॥५६॥
म॰ न यशवागिओन्दरोळोनदकेबेरे।य'नल'वेहोसपुटदोळु भ' न॰ ॥ घनिर 'समवागि कुसुमायुर् वेदद महि । मे' न 'यसारुवअस'सियसप् ॥५७॥
रा॰ शिस'नरुशकावयभूवलयअ'(९)वु'निलय' । आशेय'व वनविते' ते॰ ॥ लेसिन 'तुवीर्यरक्षणोभाळ पअकपरान' ईशन 'कद सिद्धरापमन ॥५८॥
सु॰ 'रसदरक्ष' णोकाव्यदोळे न दुभे । ष'रव'जमषटधा'सूत्र'। य॰ र'षजरिद्धियक्षयवप्राणरक्षणो।य अ'र'ल[१०]रसपवकवा'थासम् ॥५९॥
र॰ ववा 'गलु पुष्पद रसदिन दहो ।स, व'सिद्धरसवादनत ए' ॥ स॰ वणने 'होस वयद्‌य दानद फलविन्दा'। सवना'त मगेहोस'तिन शाम् ॥६०॥

दअवनु आदिमनु 'भरत' म् ॥६१॥ उवशरोत्‌रु सिरि 'सत्य भआव' म् ॥६२॥ ववएस ' सत्य वीर्य' नउम् का ॥६३॥
अवरोळु सवि'मित्रभाव' म् ॥६४॥ नवनुम् ई सिरि 'मित्रवईर्या' ॥६५॥ लुव वमशअ 'धर्मवीर्य' वअना ॥६६॥
ववरोळु 'वानअवीर्य,वअना ॥६७॥ नअव शरोतरु अव 'मघव वीर्यम् ॥६८॥ गेविवर 'वोदध अ वीर्य आ' नक ॥६९॥
कविवनद्‌य'सीमअनदअर'रअवर् ॥७०॥ नअवअशरोत्‌रु 'त्रिपिष्ट'सधर्म ॥७१॥ विविधभअकृति'द्विपिष्टआ'वनएा॥७२॥
मवने 'स्वयम् भू' भूभुजनुम् ॥७३॥ लावणय 'पुरुष श्रोत्तम' नअेन् ॥७४॥ गवरोळु 'पुरुषवरअ' वअया ॥७५॥
पावअन'पउन्डरीकअ' चअस ॥७६॥ लिवियर 'वुअत्तवअर अ' अवनुम् ॥७७॥ गवियअोग 'कुननालअ' रसरस ॥७८॥
ळवरोळुसिरि'नारायण'नउघ ॥७९॥ चवन 'सुभ औम्' 'अजितनजयअन् ॥८०॥ लवरोळउ 'उगरस एसअ' वया ॥८१॥
मवविव'अजइतअसएनअ' रअस ॥८२॥ कविवनद्‌य अ 'शरेणिकअनरप' म् ॥८३॥

व॰ र'देहप्राप्तबागुवदअ'(११)नु'घूळिधु । सरितवागिह मुनिदेह ' ॥ सि॰ र'वघूळिनस्पर्शनवागेहाळाद' । नरनिगे 'मह महआ' तनक ॥८४॥
न॰ वेद'व्याधियरिद्धिगे' सवि 'हेळुव' । सवि 'रामवषधर्धिम्' (१२) द॰ ।। अवर'तममबायिय'सवि'एनजलुगुळलु'कविद'उममुवसेचने'व ॥८५॥
द॰ वर'यिनदनममव्याधिगळेल्लउपशम' । द 'वप्पुदु' नव दा॰ 'हेममे, ॥ नव'क्ष वेळवषधर धियर'[१३]ल्लिकनुगुव । वेवरिनिमहुदुव मल' यो ॥८६॥

इ॰ नि 'दिनद कोनेगालद रोगवडगे'शरी । 'जिन मुनिगळ रिद्धियद न॰ घन'भलऔषवि'रिद्धि'एनुवराग।म'न'कोविदरसा(१४)लीले'व॥८७॥
दा॰ रि 'यिम् किविदनतनासिककर्णिन' । सारमेय 'मालेगळिम् वन त॰ ॥ सोरि'दमलदिम 'हाळागेसकलरो' । गारागे'गदरिद्धियुनट'इ॥८८॥
आर म रु देश 'कवशल' र वश) दु ॥८९॥ ळेरडु एनदऐने 'पारशवद्‌वय' ह ॥९०॥ बर होळयअदले'कअशइ' यरउ ॥९१॥

वर 'शीतलरुउ' 'माळ्अव् अ' स ॥९२॥ यर 'देश' 'वासुउपूज्य' व्अर् ॥९३॥ द्र 'विमलाननत् अ' सुअर्उव ॥९४॥

रुरु 'धर्म्अ मल्लि नम् इ' नक ॥९५॥ ह्अरु 'म् उनिसुव्र्अत्अ' अवेर् ॥९६॥ मुरु'एळुजन्अर्'अन्गद्व्अ'रम ॥९७॥

लररु 'वीररु नेम्रि 'विदेह अ' वफ ॥९८॥ यरु 'शान्ति कुन्थ्उ अर्अ' वल ॥९९॥ म्रर्'कुरुज्आन्ग्अरु'व्अरह्अत् ॥१००॥

वर 'देश' द्उत्तरव् 'स् अरया ॥१०१॥ मूरि 'वलयद् अवर अर्इग ॥१०२॥ तिरुगदिह्अरु'भूवअलयव्अनु'म् ॥१०३॥

वरुशिसल्आ 'देशद्पद्अ' प् 'परुषदकरिग' यदुसरस् ॥१०४॥ भरत देशद सिरियअ व्अरा ॥१०५॥ कुरुनाउ अतिशयद् कुरु हु ॥१०६॥

घ* वर्'आगेपेळुमलव्षधर्धिय सम्' (१५) सवियद्'लालित्य'त्व् अ* गे ॥ सवि'काव्यनालगेयिन्द'लि'वरुवन्ते' । अवु 'सालादमल ॥१०७॥ वर 'वय्राग्यवुसतत् ॥१०८॥ 'नरर सव्भाग्य भूवलया' ॥१०९॥

उ* ग् 'अळपालेल्ल दिव्यवपधवप्पदे । ह्' गल'दहेलुच्चे विष्टा' प्* ॥ 'व'ग'धर्धिनम्'(१६)आगे'तनुविनस्पर्शदगाळि । यु'गुळि मूतरादि ग्' ॥११०॥

द* रिगद'व्याधिगलेल्लकोनेयागिनोरोग' । दनु'वागुवरिद्धिय ज' र* ॥ ह् 'नन सर्वव्षधर्वि सना' [१७] यु 'मनवसोम्कि । द' 'सोकलु' अ 'तनुविन्अ' ॥१११॥

अ* डु 'वप्प जिनमयवन्तिर्प रिद्धि मु-। नि' द 'यमुखवसार्द' सि* विष' ॥ वदु 'वम्रुतवदागे तनुआस्याविषर्विय । सि' (१८) न 'कालकूटवम्रुतवम्' ॥११२॥

क्* विद 'इ वोळलुविषव' द 'म्रुत तार' । स 'वागुव रिद्धियिदु सेरिद्' सविय् 'अ मुनियद्रुप्टियुविप वम्रुतसा । खेद्रुप्टिविषर्वि ३॥ दवर 'नेरवद्रुप्द्' वि ॥११३॥

इ* डु 'चित्रविचत्रवादव्षधरुधिगळ्' । इव 'एनुडुहत्रके' ध* रि 'वनुडु' ॥ अदु'सारिरुवचित्रवल्लियेमोदलाद' । अदर 'मूलिकेगळम् भ' [१९] वनच् ॥११४॥

सु' पुक् ॥११५॥

वेदकल, अमृरुतवदुविष ॥११६॥ मूदवळियुव 'सोप्पिनरुगा' ॥११७॥ रिद्धिगे वरुवदु सरह ॥११८॥

गदुकिन तिरुळवु 'केपळक' ॥११९॥ ओदळु 'मादलदगिड' ॥१२०॥ 'वदन रसके वमुगुळु' म् ॥१२१॥

रदरलि 'दन्त डुर्मल' न ॥१२२॥ रोधन 'कर्णकुन्डल' वज् ॥१२३॥ 'ढददन्क गरुदे' य सकदव् ॥१२४॥

'नदलिसुव हूवनरे' ए ॥१२५॥ 'ढदकप्र' गुणवरिय ॥१२६॥ 'उदय के तिरुगुव पदुम' ॥१२७॥

रद 'रेलेयदु हविनरस्' ॥१२८॥ 'पद्मावति वेविय अरिगमा' ॥१२९॥ रुददन्क 'रसमरिग' यवुभि ॥१३०॥

इवरलि 'देवेनद्र यति' हि ॥१३१॥ सद 'जिनवत्त गेयदनु' पा ॥१३२॥ आदर 'लक्किय मर' पा ॥१३३॥

गदहर 'सद्वसार' वद ॥१३४॥ इदरिनद 'रससिद्धि' युवस ॥१३५॥ यदु 'प्राणावाय रस' मा ॥१३६॥

विध 'वय्द्वदनगकोविद' न् ।।१३७।। 'सदनद त्यागिगळगवनि' ।।१३८।।
ल्* दद 'त्रिसि ग्रन्थके तनु ताम् (२०)तनक्षण । हृदिनेन्दुस्श्रा व्* इरश्लोक' ।। स 'द सूत्र वय्द्यान्कदक्रम'वि 'दि चित्रि । सि' ह हृदिनेन्दु साविर' व ।।१३९।।
ए* रिसि'जातियउत्तमहूविनिम्'।सा'रसगो[२१]रसवनु हू' ।। पारदव् श्र* हूविनिम् मर्दिसि पुट' । दारय 'विट्टु 'होस रस' र् ।।१४०।।
स्* वरग्नु 'घुटिकेय कट्टि' द 'रससिद्धि' । रवि 'यागसिद्धान्त' द क्* या । ख'रसायनहोसकल पसूत्रवय्द्यवद् [२२] सु'वशगोळि सिदश्री' शयति ।।१४१।।

श्रा* नुव 'समन्तभद्राचार्यऋषियुप्रा' । णद'णावायदिन्द्ग्र' स्* शी । लणवेन्दु'होसेदकाव्यवुचरकादिगाळ'णिय'रियदग्रसद्रुश'तु ।।१४२।।
स्वण'वय्द्यागमक्रु(२३)ललितायुर्वेद' । सवन'वेल्लवु'सवि श्रो* दु। श्रवु 'हुट्टितिल लिन्दइळ यवरेल ल'ग्सवि'विल लिन दवळेसुत'म् ।१४३।
दव्रुषभाजितानन्वकु ।।१४४।। नव श्रभिनन्दन र्एल्ल ।।१४५।। केववर् श्रयोध्या पुरक् ।।१४६।।
तव शम्भव श्रावस्तियष।।१४७।। रविनीतापुर सुमतिवय ।।१४८।। व्व पद्मप्रभ पुरसुक् ।।१४९।।
दव कव्शमृभिय पुररु ।।१५०।। वव पार्श्व सुपार्श्व रवित।।१५१।। णु वाराणशि एन्देने काशिप।।१५२।।
पवि चन्द्रप्रभ चन्द्र पूरवो।।१५३।। वव सिरि पुष्पदन्त जिनप।।१५४।। नव पद काकन्दिपुरम् ।।१५५।।
नव शीतल भद्रिळा पुर्प।।१५६।। द्व श्रेयाम्स सिम्हपुर ।।१५७।। उ वासु पूज्य चम्पापुरप।।१५८।।
केविमल कम्शल्य पुरश् ।।१५९।। श्रव धरम रत्नपुर दय ।।१६०।। तव शाति कुन्थु श्रर वरदद।।१६१।।
श्रावरु हस्तिनापुर सदभि।।१६२।। व्व मल्लि नमि मिथिलेयवर्।।१६३।। रव मुनिसुव्रत कुशाग्र पुरज्।।१६४।।
ह् वनवे नेमि द्वारावति एन् ।।१६५।। श्रववीर कुण्डलपुर श्रा ।।१६६।। मृवरेल्ल जन्म भूवलय श्रा ।।१६७।।
श्र* वरोळ'जीव हिम्सेय सेरिसि तन्द। ख' व 'ळर काव्यके घिह्'का' ना* ।।नव 'स(२४)लेलेयायुर्वेद शब्दव'। सिव'भगवन्त सालिनिम्'ना।।१६८
मृ* नद'प्राणावाय शीलवेन्दर जीव' । वनु 'रक्षेयेन्दोरेदिरे' द्* मा । नवनद'पालिस बेडवे दयेने'(२५)रा नवम'कलित जीवर'र्।।१६९।।
मे* लेन्दु 'काय्व कलियदवर कोल्व । वलवन्त चरकन' वय्द् य* मतम्'। सोले 'श्रमगेलुतलहिम्सायुर्वेदव'। साएम्'रक्षिय वलवे'न्द१७०।।
द्* नद'प्राणावायवदि[२६]थावरजीव।र'नव'कोलुवुदरिन्दलेत्श्रा'।।न* नु 'वु पापव होन्दुवरेम् वावीर'। जिन 'वाणिय नेनेयदे'तान् ।।१७१।।
ए* रिद 'हिम्सेयभावनेगिहुदु घिह् । कारने[२७]करुणेय् सर्व् श्र' न्ः ।। नेरिद 'जीवर मेलिरवेकु दो'। दा 'रेयुवुदागव्षधर् घ् इ'श्र।।१७२।।
उरुहिद् कर्म 'वम्श' दोरेवश ।।१७३।। न्र श्रेष्ट 'श्रोम्देरळ्मूरु' व ।।१७४।। वर'नाल्कय्दार् एन्ट् श्रोम्बत्श्र।।१७५।।
तर 'हत्तु हन् श्रोम्द् हन्एरळ'गु ।।१७६।। द्र 'हृदिमूर् हृदिनाल्कवरा' ।।१७७।। धारे 'हत् श्रोवत् इप्पत् श्रोम्दन्'।।१७८।।
न्रराज वम्श इक्ष्वाकु स् ।।१७९।। सिरि पार्श्वर सुपार्श्व उग्रउर ।।१८०।। धर्म शान्तियु कुन्थु श्ररह् ।।१८१।।
द्रुशिसे 'कुरुवम् शदवरु' ।।१८२।। मरळि इप्पत् श्रनक वरद ।।१८३।। विरचित हरिवम्श हरुश्र ।।१८४।।
रुरु वर्धमान रिरुव च ।।१८५।। श्ररहन्त नाथ वम्शजय् श्र ।।१८६।। य्रसुगळलि नेमि हरिव ।।१८७।।
लरयदा कूडलय्दु वर स् ।।१८८।। भ्रतद राजवम्श ए ।।१८९।। उरिद धर्म पालिपन ।।१९०।।
वर राज जिनवम्श वरस य् ।।१९१।। यरडर श्रवसर्पिण हुन्ड्श्रो ।।१९२।। व्र व्रउषभादि वीरांतर् ।।१९३।।
कारण कार्य भूवलयर् उ ।।१९४।।
ग्* रुवरिग् 'इरुवेन्दु सिद्ध समन्त भद्' । रु 'रार्यन च' रि त* रण ।। के' रगि 'नमिसिदरहृदि (२८) ख्याति पूजा ला । भ' र 'दाशेयिम् चरका' भ ।।१९५।।

इ* दि 'दि नूतन ग्रन्थ कर्तारर् प्रीतियिम्' । विधि 'हिम्सेय पोरे' स* 'यलु'।तर'रसविद्येयातकेसिद्धियागुव'।दद'नम[२९]नतमस्तक'यो।१९६।
रि* ण'वागि गिडवोळ्कुळितिरद नुतम्। लि'णो'केगळ हूँवम हतिस' न्* विनद 'लहिम्सेय व्रतदोन्दिगे दिव्य । गुणद'कृषिय सिद्धौषध'र।१९७
सि* व'बहुसना[३०] मर्मद विद्ये इदनयरगे' । श्रवु 'दोरेयलु कृश्र' ता* र्मदयज्।।ञ्'वु'हिम्सेयद्धर्मवागुवुदेन्दुपे।लववेजिनदेवनिर्मिसि'प्१९८

ह* रुष 'दायुर्वेद जल[३१]पूर्वार्जित'। वरद'तपीडन रोग'॥तख न* वेल्लव सार्वजनिकरेल्ल । क' र 'ळेदु निर्वाण सुखव' इ ॥१९९॥
रे* गि 'साधिसेरेन्दु पेळ्दुदम् सार्वन्ने' । बेगादि 'सुखसिद्धिय ह* ज'[३२]वेगदि'जयिसिरि कर्महिम्सेय'। नग'मार्गदिजय' वरेता॥२००॥

धगुणर 'तन्दे' ये वरद् अवन् ॥२०१॥ दगुणिसे 'नाभिराज् अ' वअस ॥२०२॥ यगरिसे 'जितशत्रु' नृरुपम ॥२०३॥
मगुळलु शरीरवि 'जित् आर् ई'॥२०४॥ सिगुरि 'सम्बरर्' 'मेघरथरअ' ॥२०५॥ वग धारणर् 'सुप्रअतुइष्ठ' ॥२०६॥
सगुरु 'सेन सुग्रीव् अ' कव्य ॥२०७॥ दग 'धरुढरथ विमलवाहनर्'स ॥२०८॥ वगेदरु 'वासु पुउज्य' रुसक् ॥२०९॥
मग'क्रुत वर्म'सिरिवर् अह् अ॥२१०॥ शघरव 'सिम्हसेन' वरद् अव् ॥२११॥ दग 'भानु विश्वअ' सुएनवन् ॥२१२॥
सगधरर् 'शूरसेनअ' वर्अत् ॥२१३॥ अगुरु 'सुदर्शन' विज्अय्ए ॥२१४॥ दगरुवु सिरि 'कुमभव्रअ' य्य॥२१५॥
वगण 'सुमित्र विजय्अ' वअस् ॥२१६॥ रग 'सुमुद्र विजय राज' वरव्अ॥२१७॥ लग 'विश्वसेन' 'सिद्धार्थ अ'र्॥२१८॥
एगरिपर् 'पित्रुकुल' रुज्येव् ॥२१९॥ गगनदोळ् निलुव 'भूवलय् आ' ॥२२०॥

णि* ज सिद्धियपुदु रसद' वि 'जयवागे' । द्विज 'देह लोहगळअ' स्* व। भज'सव्भाग्यदजयलाभहुदेल्ल'। सज'ससाम[३३]यज्ञदपशुहिम'२२१
व्* र् 'से अज्ञ रायुर्वेद अज्ञर मारिय । ब'र 'लि' ज्ञर् 'यम सुज्ञ' इ* रुम॥। प'र'वन्दरिदुत्यागवमाडि'नरने।सरियो'अज्ञतेयमपरिह'ब॥२२२॥
वा* 'रिकुम(३४)पाप पुण्यगळ त्रिवेचने'। दारि'यिन्दिर्दु पाप्अमआ' द्* अ॥आर 'र्गवु हिम्सेयेन्दु' रे 'आपत्तुम'सेरलु'बहुदेन्दु विट्दु'न्॥२२३॥
ण* वद् अ 'अहिमसेय शरो पद्धतियवय् । द्यवनम(३५) देवरु' म् धा* व॥ सित्र'गुरु शात्र'व'शरणेन्दु नवुत'सत्रिय 'नोवुग ठ्कलिय'बुध्॥२२४
ग* म 'लु बरलु नावु पुष्पायुर्वेद' द । स 'मरुव पेळि सावुह उ' न्* सम 'द्टडगुव तेरच [३६]नमतवरेल्लरगे'।गम'कलिसुवे वदरिम'न२२५
य* श 'द सम्मोददिन्दलि बन्दु हेम्मेय' । रस 'स्वर्णवादम' त्* 'र' लु॥ह'सवादवनेममिसव्व्यवसाधिसि'।पस'रिमो[३७]भारतदे'व २२६
आ* 'शद भाग्यव अहिमसेय सारुव' । ईशन्अ 'हूपिनवय्द्यअ' ओ* आ' सार समग्रहव' द 'नु शरी पूज्यपा। दा' सा'चार्यरसार' वस्।२२७

अशर ताथियो 'मरुवम् थि ॥२२८॥ दश 'विजया' के सुषेणा' नूता ॥२२९॥ दशेयोळोम्देरळ् मूरु अनूक अन् ॥२३०॥
इ 'सिद्धार्था' मङगला देवि'न्अ ॥२३१॥ नृष 'सुषोमा पृथ्वि' नाल्कय्दहो ॥२३२॥ गय्दारेळेन्दु'लक्ष्मणव ॥२३३॥
रस 'जयरामा सुनन्दात् ॥२३४॥ आशा 'नन्दा विजयामम् अ' ॥२३५॥ नष ओम्बत् हत्तु हन् ओम्दम् ॥२३६॥
यश द्वादश 'जयश्यामृह' ॥२३७॥ मूश हदिमूरनूक विहत्व ॥२३८॥ मूश 'लक्ष्मिमति सुनरभा' पा ॥२३९॥
डश चतुरदश हुणणिमे प ॥२४०॥ अशद 'ऐरा सिरिकान्त देविम् ॥२४१॥ तूसे हदिनार हदिनेळ् अनूक ॥२४२॥
एसे 'मित्रसेन प्रजावति'यर् ॥२४३॥ रस 'सोमा वरपिला' विन्तु ॥२४४॥ पशे शिव ब्राम्हिला' अम्म् ॥२४५॥
पूसे 'प्रिय कारिणि हदिनेन्टादिव् ॥२४६॥ इ सिरिप्पत् नाल्कु भूवलय ॥२४७॥

ण* व 'कल्याण कारक वर्[३८]षिदुगतव्'। अवु'षिधु सम्राध्धव् सू' नो* कवइ 'त्रद हदवन्नरितु भूवल । य' वरनूक ॥२४८॥
अ* स 'दारियमृसिद्धरस दिन्वदादगिसि'।होस'काव्य कविनि[३९]तरु' व* रस'वडु मङगलमयसिद्धरस काव्य'। हुसियद'अरुहनागमग'सि ॥२४९॥
सू* रून्थ बरेदका [व्यव]केळि हिम्सेय' । सर्वथा 'त्यजिसिदि' न् ता* गे॥परवव'सरुवसम्पदवेल्लतरुव(४०)।निर्मल मनवचनवु'ता ॥२५०॥
ओ* स् 'काय त्रिकरण(मर्म)शुद्धिय जिनवय्द्य'। शम्कादि 'नेन्दुदु च* 'र'॥हम्मम् 'कोनेगिप्पत्एळन् कविरुब'ओ।निम्म'भूवलयकेघन'व२५१
त्* नुमन वचन शुद्धिगळ 'भक्ति यिन्दे'ना । जिनगे 'रगुवेनु (४१) चि* रका॥ ननमस्कारदे वरुव कय्युगिदिह। मनदर्थियतिशय बसय॥२५२॥
ए* नेरबे चरकमर्हविय हिम्सेय। सानुरागदिनिव् आरिसिह। जाण र* अमोघवर्षानूकन सळयोळु । क्षोणिय सर्वज्ञ मतदिम् ॥२५३॥
सि* पारवतीशन गणितदे बह वय्द्य । दवनियोळ् पेळुव अ* दर॥ विवरसमन्वयद्अनतरद्अोन्दोन्वत्। सविमूरय्दोन्दु अक्षरय॥२५४
म्* रललु हत्तुमाविरदिन् नूराह[एरळ्नूराह]बरुवनूक विद्ये ई'लू' म* सरुवज्ञनेरिदहदिनाल्सुगुणस्थान।अरहत[गुरुपरन्परेयाद'ळ्'अन्दद]भूवलयद्
समस्त 'ळ्' अक्षराक १०,२०६+समस्त अन्तराक्षराक १५,३९०+समस्त अन्तरातर १,८२७=२७४२३

अथवा अ—ळ् २,७९,७११+ ळु २७,४२३=३,०७,१३४

चौदहवां अध्याय

स्वर अक्षरो मे क्रु १४ वा अक्षर है। इसी अक्षर का नाम आचार्य ने इस १४ वें अध्याय को दिया है, १४ वें तीर्थङ्कर श्री अनन्तनाथ भगवान हैं। वे अनन्त फल को देने वाले होने के कारण अतिशय धवल रूप भूवलय ग्रन्थ मे स्वर अक्षर के दीर्घांक को १४ मानकर अग ज्ञान को अनन्त रूप गणित से लेकर गणना करते हुए ग्रन्थ की रचना की गई है। इन्ही अनन्तनाथ भगवान को वैदिकों ने अनन्त पद्म नाभ भी कहा है। वह अनन्तपद्म नाभ श्री कृष्ण रूप पर्यायसे जन्म लेकर कुरुक्षेत्र मे दिगम्बर दीक्षा ग्रहण करने के इच्छुक अर्जुन को कर्तव्य कर्म का बोध, करानेवाली गीता का उपदेश भूवलय के ढग से दिया था। उसका नाम श्री मद्भगवद् गीता पाच भाषाओ में अन्यत्र अलभ्य काव्य इसी अध्याय के अन्तरान्तर श्लोक में "नम श्री वर्धमानाय" इत्यादि रूप कानडी श्लोक के अन्तिम दो अक्षरो से निकल आता है। इस अध्याय के अन्त में जैसा है उसी प्रकार से हम प्रतिपादन करेंगे। वहा "ओमित्येकाक्षर ब्रह्म" से लेकर भगवद्गीता प्रारम्भ होगी। आजकल प्रचलित भगवद्गीता से परे और विशिष्ट कला से निष्पन्न वह सस्कृत साहित्य अपूर्व है।१।

यह भगवद् गीता पाच भाषाओ में है। पहले की पुरु गीता है। पुरुजिन अर्थात् ऋषभदेव के समय में उनकी दोनो रानियो के दो भाइयो का नाम विनमि और नमिनाथ था। उन दोनो राजाओ ने अयोध्या के पार्श्ववर्ती नगरो मे राज्य किया था। उनके राज्य शासन काल मे विज्ञान की सिद्धि के लिए बकुल (सुमन) शृ ग देवदारु इत्यादि वृक्षो का उपयोग किया जाता था। वे दोनो राजा विविध भाति की विद्याओ में प्रवीण होने के कारण विद्याधर स्वरूप ही थे। और विविध विद्याओ को सिद्ध करने के लिए इन्ही वृक्षो के फूलो के रस से रसायन तैयार कर लेते थे। इसी के दूसरे कानडी श्लोक के अन्तिम में 'इन्द्रियाणा हिचरता' नामक सस्कृत श्लोक के अन्त मे "मिवाम्भसि" है। इस वैज्ञानिक महत्व को रखनेवाले से बढकर अपूर्व पूर्व ग्रन्थो के मिलने से यह अनन्त गुणात्मक काव्य है। इस कारण श्री अनन्तनाथ भगवान का स्मरण किया गया है।२।

सक्रम से निर्मोही होकर निर्मल तपस्या करनेवालो को इस भूवलय ग्रन्थ मे छिपी हुई अनेक अद्भुत विद्याओ की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ को सभी को भक्ति भाव से नमस्कार करना चाहिए। मन मे जब विकल्प उत्पन्न होते हैं तब सिद्धात शास्त्रो का यथार्थ रूप से अर्थ नही हो पाता। मन की स्थिरता तभी प्राप्त होती है कि जब प्राणावाय पूर्वक ज्ञान से शारीरिक स्वास्थ्य ठीक रहता है और तभी तपस्या करने की भी अनुकूलता रहती है। इसीलिए आर्यजन त्रिकरण शुद्धि को सबमे पहले प्राप्त कर लेते थे।३।

विवेचन —इस तीसरे श्लोक के मध्य में अन्तरान्तर का एक श्लोक समाप्त होता है। उसके अन्त मे "नमिप् ओ" शब्द है। जिसका अर्थ कानडी भाषा में नमस्कार करेंगे ऐसा होता है। अन्तिमाक्षर ओ भगवद्गीता के ओमित्येकाक्षर का प्रथमाक्षर हो जाता है। वही ओ अक्षर ऋग्वेद का गायत्री मन्त्र रूप में रहनेवाले 'ओतत्सवितुर्वरेण्य के लिए प्रथमाक्षर हो जाता है। इसी प्रकार आगे भी अनेक भाषाओ मे कभी आदि में व कभी अन्त में ओ मिलेगा, पर वह हमे ज्ञात नही है। इस पद्धति से तीन आनुपूर्वी को ग्रहण करना। इसका विवरण इस प्रकार है —

पहले-पहले अक्षर या अक को लेकर आगे-आगे बढना आनुपूर्वी (पूर्व अनु इति अनुपूर्व, अनुपूर्वस्य भाव आनुपूर्वी) है। जिसका अभिप्राय 'क्रमश. प्रवृत्ति' है।

आनुपूर्वी के तीन भेद हैं १—पूर्वानुपूर्वी, २—पश्चादानुपूर्वी, ३—यत्र-तत्रानुपूर्वी। जो बायी ओर से प्रारम्भ होकर दाहिनी ओर क्रम चलता है वह पूर्वानुपूर्वी है जैसे कि अक्षरो के लिखने की पद्धति है। अथवा १-२-३-४-५ आदि अको को क्रम से लिखा जाना जो क्रम दाहिनी ओर से प्रारम्भ होकर बायी ओर उलटा चलता है जिसको वामगति भी कहते हैं, वह पश्चादानुपूर्वी है, जैसे कि गणित मे इकाई दहाई सैकडा हजार आदि लिखने की पद्धति है इसी कारण कहा गया है 'अङ्कानां वामतोगति.' यानी—अको की पद्धति अक्षरो

से उलटी है। जहा कहा से क्रम प्रारम्भ करके आगे बढना यत्रतत्रानुपूर्वी है जसे ४, १, ३, २ आदि।

आधुनिक गणित पद्धति केवल पश्चादानुपूर्वी से प्रचलित है। अत वह अधूरा है, यदि तीनो आनुपूर्वियो को लेकर वह प्रवृत्त होता तो पूर्ण बन जाता। श्री कुमुदेन्दु आचार्य ने भूवलय सिद्धान्य में तीनो आनुपूर्वियो को अपनाया है इसी कारण उन्होने भूवलय द्वारा ससार के समस्त विषय और समस्त भाषाओ को उसमें गर्भित कर दिया है।

पूर्वानुपूर्वी पद्धति से भूवलय में जैन सिद्धान्त प्रगट होता है, पश्चादानुपूर्वी से भूवलय में जैनेतर मान्यता वाले ग्रन्थ प्रगट होते हैं। यत्रतत्रानुपूर्वी से भूवलय में अनेक विभिन्न विषय प्रगट होते हैं।

किसी भी विषयका विवेचन करने के लिए प्रथम ही अक्षर पद्धति का आश्रय लिया जाता है किन्तु अक्षर पद्धति से विशाल विवरण पूर्ण तरह से प्रगट नहीं हो पाता, तब अक पद्धति का सहारा लेना पडता है। अको द्वारा अक्षरो की अपेक्षा बहुत अधिक विषय प्रगट किया जा सकता है। परन्तु जब और भी अधिक विशाल विषय को अक बतलाने में असमर्थ हो जाते हैं तब रेखा पद्धति का आश्रय लेना पडता है।

भूवलय में तीनो पद्धतियो को अपनाया गया है इसी कारण भूवलय द्वारा समस्त विषय प्रगट हो जाता है।

महान मेधावी विद्वान रेखा-पद्धति से विषय विवेचन कर सकते हैं। उससे कम बुद्धिमान विद्वान अको द्वारा विवेचन करते हैं। उससे भी कम प्रतिभाशाली विद्वान अक्षरो के द्वारा ही विषय विवेचन कर सकते हैं। इसी क्रम से वर्णों से भी केवल ज्ञान के समस्त विष्यो के ज्ञाता महात्मा थे। वह अवधि ज्ञान का विषय है। आगे इन सभी विषयो को श्री कुमुदेन्दु आचार्य विस्तृत रूप से बतलायेंगे।३।

ससार में रहनेवाले सभी जीवो के वचन में कुछ न कुछ दोष रहता है। उस दोष को मिटाने के लिए विद्वज्जन शब्द शास्त्र की रचना करते हैं, किन्तु फिर भी उनकी विद्वत्ता केवल एक ही भाषा के लिए सीमित रहती है। वह विशुद्ध भाषा दूसरे भाषाओ के जानकारो को अशुद्ध सी मालूम पडती है। ठीक भी है। जो विषय स्वय समझ में न आवे वह गलत मालूम होना स्वाभाविक ही होता है। केवल एक ही भाषा मे शुद्ध रूप से यदि वाक्य रचना करली जाय तो भी उस भाषा में रहनेवाले श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र देव के केवल ज्ञान में झलकनेवाली समस्त भाषाओ को एक साथ शुद्ध वाक्य रचना करनेवाले जीव इस काल में नही हैं। और इस अवसर्पिणी काल में आगे भी नही होंगे, ऐसा प्रतीत होता है।४।

भगवान महावीर के दिव्य वाणी में इस प्रकार झलकी हुई दिव्यध्वनि को चौथे मन पर्ययज्ञानधारी ऋग्वेदादिचतुर्वेद पारङ्गत ब्रह्मज्ञान के सोमातीत पदो में विराजित ब्राह्मणोत्तमो ने अवधारण करके भूवलय नामक अगज्ञान को ग्रन्थों में गुथित किया। अर्थात् सर्वभाषामयी, सर्वविषयमयी तथा सर्व कलामयी इन तीनो रहस्यमयी विद्याओ को भेद विज्ञान रूप महान गुणो से युक्त होकर सिद्धान्त ग्रन्थो में गुथित कर दिया। उसका विस्तार रूप कथन ही यह भूवलय सिद्धान्त ग्रन्थ है।५।

विवेचन—श्री भगवद्गीता मे अनादि कालीन समस्त भगवद्वाणी को मिला देने की असाधारण शक्ति विद्यमान है। गौतमऋषि वैदिक सम्प्रदाय के प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण वृषभसेन गणधर से लेकर अपने समय तक समस्त भगवद्वाणी रूप पुरुगीता, नेमिगीता, कृष्णगीता (भगवद्गीता) और महावीर गीता इन चार गीताओ की रचना की थी और भविष्य वाणी रूपी आचार्य श्री कुमुदेन्दु की गीता का भी वर्णन सक्षेप रूप से किया था। उसके उदाहरण को इसी अध्याय के कानडी मूल श्लोको के अन्तिम अक्षर से देख सकते हैं। ऋषभसेन गणधर ने भी इसी क्रम से अतीतकालीन समस्त भगवद् वाणी की रचना की थी और उसी वाणी को श्री आदिनाथ स्वामी ने ब्राह्मी देवी के नाम से अक्षर रूप तथा सुन्दरी देवी के नाम से अक रूप प्रकट किया इसका जोकि विवेचन पहले कर चुके हैं इस समय भूवलय मे दृष्टिगोचर हो रहा है। इस प्रकार उपदेश करके वे सभी गणधर परमेष्ठी ने क्षणिक शरीर को त्यागकर चिरस्थायी शाश्वत सुख को प्राप्त कर लिया। इन सभी ग्रन्थो को अग ज्ञान परिपाटी से वस्तु नामक छन्द कहते हैं। ३००० सूत्राङ्को के ज्ञाता को श्रॆ विद्याधर चक्रवर्ती कहते हैं। उन समस्त गणधर परमेष्ठियो के वचन

मधुर, मिष्ट एव सर्वजन हितकारी होते हैं। दयाधर्म का प्रचार ही इन समस्त ग्रन्थो का उद्देश्य है तथा इसमें उत्तम क्षमा, मार्दव आर्जवादि दशधर्मो का ही अतिशय वर्णन है।

जिस प्रकार अन्य जलो में कुछ न कुछ गर्दा (कीचड) रहता है पर सुगधित जल मे किसी भी प्रकार का किंचिद्मात्र भी गर्दा नही रहता, उसी प्रकार अन्य धर्मों मे कुछ न कुछ दुर्गुण पाये जाते है, परन्तु परमेष्ठी प्रतिपादित दश धर्मों में किसी भी प्रकार की मलिनता नही पाई जाती ॥६ लेकर १३ श्लोक॥

विवेचन —इस अन्तर श्लोक के २६ वें श्लोक से लेकर ६ वें श्लोक तक यदि आ जायें तो प्रथम अध्याय मे कथित, कमलो का वर्णन पुन रुक्ति से आता है। उसमें सात कमल पुष्पो से सुगन्धित जल (गुलाव जल) तैयार कर लेते थे, ऐसा अर्थ निष्पन्न होता है। यह काव्य रचना की अतिशय महिमा है।

दशधर्मो को पालने वाले प्रोषधोपवासी मुनि होते हैं। उपवास शब्द का अर्थ—"उप समीपे वसतीत्युपवास" अर्थात् आत्मा के समीप में वास करना उपवास है। और इसी प्रकार के उपवासी मुनिराज अविनाशी ग्रन्थो की रचना करके शाश्वत् यश को प्राप्त कर लिया करते थे। वे महात्मा सदा अपने गुरु गणधर परमेष्ठियो के साथ निर्भय विचरण करते रहते थे। इसी लिये इन्हें किसी प्रकार के शस्त्रास्त्रो की आवश्यकता नही पडती थी। वे महात्मा पाहुड (प्राभृत) ग्रन्थ की रचना करने मे वडे बुद्धिमान हैं। इतना ही नहीं, वल्कि वे अनियोग द्वार नामक ग्रन्थ की रचना करने में भी परम प्रवीण हैं। वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान में गम्य होने वाले जीवादि षड्द्रव्यो को गणित-वन्ध में वांधकर अङ्कज्ञान में मिलाने वाले गणितागमज्ञ और अक-शास्त्रज्ञ होते हैं। विविध वस्तु अथवा शब्द को देख तथा जानकर उनकी वाह्याभ्यन्तरिक समस्त कलाओ को तत्काल ही व्याख्यान करने में कुशल होने से तत्तकालीन समस्त विद्वान् ब्राह्मण उनके यशो का गुणगान करते थे। यह अद्भुत् ज्ञान साधारण जनता को सहज मे नही मिल सकता। छोटे अक को लेकर गुणाकार क्रिया से वडा अक बनाने के वाद उन सवको ९ अक में एकत्रित करके उसके फलो को दिखलाने वाला सवसे जघन्याक २ है सर्वोत्कृष्टाक ९ है तथा उसके अन्दर रहकर अतशिय विद्या को प्रदान करने वाले अलोकाकाश पर्यन्त समस्त अको को बतलाने वाले ये मुनिराज हैं। उन्ही के द्वारा विरचित यह भूवलय काव्य है।
॥१३-२९॥

६४ अक्षरो की जो वर्गित सर्वजित राशि आती है उन समस्त अको का ज्ञान जिस महानुभाव को रहता है उन्हे श्रुत केवली कहते हैं। और वैदिक मतानुयायी मत्र-द्रष्टा कहते हैं। मत्र-द्रष्टा वे ही होते हैं जो कि ११ अङ्ग तथा १४ पूर्व से निष्पन्न समस्त वेद ज्ञान को अक भाषा मे निकालने में समर्थ होते हैं। ऐसे समर्थ मुनि श्री महावोर भगवान् से लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य पर्यन्त एक सौ (१००) थे। ये समस्त मुनि सदा स्व-पर कल्याण में सलग्न रहते थे ॥३०॥

१४ पूर्वो में प्रथम के ९ पूर्व को निकाल कर शेष ५ पूर्वो में विश्व के समस्त जीवो के जोवन-निर्वाह करने के लिये वैद्यक, मत्र, तन्त्र, यन्त्र, रसवाद, ज्योतिष तथा काम शास्त्र आदि प्रकट होते हैं। उन सभी विद्याओ में गूढातिगूढ रहस्य छिपा रहता है। उसमे रमणीय शरीर-विज्ञान को वतलाने वाला, प्राणावाय (आयुर्वेद) एक महान् शास्त्र निकलता है जो कि चौथे खंड में विस्तार रूप वर्णित है ॥३१॥

विवेचन—प्राणावाय पूर्व में १०००००० कानडी श्लोक हैं। उन श्लोको में पृथक पृथक भाषा के अनेक लक्षकोटि श्लोक निकल कर आ जाते हैं। उसका अक नीचे दिया गया है।

महा महिमावान आयुर्वेद शास्त्र भूवलय तृतीय खंड सूत्रावतार से भी निकलकर आ जाता है। वह सूत्रावतार नामक तृतीय खड दूसरे श्रुतावतार खड से भी निकल कर आ जाता है। वहश्रुतावतार नामक दूसरा खंड इस मगल प्राभृत नामक प्रथम खड के ५९ वें अध्याय के अन्तिम अक्षर से लेकर यदि ऊपर पढते चले जायें तो यथावत् निकल कर आ जाता है।

यही क्रम आगे भी चालू रहेगा। अर्थात् पाँचवा खड विजय धवल ग्रन्थ चौथे खण्ड के प्राणावाय पूर्वक नामक खण्ड में यथा तथा निकल कर आ जाता है। इसी क्रम से आगे चलकर यदि ९ वें खण्ड तक पहुंच जायें तो अन्तिम मगल प्राभृत रूप नववें खण्ड तक एक ऐसी चमत्कारिक काव्य रचना है जिससे कि अष्ठ महाप्रातिहार्य वैभव से लैकर समस्त ९ खण्ड एक साथ सुगमता से

पढा जा सकता है जो कि कि श्रुतकेवलियो के साक्षात् मूर्त स्वरूप है ।

हाथी के ऊपर रक्खी हुई अम्बारी को स्याही (इङ्क) से पूर्ण करके उस स्याही मे जितने प्रमाण में ग्रन्थ लिखा जा सकता है उसे प्राचीन काल में एक पूर्व कहा जाता था, आधुनिक वैज्ञानिको के मन मे यह बात नही आती थो। उनका तर्क था कि इतनी विशालता एक पूव की नही हो सकती, किन्तु जब उनके सामने अद्भुत् भूवलय शास्त्र तथा उसके अन्तर्गत प्रामाणिक गणित शास्त्र प्रस्तुत हुआ तव सभी को पूर्ण रूप से विश्वास हो गया और श्रद्धा पूर्वक लोग इसका स्वाध्याय करने लगे। इतना ही नही इसकी मान्यता इतनी अधिक बढ गई है कि यह ग्रन्थराज राजभवन, राष्ट्रपति भवन तथा विश्व विद्यालयो (यूनिवर्सिटीज़) के सरस्वती भवनो (लाइब्रेरियो) में विराजमान होकर सभी को स्वाध्याय करने के लिए सरकार से मान्यता मिल गई है और भारत सरकार की विधान सभा तथा मैसूर प्रान्त की विधान सभा मे इसकी चर्चा बडे जोरो से चल रही है।

इस प्राणावाय पूर्व मे १३०००००० (तेरह करोड) पद है। और एक पद मे १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं। १३०००००० को यदि उपर्युक्त अङ्क से गुणा करें तो जितना अक प्रमाण होगा उतनी अक प्रमाण प्राणावाय पूर्व का अक होगा। यह सैद्धान्तिक गणना का क्रम है। भूवलय का क्रमाक अलावा है, क्योकि ३ आनुपूर्वियो की पृथक् पृथक् गणना होने से अक बढ गया है। अर्थात् तेरह करोड×तेरह करोड=जो अक आता है उस अक को उपर्युक्त ग्यारह अक×ग्यारह अक=जो अक आता है उससे गुणा करने से आने वाला लब्धाक प्रमाण सपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र बन जाता हैं।

विवेचन—पद शब्द का अर्थ तीन प्रकार का है—

१-अर्थपद, २-प्रमाण पद और ३-मध्यम पद अथवा अनादि सिद्धान्त पद। अर्थ पद मे केवल अर्थाविवोध यदि हो गया तो बस ठीक है। वहाँ पर अन्य व्याकरण तथा गणितादि लक्षणो की आवश्यकता नही पडती। प्रमाण पद में अनुष्टुप् आदि छदो के एक चरण मे आठ आदि नियत अक्षर होते हैं। [भूवलय में इसमे व्यतिरेक क्रम है] सभी व्यावहारिक विद्वानो ने इन दोनो पदो का प्रयोग व्यवहार में रखकर तीसरे को छोड दिया है क्योकि अनादि सिद्धान्त पद का अर्थ दुरूह होने से इसे छोड देना पडा। अनादि सिद्धान्त पद के एक में रहने वाले ग्यारह अक प्रमाण अक्षरो के समूह को कौन ध्यान रखने मे समर्थ हो सकता है? अर्थात् इस काल में कोई भी नही क्योकि यह श्रुतकेवली गम्य है।

ऋद्धिधारी मुनियो को इस क्रम प्राप्त वेद ज्ञान के अक को अक्रमवर्ती ज्ञान से समझ कर निर्मल रूप मध्यम ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उन्ही मुनियो के द्वारा विरचित होने से यह भूवलय ग्रन्थराज महा महिमा सपन्न होकर पुण्य पुरुषो के दर्शन तथा स्वाध्याय के लिये प्रकट हुआ ॥३२-३३॥

विद्वानो ने माला के समान इन अको को गुणाकार करते हुये एक विशिष्ट विधि से प्राणावाय पूर्व नामक ग्रन्थ से अको द्वारा अक्षरो को बनाकर दिव्यौ-पधियो को जान लिया था। वह समस्ताक छह वार शून्य और सरलमार्ग से चार, चार, पाँच, दो बिन्दो, बिन्दी, आठ, दो, पाच, दो एक, दो अर्थात् २१ हजार कोडा कोडी २५ कोटा कोटि, दो कोडा कोडी।

आठ सौ करोड पच्चीस लाख कोडी चालीस कोडी अक प्रमाण होता है। उसको अक सदृष्टि से दें तो २१२५२८००२५४०००००० अक प्रमाण होता है।

प्राणावाय पूर्व द्वादशाग के अन्तर्गत एक पूर्व है जोकि उपर्युक्त अक प्रमाण अक्षरमय है, उसमे वैद्यक विषय विद्यमान है। चरक सुश्रुत वाग्भट्ट को वृद्धत्रय कहते हैं वह वृद्धत्रय ग्रन्थ अथववेद से प्रगट हुआ है, ऐसी वैदिक विद्वानो की मान्यता है। किन्तु यह वात ठीक प्रतीत नही होती क्योकि अथर्ववेद छोटा है उसमे से वृद्धत्रय जैसे विशाल ग्रन्थ प्रगट नहीं हो सकते। किन्तु भूवलय ग्रन्थ का निर्माण ६४ अक्षरो को विविध रूप भगो से ९२ अक प्रमाण अक्षरो से हुआ है अत भूवलय से सव भाषायें और सर्व विषय करोडो श्लोको मे प्रगट होते हैं। इसलिए भूवलय से समस्त वैद्यक विषय स्वतन्त्र रूप से प्रगट होता है। उसका उदाहरण यह है—

श्रीमद् भल्लातकाद्रिवसतिजिनमुनिसूतवादेरसाव्जम्,
'ग्रन्थार्थं' लाञ्छनाक्ष घटपुटरचनानागतातीतमूलम्।
हेमदुर्वर्णसूत्रागमविधिगणित सर्वलोकोपकार,
पञ्चास्य लाजनाग्निभसितगुणकर भद्रसूरि समन्त ॥

यह वैद्यक विषयक श्लोक ग्रन्थ किसी ग्रन्थ मे उपलब्ध नही होता, केवल भूवलय ग्रन्थ मे ही मिलता है।

यदि शारदा देवी साक्षात् प्रकट होकर अपने वरद हस्तो से स्वय जिह्वा का सस्कार करे तो उपर्युक्त अको का प्रामाणिक शास्त्र सिद्ध हो सकता है। करपात्र में अर्थात् मुनि आदि सत्पात्रो का आहार औषधादिक दान देनेवाले उत्तम दाताओ को यह प्राणावाय पूर्व शास्त्र मालूम हो जाता है। इस काल तक अर्थात् श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जिसने ज्ञान प्राप्त कर लिया है उनके नाम निर्दिष्ट करेगे।

दानी श्रेयास	ब्रह्मदत्त
सुन्दर सेन	इन्द्र
नक्षत्रार्या	पद्मसेन
सोमसेन	सुव्रती
महेन्द्र	सोमसेन
पुष्यमित्र	पुनर्वसु
सौन्दर	जयदत्त
विशाखदत्त	धन्यसेन
सुमित्र	धर्ममित्र
महाजितनन्दि	वृषभवर्द्धनदत्त
वरसेन (धन्य सेन)	सुकुल रस
धन्यसेन	वर्द्धनदत्त

इन सभी राजाओ ने आहार आदि ४ प्रकार के दान को सत्पात्रो को देकर अतिशय पुण्य बंध करके तुष्टि, पुष्टि, श्रद्धा, भक्ति, अलुब्धता, शान्ति तथा अक्रोध इन सात गुणो से युक्त उत्तम दातृपद प्राप्त किया था।३६-५५।

इसी भूवलय के चौथे खड प्राणावाय पूर्व मे १८००० फूलो से समस्त आयुर्वेदिक शास्त्रो की रचना इसलिए की गई कि वृक्षों की जड, पत्ते, छिलका तथा फूलो के तोडने से एकेन्द्रिय जीवो का घात होता है। किन्तु महाव्रती मुनिराज एकेन्द्रिय जोवो का भी वध नही करते। ऐसी अवस्था में व्याधिग्रस्त जीवो के रोग निवारणार्थ वैद्यक शास्त्रो की रचना कैसे हो सकती है?

जिन मुनियो ने जो ग्रन्थ रचना की है वह अग परम्परा का अनुसरण करती हुई की है। अत वैद्यक शास्त्रो का निर्माण करते हुए आचार्यो ने जिन औषधियो के उपयोग की सूचना की है उसमें अहिंसा धर्म की प्रमुखता रखते हुए वस्तुतत्व का निरूपण मात्र किया है। अत उसमे कोई वाधा उपस्थित नही होती।

यदि इस वैद्यक शास्त्र का निषेध किया होता तो १४ पूर्व में प्राणावाय पूर्व को भगवान जिनेन्द्र देव निरूपण ही नही करते। इस ग्रन्थ को किसी मनुष्य ने तो लिखा नही। यह साक्षात जिनेन्द्र देव की वाणी से ही प्रकट हुआ है। अत इसका स्वरूप जैसा है वैसा लिखने मे किसी प्रकार की वाधा नही है। भगवान जिनेन्द्र देव अपनी कल्पना से कुछ नहीं करते, किन्तु वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही उन्होने निरूपण किया। अत इसमें किसी प्रकार की कोई वाधा नही आती आयुर्वेदिक में मनुष्यायुर्वेद, राक्षसायुर्वेद, तथा समस्त जीवायुर्वेद गर्भित है। राक्षसायुर्वेद में मद्य, मास आदि अभक्ष्य पदार्थ मिश्रित है। जिनका सेवन करने वाले राक्षसो को सिद्ध शुद्ध पारा, स्वर्ण तथा लोहादिक भस्मो से तैयारकी गई सिद्धौषधिया लागू नही होती। क्योकि अशुद्ध परमाणुओ से रचित राक्षसो के अशुद्ध शरीर के लिए अशुद्ध औषधिया लाभदायक होती हैं। माँस, मदिरा, मधु, मल मूत्रादि के द्वारा तैयार की गई औषधिया अशुद्ध होती है। और ये अशुद्ध औषधिया अनादिकाल से यथावत् रूप से प्रचलन मे आने के कारण अपने यथार्थ नामानुसार हैं। उनको प्रयोग मे लेना या न लेना बुद्धिमानो का कार्य है।

धर्म मार्ग मे प्रवर्तन वृत्ति करनेवाले जोवो को हिंसादि पाचो पापो को त्याग देना चाहिए। अत उनके लिए यह अशुद्ध औषधियाँ उपयुक्त नही होती। उनके लिए विशुद्ध रसायन सूक्ष्माति सूक्ष्म प्रमाण अर्थात् सुई के अग्र भाग प्रमाण मात्र भी सिद्धौषधियाँ कुष्ठ, क्षयादि असाध्य रोगो को समूल नष्ट करके अमोघ फल देती हैं तथा वृद्ध मनुष्यो की काया पलट कर तरुण बनाने मे पूर्ण सफल होती है इसका विस्तृत विवेचन प्राणावाय पूर्वक नाम चतुर्थ

ड मे किया जायगा । उपर्युक्त चौवीस दातारो ने आहार, औषधि, शास्त्र
अभय इन चार प्रकार के दान सत्पात्रो को देकर त्रिकालवर्ती जीवो के कल्या-
णार्थ लोकोपकारी इस विशुद्ध आयुर्वेदिक शास्त्र को स्थायी रक्खा । उनका
यह कार्य अत्यन्त श्लाघनीय है ।३६ ५५।

उपर्युक्त प्राणावाय पूर्वक जो अक हैं उतने ही अक प्रमाण एक तोले परिशुद्ध भस्म बनाये हुए पारे में छिद्र हो जाते हैं । छिद्र सहित वह पारा परस्पर मे पुन नही मिलता । इसी पारे मे यदि फूलो के रस से मर्दन करके अग्निपुट में पकाया जाय तो वह रत्न के समान प्रतिभाशाली विशुद्ध रसमणि बन जाती है । उस मणि को वज्र खेचरी घुटिका, रत्नत्रय औषधि, वसन्त कुसुमाकर इत्यादि अनेक नामो से पुकारते हैं । इन मणियो को पृथक् पृथक् रूप से यदि अपने हाथ में रखल तो आकाशगमन जलगमन इत्यादि अनेक सिद्धिया उपलब्ध हो जाती हैं । यह सब पुष्पो से बन जाता है न कि वृक्षो की छाल आदि एकेन्द्रिय जीवो के घातक पदार्थो से ।५६।

विवेचन—आचार्य श्री कहते है कि जिस प्रकार भूवलय ग्रन्थ राज की रचना गणित शास्त्र की पद्धति से की गई है उसी प्रकार सयोग भग से (Permeetesletion and comlıcacıol),

वसन्त कुसुमाकरादि रसो के सयोग से विविध भाति की रासायनिक औषधिया प्राप्त की जा सकती हैं । जब केवल एक ही औषधि में महान गुण विद्यमान है तो सयोग भग विधि से समस्त सिद्धौषधियो को एकत्रित करने पर कितना गुण होगा, सो वर्णनातीत है ।

१८ हजार पुष्पायुर्वेद के अनुसार फूल निकलने से पहले वृक्षो की कली तोडकर उन कलियो का अर्क पृथक्-पृथक् निकाल कर पारे के माथ उस रस में पुट देते थे, तब वह पाद रस मणि तैयार होता था ।५७।

उस पुष्पायुर्वेद की औषधि राशियो को कहनेवाला यह भूवलय है ।५८।

उस पुष्पायुर्वेद के अनुसार तैयार की गई रस मणि सेवन करने से वोर्य-स्तम्भन होता है, वृद्ध अवस्था यौवन अवस्था में परिणत हो जाती है, उसके सेवन से अकाल मृत्यु नही होती, शरीर सुदृढ़ हो जाता है ।५८।

इस सुरमरक्षण काव्य मे ऋद्धि, क्षय नाश, प्राण रक्षा, यश, (कान्ति) स्तम्भन, पाचन आदि आठ सूत्रो द्वारा औषधियो का वर्णन है ।५९।

उस रस मणि को सेवन करने मात्र से नवीन जन्म के समान नवीन कायाकल्प हो जाता है । तथा उस रस मणि सेवन से आत्मा में अनेक कलायें प्रगट होती हैं ।६०।

इस रसमणि को सबसे प्रथम भरत चक्रवर्ती ने सेवन किया ।६१।
इस पृथ्वी के वही पुरुषोत्तम थे ।६२।
वे ही सत्य वीर्य शाली थे ।६३।
वे सदा शत्रु मित्र को समान समझते थे । ६४ ।
इस कारण वे साम्राज्य ऐश्वर्य के अधिपति बन गये थे ।६५।
वे ही मर्मज्ञ तथा धर्मवीर थे ।६६।
वे ही दानवीर थे ।६७।
वे ही धर्म श्रोताओ में प्रमुख थे ।६८।
वे ही शुरवीर योद्धा थे ।६९।
वे कवियो द्वारा बन्दनीय तथा स्तुत्य (प्रशसनीय) थे ।७०।
वे नवीन मर्म प्रिय श्रोता कहलाते थे ।७१।
अनेक प्रकार को भक्तियो तथा विनयो से युक्त थे ।७२।
वे स्वय-सम्राट कहलाते थे ।७३।
वे लावण्य पुरुषोत्तम कहे जाते थे ।७४
समस्त पुरुषो में श्रेष्ठ शरीर धारक थे ।७५।
वे पावन पुण्डरीक थे ।७६।
दान के प्रभाव से नवीन फल प्राप्त करने वाले थे ।७७।
इसी पकार योग धारण करने वा राजाला कुणाल था ।७८।
ऐश्वर्य मे नारायण के समान थे ।७९।
उस औषधि के चवाने से सुभौम चक्रवर्ती के समान तेजस्वी हो जाते हैं ।८०।
उग्रता मे वे भुजग के समान थे ।८१।
पृथ्वी का अज्ञान दूर करनेवाले थे ।८२।

इस तरह भगवान महावीर के समवशरण राजा श्रेणिक था ।८३।

प्राप्त किया श्रेष्ठ मुनि का यह देह यानी इस मुनि का शरीर तप या सयम के द्वारा तपते हुए धूलि से लिप्त हुये इस शरीर की धूलि को अपने शरीर मे स्पर्श करने से रोग से जंरित हुआ शरीर एक निरोग वनकर कामदेव के समान तथा तरुण युवक के समान वन जाता है ।८४।

अत्यन्त पुराने तथा असाध्य रोग के नाश करने के लिए अत्यन्त उत्तम मीठी राम वर्ण औपधि से युक्त ऋद्धि धारी मुनि के मुँह की लार तथा झूठन को सेवन करने से तथा थूक सेवन करने से ससारी सम्पूर्ण मानव प्राणी के सर्व-व्याधिया नाश होती हैं। उस मुनि को क्षल्ल औपधि ऋद्धि कहते हैं।

जिस मुनि के शरीर के पसीना को हमारे शरीर को स्पर्श करने मात्र से पुरानी व्याधिया का उपशम होकर नवीन कातिमाय सुन्दर काया वन जाती है तथा गर्व के साथ अपने को यह वतलाता है मैं काम देव हू अहंकार को उत्पन्न करने योग्य शरीर प्राप्त कर देने वाली यह क्षल्लोपधि ऋद्धि धारी मुनि के पसीना का ही महत्व है ।८५ ८६।

आदि से लेकर अन्त तक रोग को नाश करनेवाले, श्री जिन मुनि के ऋद्धि के शरीर की एक मल कण के अणु को लेकर अपने शरीर को लगाने मात्र से जो आदि अन्त का रोग नष्ट होता है ऐसे ऋद्धि को विद्वज्जन जल्लौपधि कहते हैं ।८७।

जिन यति के कान, आख, नाक, दन्त के मल छूने मात्र से शरीर के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, वह मलौपधि ऋद्धि है ।८८।

वे साधु पुष्पदन्त भगवान को प्राप्त हुए हैं ।८९।

वे पार्श्वद्वय (सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ) को प्राप्त हुए है ।९०।

वे गुण की अपेक्षा गणनातीत—अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९१।

वे समस्त जीवो को ससार ताप से शीतल करनेवाले शीतलनाथ भगवान को प्राप्त हुए हैं ।९२।

समस्त विश्व से पूज्य वासुपूज्य भगवान हैं ।९३।

वे विमलनाथ अनन्तनाथ को प्राप्त हुए हैं ।९४।

धर्मनाथ मल्लिनाथ ये ९ तीर्थंकर अक हैं ।९५।

इसी अ क के मुनि सुव्रतनाथ हैं ।९६।

सात तीर्थंकर अ ग देश मे अधिकतर विहार करनेवाले हैं।९७।

नीरनाथ और नेमिनाथ विदेह देश में ।९८।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ का कुरुजाङ्गल देश वलय विहार क्षेत्र है ।९९-१००।

समस्त तीर्थंकरो का विहार क्षेत्र आर्यावर्त या आर्यवलय रहा है। १०१-१०२।

इस प्रकार तीर्थंकरो के विहार का यह (आर्यावर्त) भूवलय है ।१०३।

इस भूवलय मे कहा हुआ यह देश सूचक श्लोक (पद्य) है ।१०४।

यह भरत क्षेत्र का वैभव है ।१०५।

यह कुरु देश का अतिशय रूप कुरु है ।१०६।

ये देश सरस हैं तथा पारस, पारा आदि को खानिवाले हैं ।१०७।

ये देश महान पुरुषो के उत्पादक हैं तथा महान वैराग्य उत्पन्न कराकर मुक्ति को प्राप्त करानेवाले हैं।१०८।

यह भूवलय मनुष्य के सौभाग्य को प्राप्त करानेवाला है ।१०९।

जिन ऋषियो की जिह्वा (जीभ) पर आया हुआ कडवा, नीरस पदार्थ भी मधुर (मीठा) रसमय परिणात हो जाता है, वह मधुस्रावी ऋद्धि है। उनके शरीर का मल भी मधुर हो जाता है ।११०।

जिन ऋपियो का थूक, विष्ठा तथा मूत्र पृथ्वी पर पडा हुआ सूख जाता है उस सूखे हुए मल मूत्र की वायु के छूने मात्र से अन्य जीवो के रोग दूर हो जाते हैं, यह विडौपधि ऋद्धि है।१११।

जिन ऋपियो के शरीर को छूकर वहने वाली वायु के स्पर्श मात्र से समस्त मानव पशु पक्षियो के समस्त रोग दूर हो जाते हैं, तथा कालकूट विष का प्रभाव भी नष्ट हो जाता है वह जलौपधि है ।११२ ।

जिन ऋषियो के मुख से निकली हुई लार के द्वारा रोगियो का विप दूर

हो जावे वह आस्यविप नामक ऋद्धि है ।११३।

जिन मुनियो की दृष्टि (देखने) द्वारा दूसरो का विष दूर हो जावे वह दृष्टि विष ऋद्धि है ।१४४।

ऐसे ऋद्धिधारक मुनि जिस वनमें रहते हैं उनके प्रभाव से उस वनकी वन-स्पतियो (वृक्ष, वेल, पौधे आदि) के फल फूल, पत्ते, जड, छाल आदि भी महान गुणकारी एव रोगनाशक हो जाते हैं ।११५।

उन वनस्पतियो के स्पर्श हो जाने से विप भी अमृत हो जाता है ।११६।

श्रीजिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार उन वृक्षो के पत्र मद (नशा मूर्छा) दूर करने वाले होते हैं ।११७।

ऋद्धियो के उपयोग मे आने वाले सरल वृक्ष ।११८।

तिरुड वृक्ष मादल ('विजौरा), वृक्ष की कली के अर्क मे दातो का मल दूर हो जाता है ।११९-१२२।

इनके फूलो को कुण्डल की तरह कान में लगाने मे कान वज्र समान दृढ़ वन जाते हैं ।१२३।

उन पुष्पा को सू घने मे नाक के रोग नष्ट हो जाते हैं ।१२४।

उन पुष्पो मे अनेक गुण हैं ।१२५।

इन समस्त पुष्पो को जानना योग्य है ।१२६।

सूर्य के उदय होने पर खिलने वाला कमल उदय पद्म है ।१२७।

इत्यादिक पुष्प पद्मावती देवी की अणिमा है ।१२८।

राजा जिनदत्त इन पुष्पो को पद्मावती देवी के सामने चढाता था ।१२९।

राजा जिनदत्त उन पुष्पो को पद्मावती देवी के शिर पर विराजमान भगवान पार्श्वनाथ के चरणो पर चढाता था । भगवान पार्श्वनाथ के चरणो के तथा पद्मावती देवी के शिर के स्पर्श से वे पुष्प प्रभावशाली हो जाते थे । उन पुष्पो के रस मे श्री देवेन्द्र यति ने महान चमत्कार दिखाया तथा वह रस देवेन्द्र यति ने राजा जिनदत्त को दिया । राजा जिनदत्त ने उस रस से अनुपम फल प्राप्त किया । उस रस को पैरो के तलुओ मे लगाने से योजनो तक शीघ्र चले जाने की शक्ति आ जाती थी । इसी कारण इसका नाम पाद रस ऋद्धि है । इसका नाम प्राणावाय रस भी है । इसको विद्वान जानते हैं । यह त्यागियो के आश्रम से प्रगट हुआ है ।१३०-१३८।

इस प्रकार १८ हजार श्लोको द्वारा इस भूवलय मे १८ हजार पुष्पो के प्रभाव को प्रगट करनेवाले पुष्पायुर्वेद की रचना हुई है ।१३९।

अठारह हजार जाति के उत्तम फूलो से निचोड कर निकले हुए पुष्प रसको पारद के पुष्पो से मर्दन करके पुट में रखकर नवीन रस की घुटिका को वाधकर उस पुट को पकाने के बाद रस सिद्धि तैयार होती है । तव यही रसायन नवीन कल्पसूत्र वैद्याग अर्थात् आयुर्वेद कहलाता है ।१४०-१४१।

यह आयुर्वेद श्री समन्त भद्राचार्य ऋषि द्वारा वशीभूत किया गया प्राणावाय पूर्व के द्वारा निकालकर विरचित किया हुआ असदृश्य काव्य है । और यह काव्य चरकादिक की समझ मे न आनेवाला है । अर्थात् यह असदृश्य काव्य है । इसको श्रवण वैद्यागम कहते हैं । यह श्रमण वैद्यागम अत्यन्त ललित आयुर्वेद है और यह श्रवणो के द्वारा निर्माण होने से अत्यन्त रुचिकर है तथा ससार के प्राणिमात्र का उपाकारी और हित कारक है । इसलिए भव्य जीवो को रुचि पूर्वक पढकर के इस वैद्याग अर्थात् कथित आयुर्वेद कृति के अनुसार इस औपधि को अगर जीव ग्रहण करेंगे तो इह पर उभय लोक सुखदायक आत्म हित साधन करने योग्य निरोग शरीर वन जाता है ।१४२-१४३।

इसका स्पष्टी करण श्री कुमुदे दु आचार्य ने स्वय करते हुए लिखा है कि इस आयुर्वेद का नाम अहिंसा आयुर्वेद है और इस अहिंसा पुष्पायुर्वेद की परिपाटी ऋपियो तथा श्री तीर्थंकर भगवानो के द्वारा निर्मित होकर परम्परा से चलती आयी है । इस चौदहवें अध्याय में पुष्पायुर्वेद विधि को चरकादि ऋपि ने समझने वाले विधि को जिन दत्त राजा को श्री देवेन्द्रयति और अमोघ वर्ष राजा को श्री समन्त आचार्य ने सावन रूप मे वताये गये पुष्पायुर्वेद विधि का इस अध्याय मे निरूपण किया गया है ।

अहिंसा मय आयुर्वेद के निर्माण कर्ता पुरुषो के उत्पत्ति स्थान तथा उनके नगरो के नाम—

ऋषभनाथ, अजितनाथ, अनन्तनाथ ।१४४।

अभिनन्दन इन चारो का जन्म स्थान अयोध्या नगरो है ।१४५-१४६।

शम्भवनाथ का श्रावस्ती है ।१४७।

सुमतिनाथ का विनिता पुरी है ।१४८।

श्री पद्म प्रभ भगवान का कौशाम्वो नगरी है ।१४९-१५०।

श्री भगवान पार्श्वनाथ तथा शुपार्श्वनाथ की जन्म भूमि वाराणसी है ।१५१-१५२।

श्री चन्द्रप्रभ भगवान की जन्म भूमि चन्द्रपुरी है ।१५३।

श्रो पुष्पदन्त भगवान को जन्म भूमि काकदी पुरी है १५४-१५५।

शीतलनाथ भगवान की जन्म भूमि भद्रिला पुरी है ।१५६।

श्रेयासनाथ भगवान की जन्म भूमि सिंहपुरी है ।१५७।

श्री वासुपूजय भगवान की जन्म भूमि चम्पापुरी है ।१५८।

श्री विमलनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी कौशलपुर है ।१५९।

श्री धर्मनाथ भगवान की रत्नपुरी है ।१६०।

श्री शान्ति, कुंथुनाथ, और अरहनाथ की जन्म नगरी हस्तिनापुर है । ।१६१-१६२।

श्री मल्लिनाथ नमिनाथ को नगरी मिथिलापुरी है ।१६३।

श्री मुनिसुव्रत तीर्थंकर की जन्म नगरी कुशाग्र पुरी है ।१६४।

श्री नेमिनाथ तीर्थंकर की जन्म नगरी द्वारावती है ।१६५।

श्री भगवान महावीर तीर्थंकर की जन्म नगरी कुण्डल पुर है ।१६६।

इन तर्थंकरो का जहा-जहा जन्म है उनका जन्म ही यह भूवलय ग्रन्थ है ।१६७।

यह भूवलय ग्रन्थ सम्पूर्ण विश्व के प्राणी मात्र का हित करने वाला है । यह भूवलय सम्पूर्ण सयम तप शक्ति त्याग इत्यादि परिश्रम से चार घातिया कर्मों के नष्ट होने के बाद श्री तीर्थंकर परम देवके मुखारविंद से निकला हुआ है ।इस अहिंसामय भूवलय के अन्तर्गत निकले हुए अठारह हजार श्लोक पुष्पायुर्वेद के हैं । और यह आयुर्वेद सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने के लिए दया सहित है ।

इस तरह अनादि काल की परम्परा से चले आये हुए अहिंसामय आयुर्वेद में दुष्टो ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए इस आयुर्वेद में जीव हिंसा की पुष्टि करके रचना किया है । अत इन स्लो के काव्य को धिक्कार है ।१६८।

अत्यन्त सुन्दर इस आयुर्वेद शब्द का अर्थ आयु तथा शरीर मन वचन इन तीनो बलो को बढ़ाने वाला है । और यह आयुर्वेद शिव तथा क्रम बद्ध श्री चौवीस भगवान की परिपाटी से निकलकर मनके द्वारा उत्पन्न होकर आया हुआ प्राणवाय नामक शीलगुण है । शील का अर्थ जीव है । यह जीव हमेशा अपने स्वरूप से भिन्न होकर किसी पर पदार्थ रूप नही होता । जीव के अन्दर आने वाले तथा जीव को घात करने वाले अशुद्ध परमाणुओं को दूर कर जीव के स्वरूप की रक्षा करना या अन्य आत्मघात करने वाले अशुभ परिणति से वचना इस शील अर्थात् जीवात्मा का स्वरूप ही शील है ।

इस श्लोक मे प्राणवाय शील का अर्थ जीव दया या जीव को रक्षा कर दिया है । जिस आयुर्वेद शास्त्र मे जीव रक्षा की विधि न हो या जीव हिंसा की पुष्टि जिसमें हो वह आयुर्वेद शास्त्र जीव की रक्षा किस प्रकार कर सकता है ? आयुर्वेद शास्त्र का अर्थ सम्पूर्ण प्राणी पर दया करना है यह दया धर्म मानव के द्वारा ही पाला जाता है । इसलिए इस मानव का कर्तव्य सम्पूर्ण प्राणी मात्र पर दया करना वतला दिया है । क्या प्रत्येक मानव को दया धर्म का पालन नही करना चाहिए ? अवश्य करना चाहिए । और नौमाक अर्थात् नौ अक ही जीव दया है और यही जीवका स्वरूप है ।१६९।

जिस आयुर्वेद में एक जीव को मार कर दूसरे जीव की रक्षा करने वाले विधान का प्रतिपादन किया गया है तथा जिसमें चरक ऋषि के आयुर्वेद अर्थात् वैद्यागम को खण्ड कर अहिंसा आयुर्वेद का प्रति पादन किया है वह अहिंसात्मक आयुर्वेद है ।१७०।

प्राणवाय से स्थावरादि जीवो की हिंसा करने से ही आयुर्वेद की औषधि तैयार होती है अन्यथा नही क्योकि जैन दर्शन में श्री भगवान महावीर ने सम्पूर्ण प्राणी मात्र की रक्षा करना प्राणो मात्र का कर्तव्य बतलाया है । परन्तु आयुर्वेद की रचना प्राणावाय के विना अर्थात् प्राणी के वायु को घात किये बिना इस प्राणावाय वैद्यागम की दवाई तैयार नहीं होती । इसलिए

इस प्राणावाय आयुर्वेद को औषधि तैयार करने के लिए जीवरक्षा करना बहुत अनिवार्य है। क्योकि इसमें पाप का बध नही होता। परन्तु अपनी कल्पना के द्वारा कल्पित हिंसामय ग्रन्थ की रचना करके क्रूर राक्षस के समान प्रकृति के मनुष्यो ने इस ग्रन्थ की रचना करके प्रचलित किया है।

इस तरह हिंसामय ग्रन्थ की रचना करने का कारण यह हुआ कि। भगवान महावीर स्वामी को अहिंसामय वाणी को तथा हिंसा और अहिंसा के भाव को ठीक न समझने के कारण तथा इनकी भावना पहले से ही हिंसामय होने के समान तीव्र चढी हुई थी। इसलिए इन दुष्ट तथा क्रूर परिणाम के द्वारा विरचित इस पाप तथा हिंसामय आयुर्वेद ग्रन्थ को धिकार हो, ऐसा श्री दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदेन्दु कहते हैं।१७१।

सबसे पहले किसी भी मत का आगम, शास्त्र, आयुर्वेद या प्राणावाय इत्यादि जो भी शास्त्र हो उन सभी ग्रन्थो में सबसे पहले जीव दया अर्थात् सम्पूर्ण जीवो के प्रति करुणा भाव अवश्य होना चाहिए क्योकि जहाँ जीवो के प्रति दया या करुणा भावना निरूपण न हो वह कभी भी आयुर्वेद व आगम नहीं कहा जा सकता। इसलिए सदा जीवो की रक्षा करने की भावना रखना ही तप है और इसी के द्वारा रस ऋद्धि अर्थात् औषधि ऋद्धि की प्राप्ति होती है।१७२-१७३।

विशेषार्थ —इस भगवान महावीर स्वामी के मुख से निकली हुई दिव्य ध्वनि के प्राणावाय पूर्व से निकलने के कारण इस भूवलय नामक ग्रन्थ मे किसी जीव की हिंसा नहीं है। महावीर भगवान से लेकर श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक जितने भी यहा व्रतधारी दिगम्बर मुनि हो गये हैं वे सभी अनादि कालीन भगवान वीतराग की परम्परा से भगवान महावीर स्वामी के अनुशासन के अनुसार थे और भगवान महावीर से लेकर कुमुदेन्दु आचार्य तक जितने भी व्रती दिगम्बर मुनि थे वे सभी भगवान महावीर के अनुयायी थे। इसीलिए १८००० हजार जाति के पुष्पो से वैद्यक गन्थ का निर्माण किया गया था। यहा पर यह प्रश्न उठता है कि वृक्ष की जड, पत्ता और छाल इत्यादि न लेकर केवल पुष्प को ही क्यो लिया ?

उत्तर—रसायन औषधिया केवल पुष्पो से ही तैयार होती हैं। इसलिए वृक्ष की जड आदि को यहा ग्रहण नही किया गया है। रसायन औषधि का विधान केवल पुष्पो से ही होता है। इसलिए केवल पुष्पो का ही यहा वर्णन किया गया है।

प्राणावायु के बारे में कहा भी है कि—

"प्राणपानस्समानस्य दानव्यानस्समानग"

इत्यादि दश वायु की सहायता लेनी पडती है। किन्तु जिनेन्द्र भगवान की वाणी मे प्राण आदि वायु की जरूरत नही पडती अनेक वस्तुओ से मिश्रित होने पर भी उनकी वाणी का अर्थ स्पष्ट रीति से प्रतिपादित होता है।

इस प्रकार जो औषधि ऋद्धि है वह ऋद्धि जिस भव्य मानव को प्राप्त हुई है, उनको स्पर्श करने मात्र से परम्परा से आत्मा के साथ लगा हुआ कर्म वश तत्काल नष्ट होता है।१७३।

इस ऋद्धि को प्राप्त किये हुए मानव मे श्रेष्ठ १-२-३।१७४।

४-५-६-८-९।१७५।

१०-११-१२।१७६।

१३-१४-१९-२१। ये राजवंश तथा इक्ष्वाकु वंश के थे। ७७ १७६।

श्री पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ उग्र वंश के हैं। धर्म शान्ति नाथ और कुंथुनाथ अरहनाथ, ये कुरु वंश के हैं।१८०-१८१-१८२।

बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ हरिवंश में हुए हैं। श्री वर्द्धमान नाथ वंश के हैं।१८३ से १८६।

श्री नेमिनाथ हरिवंश के हैं।१८७।

ये पाचो वंश हरिवंश (इक्ष्वाकु वंश, कुरुवंश, हरिवंश, उग्रवंश, और नाथ वंश) भारत के प्रमुख राजवंश हैं, इनमें धर्म परम्परा चली आई है और इस वंश की दूसरो के ऊपर अच्छा प्रभाव रहा है।१८८ से १९१।

भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर तक चले आये हुए हुण्डाव-सर्पिणी काल में यह भूवलय ग्रन्थ कार्य कारण रूप है। मानो—तीर्थंकर की वाणी कारण रूप और भूवलय कार्य रूप है।१९२ से १९४।

यह भूवलय ग्रन्थ किसी अल्पज्ञ का कल्पित नही है, बल्कि सर्वज्ञ तीर्थंकरो की दिव्य ध्वनि से इसका प्रादुर्भाव हुआ है। भगवान महावीर के

अनन्तर श्री समन्तभद्र, पूज्य पाद आदि आचार्यों की गुरु परम्परा द्वारा भूवलय ग्रन्थ का समस्त विषय श्री कुमुदेन्दु आचार्य तक चला आया है। ये समस्त आचार्य भगवान महावीर के अनुयायी थे। इन आचार्यों ने ग्रन्थ रचना किसी ख्याति, लाभ, पूजा आदि की भावना से नही का इनका उद्देश्य स्व-पर-कल्याण तथा आध्यात्मिक विकास एव आत्मा की सिद्धि ही रहा है।१६५।

श्री समन्तभद्र, श्री पूज्यपाद आदि आचार्यो ने जो लोक कल्याण के लिए रस-सिद्धि आदि का विधान अपने ग्रन्थो में किया, चरक आदि ने उनका आदर, आभार न मानते हुए अपनी ख्याति के लिए उन आचार्यो के ग्रन्थो का अनुकरण करके ग्रन्थ रचना की है।१६६।

१८ हजार पुष्पो का रस निकालकर उसको पुट देवे फिर अन्य वर्तन में उसे रखकर उसका मुख वन्द कर देवे फिर उसे अग्नि पर चढावे, तव वह नवीन रस सिद्ध होता है। इस रस सिद्धि के अनन्तर ही श्री समन्तभद्र, पूज्यपाद आचार्य ने वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि श्री समन्तभद्र आचार्य ने प्राणावाय द्वारा जो वैद्यागम कल्प सूत्र की रचना की थी वह अदृश्य होने के कारण रस सिद्धि विधान चरक आदि को प्राप्त नहीं हुआ तव उन चरक आदि परम्परागत रस विज्ञान को त्यागकर कल्पित रचना की तथा आयुर्वेद ग्रन्थ रचना चरक आदि से ही प्रारम्भ हुआ ऐसी प्रसिद्ध कर दी और उस रसायन मे जीव हिंसा का विधान किया। ऐसे हिंसा विधान करने वालो को आचार्य धिक्कारते हैं प्राणावाय यानी प्राणियो की प्राण रक्षा रूप आयुर्वेद तीर्थंकरो की वाणी से प्रगट हुआ है। चरक आदि ने त्रस जीवो की हिंसा द्वारा रस औषधि विधान किया है उसे प्राणियो की प्राण रक्षा रूप प्राणावाय या आयुर्वेद कैसे माना जा सकता है।१६७।

उन वृक्षो की कलियो (फूल की अविकसित अवस्था) को तोड कर अथवा वृक्ष से गिरी हुई कलियो को एकत्र करके जल में डालकर उन्हें खिलाते हैं, फिर उन कलियो का रस निकालकर उस रस से अतिशय प्रभावशाली रस औषधि तैयार होती है, जोकि इन्द्र को भी दुर्लभ है। गृहस्थ स्थावर जीव हिंसा का त्यागी नही है, अत वह वृक्षो से फूल की कलियो को तोडकर रसायन तैयार कर सकता है। दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवो का सकल्प से घात करना गृहस्थ के लिए त्याज्य हिंसा है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।१६८।

उस रसायन की स्वल्पमात्रा भी सेवन करने से मनुष्य के महान तथा जीर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। स्वस्थ शरीर द्वारा मनुष्य तपश्चरण आदि करके स्वर्गादि के सासारिक सुख प्राप्त कर लेता है और अन्त में अपने स्वस्थ शरीर द्वारा कर्म-क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है।१६६।

ऐसे प्रभावशाली जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट आयुर्वेद प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त करना चाहिए जिससे वह स्वपर-कल्याण करके मनुष्य इस लोक परलोक में सुख प्राप्त कर सके। आयुर्वेद समस्त शारीरिक दोषो को नष्ट करके औषधियो के गुणो से शारीरिक वल आदि गुण प्रगट करने वाला है ऐसे जयशील आयुर्वेद को सवसे प्रथम कर्म भूमि के प्रारम्भ में राजा नाभि राय के पुत्र भगवान ऋषभनाथ ने अपने पुत्रो को पढाया था।२०० से २०२।

प्राणानुवाद पूर्व के रूप में भगवान आदिनाथ के वाद क्रमश राजा जित शत्रु के पुत्र भगवान अजितनाथ ने, राजा जितारि के पुत्र भगवान शम्भव नाथ ने, राजा सवर के तनय भगवान अभिनन्दन ने, राजा मेघप्रभ के पुत्र भगवान सुमतिनाथ ने, नृपतिधरण के पुत्र श्री पद्मप्रभ तीर्थंकर ने, सुप्रतिष्ठ राजा के पुत्र श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी ने, राजा महासेन के पुत्र भगवान चन्द्रप्रभ ने, सुग्रीव राजा के पुत्र भगवान पुष्पदन्त ने, दृढरथ राजा के पुत्र श्री शीतलनाथ तीर्थंकर ने, विष्णुनरेन्द्र के पुत्र भगवान श्रेयासनाथ ने, वसुपूज्य राजा के पुत्र भगवान वासु पूज्य ने, राजा कृतवर्मा के पुत्र भगवान विमलनाथ ने, श्री सिंहसेन के पुत्र भगवान अनन्तनाथ ने, भानु राजा के आत्मज श्री धर्मनाथ तीर्थंकर ने राजा विश्वसेन के पुत्र भगवान शान्तिनाथ ने, सूर्यसेन राजा के पुत्र भगवान कुन्थुनाथ ने, राजा सुदर्शन के पुत्र भगवान अरनाथ ने, राजा कुम्भ के पुत्र भगवान मल्लिनाथ ने, राजा सुमित्र के पुत्र श्री मुनि सुव्रत नाथ तीर्थंकर ने, विजय नरेन्द्र के पुत्र भगवान नमिनाथ ने, राजा समुद्र विजय के पुत्र भगवान नेमिनाथ ने, श्री अश्वसेन राजा के पुत्र भगवान पार्श्वनाथ ने और राजा सिद्धार्थ के पुत्र भगवान महावीर ने अर्हन्त पद पाकर, उसी आयुर्वेद का उपदेश समवशरण द्वारा भूवलय (भूमण्डल) में अपनी दिव्यध्वनि द्वारा दिया इस प्रकार इसको पितृ कुल भूवलय कहते हैं।२०३ से २२० तक।

पितृकुल परम्परा से चले आये प्राणावाय आयुर्वेद से गर्भित भूवलय का स्वाध्याय करनेवाले व्यक्ति अपना शरीर निरोग करके परमार्थ की सिद्धि कर

लेते हैं। कर्म अहिंसा द्वारा सम्पन्न किये हुए रस का शरीर पर लेप करने से शरीर लोहे के समान दृढ हो जाता है। यदि उस रसमणि का लोहे से स्पर्श किया जावे तो लोहा सुवर्ण बन जाता है। श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि रसमणि के सिद्ध हो जाने के समान आध्यात्मिक सिद्धि हो जाने पर आत्मा अजर-अमर बन जाता है।२२१।

श्री कुमुदेन्दु आचार्य कहते हैं कि 'इसलिए अज्ञानी लोगो ने जो जीवों की हिंसा द्वारा औषधि तैयार करने का आयुर्वेद बताया है उसको त्यागकर अज्ञान का परिहार करना चाहिए।२२२।

पाप और पुण्य का विवेचन अच्छी तरह जानकर हिंसामय पाप मार्ग का त्याग करके अर्हन्त भगवान द्वारा उपदिष्ट भूवलय के अनुसार अहिंसा मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।२२३।

सत्यदेव गुरु शास्त्र ही इस जगत में शरण हैं ऐसी अटल श्रद्धा के साथ यदि आयुर्वेद को सीखना चाहोगे तो हम तुमको शीघ्र पुष्प आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करा देंगे और तुम्हें उस आयुर्वेद द्वारा नवीन जन्म प्राप्त के समान कर देंगे।२२५।

श्री पूज्य पाद आचार्य कहते हैं कि भारत देश की जनता को अहिंसा मय पुष्पायुर्वेद सुनने का सौभाग्य मिला और मुझे जनता को आयुर्वेद सुनाने का सौभाग्य पाप्त हुआ है।२२६-२२७।

इस प्रकार जिन २४ तीर्थंकरो को पितृपरम्परा से आयुर्वेद चला आया है उन तीर्थङ्करो की मातृ परम्परा को अव वतलाते हैं। भगवान ऋषभनाथ की माता मरुदेवी, अजितनाथ की माता विजया, शम्भवनाथ की माता सुषेणा, अभिनन्दन की माता सिद्धार्था, सुमतिनाथ की माता पृथिवी, चन्द्रप्रभ की माता लक्ष्मणा, पुष्पदन्त की माता रामा, शीतलनाथ की माता नन्दा, श्रेयासनाथ की माता वेणुदेवी, वासुपूज्य की माता विजया, विमलनाथ की माता जयश्यामा, अनन्तनाथ की माता सर्वयशा, धर्मनाथ की माता सुव्रत, शातिनाथ की माता ऐरा, कुन्थुनाथ की माता लक्ष्मीमती (श्रीमती), अरहन्तनाथ की माता मित्रा, मल्लिनाथ की माता प्रभावती, मुनिसुव्रतनाथ की माता पद्मा, नमिनाथ की माता बप्रिला, नेमिनाथ की माता शिवादेवी, पार्श्वनाथ की माता वर्मिला (वामा) और भगवान महावीर की माता प्रियकारिणी है।२४७।

श्री पूज्यपाद आचार्य ने आयुर्वैदिक ग्रन्थ कल्याणकारक द्वारा सिद्ध रसायन को काव्य निवद्ध किया, उसी को मैंने (श्री कुमुदेन्दु ने) भूवलय के रूप में अंक निवद्ध करके रोगमुक्ति का द्वार खोल दिया।२४८।

यह सिद्ध रस काव्य मगलमय रस को दिलानेवाला है। निसन्देह यह भूवलय अर्हन्त भगवान का उपदिष्ट आगम है, इसको सुनो और हिंसा मार्ग (जीव हिंसा से औषध निर्माण) को त्याग दो।२४९।२५०।

मन वचन काय की शुद्धि पूर्वक भगवान के उपदिष्ट पुष्प आयुर्वेद को १८ हजार श्लोकों में रचना करके भूवलय में गर्भित किया है। १८००० में से तीन शून्यो को हटाकर शेष रहे '१८' (१+८=९) को नवमाक मे लाने पर उसे मन वचन काय रूप तीन के साथ गुणा करने पर (९×३=२७) २७ अ क प्रमाण यह भूवलय ग्रन्थ है।२५१।

२७ अंको में गर्भित इस भूवलय ग्रन्थ को मैं मनवचन काय की त्रिकरण शुद्धि पूर्वक भक्ति से नमस्कार करता हूं। चिरकालीन परम्परा से चले आये हुए इस भूवलय ग्रन्थ को शुद्ध मन से वार-वार नमस्कार करता हूं।२५२।

कितने आश्चर्य की बात है कि चरक ऋषि प्रणीत हिंसामय आयुर्वेद का बुद्धिमान राजा अमोघ वर्ष की राजसभा में भगवान जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट अहिंसामय आयुर्वेद द्वारा परिहार करा दिया।२५३।

शिवपार्वतीश गणित द्वारा कहा गया वैद्य भूमिका विवरण तथा उसका समन्वय का अन्तर का एक, नौ अक तथा तीन, पाच एक (३-५-१) अक्षर नाम का यह भूवलय ग्रन्थ है।

जैसे नौ ९-छोटे अंक ३+५+१=९ पुन १०२६ आनेवाली अ क विद्या यह 'लु' अक्षर श्री सिद्धि भगवान द्वारा चढकर प्राप्त किया हुआ चौदह गुण स्थान नामक अरहन्त भगवान की परम्परा से चला आया हुआ, 'लु' शब्द है।२५४-२५५।

समस्त 'लु' अक्षराक १०, २०६+समस्त अक्षराक १५, ३९०+समस्त अन्तरान्तर १, ८२७=२७, ४२३ अथवा अ—लु २, ७९, ७११+'लु' २७, ४२३=३०, ७, ९३४

इति चौदहवा 'लु' अध्याय

1-1

ने सिद्धान्त श्री

वलय श्रुतावतार

खड दूसरा

CHAPTER 2-1

KEY

4	5	6
3	0	7
2	1	5

3	1	42	30	45	1	7	1	1	7	3	1	1	59	4	7	47	54	24	43	36	56	45	1	1	45	1
13	52	3	57	54	47	43	53	54	43	53	53	56	42	54	1	4	45	52	35	4	1	24	47	4	42	52
1	56	6	1	3	16	4	1	1	4	16	30	3	57	56	59	43	1	56	56	42	52	52	59	1	3	1
1	7	56	43	53	42	28	30	45	47	3	4	7	1	4	1	56	56	7	7	43	42	24	56	53	42	7
38	7	1	4	3	47	4	4	28	56	56	53	54	54	43	1	1	1	56	47	3	52	4	4	1	24	43
30	51	52	56	1	38	59	47	38	1	1	3	1	47	48	59	42	54	1	7	1	45	54	42	52	52	1
3	9	1	53	38	1	1	22	3	56	43	43	1	54	1	1	5	28	56	42	52	4	1	3	1	56	60
3	52	4	7	56	45	28	43	57	1	1	47	4	28	30	30	1	30	3	1	3	56	53	42	7	1	1
43	57	60	1	4	16	47	3	47	56	1	30	47	48	5	53	43	7	42	61	1	3	1	1	54	56	46
1	1	56	47	52	1	7	1	1	7	56	1	57	54	43	1	35	37	52	1	7	48	54	53	59	24	46
53	7	43	38	55	40	58	58	42	47	47	53	1	56	4	57	18	3	56	42	48	13	24	42	28	45	1
30	1	1	1	6	28	28	54	4	16	2	53	3	30	1	52	58	47	1	56	24	13	56	4	4	52	1
53	59	53	47	3	4	9	56	3	45	52	1	35	37	1	1	1	1	4	52	1	1	45	59	1	56	52
7	16	1	43	57	48	57	56	1	47	3	45	1	(59)	56	28	58	47	1	66	59	4	1	43	4	1	59
58	1	4	1	7	3	1	56	45	16	59	7	56	54	3	3	1	4	56	42	52	46	47	45	53	1	42
30	42	60	47	42	55	1	4	28	47	1	1	53	4	42	56	54	54	9	1	7	1	47	52	52	56	1
1	4	3	1	16	55	56	1	1	1	52	54	1	46	1	53	56	52	56	54	42	4	1	1	52	59	60
56	45	54	1	1	1	54	56	54	52	43	3	56	1	56	59	1	55	4	1	42	56	7	1	18	2	56
28	45	3	30	7	3	54	43	45	45	56	16	4	30	1	18	52	52	35	54	1	60	43	1	54	24	4
1	59	3	56	43	1	1	1	1	54	45	56	56	55	47	1	45	1	1	54	1	52	42	1	60	42	35
4	53	1	1	45	43	31	57	45	1	1	9	1	4	59	1	1	1	4	52	1	1	56	1	56	42	53
53	45	4	1	1	4	18	1	47	28	51	60	35	1	48	45	59	52	1	29	52	1	48	18	42	1	52
1	42	43	44	56	45	46	1	16	1	1	1	55	1	47	28	1	47	28	1	45	1	46	7	1	4	42
1	35	43	7	1	1	56	58	43	59	1	55	29	4	1	54	1	43	35	56	55	4	45	56	43	52	23
16	1	48	42	53	57	28	7	30	54	4	7	16	28	59	45	4	7	17	1	55	1	7	4	1	59	35
3	7	4	56	1	4	54	1	59	47	52	59	47	22	16	42	1	45	1	1	53	46	35	42	1	1	28
42	58	4	54	1	57	54	1	44	1	4	3	60	45	1	53	47	3	53	4	7	52	1	44	56	7	60

जैन सिद्धान्त श्री भूवलय श्रुतावतार

53	1	52	54	1	55	30	46	38	54 [38]	22	4	54	1 [36]	1	54	43	45	50	45	47	55	60	60	54	54 [41]	45
56	1	3	1	3	4	55	38	4	54	54	1	1	52	1	47	4	1	3	48	7	1	7 [40]	18	1	1	4
38	60	54	48	54	3	1	13	1	1	1	46	54	56	1	54	58	1	1	45	47	54	56	53	55	30	56
4	1	33	1	47	56	17	45	58	47	1	16	1	47	1	1	38	56	1	4	30	1	1	3	47	1	56
47	7 [33]	56	43	3	56	56	1	43	42	54	45	1	56	53	55	1	1	35	1	54	55	28	1	53	59	16
54	1	1	34	1	4	16	3	1	22	56	54	1	16	16	55	56	1	47	9	1	1	54	45	1	53	1
54	56	7 [34]	28	52	3	54	35	1	1	1	43	56	30	54 [39]	3	56	48	51	56	47	4	4	1	4	43	4
54	54	47	7 [35]	60	48	16	48	1	47	47	1	1	1	48	1	1	52	56	48	60	56	56	13	47	56	1
1	1	54	1	53	45	4	13	1	1	53	13	56	1	59	56	7 [37]	3	1	1	3	1	1	1	7	45	59
30	43	1	24	30	1	7	28	53	1	52	3	43	54	1	45	24	58	43	59	54	45	31	43	1	56	54
7 [31]	28	56	52	53	54	4	4	3	56	3	47	54 [10]	33	1	56	1	1	1 [12]	1	3	56	47	47	1	30	1
47	7 [32]	3	1	1	54	46	56	54	1	37	1	54	7 [18]	52	1	47	56	57	47	48	1	1	55	3	4	45
54	54	4	54	3	4	1	1	1	55	35	47	18	59	1	56	1	4	1	1	43	45	16	35	47	47	1
4	56	43	45	47	45	1	43	1	7 [30]	1	4	1	(56)	1	4	55	55	56	4	1	56	1	7	6	1	4
1	1	25	1	13	50	43	53	47	54	55	35	56	1	58	54	1	55	42	47	1	47	13	54	54	45	30
54	52	56	3	52	48	45	1	41	1	1	1	52	1	38	7	50	1	3	28	48	22	1	1	3	16	1
54	43	50	24	1	1	45	7 [20]	1	56	56	18	28	1	46	45	46	45	59	1	45	57	54	59	43	30	43
7 [30]	4	18	45	56	1	54	48	1	1	45	13	18	48	1	53	4	1	56	1	1	6	4	7	7	47	7
1	4	56	56	45	54	56	59	16	7	13	58	18	54	1	7 [22]	54	1	48	54	45	45	53	54	7	45	30
50	7	57	4	1	59	1	13	45	18	7	48	58	45	54	1	56	54	1	3	3	54	45	47	4	13	16
13	1	56	56	1	56	1	1	16	56	1	18	1	1	45	1	53	56	30	1 [13]	3	7	1	43	1	4	53
56	52	3	52	1	28	56	54	3	56	57	46	54	1	56	1	1	1	43	45	30	13	1	30	45	56	4
7 [25]	53	43	30	1	4	56	56	4	4	1	1	52	54 [23]	55	54	52	1	1	47	1	56	1	1	4	46	4
46	48	54 [26]	53	7 [27]	43	1	56	54	47	3	1	1	1	1	7 [24]	59	56	1	57	59	52	45	59	45	42	57
9	1	16	54	1	7 [28]	52	1	1	56	30	43	56	56	1	1	1	1	1	1	1	4	1	1	1	1	53
42	30	1	46	54	52	56	45	54	60	47	9	1	46	54	52	57	24	56	53	13	59	53	30	53	56	53
4	56	45	1	3	1	1	1	1	1	51	45	1	13	7 [21]	54	42	1	4	18	1	4	4	1	1	52	18

1	54	56	45	54	53	48	53	9	1	54	3	56	54	56	1	52	1	1	45	16	52	59	43	4	6	45
3	3	1	3	1	7	4	52	41	1	59	1	7	1	58	59	60	59	3	53	1	53	47	46	43	4	53
53	56	45	54	59	56	1	42	45	9	53	47	51	4	1	4	60	56	4	54	1	3	3	3	56	56	54
1	1	13	52	1	55	1	7	4	1	1	59	56	52	59	4	1	51	4	56	45	59	52	1	1	1	56
54	13	1	45	1	59	43	55	57	45	4	4	1	1	56	1	1	58	18	1	4	6	47	43	1	7	7
7	3	1	52	1	43	1	1	3	30	56	59	54	4	54	42	4	53	47	1	58	1	4	47	51	59	45
59	54	1	52	7	1	53	44	53	43	1	16	56	1	59	56	1	3	56	3	31	54	1	1	1	1	1
55	53	1	45	43	43	59	16	1	53	56	1	33	1	4	52	56	1	1	1	1	56	55	56	53	52	7
4	45	1	1	1	1	28	54	1	16	45	1	48	7	4	1	52	29	45	56	1	55	48	7	1	59	43

4	3	30	1	57	52	56	3	1	45	1	53	24	30	1	54	1	43	30	1	46	1	22	1	3	1	1
45	3	53	3	1	1	30	56	13	1	4	59	7	56	16	42	1	7	47	1	47	47	47	31	59	1	47
56	47	53	30	57	47	1	54	1	38	45	1	13	1	42	3	45	47	56	1	1	1	45	55	57	7	1
3	56	7	1	1	57	1	52	1	1	47	30	57	54	7	45	4	1	53	52	1	7	1	1	54	52	3
4	28	53	1	1	28	54	56	52	56	1	4	16	(1)	43	1	53	43	43	59	52	45	45	1	53	53	7
1	54	60	53	1	6	1	3	45	6	56	55	43	47	1	56	1	54	1	4	16	3	54	54	1	54	3
3	1	2	56	42	48	59	1	45	35	4	1	56	17	28	1	47	1	56	56	56	1	1	1	1	45	47
30	35	7	1	54	1	45	1	50	1	45	1	56	1	51	53	43	53	53	45	46	48	46	54	16	1	1
5	59	13	4	48	1	1	3	47	56	7	53	4	54	1	60	16	3	1	1	60	4	30	54	31	43	47

1	53	1	56	3	52	56	1	1	7	54	52	7	47	59	54	54	3	55	1	56	1	16	22	60	1	30
56	30	1	4	1	9	53	55	45	1	1	54	1	16	1	1	55	42	42	43	47	47	28	52	56	4	1
1	45	60	45	51	1	3	1	2	28	3	53	56	56	28	1	55	48	41	7	1	7	4	1	56	1	7
1	1	7	1	45	28	59	28	1	45	4	1	1	1	30	1	7	47	48	40	47	59	45	7	45	54	9
13	46	54	1	16	1	51	56	47	45	52	53	53	45	28	1	3	4	1	1	1	54	54	1	45	52	54
52	53	59	47	54	47	1	3	1	1	7	1	7	1	52	53	13	4	52	1	18	1	52	1	4	1	54
1	1	1	1	1	43	37	30	7	3	45	48	45	1	1	1	39	59	39	56	42	1	53	1	45	16	4
3	28	30	45	4	35	16	45	55	1	1	1	59	45	56	1	1	53	7	3	43	1	56	13	56	55	6
55	47	1	42	1	58	4	1	47	45	43	1	1	51	28	56	4	52	35	4	47	1	60	1	40	48	54